एमएईसी–107
(MAEC – 107)

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र
(International Economics)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. यू. पी. सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ई.सी.सी. इलाहाबाद, उ. प्र.	**1,2,3,4,5** **11,12,13,14,15**
डॉ. राकेश कुमार असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, एस.के.एम. विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड	**6,7,8,9,10**
डॉ. वी. पी. चौरसिया एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग डी.ए.वी. कालेज, देहरादून, उत्तराखण्ड	**16,17,18,19,20**
डॉ. साहब सिंह एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.सी. बागला पी. जी. कॉलेज, हाथरस, उ.प्र.	**21,22**
डॉ. अमितेन्द्र सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**23,24**
डॉ. सुरजीत सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बी.एस.एम पी.जी कालेज, रूड़की, उत्तराखण्ड	**25**

संस्करण: 2017
आई.एस.बी.एन.: 978-93-84813-35-2

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशक: कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139
email: studies@uou.ac.in
मुद्रक:

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र
(International Economics)

एमएईसी – 107
(MAEC – 107)

विषय–सूची

खण्ड– 1. प्रस्तावना एवं सिद्धान्त **(Introduction and Theory)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade)	1–16
इकाई– 2. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की विश्लेषणात्मक तकनीक (Analytical Technique of International Economics)	17–38
इकाई– 3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विशुद्ध सिद्धान्त (Classical Theory of International Trade)	39–61
इकाई– 4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव प्रतिष्ठित सिद्धान्त (Neo-Classical Theory of International Trade)	62–85
इकाई– 5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of International Trade)	86–113

खण्ड– 2. व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण एवं सीमा संघ के सिद्धान्त **(Terms of Trade, Free Trade, Protection and Custom Union)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 6. व्यापार की शर्तें और आर्थिक संवृद्धि (Terms of Trade and Economic Growth)	114–127
इकाई– 7. मुक्त व्यापार एवं संरक्षण (Free Trade and Protection)	128–138
इकाई– 8. गैर–टैरिफ व्यापार बाधाएं (Non-Tariff Trade Barriers)	139–152
इकाई– 9. राशिपातन और राज्य व्यापार (Dumping and State Trading)	153–164
इकाई– 10. सीमा संघ के सिद्धान्त (Theory of Customs Union)	165–181

खण्ड– 3. भुगतान सन्तुलन **(Balance of Payments)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 11. भुगतान सन्तुलनः परिभाषा और अवधारणा (Balance of Payments: Definition and Concepts)	182–206
इकाई– 12. विदेशी व्यापार गुणक (Foreign Trade Multiplier)	207–232
इकाई– 13. भुगतान सन्तुलन में समायोजन के परम्परागत अवशोषण (Conventional Absorption adjustment in Balance of Payments)	233–255

इकाई– 14. मौद्रिक उपागम तथा भुगतान–सन्तुलन में समायोजन 256–280
(Monetary Approach and Adjustment Mechanism of Balance of Payments)
इकाई– 15. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र सिद्धान्त 281–302
(Theory of Optimum Currency Area)

खण्ड– 4. विदेशी विनिमय व नियन्त्रण सिद्धान्त एवं भारत की व्यापार नीति — पृष्ठ संख्या
(Principles of Foreign Exchange and Control and Trade Policy of India)

इकाई– 16. विदेशी विनिमय 303–320
(Foreign Exchange)
इकाई– 17. विनिमय नियंत्रण 321–334
(Foreign Control)
इकाई– 18. विदेशी विनिमय बाजार का सिद्धान्त, विनिमय व्यापार, अन्तर–पणन एवं बाजार हैजिंग 335–351
(Theory of Foreign Exchange Market, Exchange Trade, Arbitrage and Market Hedging)
इकाई– 19. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार पूर्व काल में 352–370
(International Trade Policy of India during Post Reform Period)
इकाई– 20. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार काल 371–389
(International Trade Policy of India during Reform Period)

खण्ड– 5. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान **(International Institutions)** — पृष्ठ संख्या

इकाई– 21. वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार 390–404
(International Trade under the Imperfect Competition in the Commodity Market)
इकाई– 22. क्षेत्रीय गुट बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार पद्धति 405–418
(Regional Faction, Multilateralism and World Trade System)
इकाई– 23. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष 419–433
(International Monetary Fund)
इकाई– 24. विश्व व्यापार संगठन 434–451
(World Trade Organization)
इकाई– 25. वैश्वीकरण–विनिमय बाजार का विकास, यूरो मुद्रा बाजार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार 452–465
(Globalization- Development of Exchange Market, Euro Currency Market and International Bond Market)

इकाई- १ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

इकाई संरचना

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ
  १.३.१ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण
  १.३.२ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ
१.४ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार
१.५ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार
  १.५.१ साधन गतिशीलता
  १.५.२ उत्पाद गतिशिलता
  १.५.३ अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएं
  १.५.४ आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण
  १.५.५ भुगतान शेष की समस्या
१.६ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता
  १.६.१ आधुनिक दृष्टिकोण
  १.६.२ निष्कर्ष
१.७ सारांश
१.८ शब्दावली
१.९ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
१.१० सन्दर्भ ग्रन्थ सुची
१.११ उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
१.१२ निबंधात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक “प्रस्तावना एवं सिद्धांत” से सम्बंधित यह पहली इकाई है.इससे पहले अर्थशास्त्र के व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न सिद्धांतों के बारे में बता सकते हैं. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की ही एक विशेष स्थिति है. समस्त आंतरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाओं का आधार वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय है; अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सम्बन्ध राष्ट्रों के मध्य समस्त आर्थिक सौदों से है.

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार, अर्थ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर के बारे में विस्तार से बताया गया है. साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता पर भी चर्चा की गयी है.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार एवं प्रकृति के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

१.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता को समझ सकेंगे.

१.३ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ, प्रकृति एवं लाभ

व्यापार का अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार का ही एक विशेष स्वरूप है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ है राष्ट्रों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय. स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ उस वाणिज्यिक निति से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं के घरेलु तथा विदेशी विनिमय के मध्य विभेद नहीं करती.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक ऐसी क्रियाविधि या तरीका है जो की वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के जरिये विश्व के विभिन्न देशों को आपस में जोडता है.आर्थिक समृद्धि मुख्यतया श्रम विभाजन और विष्टिकरण पर निर्भर करता है जबकि श्रम विभाजन और विष्टिकरण बाज़ार के आकार पर निर्भर करता है; बाज़ार का आकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बढता है. व्यापार से तात्पर्य है पूर्ति, यदि घरेलू उपभोग देश के उत्पादन से अधिक हो, तथा मांग, यदि देश का उत्पादन घरेलू उपभोग से अधिक हो के लिए दूसरे स्रोतों पर निर्भरता. एक देश व्यापर न होने की स्थिति में आत्मनिर्भर हो सकता है परन्तु भौतिक रूप से वह काफी गरीब होगा; ऐसी आत्मनिर्भरता देश के उत्पादन के आकार तथा उसकी दक्षता को बिलकुल सीमित कर देती है.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिधांत पुरे विश्व को एक समुदाय के रूप में देखता है जो की देशों की सीमाओं में भले विभाजित हो परन्तु आय व रहन – सहन के स्तर में वृद्धि के समान उद्देश्य से बंधा है. यह विकाश के अंतर्मुखी रणनीति की अपेक्षा बहिर्मुखी रणनीति की वकालत करता है जो की अपेक्षाकृत सरल और कम श्रमसाध्य तरीका है. सर डेनिस राबर्टसन(Dennis Robertson) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को किसी देश के आर्थिक समृद्धि और विकास का इंजन कहा है.

१.३.१ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं:

i. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संसाधनों की गतिशीलता अनेक कारणों से अंतरक्षेत्रीय या घरेलू व्यापार की अपेक्षा काफी कम रहती है इसलिए संसाधनों और उत्पादों की कीमतों में भी अंतर होता है.

ii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विभिन्न राजनीतिक इकाइयों के बीच ही उत्पन्न होता है. राजनीतिक तंत्र के भिन्न होने से एक देश की राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियां,विभिन्न कानून व नियम, सरकारी हस्तक्षेप के तरीके तथा उनकी गुणवत्ता इत्यादि भिन्न होते हैं.

iii. विभिन्न दशों के बीच सामाजिक- आर्थिक वातावरण भी काफी भिन्न होने से व्यापार उतप्पन होता है.

iv. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न देशों के बाज़ारों में भी; भिन्न भाषा, रीति-रिवाज़, जलवायु, आदतें, प्राथमिकताएं इत्यादि भिन्न होने के कारण; भिन्नता होती है.असमांग बाज़ार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख प्रभेदक लक्षण है.

v. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक प्रमुख प्रभेदक लक्षण यह है कि यह विभिन्न प्रकार कि मुद्राओं को अपने व्यापर में सम्मिलित करता है. चूंकि हर एक देश कि मुद्रा अलग है इसलिए विनिमय दरों और विदेशी विनिमय से सम्बंधित विभिन्न देशों कि नीतियां भी अलग- अलग है.

१.३.१ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभ

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं:

i. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विष्टिकरण और श्रम विभाजन को बढावा देकर व्यापार में सम्मिलित देशों के लाभों को बढाता है.

ii. अन्तर्राष्ट्रीय विष्टिकरण और भौगोलिक श्रम विभाजन से विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित करता है.

iii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, व्यापार में सम्मिलित देशों के उत्पादन में वृद्धि लाकर उन्हें समृद्ध बनाता है, उनके धन में वास्तविक वृद्धि लाता है. इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्रत्येक देश के उपभोग या आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है.

iv. इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पुरे विश्व के उत्पादन तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि लाता है.

v. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार स्वतंत्र व्यापार को बढावा देकर एकाधिकरात्मक प्रवृतियों को रोकता है तथा एकाधिकरात्मक शोषण से उपभोक्ताओं को बचाता है.

vi. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विश्व के सभी देशों के हितों कि रक्षा करता है और कच्चे मॉल कि उपलब्धि के लिए सभी देशों को समान अवसर प्रदान करता है.

vii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग तथा सांस्कृतिक मूल्यों के आदान प्रदान का माध्यम बनता है.

viii. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाज़ार के आकार को बढाता है जिससे और जटिल विष्टिकरण और श्रम विभाजन को बढावा मिलता है.

ix. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतियोगिता को बढावा देकर घरेलु उत्पादकों को अत्यधिक दक्ष होने और उत्पादों कि गुणवत्ता बढाने को प्रेरित करता है.

x. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार श्रम और पूंजी कि प्रकृति में गुणात्मक परिवर्तन लाता है साथ ही तकनीकी ज्ञान के आदान प्रदान के कारण भी काफी भिन्न प्रकार के परिवर्तन देशों में होते हैं.

अभ्यास प्रश्न–1

लघुउत्तरीय प्रश्नः

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख क्या हैं?
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रमुख लक्षण क्या हैं?
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुख्य लाभ क्या हैं?

अति लघुउत्तरीय प्रश्नः

1. अंतराष्ट्रीय व्यापार किसे कहते है?
2. श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण से क्या तात्पर्य है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार परिणाम है
   i. भौगोलिक श्रम विभाजन का
   ii. सांस्कृतिक मूल्यों के आदान प्रदान का
   iii. राजनीतिक संबंधों का
   iv. उपरोक्त सभी

२. किसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को किसी देश के आर्थिक समृद्धि और विकास का इंजन कहा है.

i. डेनिस राबर्टसन
ii. मार्शल
iii. मिल
iv. रिकार्डो

३. निम्नलिखित में से कौन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का लाभ नहीं हैं:

i. विश्व के उत्पादन में वृद्धि
ii. आर्थिक कल्याण में वृद्धि
iii. वस्तुओं कि किस्मों में वृद्धि
iv. श्रम कि गतिशीलता में वृद्धि

1.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्त के सामने एक मूलभूत प्रश्न यह रहा है कि दो या दो से अधिक देश आपस मे व्यापार क्यों करते हैं? कोई भी देश व्यापार तभी करेगा जब उसे व्यापार से लाभ होगा। तो प्रश्न यह उठता है कि व्यापार से लाभ क्यों होता है? इन्हीं प्रश्नों–उत्तरों में तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का सार निहित है। प्रतिष्ठित अथशास्त्रीयों ने मात्र श्रम को ही उत्पादकता का साधन मानते हुए, विभिन्न देशों के बीच श्रम–उत्पादकता के अंतर को ही व्यापार कारण कहा है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार दो देशों के बीच लागतों या लागत दशाओं मे जितना ही अंतर होगा उतना ही व्यापार से लाभ होगा, यह लाभ व्यापार मे भाग लेने वाले एक या दोनों ही देशों को प्राप्त हो सकता है।

जिन कारणों से विभिन्न व्यक्ति आपस मे व्यापार करते हैं उन्ही कारणों से विभिनन राष्ट्र भी एक दूसरे से व्यापार करते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने उपभोग के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन नहीं कर सकता है और यह बात राष्ट्रों के संदर्भ में भी लागू होती है। प्रकृति ने पृथ्वी की सतह पर उत्पादन के संसाधनों का वितरण असमान ढंग से किया है। जलवायु दशाओं, खनिज संसाधनों, श्रम तथा पूंजी संसाधनों, प्राकृतिक संसाधन प्रचुरता, तकनीकी क्षमताओं, उद्यमीय तथा प्रबंधकीय क्षमताओं और उन सभी चीजों जो कि किसी देश की उत्पादन क्षमता को निर्धारित करती है, में विभिन्न राष्ट्रों की स्थिति भिन्न होती है। उत्पादन संभावनाओं मे ंयह अन्तर ऐसी स्थितियों को जन्म देता है जहाँ कुछ देश अन्य देशों की अपेक्षा कुछ वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन अधिक दक्षतापूर्वक कर सकते हैं और कोई भी देश सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन पूरी दक्षता पूर्वक अर्थात् न्यूनतम संभव उत्पादन लागत पर नहीं कर सकता है।

जिस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम–विभाजन होता है उसी तरह विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो सकता है। एक राष्ट्र उस वस्तु या सेवा के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करता है जिसमें कि वह अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में श्रेष्ठ होता है विनिमय की प्रक्रिया में व्यक्ति या उपभोक्ता जिस प्रकार अपनी संतुष्टि या

विनिमय से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है उसी प्रकार अर्न्राष्ट्रीय व्यापार में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कम कीमत पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद करके लाभ प्राप्त करता है।

वस्तुतः वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है यदि कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा तो व्यापार नहीं होगा। और व्यापार से लाभ का तात्कालिक कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में विद्यमान अंतर है जो कि पूर्ति तथा माँग की दशाओं में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

इस प्रकार वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों में अन्तर, जो कि अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का आधार है, निम्नलिखित स्थितियों के कारण उत्पन्न हो सकता है

(क) यदि पूर्ति–दशाओं में अन्तर हो, या

(ख) यदि माँग–दशाओं में अन्तर हो या

(ग) यदि मांग और पूर्ति दोनों की दशाओं में अन्तर हों

स्पष्ट है कि यदि दो देशों में माँग तथा पूर्ति, दोनों दशाएँ एक समान है, तो उनमें कोई व्यापार सम्भव नहीं है, क्योंकि तब व्यापार से किसी भी देश को लाभ नहीं होगा।

पूर्ति दशाओं में अंतर बहुत सारे कारणों से पैदा हो सकते हैं, जैसे–आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता, इन संसाधनों की दक्षता का स्तर, उत्पादन में प्रस्तुत तकनीकी का स्तर, श्रम की योग्यता, साधन गहनता इत्यादि। वास्तव में पूर्ति–पक्ष राष्ट्रों के बीच साधन–सम्पन्नता तथा उत्पादन–दक्षता में अंतर का बताता है, जो कि वस्तुओं तथा सेवाआं की उत्पादन लागतों और बिक्री कीमतों में व्यक्त होती है।

दो देशों के मध्य पूर्ति दशाएँ या उत्पादन लागत समान होने की स्थिति में भी, माँग दशाओं मे अंतर के कारण कीमतों में भिन्नता हो सकती है। माँग में अन्तर मुख्यतः आय के स्तरों तथा रुचि पर निर्भर करता है।

हम उपरोक्त तीनों स्थितियों को चित्र के माध्यम से दर्शा सकते हैं:

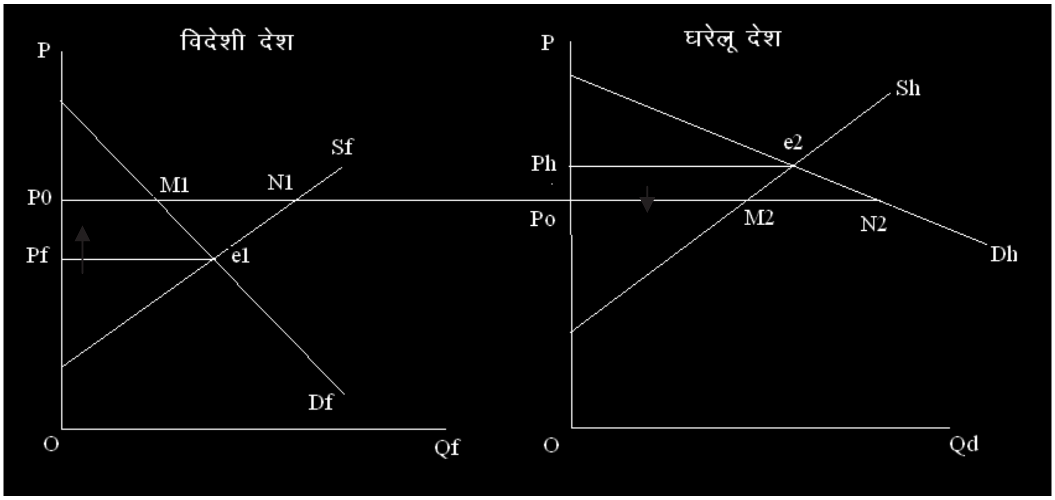

चित्र–1.1 जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग दशाओं में अन्तर हो

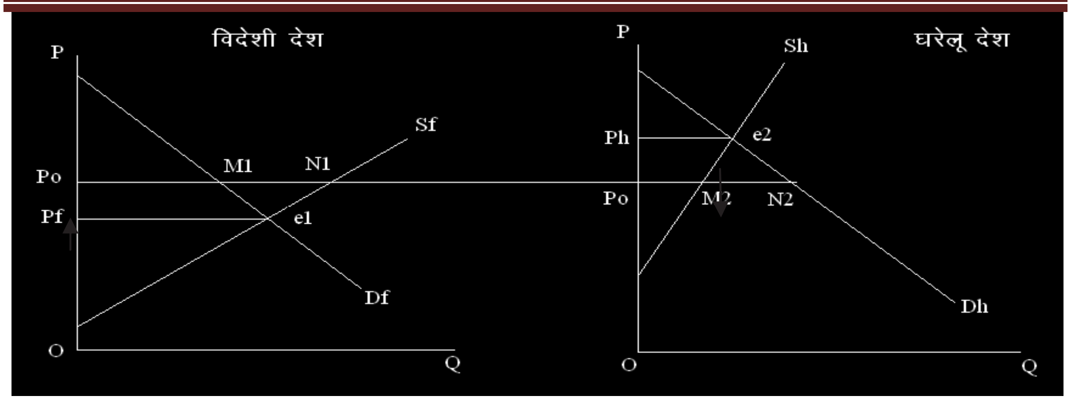

चित्र–1.2 जब पूर्ति दशाएँ समान हों, तथा मांग–दशाओं में अन्तर हो

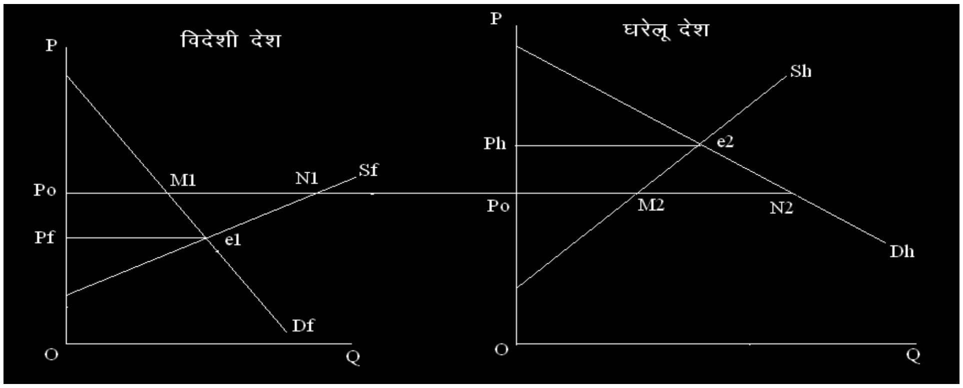

चित्र–1.3 जब पूर्ति तथा मांग दशाएँ दोनों भिन्न हों।

उपरोक्त तीनों चित्रों मे विदेशी तथा घरेलू देश की, एक दिए हुए वस्तु या उत्पाद के संदर्भ में, मॉंग तथा पूर्ति की विभिन्न दशाओं को दर्शाया गया है। X–अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा Y अक्ष पर कीमत प्रदर्शित की गयी है। Sf तथा Df क्रमशः विदेशी देश के पूर्ति तथा मांग वक्र को और Sh तथा Dh क्रमशः घरेलू देश के पूर्ति तथा मॉंग वक्र है। Pf तथा Ph क्रमशः विदेशी तथा घरेलू देश में व्यापार न होने की दशा में कीमतें हैं। P_0 व्यापार शुरु के पश्चात् दोनों देशों की संतुलन कीमत को व्यक्त करता है।

उपरोक्त सभी चित्रों में, विदेशी देश में वस्तु की कीमत (Pf) घरेलू देश की कीमत (Ph) से कम है (Pf<Ph) यह अंतर निम्नलिखित कारणों से है –

(क) चित्र–1.1 में पूति–दशाएँ भिन्न है। विदेशी पूर्ति वक्र (Sf) घरेलू पूर्ति वक्र(Sh) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।

(ख) चित्र–1.2 में मांग–दशाओं में भिन्नता है। घरेलू मांग वक्र (Dh) विदेशी मांग वक्र (Df) की अपेक्षा अधिक लोचदार है।

(ग) चित्र–1.3 में पूर्ति तथा मांग–दशाएँ दोनों भिन्न है।

चूंकि घरेलू देश में वस्तु की कीमत विदेशी देश की अपेक्षा अधिक है, इसलिए विदेशी देश से घरेलू देश को वस्तु का आयात होगा। इस प्रकार कीमत अंतर के कारण वस्तु का व्यापार होगा जिसमें विदेशी देश निर्यातक तथा घरेलू देश आयातक होगा। वस्तु का विदेशी देश से निर्यात तथा घरेलू देश से आयात तब तक जारी रहेगा जब तक कीमतों

में अंतर पूरी तरह सामाप्त नहीं हो जाता है और घरेलू देश का आयात विदेशी देश के निर्यात की मात्रा के बराबर और स्थिर नहीं हो जाता। चित्र में संतुलन की स्थिति मे कीमत Po है जिस पर आयात और निर्यात की मात्राएँ स्थिर तथा एक दूसरे के बराबर है। Po कीमत पर, कीमत अंतर समाप्त हो जाने के बाद आगे व्यापार के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी।

चित्र–1.4 में, दोनों देशों में समान पूर्ति और मांग की स्थितियाँ दर्शायी गयी है। चूंकि कीमतों में कोई अंतर नहीं है (Ps=Ph) इसलिए व्यापार संभव नहीं है।

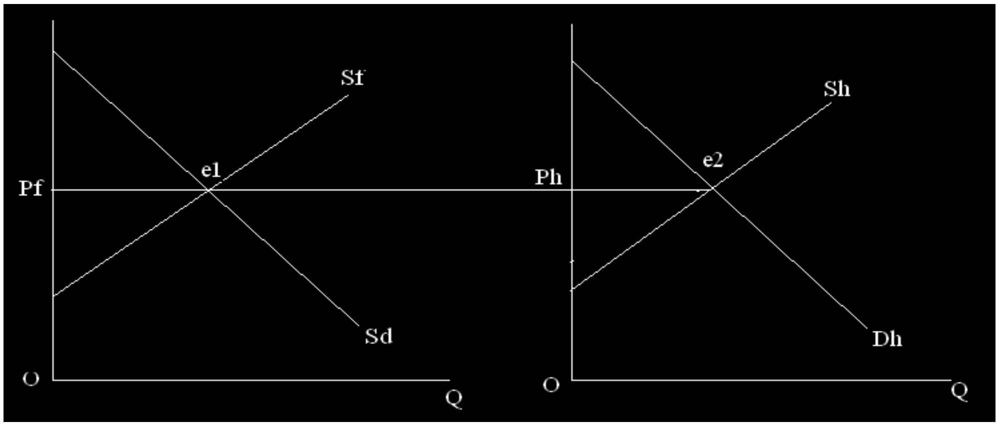

चित्र–1.4 जब पूर्ति व मांग दशाएँ दोनों समान हैं।

इस प्रकार जब कीमतों में अन्तर होगा तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा और उनके उपभोग तथा कल्याण के स्तर में वृद्धि होगी। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय व्यापर विश्व के राष्ट्रों के समक्ष यह संभावनाएं खोल देता है कि वे उन आर्थिक गतिविधियों में विशिष्टीकरण प्राप्त करें जिनमें वे सर्वाधिक सम्पनं तहत दक्ष हैं. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह उप–विभाजन तथा विशिष्टीकरण, व्यापार में भाग लेने वाले सभी देशों को लाभ पहुँचाता है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु कीमतों के साथ–साथ कीमतों में भी सामानीकरण लाता है।

अभ्यास प्रश्न–2

अति लघुउत्तरीय प्रश्नः

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार क्या है?
2. दो या दो से अधिक देश आपस मे व्यापार क्यों करते हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है–
   i. मांग की दशाओं में अंतर, यदि पूर्ति की दशाएँ समान है
   ii. पूर्ति की दशाओं में अंतर यदि मांग की दशाएँ समान है
   iii. मांग तथा पूर्ति दोनों दशाओं में अन्तर
   iv. उपरोक्त सभी
2. यदि दो देशों में मांग तथा पूर्ति दोनों दशाएँ समान हैं तो

i. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा
ii. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ नहीं होगा
iii. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से एक देश को लाभ होगा

3. माँग दशाओं मे अंतर निर्भर करता है
i. आय के स्तरों तथा रुचि पर
ii. साधन–सम्पन्नता तथा उत्पादन–दक्षता पर
iii. उत्पादन में प्रस्तुत तकनीकी का स्तर
iv. उपरोक्त सभी

4. पूर्ति दशाओं मे अंतर निर्भर करता है
i. श्रम की योग्यता पर
ii. साधन–सम्पन्नता तथा उत्पादन–दक्षता पर
iii. उत्पादन में प्रस्तुत तकनीकी का स्तर
iv. उपरोक्त सभी

१.५ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार

दो राष्ट्रों के मध्य होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा एक राष्ट्र की सिमाओं के भीतर होने वाले व्यापार को अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार कहते हैं. अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार को ओहलिन अंतर स्थानीय व्यापार कहते हैं.

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को कई अर्थशास्त्री अतंर्राक्षेत्रीय तथा स्थानीय व्यापार से भिन्न नहीं मानते हैं क्योंकि दोनों ही विनिमय की क्रियाएँ हैं और मूलतः एक–सी हैं।

वास्तव में अर्थशास्त्रीयों के बीच यह काफी विवाद का विषय रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरक्षेत्रीय या स्थानीय व्यापार से भिन्न है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रीयों के अनुसार दन दोनों में एक निश्चित मूलभूत अन्तर है परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रीयों जैसे ओहलिन और हैब्eलर के अनुसार इन दोनों के बीच अंतर स्थापित करना न तो संभव है और न ही इसकी आवश्यकता है।

एक देश के नागरिकों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय आन्तरिक व्यापार तथा एक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ विनिमय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहा जा सकता है। इन दोनों के बीच अंतर के मुख्य कारण निन्नलिखित है–

1.5.1 साधन गतिशीलता– प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के संसाधनों की भौगोलिक गतिशीलता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार के मध्य विभेद करते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार एक देश के भीतर उत्पादन के संसाधन पूरी तरह गतिशील होते हैं, इसलिए देश के भीतर एक ही प्रकार तथा गुणवत्ता वाले किसी भी संसाधन की कीमत समान होगी परन्तु राष्ट्रों के बीच संसाधन पूरी तरह गतिशील हैं। इसलिए सापेक्षिक कीमतों का निर्धारण करने वाला सिद्धान्त घेरलू तथा विदेशी व्यापार के लिए अलग–अलग होगा।

ओहलिन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते है। उनके अनुसार देश के भीतर अंतरक्षेत्रीय स्तर पर भी, संसाधन जैसे श्रम व पूँजी अगतिशील रहते हैं। एक देश के अंदर मजदूरी दरें न केवल भिन्न–भिन्न व्यवसायों मे भिन्न–भिन्न होती है बल्कि एक ही व्यवसाय मे विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती है। ब्याज दरें भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न उद्‌देश्यों के लिए बदलती रहती है। इसी प्रकार, श्रम और पूँजी राष्ट्रों के बीच पूरी तरह अगतिशील नहीं है। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा तथा लैटिन अमेरिका देशों का तीव्र विकास इग्लैण्ड और यूरोप से श्रम और पूँजी के चलन से ही संभव हुआ। आज विदेशी पूँजी का अल्पविकसित देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। यूरोपीय संघ के देशों में श्रमिक स्वतंत्रता पूर्वक आ जा सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि संसाधनों की घेरलू गतिशीलता और अतंर्राष्ट्रीय गतिशीलता में केवल अंश (डिग्री) का ही अंतर है। संसाधनों की अंतरक्षेत्रीय गतिशीलता इसकी अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता से अधिक होती है।

वास्तव में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में संसाधनों की स्थान गतिशीलता को शून्य मानते हैं। पर्याप्त संसाधन गतिशीलता के अभाव में एक ही जैसे व्यवसायों में संसाधनों की कीमतों में अन्तर विद्यमान रहेगा। इस अर्थ में, जहाँ तक प्राकृतिक संसाधनों की बात है, शून्य गतिशीलता होगी।

1.5.2 उत्पाद गतिशीलता – एक राष्ट्र के भीतर वस्तुओं तथा सेवाओं की आवाजाही या गतिशीलता स्वतंत्र होती हैं। यह गतिशीलता सिर्फ भौगोलिक दूरी या परिवहन लागत द्वारा सीमित होती है परन्तु दो राष्ट्रों के बीच वस्तुओं तथा सेवाओं की गतिशीलता पर अनेक मानववजनित प्रशुल्क तथा गैर–प्रशुल्क अवरोध होते हैं जो कि वस्तुओं की अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता को न सिर्फ सीमित कर देते हैं बल्कि इसे अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता से भिन्न प्रकार का बना देते हैं। फिर अंतराष्ट्रीय व्यापार में प्राकृतिक अवरोध जैसे भौगोलिक दूरी तथा परविहन लागत भी काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

राजनैतिक सीमाओं का अस्तित्व अंरर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतान का नियंत्रण एवं नियमन विभिन्न रूपों में करता है, जैसे, प्रशुल्क, कोटा, विनिमय नियंत्रण, विदेशी व्यापार अधिनियम एवं नियंत्रण के अति सूक्ष्म उपाय, जिसे प्रशासनिक संरक्षणवाद कहा जाता है, आदि।

1.5.3 अतंर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएँ – अतंर्राष्ट्रीय मौद्रिक विभिन्नताएँ अंतर्राष्ट्रीय लेन–देनों में अनेक प्रकार की जटिलता एवं अवरोध पैदा करती है जो कि घेरलू व्यापार तथा विनिमय में नहीं होता है। एक राष्ट्र के अंदर मौद्रिक कानून तथा वित्तीय प्रणाली व व्यवस्था सभी क्षेत्रो मे एक ही तरह की होती है। जबकि आन्तरिक या अंतरक्षेत्रीय व्यापार में विनिमय के माध्यम के लिए या मूल्य के मापन के लिए एक ही करेंसी का प्रयोग किया जाता है जिससे विनिमय काफी आसान होता है। स्वतंत्र राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली के कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं को एक निश्चित अनुपात में विनिमय की आवश्यकता है।

1.5.4 आर्थिक एवं राजनैतिक वातावरण – राष्ट्र के अंदर आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण देश के सभी क्षेत्रों में लगभग समान रहता है। उपभोग, उत्पादन,

निवेश और वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय को संचालित करने वाला वैधानिक ढाँचा या कानून पूरे देश में एक समान रहता है। ब्याज दरों, मजदूरी तथा कीमतों से संबंधित सरकारी नीतियां पूरे राष्ट्र में एक–सी होती है। इसी प्रकार बाजार–संरचना, उपभोक्ताओं की रुचि की प्रवृत्तियों और अधिमान कमोवेश पूरे राष्ट्र में एक–से होते हैं। परन्तु विभिन्न राष्ट्रों के बीच इनमें महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है जो कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को महत्वपूर्ण रूप से आंतरिक व्यापार से अलग कर देता है।

1.5.5 भुगतान–शेष की समस्या – आन्तरिक व्यापार में राष्ट्र **के अंदर किसी क्षेत्र या राज्य** में भुगतान–शेष की समस्या नहीं होती है क्योंकि आंतरिक असंतुलन का वित्तीयन अपने आप हो जाता है। जबकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भुगतान–शेष के असंतुलन की समस्या काफी गम्भीर और व्यापक है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उपरोक्त तर्कों के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अंतरक्षेत्रीय व्यापार से मूलतः भिन्न **मानते हैं**।

१.६ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की आवश्यकता

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री उत्पादन के संसाधनों की भौगोलिक गतिशीलता के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार के मध्य विभेद करते हैं। **इस प्रकार उन्होंने तुलनात्मक लागत अंतरों के सिद्धांत पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापर के लिए एक पृथक सिद्धांत का प्रतिपादन किया**। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रीयों जैसे ओहलिन और हैबeलर के अनुसार इन दोनों के बीच अंतर स्थापित करना न तो संभव है और न ही इसकी आवश्यकता है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की कोई आवश्यकता नहीं है।

1.6.1 आधुनिक दृष्टिकोण

ओहलिन के अनुसार घेरलू तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में मूलतः कोई मूलभूत अंतर नहीं है। दोनों में स्थान कारक महत्वपूर्ण है तथा वस्तुएँ व सेवाएँ उन स्थानों से जहाँ **कि वे प्रचुर मात्र में होती हैं, उन स्थानों कि ओर जाती हैं जहाँ** वे कम होती हैं। दोनों में ही परिवहन लागतें शामिल है। दोनों में लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से फर्में व्यापार करती हैं। एक देश की मुद्रा भी दूसरे देश की मुद्रा से परिवर्तनीय होती है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में कोई मूलभूत अंतर नहीं पाया जाता है।

ओहलिन के अनुसार किस प्रकार कोई व्यक्ति या समूह अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते और आपस में व्यापार करते हैं उसी प्रकार विभिन्न राष्ट्र भी व्यापार में संलग्न हैं। विशिष्टीकरण का मूलभूत सिद्धांत जो जीवन के सभी श्रेत्रों मे पाया जाता है, निश्चित रूप से उसी प्रकार और उतनी ही दृढता से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भी लागू होता है। इस प्रकार, तुलनात्मक लागतों के सिद्धांत का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रयोग अनावश्यक है क्योंकि यह समस्त प्रकार के व्यापारों का आधार है।

अतः ओहलिन का विश्वास है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत की कोई आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अंतरस्थानीय या क्षेत्रीय व्यापार की एक

विशेष स्थिति है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय की गयी वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतें उसी प्रकार निर्धारित होती है जिस प्रकार अंतरक्षेत्रीय स्तर पर विनिमय की गयी वस्तुओं की क्योंकि कीमत निर्धारण का आधार दोनों ही स्थितियों में मांग और पूर्ति का सामान्य संतुलन है। प्रशुल्क अवरोध, करेन्सी की भिन्नताएँ, भाषा, आदतों, रुचियों, रीति–रिवाजों इत्यादि की विभिन्नताएँ मात्रात्मक हैं, मूल्यात्मक नहीं है। वास्तव में ये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तूओं तथा सेवाओं के मुक्त प्रवाह को नहीं रोकती है। इस प्राकर ओहलिन के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्वीकृत विशिष्टताओं को ध्यान से देखनें पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय एवं घरेलू व्यापार के लक्षणों में अंतर मात्रात्मक है या केवल अंश (डिग्री) का अंतर है, यह अंतर मूलभूत गुणात्मक प्रकृति का नहीं है जिसके आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत के औचित्य को स्वीकार किया जाता है।

1.6.2 निष्कर्ष– परंतु वास्तविकता में अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में काफी भिन्नताएँ है। जैसा कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री कहते हैं। अंतरक्षेत्रीय व्यापार में विनिमय दरों, भुगतान शेषों, प्रशुल्कों इत्यादि की समस्याएँ बिल्कुल उत्पन्न नहीं होती हैं, जबकि **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का ये अभिन्न अंग हैं. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हल करने के लिए ही** अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, गैट (GATT), अंकटाड (UNCTAD) तथा विश्व व्यापार संगठन (WTO) जैसी संस्थाएँ स्थापित की गयीं, जिनका घरेलू व्यापार से कोई सरोकार नहीं है। इतना ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के समष्टि तथा व्यष्टि भागों से संबंधित अनेक सिद्धांत और मॉडल, हेक्सर, ओहलिन, सैम्युलसन, लियोन्टिफ, जोनसन, भगवती आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं जो कि आन्तरिक व्यापार से संबंधित सिद्धान्तों से सर्वथा भिन्न है।

अभ्यास प्रश्न–3

लघुउत्तरीय प्रश्नः

1. "संसाधन घरेलू स्तर पर पूरी तरह गतिशील तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अगतिशील होते हैं।" विवेचना कीजिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अलग सिद्धान्त की आवश्यकता पर टिप्पणी लिखिए।

निश्चित उत्तरीय प्रश्नः

1. व्यापार से लाभ का क्या कारण है?
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरक्षेत्रीय व्यापार की एक विशिष्ट दशा है। किसका कथन है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनो की अगतिशीलता से तात्पर्य था–
   i. स्थान अगतिशीलता
   ii. व्यवसाय अगितिशीलता
   iii. दोनों

2. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनो की गतिशीलता से तात्पर्य था–
   i. स्थान अगतिशीलता
   ii. व्यवसाय अगितिशीलता
   iii. दोनों

सत्य व असत्य :

निम्नलिखित कथनों में सत्य व असत्य चुनिए :

1. ओहलिन के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरक्षेत्रीय व्यापार की एक विशिष्ट दशा है।
2. हेक्सर, के अनुसार संसाधन घरेलू स्तर पर पूरी तरह गतिशील तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अगतिशील होते हैं।
3. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में मूलभूत अंतर नहीं है।
4. हैबeलर के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार के बीच अंतर स्थापित करना न तो संभव है और न ही इसकी आवश्यकता है।
5. एक देश के नागरिकों के मध्य वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय आन्तरिक व्यापार तथा एक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ विनिमय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार कहा जाता है।

1.7 सारांश

जिस प्रकार व्यक्तियों के बीच श्रम–विभाजन होता है उसी तरह विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य श्रम विभाजन तथा विशिष्टीकरण हो सकता है। एक राष्ट्र उस वस्तु या सेवा के उत्पादन में विशिष्टता हासिल करता है जिसमें कि वह अन्य देशों की अपेक्षा उत्पादन में श्रेष्ठ होता है। विनिमय की प्रक्रिया में व्यक्ति या उपभोक्ता जिस प्रकार अपनी संतुष्टि या विनिमय से लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है उसी प्रकार अर्न्राष्ट्रीय व्यापार में एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कम कीमत पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद करके लाभ प्राप्त करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के जरिये विश्व के विभिन्न देशों को आपस में जोडता है. आर्थिक समृद्धि मुख्यतया श्रम विभाजन और विष्टिकरण पर निर्भर करता है जबकि श्रम विभाजन और विष्टिकरण बाज़ार के आकार पर निर्भर करता है; बाज़ार का आकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से बढता है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विष्टिकरण और भौगोलिक श्रम विभाजन के द्वारा विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित करता है.

वस्तुतः वस्तुओं तथा सेवाओं के विनिमय से प्राप्त होने वाला लाभ ही अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार है यदि कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा तो व्यापार नहीं होगा। और व्यापार से लाभ का तात्कालिक कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में विद्यमान अंतर है जो कि पूर्ति तथा माँग की दशाओं में अन्तर के कारण उत्पन्न होता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में मूलभूत अंतर है क्योंकि अंतरक्षेत्रीय स्तर पर संसाधनों में पूर्ण गतिशीलता तथाा अंतरराष्ट्रीय व्यापार में शून्य गतिशीलता पायी जाती है। आधुनिक अर्थशास्त्री जैसे हेक्सर, ओहलिन इत्यादि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को अंतरक्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेष स्थिति मानते हैं। ओहलिन के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय एवं घरेलू व्यापार के लक्षणों में अंतर मात्रात्मक है या केवल अंश (डिग्री) का अंतर है, यह अंतर मूलभूत गुणात्मक प्रकृति का नहीं है जिसके आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के पृथक सिद्धांत के औचित्य को स्वीकार किया जाता है।

1.7 शब्दावली:

व्यापार: व्यापार का अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय या क्रय-विक्रय.

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार: एक राष्ट्र द्वारा अपनी सीमाओं से बाहर शेष विश्व के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन - देन या व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं. अर्थात दो राष्ट्रों के मध्य होने वाले व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहते हैं.

अंतरक्षेत्रीय या आंतरिक व्यापार: एक राष्ट्र की सीमाओं के भीतर होने वाले समस्त प्रकार के लेन - देन या व्यापार को अंतरक्षेत्रीय, घरेलु या आंतरिक व्यापार कहते हैं.

श्रम विभाजन : किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन की विभिन्न गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के संपादन में लगे श्रम का उन गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के आधार पर बंटवारा और उसमें विशिष्टीकरण प्राप्त करना ही श्रम विभाजन है .इस प्रकार श्रम विभाजन उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत कार्य विशेष को कई प्रक्रियाओं तथा उप प्रक्रियाओं में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक प्रक्रिया तथा उप प्रक्रिया को विभिन्न व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों द्वारा पूरा किया जाता है.

विशिष्टीकरण: उत्पादन गतिविधि को कम समय में अधिक गुणवत्ता के साथ करने की क्षमता, जो की श्रम विभाजन से प्राप्त होती है. श्रम विभाजन जितना ही जटिल होगा विशिष्टीकरण उतना ही अधिक होगा. वस्तुतः विशिष्टीकरण अधिक विस्तृत अवधारणा है जिसका प्रयोग किसी निकाय या क्षेत्र या फर्म में उत्पादन दक्षता बढानें के लिए विभिन्न उत्पादन गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं के विभाजन के सन्दर्भ में किया जाता है.श्रम विभाजन इसकी एक किस्म है. विशिष्टीकरण से किसी निकाय या क्षेत्र या फर्म या व्यक्ति को यह मौका मिलता है की जिस कार्य में वह दक्ष है उसी में विशिष्टता हासिल करे. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार देशों को विशिष्टीकरण का अवसर देता है.

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. i ,2.i ,3.iv

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. iv,2.ii ,3.i ,4.iv

अभ्यास प्रश्न–3

निश्चित उत्तरीय प्रश्नः

1. कीमतों में अन्तर , 2.ओहलिन

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. i ,2.ii

सत्य व असत्य :

1. सत्य ,2.असत्य ,3.असत्य ,4.सत्य ,5.सत्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. HH. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
4. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
5. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
6. International Economics: Theory and Policy, Ronald Press, New York 1968.
7. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
8. Robert M. Dunn, and John H. Mutti, International Economics, Rougledge, London.
9. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
10. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
11. ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

1.10 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

1. HH. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
2. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
3. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
4. Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
5. Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008

6. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
7. एस० एन०लाल, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
8. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
9. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
10. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
11. डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2010

1.11 निबन्धात्मक प्रश्नः

1. व्यापार क्यों होता है? अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार क्या है? विस्तार से समझाइये।
2. "अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, अंतरस्थानीय व्यापार की ही एक विशेष स्थिति है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. अंतराष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का मुख्य कारण क्या है? क्या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए पृथक सिद्धांत का होना आवश्यक है?

इकाई- २ अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की विश्लेषणात्मक तकनीक

इकाई संरचना

२.१ प्रस्तावना

२.२ उद्देश्य

२.३ उत्पादन संभावना वक्र

2.3.1 समान प्रतिफल का नियम या स्थिर अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

2.3.2 घटते हुए प्रतिफल का नियम या बढ़ती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

2.3.3 वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल या घटती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

2.3.4 उत्पादक का संतुलन

२.४ समोत्पाद वक्र

2.4.1 रेखीय समोत्पाद वक्र

2.4.2 उन्नतोदर समोत्पाद वक्र

2.4.3 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)

2.4.4 साधन गहनता

2.4.5 उत्पादक का संतुलन

२.५ बाक्स – चित्र

२.६ समुदाय अनधिमान वक्र

२.७ प्रस्ताव वक्र

२.८ सारांश

२.९ शब्दावली

२.१० अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

२.११ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

२.१२ उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

२.१३ निबंधात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के खंड एक **"प्रस्तावना एवं सिद्धांत"** से सम्बंधित यह दूसरी इकाई है. इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार, अर्थ एवं प्रकृति और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर के बारे में बता सकते हैं. प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के कुछ विश्लेषणात्मक यंत्रों के बारे में बताया गया है जिसका अर्थशास्त्रीयों ने विभिन्न सिद्धान्तों में उपयोग किया है. अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र कि बुनियादी अवधारणाऐं एवम विश्लेषणात्मक यंत्र वही हैं जिसका अध्ययन आप अर्थशास्त्र के व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों के अंतरगत कर चुके हैं.

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषणात्मक यंत्रों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

२.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मांग पक्ष व पूर्ति पक्ष के विश्लेषणात्मक यंत्रों को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण में उत्पादन संभावना वक्र, समोत्पाद वक्र और समुदाय अनधिमान वक्र के प्रयोग के बारे में जान सकेंगे.
- बाक्स – चित्र और प्रस्ताव वक्र जैसे प्रयुक्त महत्वपूर्ण यंत्रों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विश्लेषण में प्रयोग तथा उपयोगिता के बारे में जान सकेंगे.

२.३ उत्पादन संभावना वक्रः

किसी देश द्वारा प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन किया जायगा यह उसे संसाधनों की उपलब्धता तथा उसकी तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है। संसाधन संम्पन्नता का अर्थ है देश के पास उपलब्ध कुल संसाधनों की मात्रा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों या रिकार्डों के संदर्भ में बात करें तो प्रत्येक देश कितना उत्पादन करेगा यह उसकी श्रम की कुल मात्रा पर निर्भर करेंगा, यदि उत्पादन तकनीकी दी हुई है। अन्य शब्दों में, उत्पादन संभावना वक्र यह बताता है कि कोई देश उपलब्ध प्रौद्योगिकी से अपने उत्पादन के संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करके दो वस्तुओं के किन वैकल्पिक संयोगो का उत्पादन कर सकता है। स्पष्ट है कि वक्र के सभी बिन्दुओं पर देश के समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में होंगे।

2.3.1 समान प्रतिफल का नियम या स्थिर अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

उत्पादन संभावना वक्र या प्रतिस्थापन वक्र या रूपान्तरण वक्र अवसर लागत पर आधारित है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने के लिए छोड़ी जाती है। उदाहरणार्थ, यदि 5 इकाई X के उत्पादन के लिए 10 इकाई Y का त्याग करना पड़े तो IX की अवसर लागत 2Y होगी (5X=10Y). अर्थात् X और Y का विनिमय अनुपात होगा 1X=2Y. उत्पादन संभावना वक्र

की ढाल एक वस्तु की उस मात्रा को बताती है जो एक देश को किसी दूसरी वस्तु की अतिरिक्त इकाई पाने के लिए छोड़नी पड़ती है।

इसका आकार मुख्यतः उत्पादन के पैमाने के प्रतिफल पर निर्भर करता है। यदि उत्पादन में समान प्रतिफल का नियम क्रियाशील होता है या स्थिर अवसर लागत है तो उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी रेखा होगा। जैसा कि चित्र–2.1 में प्रदर्शित है।

इस स्थिति में, वस्तु X तथा Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर $(\Delta Y/\Delta X)$ उत्पादन संभावना वक्र AB पर सदैव स्थिर रहेगी। अर्थात अवसर लागत उत्पादन परिवर्तन के साथ स्थिर रहेगी। उत्पादन संभावना वक्र के सीधी रेखा या स्थिर अवसर लागत का अर्थ है उत्पादन के सभी संसाधन सभी वस्तुओं के उत्पादन में समान रूप से दक्ष है। परन्तु यह एक वास्तविक मान्यता नहीं है।

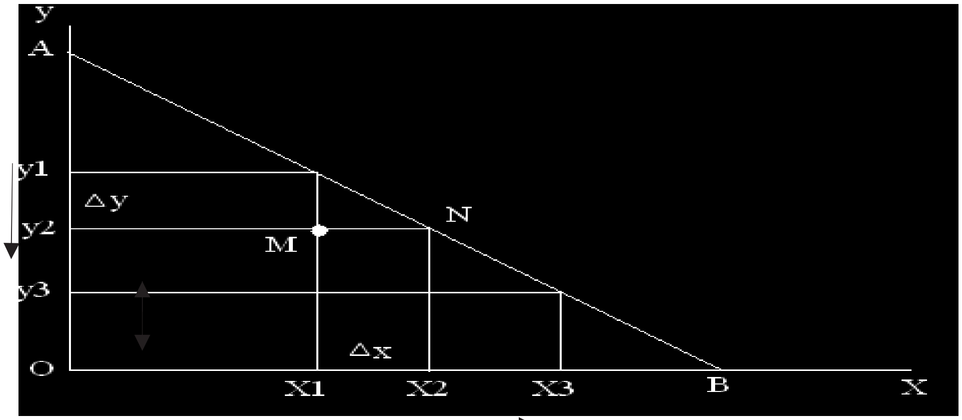

चित्र–2.1

2.3.2 घटते हुए प्रतिफल का नियम या बढ़ती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

यदि उत्पादन में लागत वृद्धि नियम या घटते हुए प्रतिफल का नियम लागू हो तो वस्तु X और Y की सीमान्त प्रतिस्थापन दर $(\Delta Y/\Delta X)$ क्रमशः बढ़ती जाएगी उत्पादन संभावना का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल या नतोदर होगा जैसा कि चित्र–2.2 से स्पष्ट है। वस्तु X की प्रत्येक अगली इकाई के लिए वस्तु Y की उत्रोत्तर अधिक इकाईयाँ त्याग करनी पड़ रही है। अर्थात् वस्तु X की, वस्तु Y के पदों में, अवसर लागत लगातार बढ़ रही, है, जैसे–जैसे हम वस्तु X का उत्पादन बढ़ाते है तथा Y का उत्पादन कम करते हैं।

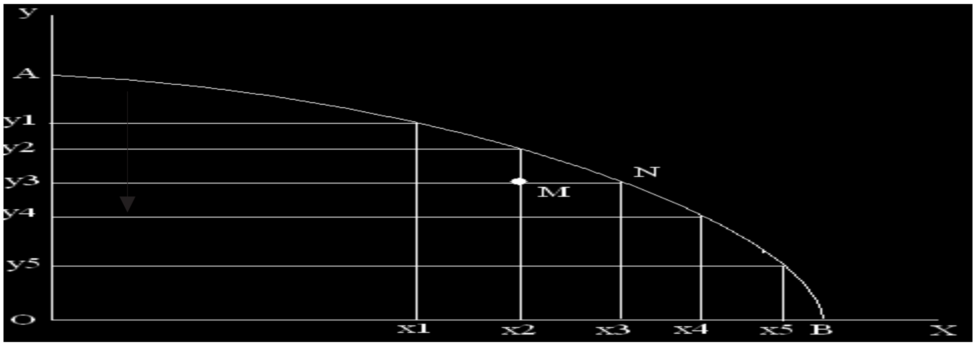

चित्र–2.2

इस स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र का आकार या इसकी अवतलता (वक्रता) उत्पादन की स्थितियों पर निर्भर करेगी – कि उत्पादन के साधन आसानी से एक उद्योग से दूसरे वस्तु उद्योग में आ जा सकते हैं। अल्पकाल में, हम यह मान सकते हैं कि अर्थव्यवस्था की ग्राह्यता कम होगी और दी हुई स्थिति से एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाने पर उनकी अवसर लागत में तीव्र वृद्धि होगी। जबकि दीर्घकाल में अर्थव्यस्था की ग्राह्यता अधिक होने की संभावना होनी है जिससे एक वस्तु की अवसर लागत कम होगी। जैसा कि चित्र–2.3 में दिखाया गया है। AB अल्पकाल में तथा CD दीर्घकाल में उत्पादन संभावना वक्र के आकार को प्रदर्शित करता है।

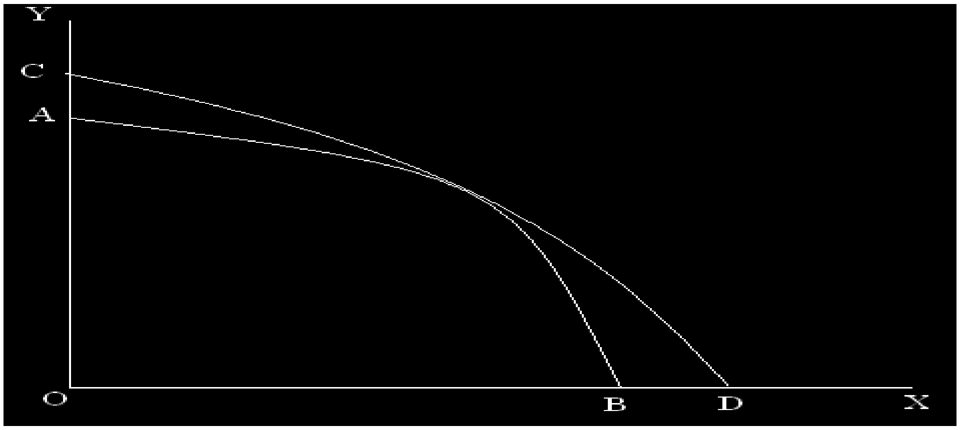

चित्र–2.3

2.3.3 वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल या घटती अवसर लागत और उत्पादन संभावना वक्र

यदि उत्पादन में लागत ह्रास नियम या वृद्धिमान पैमाने का प्रतिफल लागू होता है तो उत्पादन संभावना वक्र मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर होगा। इस स्थिति मे सीमान्त प्रतिस्थापन की दर $(\Delta Y/\Delta X)$ क्रमशः घटती जाएगी। जैसा कि चित्र 2.3 में प्रदर्शित है। वस्तु– X की प्रत्येक अगली इकाई के लिए वस्तु– Y की उत्तरोत्तर कम इकाईयाँ त्याग करनी पड़ रहीं है। अर्थात् वस्तु X की, Y के पदों में, अवसर लागत लगातार कम हो रही है, जैसे–जैसे हम X का उत्पादन बढ़ाते हैं।

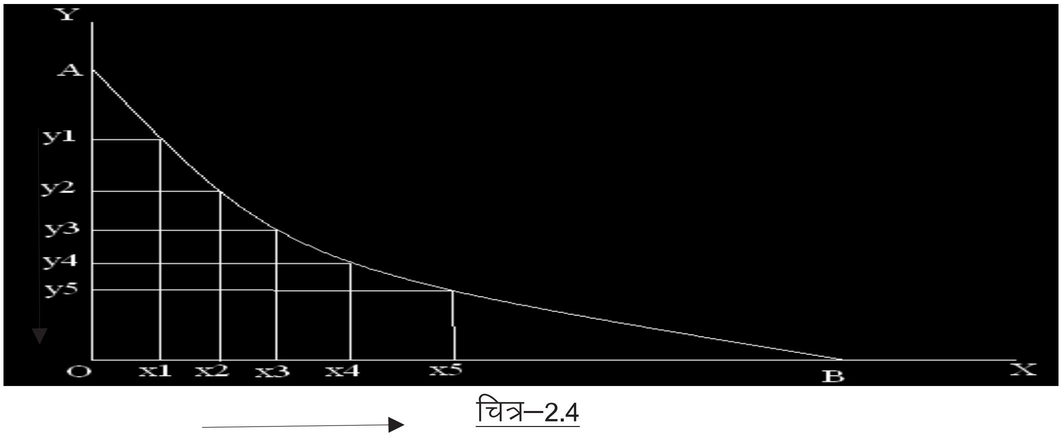

चित्र–2.4

एक बन्द अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार न होने की स्थिति में, एक देश अपने उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिन्दु पर उत्पादन करेगा। यदि वह उत्पादन संभावना वक्र (AB) के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन कर रहा है ता इसका अर्थ है उसके समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में है। दिए हुए संसाधनों की स्थिति में स्पष्ट है कि वह अपने उत्पादन संभावना वक्र के किसी बाहर स्थित बिन्दु पर उत्पादन नहीं कर सकता है। वह AB वक्र के अंदर के किसी बिन्दु पर उत्पादन कर सकता है जैसे चित्र–2.1 तथा चित्र–2.2 में बिन्दु M पर। परन्तु यह अनुकूलतम या दक्ष बिन्दु नहीं है क्योंकि वह वस्तु Y की उतनी मात्रा के साथ X की अधिक मात्रा का उत्पादन कर सकता है इसलिए उत्पादक M की अपेक्षा N पर उत्पादन करेगा। AB वक्र के अंदर के किसी बिन्दु पर, जैसे चित्र–2.1 तथा चित्र–2.2 में बिन्दु M पर, समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में नहीं हैं।

2.3.4 उत्पादक का संतुलनः

परिवर्तनशील अवसर लागतों की स्थिति में वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों की विशेष भूमिका होती है। कीमतों के परिवर्तन की स्थिति में उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पादन को पुनः समायोजित करते हैं; जैसा कि चित्र–2.5 में स्पष्ट है।

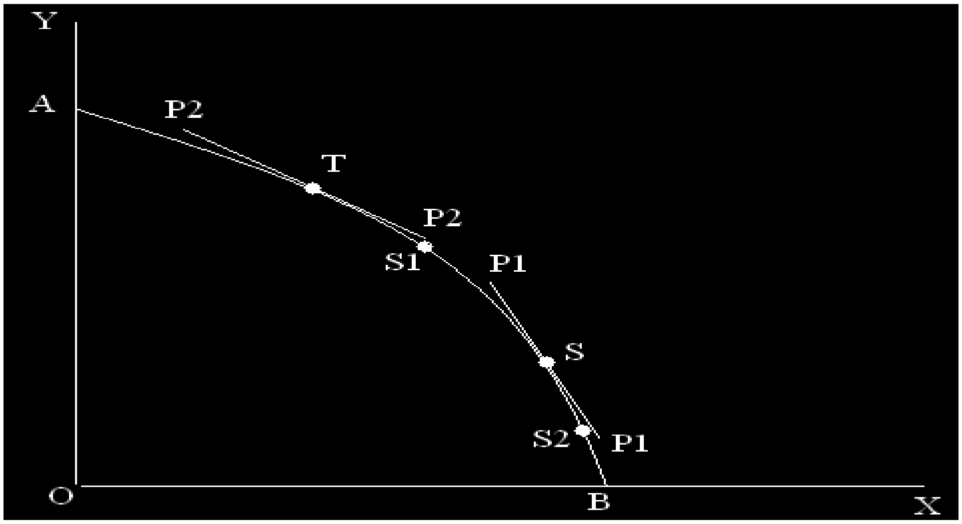

चित्र–2.5

मान लिया एक अर्थव्यवस्था में किसी समय घेरलू सापेक्षिक कीमत रेखा P_1P_1 है। इस स्थिति में उत्पादक S बिन्दु पर संतुलन में होंगे जहाँ कीमत रेखा P_1P_1की ढाल उत्पादन संभावना वक्र बिन्दु की ढाल के बराबर है। यदि उत्पादक दी हुई कीमतों की स्थिति में S_1 बिन्दु पर उत्पादन करेगा तो वस्तु X की लागत उसकी कीमत से कम होगी और वह उत्पादन वढ़ाकर अपने लाभ अधिकतम कर सकता है। जबकि S_2 बिन्दु पर वस्तु X की उत्पादन लागत उसकी कीमत से ज्यादा होगी। सिर्फ S बिन्दु पर सापेक्षिक कीमतें, अवसर लागत के बराबर है और लाभ अधिकतम है।

यदि कीमतें परिवर्तित होकर PP_1 हो जाय तो इसका अर्थ है वस्तु–Y की कीमत X के सापेक्ष बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए

संसाधनों का पुर्नआवंटन करेंगे और नए अनुकूलतम बिन्दु T पर उत्पादन करेंगे, जहाँ कीमत, अवसर लागत के बराबर है।

2.4 समोत्पाद वक्रः

उत्पादन फलन उत्पादन तथा उत्पादन के साधन आगतों के बीच तकनीकी संबंधों को दर्शाता है। उत्पादन फलन एक उद्योग फर्म की तकनीकी को बताता है। उत्पादन फलन में तकनीकी रूप से सभी विधियाँ सम्मिलित होती हैं। यदि सिर्फ दो साधन श्रम (L) तथा पूँजी (L) हो तो उत्पादन–फलन को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है–

$Q = f(L, K)$

जहाँ Q उत्पादन है।

एक समोत्पाद वक्र, उत्पादन के साधनों के सभी संयोगो अर्थात् तकनीकी रूप से दक्ष सभी विधियों को दर्शाता है जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र का आकार साधनों की स्थानापन्नता के अंश पर निर्भर करता है। समोत्पाद वक्र का ढाल उत्पादन के साधनों की स्थानापन्नता के अंश को बताता है।

2.4.1 रेखीय समोत्पाद वक्र

यदि दो साधनों श्रम (L) और पूँजी (K) के बीच पूर्ण स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र एक सीधी रेखा होगी जैसा कि चित्र–2.6 में है। इसे रेखीय समोत्पाद वक्र कहते हैं।

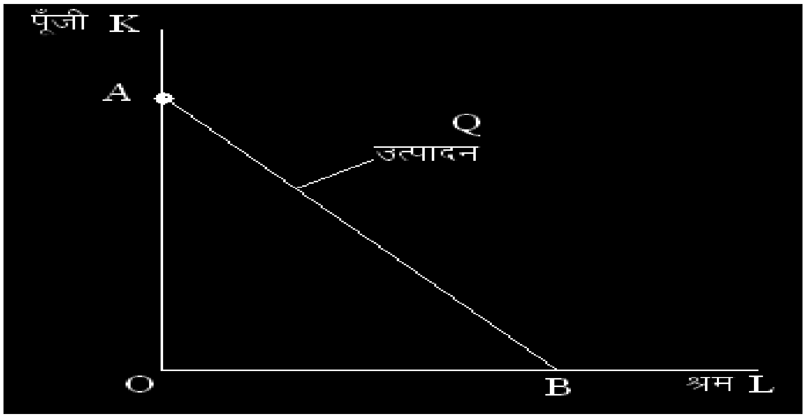

चित्र–2.6

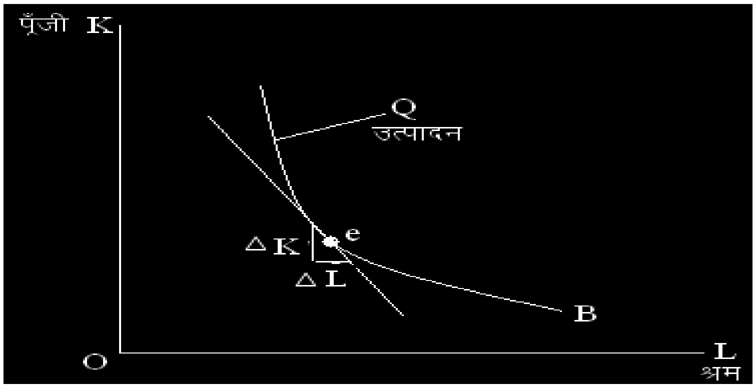

चित्र–2.7

2.4.2 उन्नतोदर समोत्पाद वक्र

यदि उत्पादन के साधनों (श्रम और पूँजी) के बीच एक निश्चित सीमा के भीतर सतत् स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र मूलबिन्दु के प्रति उत्तल होगा जैसा कि चित्र–2.7 में है।

2.4.3 प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS)

समोत्पाद वक्र के ढाल को तकनीकी प्रतिस्थापन की दर या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) .कहा जाता है। समोत्पाद वक्र पर हम जैसे–जैसे नीचे की ओर आते हैं समोत्पाद वक्र का ढाल कम होता जाता है जोकि K तथा L के बीच प्रतिस्थापन की बढ़ती अठिनाइयों के बताता है। संकेतात्मक रूप से–

$$MRTS_{L,K,} = -\frac{\Delta K}{\Delta L}$$

2.4.4 साधन गहनता

मूल बिन्दु से समोत्पाद वक्र पर खींची गयी रेखा का ढाल किसी उत्पादन विधि की साधन गहनता को बताती है। इस प्रकार साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात है।

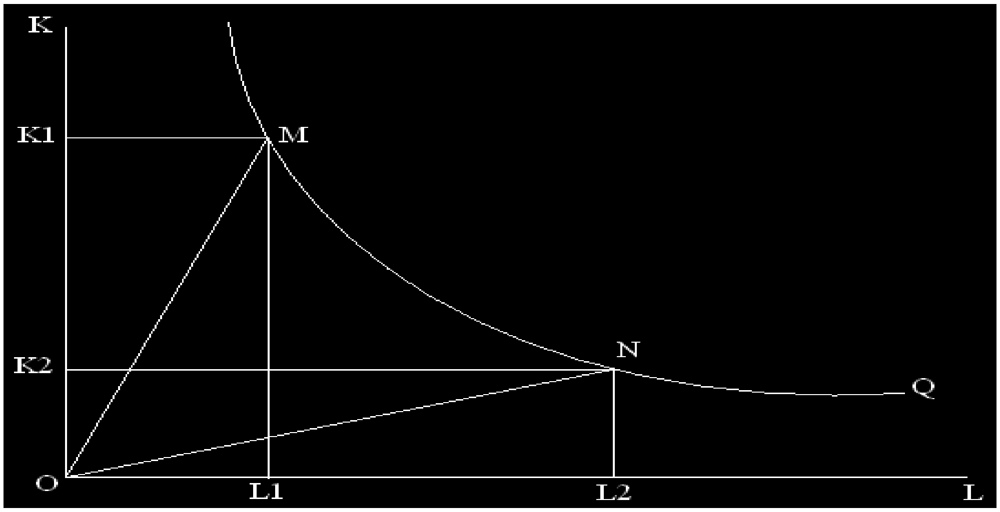

चित्र 2.8

चित्र 2.8 में OM उत्पादन प्रविधि अत्यधिक पूँजी प्रधान तथा ON उत्पादन प्रविधि अत्यधिक श्रम प्रधान है। समोत्पाद वक्र का ऊपर का भाग अत्यधिक पूँजी प्रधान प्रविधियों को तथा नीचे का भाग अधिक श्रम प्रधान प्रविधियों को सम्मिलित करता है।

2.4.5 उत्पादक का संतुलनः

उत्पादन की दी हुई मात्रा, अर्थात् समोत्पाद वक्र के दिए होने पर, उत्पादन के लिए कुशलतम साधन संयोग (अर्थात् उत्पादक का संतुलन) वहाँ होगा जहाँ साधन कीमत रेखा या सम लागत रेखा समोत्पाद वक्र को स्पर्श करती है। चित्र–2.9 मे e बिन्दु पर उत्पादक संतुलन में होगा जहाँ उसका लाभ अधिकतम होगा। बिन्दु e पर साधन कीमत रेखा AB का ढाल (P_L/P_K) समोत्पाद वक्र के ढाल ($\Delta K/\Delta L$) के बराबर है।

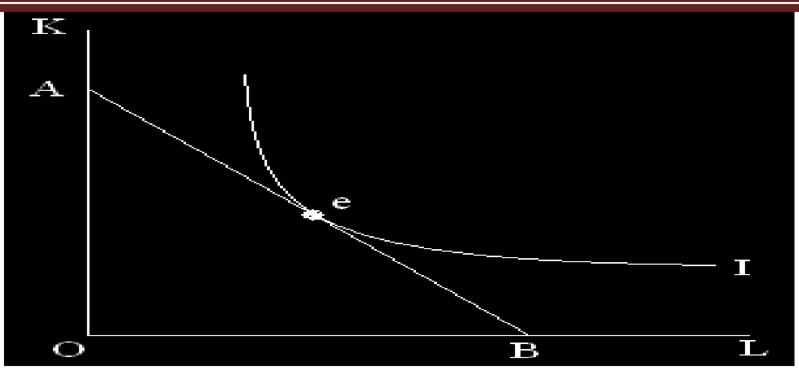

चित्र–2.9

$\frac{PL}{PK} = \frac{\Delta K}{\Delta L} = MRS_{LK}$

P_L – श्रम की कीमत

P_K – पूँजी की कीमत

2.4.6 रैखिक समरूप समोत्पाद वक्रः

यदि सभी आगतों को एक निश्चित अनुपात k से बढ़ाया जाय और उत्पादन में भी यदि उसी अनुपात, K, के बराबर वृद्धि होती है, तो उत्पादन फलन रैखिक समरूप होगा।

गणितीय रूप में

$$kQ = f(kL, kK)$$

यदि उत्पादन में पैमाने का स्थिर प्रतिफल क्रियाशील होता है अर्थात् यदि रेखीय समरूप उत्पादन फलन हो तो, जैसे–जैसे दो साधनों को एक ही अनुपात में लगाया जाता है तो दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ अपरिवर्तित रहती हैं। दूसरे शब्दों में श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता इस पर निर्भर करेगी कि श्रम–पूँजी अनुपात क्या है। चित्र 2. 10 में मूल बिन्दु से खीचीं गयी रेखा OR_1 एक निश्चित पूँजी–श्रम अनुपात को व्यक्त करती है। अर्थात् बिन्दु A, B तथा C तीनों पर पूँजी तथा श्रम का एक ही अनुपात में संयोग है। अतः तीनों ही बिन्दुओं पर श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता एक समान है।

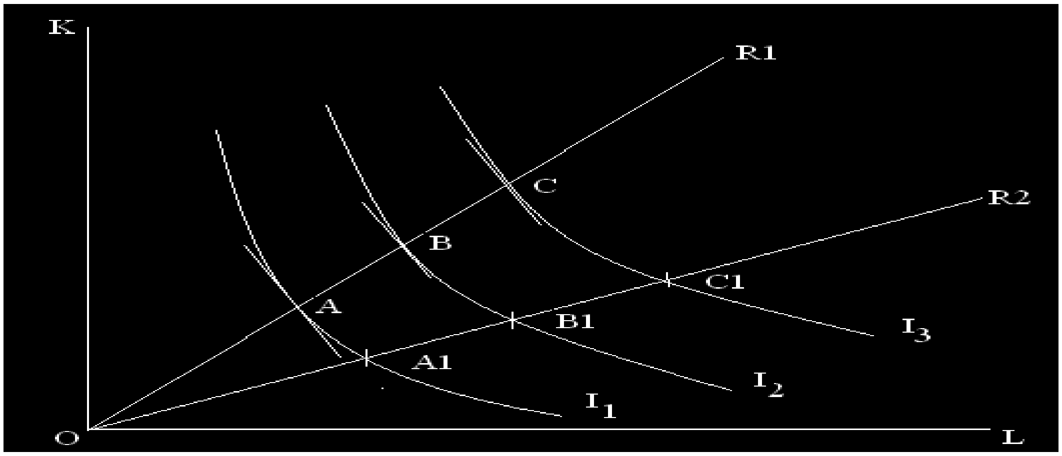

चित्र–2.10

इसी प्रकार OR_2 के साथ A_1, B_1 तथा C_1 बिन्दुओं पर श्रम की सीमान्त उत्पादकता समान है उसी प्रकार इन सभी बिन्दुओं पर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता भी समान है। अत O से खीचीं गयी रेखा OR_1 तथा OR_2 के साथ उत्पादन के दो साधन की सीमान्त उत्पादकता समान है।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. रैखिक समरूप समोत्पाद वक्र क्या है? सचित्र समझाइए।
2. साधन गहनता को सचित्र समझाइए।
3. प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) क्या है?

अति–लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. घटती हुई लागतों की स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र का आकार कैसा होगा?
2. रेखीय उत्पादन फलन उत्पादन में पैमाने के किस प्रतिफल को व्यक्त करता है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. किसी देश में प्रत्येक वस्तु के उत्पादन की मात्रा निर्भर करती है
   i. संसाधन–उपलब्धता पर
   ii. तकनीकी ज्ञान पर
   iii. उपरोक्त दोनों पर
2. उत्पादन संभावना वक्र के सभी बिन्दुओं पर उत्पादन के संसाधन होंगे
   i. अपूर्ण–रोजगार में
   ii. पूर्ण–रोजगार में
   iii. सिर्फ श्रम पूर्ण–रोजगार में
   iv. सिर्फ पूँजी पूर्ण–रोजगार में
3. उत्पादक का संतुलन होगा
   i. उत्पादन संभावना वक्र के सभी बिन्दुओं पर
   ii. जहाँ उत्पादन संभावना वक्र X अक्ष को काटता है
   iii. जहाँ उत्पादन संभावना वक्र Y अक्ष को काटता है
   iv. जहाँ उत्पादन संभावना वक्र, वस्तु कीमत रेखा को स्पर्श करता है
4. यदि उत्पादन के साधनों के बीच एक निश्चित सीमा के भीतर सतत स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र होगा–
   i. एक सीधी रेखा
   ii. मूल–बिन्दु के प्रति उत्तल
   iii. मूल–बिन्दु के प्रति अवतल
   iv. विकुंचित
5. उत्पादन फलन रैखिक समरूप होगा

i. यदि सभी आगतों को एक निश्चित अनुपात k से बढ़ाया जाय और उत्पादन में यदि K से अधिक की वृद्धि होती है

ii. यदि सभी आगतों को एक निश्चित अनुपात k से बढ़ाया जाय और उत्पादन में भी यदि उसी अनुपात, K, के बराबर वृद्धि होती है

iii. यदि सभी आगतों को एक निश्चित अनुपात k से बढ़ाया जाय और उत्पादन में यदि K से कम वृद्धि होती है

iv. उपरोक्त में से कोई नहीं

6. उत्पादन संभावना वक्र आधारित है

i. अवसर लागत पर

ii. श्रम लागत

iii. मौद्रिक लागत पर

iv. उपरोक्त सभी पर

सत्य व असत्य :

निम्नलिखित कथनों में सत्य व असत्य चुनिए :

i. यदि रेखीय समरूप उत्पादन फलन हो तो, जैसे–जैसे दो साधनों को एक ही अनुपात में लगाया जाता है दोनों साधनों की सीमान्त उत्पादकताएँ अपरिवर्तित रहती हैं।

ii. साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात को नहीं बताती है।

iii. यदि दो साधनों श्रम (L) और पूँजी (K) के बीच पूर्ण स्थानापन्नता हो तो समोत्पाद वक्र एक सीधी रेखा नहीं होगा

iv. उत्पादन फलन उत्पादन तथा उत्पादन के साधन आगतों के बीच तकनीकी संबंधों को नहीं दर्शाता है

v. उत्पादन संभावना वक्र की अवतलता उत्पादन की स्थितियों पर निर्भर करेगी – कि उत्पादन के साधन आसानी से एक उद्योग से दूसरे वस्तु उद्योग में आ जा सकते हैं।

2.5 बाक्स चित्र

बाक्स या संदूक चित्र की सहायता से उत्पादन फलनों तथा उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा के बीच अंर्तसंबंध का अध्ययन किया जाता है। इससे दो वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त आगतों के कुशलतम संयोंगो को भी प्रदर्शित किया जाता है। बाक्स या संदूक चित्र का प्रयोग सर्वप्रथम एजवर्थ ने किया इसलिए इसे एजवर्थ संदूक चित्र भी कहा जाता है.

चित्र 2.11 में बाक्स चित्र को दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर श्रम तथ उर्घ्व अक्ष पर पूँजी की मात्रा ली गयी है। बाक्स चित्र देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों की मात्रा को

बताता है। OA अर्थव्यवस्था में उपलब्ध समस्त पूँजी तथा OB कुल श्रम की मात्रा को मापता है। विकर्ण OO^1 अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण साधन गहनता को बताता है।

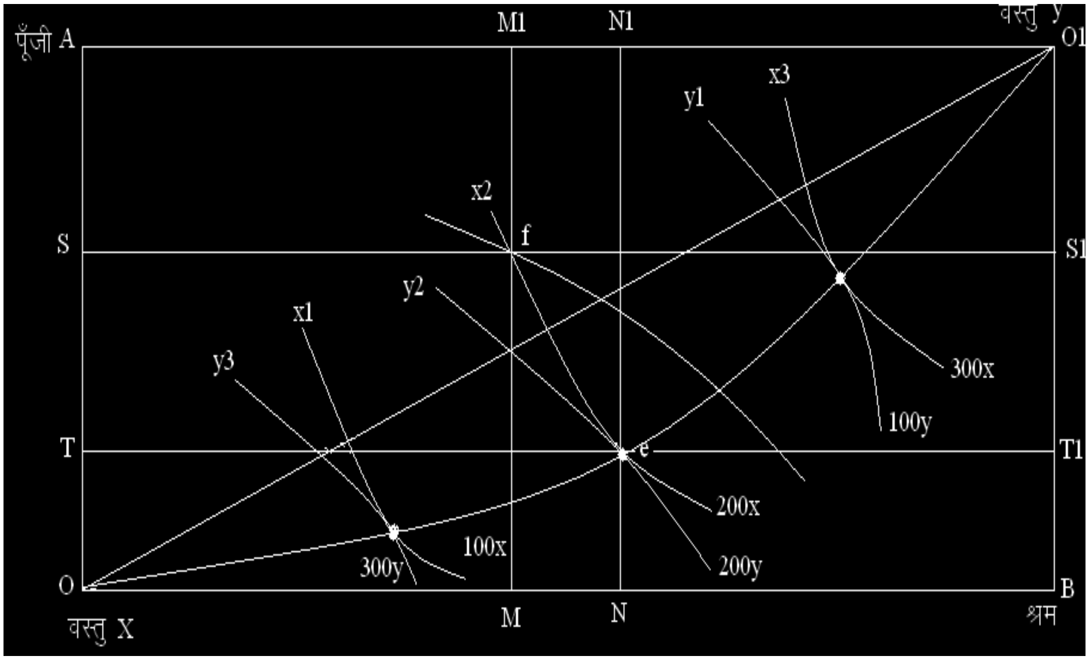

चित्र 2.11

माना दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन हो रहा है। X वस्तु के उत्पादन को मूल बिन्दु O से तथा Y वस्तु के उत्पादन को मूल बिन्दु O^1 से मापते है। इस प्रकार O मूल बिन्दु से X के समोत्पाद वक्रों के समूह को तथा O^1 से Y के समोत्पाद वक्रों के समूह को खींचा जा सकता है।

समोत्पाद वक्रों को रेखीय समरूप उत्पादन फलन के अनुरूप खींचा गया है अर्थात् समोत्पाद वक्र X_1 की अपेक्षा X_2 दुगुनी तथा X_3 तिगुनी मात्रा को प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार समोत्पाद वक्र Y_1 की अपेक्षा Y_2 दुगुनी तथा Y_3 तिगुनी मात्रा को प्रदर्शित करता है।

बाक्स के अंदर कोई भी बिन्दु दोनों वस्तुओं X तथा Y के एक निश्चित संयोग को व्यक्त करता है। साथ ही यह भी बताता है कि इन वस्तुओं के उत्पादन में साधनों का संयोग क्या है। बिन्दु e पर 200X तथा 200Y का उत्पादन हो रहा है। 200X के उत्पादन के लिए OM श्रम तथा OT पूँजी और 200Y के उत्पादन के लिए बचे हुए श्रम O^1N^1 तथा बची हुई पूँजी O^1T^1 का इस्तेमाल हो रहा है। बिन्दु e पर X वस्तु का समोत्पाद वक्र तथा Y वस्तु का समोत्पाद वक्र स्पर्श कर रहा है। यह उत्पादन के अनुकूलतम दक्ष साधन संयोग को बताता है। इन दोनों ही उत्पादन स्थितियों में सीमान्त उत्पादन स्थिति में सीमान्त उत्पादकताओं के अनुपात समान हैं। अतः दोनों वस्तुओं के उत्पादन में, उत्पादन के साधनों की सापेक्षिक दक्षता समान है तथा संसाधनों का आवंटन अनुकूलतम है।

यदि हम बाक्स में दो समोत्पादक वक्रों के सभी स्पर्श बिन्दुओं को मिलाएँ तो हमें एक वक्र OO^1 प्राप्त होगा, जिसे **'आकुंचित वक्र' (Contract Curve)** कहते हैं। इस वक्र

पर स्थित सभी बिन्दु दक्ष बिन्दु है जो कि उत्पादन तथा साधनों के दक्ष संयोगो को प्रदर्शित करते हैं। OO^1 वक्र से इतर कोई भी बिन्दु उससे कम दक्ष होगा और अनुकूलतम संयोग को प्रदर्शित नहीं करेगा। जैसे बिन्दु f दक्ष बिन्दु नहीं है क्योंकि X वस्तु की उसी (X_2समोत्पाद वक्र पर) मात्रा के साथ Y वस्तु की अधिक मात्रा प्राप्त की जा सकती है यदि उत्पादन बिन्दु e पर हो।

आकुंचित वक्र की व्युत्पति सिर्फ उत्पादन की तकनीकी दशाओं के आधार पर की जाती है। वक्र OO^1 पर कौन सा बिन्दु अन्य की उपेक्षा बेहतर होगा यह माँग दशाओं पर निर्भर करेगा।

2.6 समुदाय अधिमान वक्रः

यदि हम किसी एक उपभोक्ता के माँग को दिखाते हैं तो इसके लिए तटस्थता या अधिमान वक्र का प्रयोग करते है जो कि उपभोक्ता के माँग–कारकों को दर्शाता है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हम पूरे समुदाय या राष्ट्र के माँग कारकों को दर्शाने के लिए समुदाय अधिमान वक्र का प्रयोग करते है। जिस प्रकार से कुछ निश्चित मान्यताओं के अंतर्गत एक उपभोक्ता के लिए अधिमान वक्र खीचें जाते हैं उसी प्रकार पूरे समुदाय या राष्ट्र के लिए खींचे जा सकते हैं। परन्तु समुदाय अधिमान वक्र के लिए और कठोर मान्यताओं का सहारा लेना पड़ेगा।

समुदाय अधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे समुदाय या राष्ट्र के उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि मिलती है। यदि हम यह मान लें कि किसी देश में आय–वितरण में परिवर्तन नहीं होता है तो हम एक देश के समुदाय अधिमान मानचित्र को खींच सकते हैं।

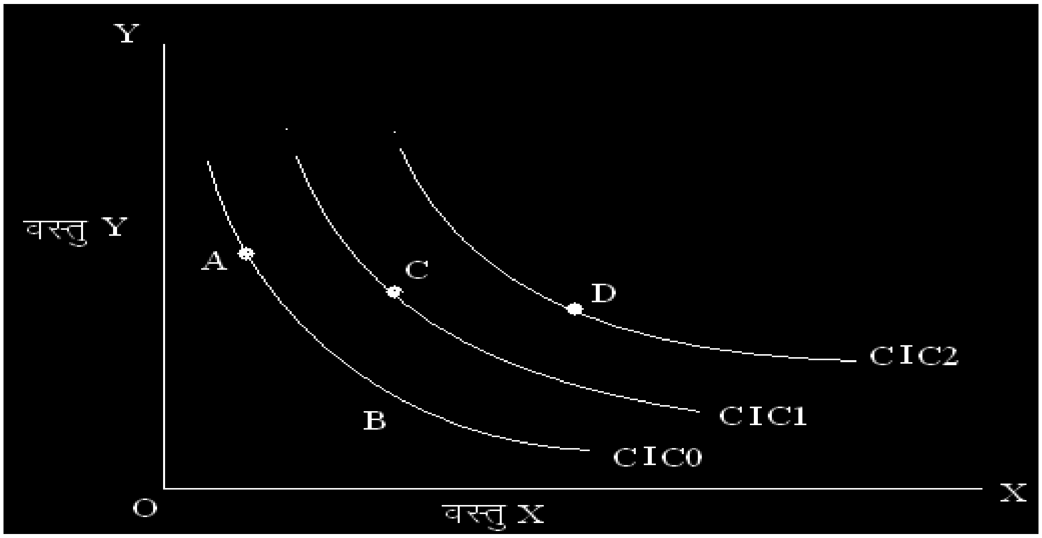

चित्र 2.12

इन अधिमान वक्रों की विशेषताएँ वहीं हैं जो व्यक्ति अधिमान वक्रों की होती है। इनकी चार मुख्य विशेषताएँ हैं–

(1) ये बाएं से दायें नीचे की ओर झुके हुए होते हैं।

(2) ये मूल–बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (Convex) होते हैं।

(3) आय–वितरण स्थिर होने की दशा में दो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते।

(4) ऊपर स्थिर समुदाय अधिमान वक्र नीचे के वक्र की अपेक्षा संतुष्टि के उच्चतर स्तर को व्यक्त करता है।

चित्र 2.12 में CIC_0, CIC_1, CIC_2 समुदाय अधिमान वक्रों का मानचित्र दिखाया गया है। वक्र CIC_0 पर स्थित बिन्दु A तथा B के संयोग समान संतुष्टि के स्तर को व्यक्त कर रहे हैं जब कि संयोग C, A तथा B की अपेक्षा और संयोग D संयोग C की अपेक्षा अधिक संतुष्टि के स्तर को प्रदर्शित करता है।

यदि विभिन्न समुदाय अधिमान वक्र अलग–अलग आय वितरण को प्रदर्शित करें तो वे एक दूसरे को काट सकते हैं परन्तु यदि एक राष्ट्र के सभी निवासियों की प्राथमिकताएँ तथा रुचियाँ एक जैसी मान ली जाएं और सभी आय स्तरों पर आय वितरण का स्तर समान हो तो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को नहीं काटेंगे।

समुदाय अधिमान वक्र के किसी बिन्दु की ढाल उसकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताती है। वस्तु X की वस्तु Y के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRSxy) Y की वह मात्रा है जिसको वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता छोड़नें को तैयार है, जिससे उसकी संतुष्टि का स्तर समान बना रहे।

2.6.1 उपभोक्ता संतुलन

एक देश के समुदाय अधिमान मान चित्र के दिये हुए होने पर देश के उपभोक्ता का संतुलन वहाँ होगा अर्थात उसे अधिकतम संतुष्टि वहाँ प्राप्त होगी जहाँ घरेलू कीमत रेखा किसी समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श करती है अर्थात् जहाँ समुदाय अधिमान वक्र का ढाल, घरेलू कीमत रेखा के ढाल के बराबर है।

चित्र 2.13 में, बिन्दु e पर,

समुदाय आधिमान वक्र का ढाल $MRSxy = \frac{Px}{Py}$ = कीमत रेखा का ढाल

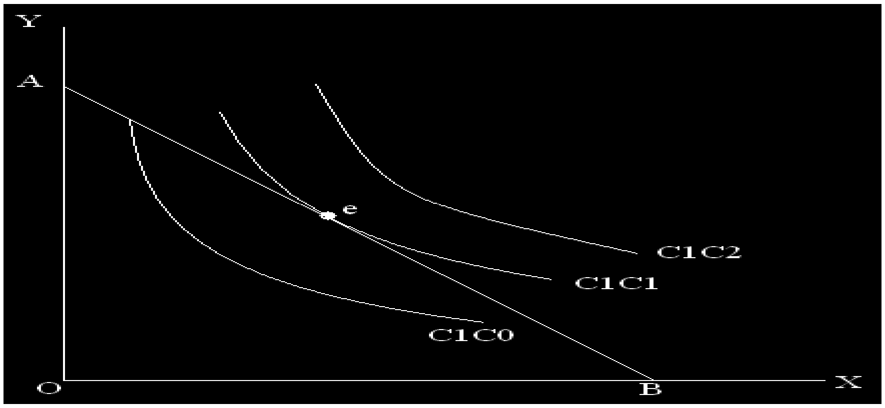

चित्र 2.13

अर्थात् बिन्दु e पर देश के उपभोक्ता संतुलन में है।

वास्तव में समुदाय अधिमान वक्र की धारणा बहुत संतोषजनक नहीं है। किसी समुदाय या राष्ट्र के भीतर संतुष्टि की अन्तर वैयक्तिक तुलना काफी कठिन है। एक वस्तु की समान मात्रा के उपभोग से दो व्यक्तियों को अलग–अलग संतुष्टि प्राप्त हो सकती है। यदि समाज में एक ही उपभोक्ता है तो व्यक्तिगत तथा समुदाय अधिमान वक्र में कोई अन्तर नहीं होगा।

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में समुदाय अधिमान वक्रों का प्रयोग व्यापार से पूर्व तथा व्यापार के पश्चात् राष्ट्र किस प्रकार संतुलन में आते हैं और उनके कल्याण में वृद्धि होती है, इसे स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. समुदाय अधिमान वक्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. आकुंचित वक्र को चित्र की सहायता से समझाइए।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

१. इनमें से कौन सी अधिमान वक्रों की विशेषता नहीं हैं

i..ये बाएं से दायें नीचे की ओर झुके हुए होते हैं

ii. मूल बिन्दु के प्रति अवतल या नतोदर होते हैं

iii. दो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को काट नहीं सकते

iv. ऊपर स्थिर समुदाय अधिमान वक्र नीचे के वक्र की अपेक्षा संतुष्टि के उच्चतर स्तर को व्यक्त करता है

२. एक अधिमान वक्र के विभिन्न बिंदुओं पर उपभोक्ता को

i. समान संतुष्टि प्राप्त होती है

ii. अलग अलग संतुष्टि प्राप्त होती है

iii. कितनी संतुष्टि प्राप्त होगी यह कीमत पर निर्भर करेगा

iv. कितनी संतुष्टि प्राप्त होगी यह आय पर निर्भर करेगा

३. उपभोक्ता का संतुलन वहाँ होगा

i. जहाँ घरेलू कीमत रेखा किसी समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श करती है

ii. जहाँ समुदाय अधिमान वक्र का ढाल, घरेलू कीमत रेखा के ढाल के बराबर है

iii. जहाँ $MRSxy=\frac{Px}{Py}$

iv. उपरोक्त सभी

४. बाक्स या संदूक चित्र का प्रयोग सर्वप्रथम किस अर्थशास्त्री ने किया?

i. एजवर्थ ii. मार्सल

iii.ओहलिन iv. हेक्सर

सत्य व असत्य :

निम्नलिखित कथनों में सत्य व असत्य चुनिए :

i. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में समुदाय अधिमान वक्रों का प्रयोग व्यापार से कल्याण में वृद्धि को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

ii. उपभोक्ता का संतुलन वहाँ होगा जहाँ उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होगी

iii. आय–वितरण स्थिर होने की दशा में दो समुदाय अधिमान वक्र एक दूसरे को काट सकते है

iv. समुदाय अधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे समुदाय या राष्ट्र के उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि नहीं मिलती है।

v. समुदाय अधिमान वक्र के किसी बिन्दु की ढाल उसकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर को बताती है।

vi. यदि समाज में एक ही उपभोक्ता है तो व्यक्तिगत तथा समुदाय अधिमान वक्र में कोई अन्तर नहीं होगा।

vii. आकुंचित वक्र की व्युत्पति उत्पादन की तकनीकी तथा मांग दशाओं के आधार पर की जाती है।

viii. बाक्स या संदूक चित्र की सहायता से उत्पादन फलनों तथा उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा के बीच अंर्तसंबंध का अध्ययन किया जाता है।

2.7 प्रस्ताव वक्र

अर्न्तराष्ट्रीय अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक यंत्र प्रस्ताव वक्र है, जिसके द्वारा हम यह दिखाते हैं कि यदि दो देश आपस में व्यापार करते हैं तो किस प्रकार से माँग तथा पूर्ति की अंर्तक्रिया से साम्य अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त का निर्घारण होता है। इसकी सहायता से व्यापार से होने वाले लाभों को भी दिखाया जा सकता है।

प्रस्ताव वक्र की तकनीकी को एल्फ्रेड मार्शल तथा एजवर्थ से विकसित किया। प्रस्ताव वक्रों की खूबी यह है कि ये इस समस्या को हल करने में सफल रहे कि किस प्रकार व्यापार संतुलन की स्थिति में बिल्कुल सही व्यापार–शर्त का निर्धारण होगा।

एक देश का प्रस्ताव वक्र एक ओर विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों (व्यापार–शर्त) पर आयातित–वस्तु के बदले देश द्वारा निर्यात–वस्तु की प्रस्तातिव मात्रा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों पर उस देश की विदेशी वस्तु (आयात) की मांग को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र में मांग और पूर्ति दोनों के ही तत्व विद्यामान होते हैं। इसलिए इसे प्रस्ताव वक्र के साथ–साथ प्रतिपूरक मांग वक्र भी कहा जाता है।

एक देश के प्रस्ताव वक्र को व्युत्पन्न करने के लिए विभिन्न व्यापार शर्तों पर उसके द्वारा आयातित वस्तु की मांगी गयी मात्रा और उसके बदले निर्यात की प्रस्तावित मात्रा जाननी होगी।

माना दो देश A और B हैं और दो वस्तुएँ X और Y हैं। देश को X वस्तु के उत्पादन में, और देश B को Y वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल हैं क्योंकि देश A को X वस्तु और देश B को Y वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष या तुलनात्मक लाभ प्राप्त है। इस प्रकार देश A के लिए X निर्यातित वस्तु तथा Y आयातित वस्तु है और देश B के लिए Y निर्यातित वस्तु और X आयातित वस्तु है।

निम्नलिखित सारणी 2.1 में विभिन्न सापेक्षिक कीमत अनुपातों (व्यापार शर्तों) पर देश A द्वारा आयात की मांगी गयी मात्रा तथा उसके बदले निर्यात की प्रस्तावित मात्रा को दिखाया गया है।

सारणी 2.1: देश A की विभिन्न व्यापार शर्तों पर आयात व निर्यात की मात्राएँ

क्र0सं0	वस्तु–X (निर्यातित वस्तु)	वस्तु–Y (आयातित वस्तु)	कीमत अनुपात (व्यापार शर्त)
1	10	2	5x:1y
2	20	5	4x:1y
3	30	10	3x:1y
4	40	20	2x:1y
5	50	50	1x:1y
6	40	60	1x:1.5y

प्रारम्भिक स्थिति में, जबकि देश A के पास वस्तु–y की मात्राा नहीं है तो वह 2y के लिए 10x देने के लिए तैयार है यदि व्यापार के पूर्व 1y के बदले 5x घेरलू बाजार की सापेक्षिक कीमत है तो 1y के लिए 5x से अधिक कीमत होन पर देश A व्यापार नहीं करेगा। देश A घरेलू कीमत रेखा और अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा के समान होने की स्थिति में व्यापार के प्रति उदासीन होगा। यदि कीमत अनुपात 4x=1y हो तो देश A, 5 इकाई y वस्तु के बदले वस्तु x की 20 इकाई देने को तैयार है। जैसे–जैसे देश A के पास वस्तु y की मात्रा बढ़ती जा रही है वह वस्तु y के बदले वस्तु x की कम मात्रा देने को तैयार हो रहा है और वस्तु y की कीमत x के पदों में कम होती जा रही है।

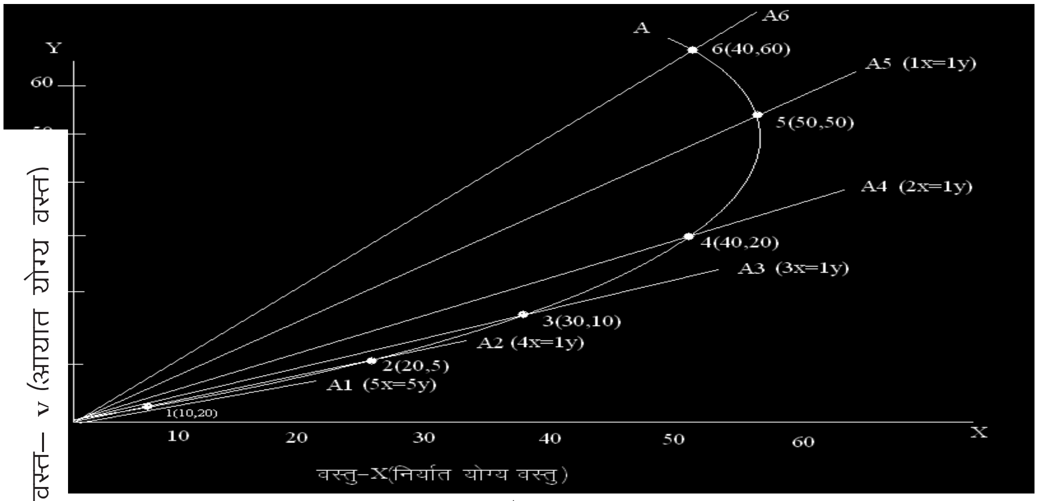

चित्र 2.14: देश–A का प्रस्ताव वक्र

यदि हम देश A के निर्यातों (वस्तु x) को x अक्ष पर तथा उसके आयातों (वस्तु y) को y अक्ष पर अर्शाये ंतो सारणी में दी गई व्यापार–शर्तों पर देश A के निर्यातों तथा अयातों की मात्राओं को दिखा सकते हैं। चित्र 2.14 में बिन्दु 1,2,3,4 तथा 5 विभिन्न व्यापार शर्तों क्रमशः OA_1, OA_2, OA_3, OA_4 तथा OA_5 पर देश A का देश से B व्यापार की प्रवृत्ति को दिखाते हैं। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र यह दिखातें हैं कि व्यापार शर्त बदलने पर कैसे व्यापार की मात्रा में परिवर्तन हो जाता है।

मूल बिन्दु O से खींची गयी रेखा OA जो कि इन सभी बिन्दुओं को मिलाती है देश–A का प्रस्ताव वक्र है। प्रस्ताव वक्र OA का ढाल बिन्दु 5 तक धनात्मक है और यह गैर–रेखिक है। बिन्दु 5 के बाद वस्तु–Y की की आधिक मात्रा के बदले देश A वस्तु–X की पहले से एक इकाई निर्यात करने को तेयार है। बिन्दु 6 पर 60 इकाई के Y लिए वह वस्तु X की 40 बिन्दु 6 पर 60 इकाई 5 के लिए वह वस्तु X की 40 इकाई ही देने को तैयार है; अर्थात् बिन्दु 5 के बाद प्रस्ताव वक्र का ढाल ऋणात्मक है। यहाँ स्पष्ट है कि देश–A वस्तु X की 50 से अधिक इकाई का निर्यात करना नहीं चाहता है।

बिन्दु 6 पर व्यापार–शर्त देश A के और अधिक पक्ष में होगी और वह X वस्तु की पहले से कम मात्रा देकर अधिक Y का आयात करेगा, परन्तु देश B के लिए यह व्यापार–शर्त स्वीकार्य नहीं होगी, वह बिन्दु 5 पर व्यापार करना चाहेगा। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र का ऋणात्मक ढाल वाला हिस्सा संभाव्य व्यापार क्षेत्र को व्यक्त नहीं करेगा। अतः प्रस्ताव वक्र केवल धनात्मक ढाल वाला ही होगा।

हम इसी प्रकार देश B का प्रस्ताव वक्र खिंच सकते हैं।

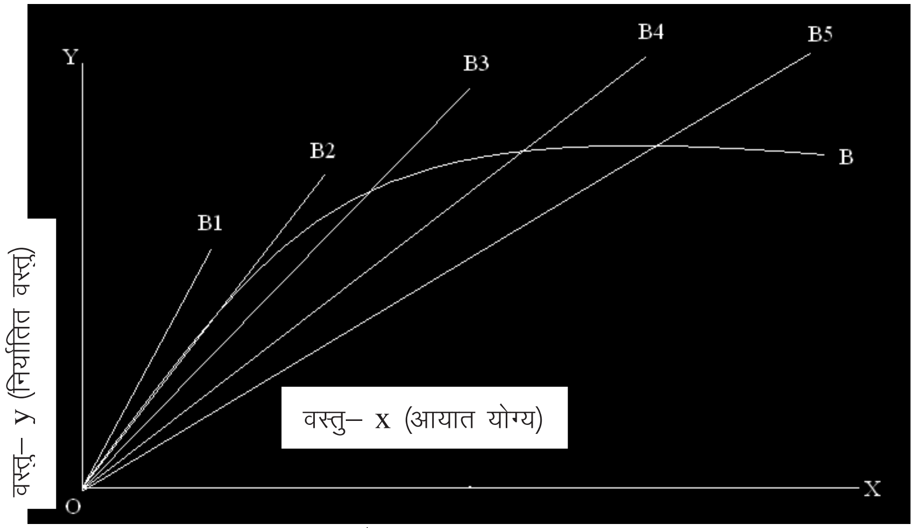

चित्र 2.15: देश–B का प्रस्ताव वक्र

चित्र 2.15 में विभिन्न कीमत रेखाओं (व्यापार शर्तों) पर देश B के आयात तथा उसके बदले निर्यात की गयी मात्राओं के विभिन्न संयागों का बिन्दु–पथ OB देश B का प्रस्ताव वक्र है। स्पष्ट है कि प्रस्ताव वक्र का संभाव्य व्यापार शर्तों से एक प्रकार संबंध है। संतुलित व्यापार–शर्त का निर्धारण वहाँ होगा जहाँ देश A तथा देश B के प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं।

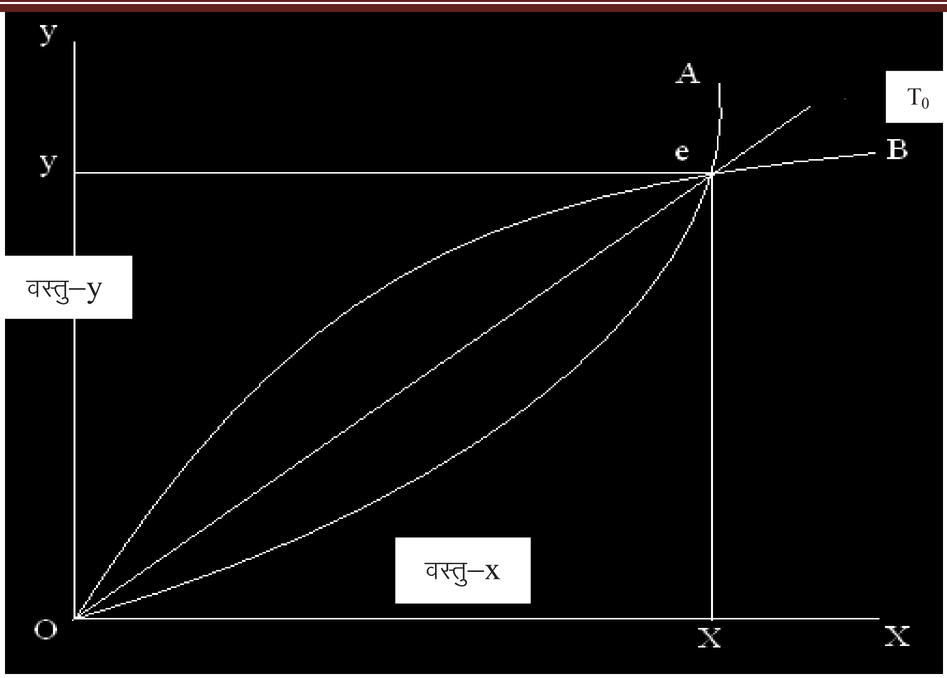

चित्र 2.16

चित्र 2.16 में देश A का प्रस्ताव वक्र OA तथा देश B का प्रस्ताव वक्र OB एक दूसरे को e बिन्दु पर काट रहे हैं और संतुलित व्यापार–शर्त OT_0 है। OT_0 व्यापार–शर्त पर देश A का आयात oy, उसके निर्यात OX तथा देश B का निर्यात oy, उसके आयात ox के बराबर होगा। इस प्रकार संतुलन में दोनों देशों का आयात तथा निर्यात एक दूसरे के बराबर होगा।

प्रस्ताव वक्रों का आकार संबंधित देशों की पूर्ति तथा मांग दोनों दशाओं द्वारा निर्धारित होता है। प्रस्ताव वक्र दोनों देशों की घरेलू कीमत रेखाओं (व्यापार न होने की दशा में) की सीमा में ही रहते हैं। किसी देश की घरेलू कीमत रेखा को मूल बिन्दु से उसके प्रस्ताव वक्र की ढाल द्वारा दिखाया जाता है। चित्र में OA तथा OB क्रमशः देश A तथा B की घरेलू कीमत रेखा को प्रदर्शित कर रहा है।

प्रस्ताव वक्र सामान्य–संतुलन विश्लेषण से संबंधित एक संकल्पना है। यह उत्पादन तथा उपभोग द्वारा संयुक्त रूप से निर्धारित होता है। प्रस्ताव वक्र का प्रत्येक बिन्दु विभिन्न व्यापार–शर्तों पर एक देश के उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के संतुलन को व्यक्त करता है। उत्पादन तथा उपभोग की दशाएं ही प्रस्ताव वक्रों के आकार को निर्धारित करती है जो कि संतुलित व्यापार–शर्त का निर्धारण करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–3

लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. प्रस्ताव वक्रों से आप क्या समझते है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. प्रस्ताव वक्रों के संबंध में कौन सा कथन असत्य है–

i. प्रस्ताव वक्र मांग और पूर्ति दोनों स्थितियों को दिखाते हैं
ii. ये उत्पादन तथा उपभोग द्वरा संयुक्त रूप से निर्धारित होते हैं
iii. यह आंशिक संतुलन विश्लेषण से संबंधित एक संकल्पना है
iv. प्रस्ताव वक्र का संभाव्य व्यापार शर्तों से एक प्रकार संबंध है।

२. प्रस्ताव वक्र की तकनीकी को विकसित किया
i. एल्फ्रेड मार्शल तथा एजवर्थ ने
ii. जे0एस0 मिल तथा एजवर्थ ने
iii. जे0एस0 मिल तथा एल्फ्रेड मार्शल ने
iv. रिकार्डों तथा एल्फ्रेड मार्शल ने

2.8 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में कुछ व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों के विश्लेषणात्मक यंत्रों का अर्थशास्त्रीयों ने विभिन्न सिद्धान्तों में उपयोग किया है.

उत्पादन संभावना वक्र यह बताता है कि कोई देश उपलब्ध प्रौद्योगिकी से अपने उत्पादन के संसाधनों का कुशलतम प्रयोग करके दो वस्तुओं के किन वैकल्पिक संयोगो का उत्पादन कर सकता है। स्पष्ट है कि वक्र के सभी बिन्दुओं पर देश के समस्त संसाधन पूर्ण रोजगार में होंगे। यह अवसर लागत पर आधारित है। इसका आकार मुख्यतः उत्पादन के पैमाने के प्रतिफल पर निर्भर करता है।

एक समोत्पाद वक्र, उत्पादन के साधनों के सभी संयोगो अर्थात् तकनीकी रूप से दक्ष सभी विधियों को दर्शाता है जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र का आकार साधनों की स्थानापन्नता के अंश पर निर्भर करता है। समोत्पाद वक्र के ढाल को तकनीकी प्रतिस्थापन की दर या प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRTS) कहा जाता है। मूल बिन्दु से समोत्पाद वक्र पर खींची गयी रेखा का ढाल किसी उत्पादन विधि की साधन गहनता को बताती है। इस प्रकार साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात है।

बाक्स या संदूक चित्र की सहायता से उत्पादन फलनों तथा उत्पादन के साधनों की कुल मात्रा के बीच अंर्तसंबंध का अध्ययन किया जाता है। इससे दो वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त आगतों के कुशलतम संयोंगो को भी प्रदर्शित किया जाता है।

समुदाय अधिमान वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे समुदाय या राष्ट्र के उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि मिलती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में समुदाय अधिमान वक्रों का प्रयोग व्यापार से पूर्व तथा व्यापार के पश्चात् राष्ट्र किस प्रकार संतुलन में आते हैं और उनके कल्याण में वृद्धि होती है, इसे स्पष्ट करने के लिए किया जाता है।

प्रस्ताव वक्र के द्वारा हम यह दिखाते हैं कि यदि दो देश आपस में व्यापार करते हैं तो किस प्रकार से माँग तथा पूर्ति की अंर्तक्रिया से साम्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त का निर्धारण होता है। इसकी सहायता से व्यापार से होने वाले लाभों को भी दिखाया जा सकता है।

2.9 शब्दावली

उत्पादन संभावना वक्रः देश के पास उपलब्ध कुल संसाधनो से दो वस्तुओं के उत्पादन के **संभाव्य** वैकल्पिक संयोगो का बिन्दुपथ.

समोत्पाद वक्रः दो साधनों के विभिन्न संयोगो बिन्दुपथ जिससे कि उत्पादन का एक समान स्तर प्राप्त होता है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की दर (MRTS): L की K के लिए तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का अर्थ है L की एक इकाई K की कितनी इकाईयों के लिए प्रयोग हो सकती है जिससे की उत्पादन समान रहे. $MRTS_{LK} = \Delta K/\Delta L$

साधन गहनताः साधन गहनता पूँजी श्रम अनुपात को बताती है।

अधिमान वक्रः दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों का बिन्दुपथ जिससे उपभोक्ताओं को समान संतुष्टि मिलती है।

प्रस्ताव वक्रःएक देश का प्रस्ताव वक्र एक ओर विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों (व्यापार–शर्त) पर आयातित–वस्तु के बदले देश द्वारा निर्यात–वस्तु की प्रस्तातिव मात्रा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय कीमतों पर उस देश की विदेशी वस्तु (आयात) की मांग को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र में मांग और पूर्ति दोनों के ही तत्व विद्यामान होते हैं। इसलिए इसे प्रस्ताव वक्र के साथ–साथ प्रतिपूरक मांग वक्र भी कहा जाता है।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

अति–लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर ,2. स्थिर

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. iii ,2.ii ,3.iv ,4.ii ,5.ii ,6.i

सत्य व असत्य :

2. सत्य ,2.असत्य ,3.असत्य ,4.असत्य ,5.सत्य

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. ii ,2.i ,3.iv,4.i

सत्य व असत्य :

1. सत्य ,2.सत्य ,3.असत्य ,4.असत्य ,5.सत्य ,6.सत्य ,7.असत्य ,8.सत्य

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. iii ,2.i

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001

- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti, International Economics, Rougledge, London.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

2.12 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- *डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2010*

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न :

1. उत्पादन संभावना वक्र क्या है? विभिन्न लागत स्थितियों में उत्पादन संभावना वक्र के विभिन्न आकारों की सचित्र व्याख्या कीजिए। घटते हुए प्रतिफल के अंर्तगत उत्पादन संभावना वक्र के माध्यम से उत्पादक के संतुलन को दर्शाए।
2. समोत्पाद वक्र क्या है? इनकी विशेषताओं को बताइए। समोत्पाद वक्र की सहायता से उत्पादक के संतुलन की सचित्र व्याख्या कीजिए।
3. बाक्स चित्र पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
4. प्रस्ताव वक्र क्या है? इसे कैसे व्युत्पन्न किया जाता है?

इकाई- ३ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विशुद्ध सिद्धांत

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत– भूमिका
3.4 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत
3.5 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत
3.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं
3.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां
3.8 मिल का प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची
3.13 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "प्रस्तावना एवं सिद्धांत" से सम्बंधित यह तीसरी इकाई है. इससे पहले की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति तथा उसके विलेशणात्मक यंत्रों के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार तथा उससे होने वाला लाभ है. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब तक दो देशों के बीच लागतों का अंतर विद्यमान है तब तक कम से कम एक या दोनों ही देशों को व्यापार से लाभ होगा. बाद में जे.एस. मिल ने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया.

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विशुद्ध सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है जो की प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दिया गया है. विशेष रूप से रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के **तुलनात्मक लागत सिद्धांत** की विस्तार से चर्चा की गयी है. साथ ही जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत का भी वर्णन किया गया है.इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विशुद्ध सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- निरपेक्ष लाभ एवं तुलनात्मक लाभ सिद्धांत में अंतर समझ सकेंगे
- जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत को समझ सकेंगे
- प्रतिष्ठित सिद्धांत की खूबियां तथा कमियां जान सकेंगे.

3.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत – भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का मुलभूत प्रश्न यह है की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ क्यों होता है? प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने श्रम को उत्पादन का एक मात्र साधन मानते हुए कहा की विभिन्न देशों के बीच श्रम उत्पादकता में अंतर के कारण ही व्यापार होता है.

प्रतिष्ठित सिद्धांत से पूर्व आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकास के दौरान १७वीं तथा १८ वीं शताब्दी में वणिकवादी विचारधारा थी . वणिकवाद में कई आधुनिक तत्व थे; जैसे वणिकवादी अत्यधिक राष्ट्रवादी थे, उनके लिए अपने देश का कल्याण सर्वोपरि था, राष्ट्रीय उदेश्यों को प्राप्त करने के लिए वे आर्थिक गतिविधियों के नियमन और आयोजन के पक्ष में थे. वणिकवादीयों के लिए एक देश के समृद्ध होने का सबसे महत्वपुर्ण उपाय अधिक से अधिक बहुमूल्य धातुएं विशेष रूप से सोना अर्जित करना है. निर्यात से यदि देश में बहुमूल्य धातुएं या सोना आता है तो उसका वे समर्थन करते हैं परन्तु आयात से सोना देश के बाहर जायेगा. इसलिए वे विनियमित, नियन्त्रित तथा प्रतिबंधित व्यापर नीति के पक्ष में थे.

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में एडम स्मिथ प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने दिखाया की किसी राष्ट्र के धन का सही मापन सोने से नहीं बल्कि उन वस्तुओं और सेवाओं से होता जो देश में उत्पादित होती है.अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **"एन इन्क्वायरी इनटू नेचर एंड काजेज आफ वेल्थ आफ नेशंस"** में उन्होंने वणिकवादी विचारधारा को गलत तथा अतार्किक बताया. उनके अनुसार यदि सरकार विदेशी व्यापार से वणिकवादी नियंत्रणों को हटा दे तो राष्ट्र के उत्पादन यानि धन में तेजी से वृद्धि होगी. स्मिथ वणिकवादीयों की इस धारणा का भी खंडन करते हैं की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से एक देश को लाभ दुसरे की कीमत पर होगा.स्मिथ ने दिखाया की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन के द्वारा व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होता है.

स्मिथ और रिकार्डो की विचारधारा के केन्द्र में व्यक्ति है; राष्ट्र तो मात्र उसके नागरिकों का योग है. इसलिए उनके लिए अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण विषय उपभोक्ता था. मनुष्य मेहनत और उत्पादन उपभोग के लिए करता है. और कोई भी चीज जो उपभोग को बढ़ा दे या रिकार्डो के शब्दों में 'आनंदों के योग' को बढ़ा दे, उसका समर्थन किया जाना चाहिए. स्मिथ और रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त मुख्यतः इसी बात की व्याख्या करता है की व्यापार से कैसे व्यापार में लगे देशों को लाभ होता है अर्थात देश के लोगों के उपभोग में वृद्धि होती है.

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी. परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के **सिद्धांत को** और स्पष्ट किया, इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत **तुलनात्मक लागत सिद्धांत या तुलनात्मक लाभ सिद्धांत** द्वारा जाना जाता है. बाद में जान स्टुअर्ट मिल ने **तुलनात्मक लागत सिद्धांत में** मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया.

3.4 एडम स्मिथ का निरपेक्ष लाभ सिद्धांत

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **निरपेक्ष लाभ सिद्धांत** प्रस्तुत किया. एडम स्मिथ ने **लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **सिद्धांत** प्रस्तुत किया.यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा. प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी.इस तरह स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बाज़ार की सीमा में विस्तार करके श्रम के अत्यधिक विशिष्टिकरण को संभव बनता है; फलस्वरूप श्रम के सीमापार क्षेत्रीय विभाजन से प्राप्त लाभों को बढाता है.

एडम स्मिथ के अनुसार अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से बाजार का विस्ताार होता है जिससे श्रम विभाजन की संभावना बढ़ जाती है। अर्न्तराष्ट्रीय श्रम–विभाजन और उसके फलस्वरूप होने वाले विशिष्टीकरण के कारण उत्पादन और उपभोग में हुई वृद्धि का लाभ व्यापार में सम्मिलित सभी देशों को होता है। जिस प्रकार दर्जी अपने जूतों को स्वयं नहीं बनाता, बल्कि कपड़े के बदले मोची से उसे खरीदता है। इस प्रकार दर्जी और मोची दोनों का

लाभ होता है। उसी प्रकार, स्मिथ के अनुसार, एक देश भी दूसरे देशों के साथ व्यापार करके लाभ प्राप्त कर सकता है।

स्मिथ के अनुसार दो देशों के बीच व्यापार तभी होता है जब लागतों में निरपेक्ष अंतर हो अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ हो। ऐसी स्थिति में प्रत्येक देश को उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल करना चाहिए और निर्यात करना चाहिए, जिसमें उसे निरपेक्ष लाभ हो तथा उस वस्तु का आयात करना चाहिए जिसमें उसे निरपेक्ष हानि है।

माना दो देश A और B हैं दो वस्तु X और Y का उत्पादन कर रहे हैं। दोनों देशों की लागत दशाओं को निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है।

<u>सारणी 3.1</u>: दो देशों में दो वस्तुओं की लागतों की तुलना

	प्रति इकाई उत्पादन लागत (श्रम घण्टों में)	
	1 इकाई वस्तु X की उत्पादन लागत	1 इकाई वस्तु Y की उत्पादन लागत
देश–A	100	200
देश–B	200	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि देश A में वस्तु X की उत्पादन लागत (100 श्रम घण्टे), देश B में X की लागत (200 श्रम घण्टे) की आधी है। इस प्रकार वस्तु Y की देश A में लागत देश B की अपेक्षा दुगुनी है। स्पष्ट है कि देश A, वस्तु X के उत्पादन में निरपेक्ष रूप से अधिक दक्ष है जबकि देश B, वस्तु Y के उत्पादन में अधिक दक्ष है। यदि देश A सिर्फ X का तथा B सिर्फ Y का उत्पादन करें तो कुल उत्पादन बढ़ जायेगा।

विशिष्टीकरण के पश्चात् देश A कुल 300 श्रम घण्टे (100+200) से वस्तु X की 3 इकाई का उत्पादन करेगा, इसी प्रकार देश B, कुल 300 श्रम घण्टे (200+100) से 3 इकाई वस्तु Y का उत्पादन करेगा।

<u>सारणी 3.2</u>: दो देशों में दो वस्तुओं की व्यापार के पूर्व तथा पश्चात् उत्पादन की तुलना

	वस्तु–X उत्पादन		वस्तु–Y उत्पादन		कुल उत्पादन	
	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्	व्यापार के पूर्व	व्यापार के पश्चात्
देश–A	1	3	1	0	2	3
देश–B	1	0	1	3	2	3
कुल उत्पादन	2	3	2	3	**4**	**6**

सारणी 3.2 से स्पष्ट है कि विशिष्टीकरण के पश्चात् उतने ही संसाधनों (श्रम घण्टों) से दोनों ही देशों में दोनों ही वस्तुओं का एक–एक इकाई अधिक उत्पादन होगा तथा कुल संयुक्त उत्पादन 4 से बढ़कर 6 हो जायगा।

व्यापार के फलस्परूप उत्पादन में हुई वृद्धि दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में कितनी वृद्धि लाएगा यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त या कीमत अनुपात 1x=1y हो तो दोनों देशों को व्यापार से लाभ होगा। जैसा कि **सारणी 3.3** से स्पष्ट है–

सारणी 3.3: व्यापार के पश्चात् उपभोग(यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत अनुपात 1x=1y हो)

	वस्तु–x	वस्तु–y	कुल
देश–A	2	1	3
देश–B	1	2	3

व्यापार से पूर्व दोनों देश वस्तु X और Y की एक–एक इकाई का उपभाग कर रहे थे, परन्तु अब देश A 1x के बदले 1y प्राप्त करेगा और बचे हुए 2y का उपभोग करेगा। इसी प्रकार देश B भी पहले की अपेक्षा एक इकाई अधिक वस्तु y का उपभोग करेगा। इस प्रकार व्यापार से दोनों ही देशों के जीवन के रहन–सहन के स्तर में सुधार आएगा।

एडम स्मिथ की अर्न्तराष्ट्रीय व्यापर से लाभ की व्याख्या अत्यंत सरल और स्पष्ट है। तथा स्वतंत्र व्यापार के पक्ष में बड़े ही दृढ़ता पूर्वक अपने तर्क को प्रस्तुत करती है। हालांकि यह सिद्धान्त संकीर्ण है और थोड़ी जटिल स्थितियों मे व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करने में असमर्थ है।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. एडम स्मिथ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के **सिद्धांत में योगदान पर** संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये.

२. निरपेक्ष लाभ सिद्धांत की संक्षिप्त व्याख्या कीजिये.

अति–लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. एडम स्मिथ की पुस्तक का नाम बताईये.

२. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धांत किस अर्थशास्त्री ने दिया?

सत्य व असत्य :

१. स्मिथ और रिकार्डो की विचारधारा के केन्द्र में व्यक्ति हैं.

२. स्मिथ के अनुसार दो देशों के बीच व्यापार तभी होता है जब लागतों में निरपेक्ष अंतर नहीं हो.

३. प्रतिष्ठित सिद्धांत से पूर्व आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकास के दौरान १७वीं तथा १८ वीं शताब्दी में वणिकवादी विचारधारा थी

४. लागतों में समान अंतर होने पर भी व्यापार होगा.

५. वणिकवादी विनियमित, नियन्त्रित तथा प्रतिबंधित व्यापर नीति के पक्ष में नहीं थे.

3.5 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत

रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त **तुलनात्मक लागत सिद्धांत** कहा जाता है. रिकार्डो एक कदम और आगे बढकर यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दुसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा और व्यापार में लगे सभी देशों को लाभ होगा. उनके अनुसार अन्य बातें सामान रहने पर एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम **तुलनात्मक लागत लाभ** या न्यूनतम **तुलनात्मक लागत** हानि हो. इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे **तुलनात्मक लागत लाभ** न्यूनतम या **तुलनात्मक लागत** हानि अधिकतम हो. इस प्रकार देश अपने उत्पादन और उपभोग को अधिकतम करने में समर्थ होगा.

रिकार्डो ने अपने सिद्धांत को एक उदहारण द्वारा समझाया.माना दो देश इंग्लैंड और पुर्तगाल हैं जो दो वस्तुओं कपडे और शराब का उत्पादन करते हैं. सारणी १ में दोनों देशों की लागत दशाओं को दर्शाया गया है.

सारणी ३.४: इंग्लैंड और पुर्तगाल के लागत दशाओं की तुलना

देश	उत्पादन की लागत(श्रम घंटों में)		घरेलु विनिमय अनुपात
	१ इकाई शराब	१ इकाई कपड़ा	
पुर्तगाल	80	90	1 इकाई शराब = 80/90 = 0.89 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=1.125 इकाई शराब
इंग्लैंड	120	100	1 इकाई शराब =120/100 =1.2 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=.83 इकाई शराब
तुलनात्मक लागत अनुपात	80/120 =0.67	90/100= 0.90	

तुलनात्मक लागत लाभ जानने के लिए हम दोनों देशों में एक वस्तु की उत्पादन लागत की तुलना दूसरे वस्तु की उत्पादन लागत से करते हैं. रिकार्डो के उदहारण में –

$$\frac{\text{पुर्तगाल में शराब की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत}} < \frac{\text{पुर्तगाल में कपड़ा की श्रम लागत}}{\text{इंग्लैंड में कपड़ा की श्रम लागत}} < 1$$

अर्थात $80/120 < 90/100 < 1$

अर्थात $0.67 < 0.90 < 1$

पुर्तगाल में दोनों वस्तुओं की एक इकाई की उत्पादन लागत इंग्लैंड से कम है; पुर्तगाल दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त कर रहा है. परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक **तुलनात्मक लाभ** प्राप्त कर रहा है. क्यूंकि एक इकाई शराब के उत्पादन में पुर्तगाल की श्रम लागत, इंग्लैंड में शराब की श्रम लागत का मात्र 67% है, जबकि कपड़े में यह 90% है.

स्पष्ट है कि इंग्लैंड दोनों वस्तुओं के उत्पादन में निरपेक्ष हानि प्राप्त कर रहा है. परन्तु वह कपड़े की अपेक्षा शराब के उत्पादन में अधिक **तुलनात्मक** हानि प्राप्त कर रहा है. रिकार्डो के अनुसार चूँकि पुर्तगाल **का तुलनात्मक लाभ** शराब के उत्पादन में अधिक है और इंग्लैंड **की तुलनात्मक** हानि कपड़े के उत्पादन में कम है इसलिए यदि पुर्तगाल शराब के उत्पादन में तथा इंग्लैंड कपड़े के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टिकरण करे तो व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा. **अर्थात दक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह अधिक हो और अदक्षता को वहाँ विशिष्टिकरण करना चाहिए जहां वह कम हो.**

विशिष्टिकरण के पश्चात दोनों वस्तुओं, कपडे और शराब, का उत्पादन व्यापार शुरू होने से पहले के उत्पादन की अपेक्षा अधिक होगा. इसे आप निम्नलिखित ढंग से समझ सकते हैं:

पुर्तगाल में कुल संसाधन = 170 श्रम घंटे

इंग्लैंड में कुल संसाधन = 220 श्रम घंटे

सारणी ३.५: व्यापार ना होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	1	1	2
इंग्लैंड	1	1	2
विश्व	2	2	4

व्यापार ना होने की स्थिति में दोनों देश एक – एक इकाई कपडे और शराब का उत्पादन तथा उपभोग करते हैं और कुल विश्व उत्पादन चार इकाई के बराबर है.

सारणी ३.६: व्यापार होने की स्थिति में उत्पादन और उपभोग

देश	शराब	कपड़ा	कुल उत्पादन तथा उपभोग
पुर्तगाल	2.125	0	2.125
इंग्लैंड	0	2.2	2.2
विश्व	2.125	2.2	4.325

व्यापार शुरू होने के पश्चात विशिष्टिकरण के कारण दोनों वस्तुओं, कपडे और शराब, का उत्पादन तथा उपभोग अधिक होगा. पुर्तगाल अब अपने कुल 170 श्रम घंटे संसाधन से 2.125 इकाई शराब का उत्पादन करेगा जबकि इंग्लैंड में कुल 220 श्रम घंटे से 2.2 इकाई कपडे का उत्पादन करेगा और कुल विश्व उत्पादन 4 इकाई से बढ़कर 4.325 इकाई हो जायगा.

परन्तु वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाला उत्पादन लाभ यह सुनिश्चित नहीं करता की व्यापर से दोनों देशों के कल्याण या उपभोग में वृद्धि होगी. उत्पादन लाभ सकल राष्ट्रिय आय में लाभ या आय लाभ है. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप व्यपारत देशों के आर्थिक रहन सहन का स्तर कितना ऊपर उठा इसके निर्धारण में उपभोग लाभ महत्वपूर्ण है. प्रत्येक देश के उपभोग या कल्याण में कितनी वृद्धि होगी यह पूरी तरह से व्यापार शर्त पर निर्भर करेगा.

इंग्लैंड एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 120 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपडे के उत्पादन के लिए 100 श्रम घंटे ले रहा है. स्पष्ट है कि इंग्लैंड में शराब की उत्पादन लागत कपडे की उत्पादन लागत से अधिक है-

1 इकाई शराब = 120/100 या 1.2 इकाई कपड़ा

1 इकाई कपड़ा = 0.83 इकाई शराब.

पुर्तगाल एक इकाई शराब के उत्पादन के लिए 80 श्रम घंटे तथा एक इकाई कपडे के उत्पादन के लिए 90 श्रम घंटे ले रहा है.स्पष्ट है कि पुर्तगाल में कपडे की उत्पादन लागत शराब की उत्पादन लागत से अधिक है- 1 इकाई शराब = 80/90 या 0.89 इकाई कपड़ा.

यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त हो :

1 इकाई कपडा = **1** इकाई शराब**;**

अर्थात पुर्तगाल शराब के **1** इकाई निर्यात से **1** इकाई कपडा प्राप्त करेगा, जबकि घरेलु स्तर पर सिर्फ **0.89** इकाई कपडा मिलता था क्योंकि पुर्तगाल का घरेलु विनिमय अनुपात है: **1** इकाई शराब **=** **0.89** इकाई कपड़ा. तो पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा: **(1 – 0.89 =) 0.11** इकाई कपडा.

शराब के पदों में देखें तो पुर्तगाल घरेलु स्तर पर **1** इकाई कपडा के लिए **1.125** इकाई शराब देता है (क्योंकि पुर्तगाल का घरेलु विनिमय अनुपात है: **1**इकाई कपड़ा**=1.125** इकाई शराब); जबकि व्यापर के पश्चात सिर्फ **1** इकाई शराब के निर्यात से **1** इकाई कपडा प्राप्त करेगा अर्थात पुर्तगाल को व्यापार से लाभ होगा (1.125 – 1**=**) 0.125 इकाई शराब.

इसी प्रकार इंग्लैंड को व्यापार से लाभ होगा (1.20 - 1 =) 0.20 इकाई कपड़ा या (1 - 0.83 =) 0.17 इकाई शराब; क्योंकि इंग्लैंड का घरेलु विनिमय अनुपात है: 1 इकाई शराब = 1.20 इकाई कपड़ा या 1इकाई कपड़ा=0.83 इकाई शराब. अर्थात इंग्लैंड घरेलु स्तर पर1 इकाई शराब के लिए 1.20 इकाई कपडा देता है या 1 इकाई कपडा से सिर्फ 0.83 इकाई शराब ही मिलती है.

यदि व्यापार पुर्तगाल की घरेलु विनिमय अनुपात पर होता है तो इसे व्यापार से कोई लाभ नहीं होगा, व्यापार का समस्त लाभ इंग्लैंड को होगा. इसके विपरीत यदि व्यापार इंग्लैंड की घरेलु विनिमय अनुपात पर होता है व्यापार का समस्त लाभ पुर्तगाल ले जायेगा. वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात या व्यापार शर्त दो देशों के इन्हीं घरेलु विनिमय अनुपातों के बीच कंही निर्धारित होगी. यदि व्यापार शर्त दो देशों के घरेलु विनिमय अनुपातों के बिलकुल बीच में स्थित है तों दोनों ही देशों को व्यापार से बराबर बराबर लाभ होगा.

3.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं

चूंकि वास्तविक जगत में चीजें काफी जटिल हैं और तेजी से बदलती रहती हैं इसलिए प्रत्येक आर्थिक सिद्धांत कुछ निश्चिच मान्यताओं पर आधारित होते हैं जो की वास्तविकता के ही सरलीकृत रूप होती हैं. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. केवल दो देश हैं जो दो समरूप वस्तुओं का व्यापार करते हैं।

2. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है अर्थात् यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत' पर आधारित है । सभी श्रम–इकाईयाँ समरूप हैं।
3. उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति है।
4. परिवहन लागतें शून्य है।
5. उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णरूप से गतिशील तथा देशों के मध्य पूर्णरूप से अगतिशील हैं।
6. दोनों देशों में पूर्ण रोजगार है तथा पूर्ण–प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है।
7. अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है। अर्थात् दो देशों में स्वतंत्र व्यापार हो रहा है।
8. दोनों देशों के मध्य वस्तु–विनिमय प्रणाली के आधार पर व्यापार होता है अर्थात् मुद्रा के अस्तित्व की उपेक्षा की गयी है।
9. उपभोक्ता की रुचि, उत्पादन फलन, उत्पादन के साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है।

3.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की कमियां

अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धांत बड़े ही तार्किक और सुन्दर ढंग से व्यापार से होने वाले लाभों की व्याख्या करता है। तुलनात्मक लागतों में विद्यमान अन्तर के कारण अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार सभी व्यापाररत देशों के लिए लाभदायक होगा। प्रतिष्ठित अथशास्त्री बड़े ही स्पष्ट ढ़ंग से इस बात को कहते हैं कि विभिन्न देशों के उत्पादन फलन अलग–अलग होते हैं, इसी कारण तुलनात्मक लागतों में अन्तर होता है।

प्रथम विश्वयुद्ध तक यह सिद्धांत अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार का एक लोकप्रिय सिद्धांत बना रहा। संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग को सुनिश्चित करने और इस प्रकार कुल उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि करने की दृष्टि से इस सिद्धांत की खूबियाँ बिल्कुल स्पष्ट हैं। परन्तु यह सिद्धांत जिन मान्यताओं पर आधारित हैं वे व्यवहारिक रूप से अवास्तविक हैं। इसलिए इस सिद्धांत का विश्लेषणात्मक ढांचा काफी कमजोर रहा है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ओहलिन, ग्राहम आदि ने इस सिद्धांत की कमियो को महत्वपूर्ण रूप से रंखांकित किया है। सिद्धांत की महत्वपूर्ण आलोचनाएँ निम्नलिखित है–

1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह बताने में असफल रहे कि विभिन्न देशो के उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न क्यों होते हैं।
2. यह सिद्धांत 'मूल्य के श्रम सिद्धांत' पर आधारित है जो कि अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं किसी वस्तु की उत्पादन लागत उसके उत्पादन में लगे सिर्फ श्रम की मात्रा के बराबर नहीं होती है बल्कि उसमें सभी संसाधन लागतें सम्मिलित होती हैं। विभिन्न श्रम–इकाईयाँ भी समरूप नहीं होती हैं। श्रम अनेक वर्गों में विभक्त होता

है जैसे, कुशल श्रम, अकुशल श्रम, अर्द्धकुशल श्रम इत्यादि और ये विभिन्न वर्गों के श्रम आपस में प्रतियोगी नहीं होते हैं।

श्रम की अर्न्तक्षेत्रीय पूर्ण गतिशीलता और श्रम–बाजार की पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता भी अवास्तविक है इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने श्रम के मूल्य सिद्धांत को रद्द कर दिया है।

प्रतिष्ठित सिद्धांत के समर्थकों का तर्क है कि उनका विश्वास मुख्यतः कल्याणकारी अर्थशास्त्री में था। इसलिए अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभ की माप के लिए उन्होंने श्रम लागत का प्रयोग 'वास्तविक लागत' के रूप में किया है। 'वास्तविक लागत' की धारणा का प्रयोग सामान्यतः उत्पादन के दौरान श्रम की अनुपयोगिता या कष्टानुभूति के रूप में किया गया है। परन्तु अनुपयोगिता एक आत्मनिष्ठ प्रत्यय है जो कि देश, काल और व्यक्ति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सिद्धांत इस मान्यता पर भी आधारित है कि सभी वस्तुओं के उत्पादन में श्रम समान अनुपात में प्रयुक्त होता है। यह मूलतः एक स्थैतिक विश्लेषण है इसलिए अवास्तविक है।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत की परिभाषाओं को लेकर भी स्मिथ तथा रिकार्डो के निष्कर्षों को सिद्ध किया है। प्रो0 जगदीश भगवती के अनुसार रिकार्डो का सिद्धांत एक कल्याणकारी मॉडल के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसका उद्देश्य स्वतंत्र व्यापार का समर्थन था। यह सिद्धांत व्यापार के विभिन्न तथ्यों की व्याख्या के लिए निर्मित धनात्मक (positive) मॉडल नहीं है।

3. प्रतिष्ठित सिद्धांत उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की मान्यता मान लेता है और इस आधार पर सभी व्यापाररत देशों में पूर्ण विशिष्टीकरण की बात करता है।

वास्तविक जगत में न तो उत्पादन में स्थिर लागत की स्थिति और न ही किसी देश में पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति पायी जाती है। अनेक देश अनेक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और लागत दशाएँ उत्पादन में बढते हुए प्रतिफल से घटते हुए प्रतिफल के बीच परिवर्तित होती रहती है।

परंतु बाद में नव–प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अन्य लागत दशाओं में भी व्यापार–सिद्धांत का विस्तार किया और प्रतिष्ठित सिद्धांत के निष्कर्षों को सिद्ध करने की कोशिश की।

4. प्रतिष्ठित सिद्धांत में परिवहन लागतों की भी उपेक्षा की गयी है जबकि इन लागतों की अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की मात्रा और दिशा दोनों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्च परिवहन लागतें तुलनात्मक लाभों और व्यापार से लाभों को समाप्त कर सकती हैं।

यह आलोचना सिद्धांत को गम्भीर चुनौती पेश नहीं करती क्योंकि परिवहन लागतों व अन्य सम्बन्धित लागतों को जोड़कर कुल लागत के पदों में तुलनात्मक लाभों को पुनः परिभाषित करना सम्भव है।

5. सिद्धांत में उपभोक्ताओं की रुचियो, उत्पादन–फलन, उत्पादन साधनों की मात्रा आदि को स्थिर मान लिया गया है परन्तु व्यवहार में ये स्थिर नहीं है।

6. यह सिद्धांत सिर्फ कुछ संकीर्ण प्रश्नों के उत्तर देने तक ही सीमित हैं, जैसे– किसी दिये हुए समय मे किन वस्तुओं का व्यापार किया जाएगा और व्यापार से क्या लाभ होगा? यह इस बात को नहीं बताता कि समय के साथ व्यापार की मात्रा, संरचना तथा लाभ में किस प्रकार परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं करता कि समय के साथ तुलनात्मक लाभ की संरचना में कैसे परिवर्तन होगा।
7. रिकार्डो का सिद्धांत एकपक्षीय है क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के केवल पूर्ति पक्ष पर विचार करता है और मांग पक्ष को पूरी तरह से उपेक्षित कर देता है। तुलनात्मक लागत में भिन्नता के लिए मांग की दशाओं की उपेक्षा की गयी है।

वास्तव में प्रतिष्ठित सिद्धांत अल्पकालीन नहीं बल्कि दीर्घकालीन समस्या पर विचार करता है इसलिए इसलिए लागतों में अंतर के लिए सिर्फ पूर्ति दशाओं को ही प्रभावशाली मानता है। हालांकि बाद में जे0एस0 मिल ने प्रतिष्ठित सिद्धांत की इस कमी को दूर करते हुए मांग पक्ष को भी सम्मिलित किया।

8. बर्टिल ओहलिन इस सिद्धांत को बेढंगा और अवास्तविक कहते हैं, क्योंकि यह विभिन्न देशों के मध्य सीधे सीधे पूर्ण लागत की भिन्नता पर विचार नहीं करता है। यह सिर्फ श्रम लागतों पर विचार करता है और अन्य लागतों की अवहेलना करता है। ओहलिन इस सिद्धांत को खतरनाक मानते हैं क्योकि यह केवल दो देशों तथा दो वस्तुओं वाली परिस्थितियों का विश्लेषण करता है और इससे प्राप्त निष्कर्षों को अनेक देशों और वस्तुओं वाली परिस्थितियों पर लागू करने का प्रयास करता है।

ओहलिन के अनुसार संसाधन न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि देश के भीतर भी विभिन्न क्षेत्रों के बीच अगतिशील होते हैं। इसलिए तुलनात्मक लाभ का सिद्धांत न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि सभी प्रकार के व्यापार में लागू होता है। इसलिए ओहलिन मूल्य के सामान्य सिद्धांत पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नये सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं।

9. इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए मिर्डल कहते हैं कि यह अन्तर्राष्ट्रीय असमानताओं और विकास तथा अल्पविकास की समस्याओं की उपेक्षा करता है।
10. फ्रैंक ग्राहम ने यह दिखाया कि इस सिद्धांत की मान्यताओं के आधार पर भी पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं होगा। अपूर्ण या आंशिक विशिष्टीकरण निम्नलिखित स्थितियों में होगा–

i. यदि दो व्यापार कर रहे देशों में उत्पादन की दृष्टि से एक बहुत छोटा तथा दूसरा बहुत बड़ा हो।
ii. यदि दोनों देशों के व्यापार में सम्मिलित वस्तुओं का मूल्य तुलनीय हो। जब एक वस्तु उच्च मूल्य वाली वस्तु हो तथा दूसरी वस्तु निम्न मूल्य वाली हो।

प्रथम स्थिति में छोटा देश पूर्व विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेगा परन्तु बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं कर सकेगा। यदि बड़ा देश पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो छोटे

देश में उसकी खपत सम्भव नहीं है। दूसरी ओर छोटा देश पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् भी बड़े देश की मांग को संतुष्ट नहीं कर सकता है।

द्वितीय स्थिति में, उच्च मूल्य की वस्तु उत्पादित करने वाला देश पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करने में समर्थ होगा जबकि निम्न मूल्य वाली वस्तु का उत्पादन करने वाला देश ऐसा नहीं कर सकेगा क्योंकि कम मूल्य वाली वस्तु के सम्पूर्ण निर्यात का मूल्य, उस देश की उच्च मूल्य की वस्तु की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकता।

इस प्रकार, जब तक व्यापार में सम्मिलित देश समान आर्थिक आकार के न हों या व्यापारिक वस्तुएँ लगभग समान उपभोग मूल्य की न हों उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव नहीं है।

11. इस सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह सिर्फ 2 वस्तुओं और 2 देशों को लेकर विश्लेषण करता है। परन्तु दो से अधिक देशों तथा वस्तुओं के संदर्भ में भी इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया जा सकता है।
12. सिद्धांत की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है स्वतंत्र व्यापार की मान्यता पर आधारित है। यह मान्यता सिद्धांत को अवास्तविक बना सकती है परन्तु यह किसी भी तरह इसे अवैध नहीं बनाती; गैर स्वतंत्र व्यापार स्थिति में भी व्यापार–संतुलन को दिखाया जा सकता है।

मूल्यांकन

तुलनात्मक लाभ सिद्धांत की इस आधार पर आलोचना कि इसकी मान्यताएँ वास्तविक जगत से मेल नहीं खाती हैं, बहुत उचित नहीं है। इनमें से अधिकांश मान्यताएँ सैद्धान्तिक सरलता के लिए ली गयी है।

एक तो विश्व की वास्तविकताएँ काफी जटिल हैं और दूसरे ये समय के साथ बदलती रहती है। सिद्धांत के पक्ष में यह बात उल्लेखनीय है कि आर्थिक सिद्धांत आदर्शों को वास्तविकता की ओर ले जाने की अपेक्षा वास्तविकता को आर्दशात्मक बनाने का प्रयास करते हैं। वास्तव में, सिद्धांत यह बताता है कि आर्थिक नीति के उद्देश्य आदर्श स्थितियों को उत्पन्न करना और उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित करना होना चाहिए और उन आदर्शों को पूरा करने के बाद सिद्धांत यह कहता है कि अर्न्तराष्ट्रीय श्रम विभाजन के लिए हमें तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिए, जिससे कि आगे विश्व में संसाधनों का अत्यधिक अनुकूलतम आवंटन सुनिश्चित होगा तथा पूरे विश्व के आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। इस आधार पर तुलनात्मक लाभ सिद्धांत आर्दशात्मक सिद्धांत हो जाता है, यह वर्णनात्मक की अपेक्षा निर्देशात्मक हो जाता है। यह सामान्य धनात्मक अर्थशास्त्र की अपेक्षा आर्दशात्मक कल्याण अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु बन जाता है।

स्मिथ व रिकार्डो यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि राष्ट्रों के हित एक दूसरे से टकराएँ यह जरूरी नहीं है। वे विश्व के राष्ट्रों के बीच एक अर्न्तराष्ट्रीय दृष्टि उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं, यह दिखाकर कि कुछ व्यापार; व्यापार न होने से बेहतर है। राष्ट्रों के

बीच व्यापार को प्रतिबंधित करने की अपेक्षा इसे प्रोतसाहित करना विश्व के उत्पादन में वृद्धि लायेगा तथा सार्वभौमिक कल्याण को अधिकतम करेगा। तुलनात्मक लागत सिद्धान्त का यही संदेश था और अब भी है। सिद्धांत व्यापार के पक्ष में रहा है और स्वतंत्र व्यापार का समर्थन करता है। अपनी सभी सीमाओं के बावजूद यह सिद्धांत समय की कसौटी पर खरा उतरा है। यद्यपि इसमें काफी सुधार किये गए हैं,पर इसका मूल ढांचा वैसा ही है। सिद्धांत उल्लेखनीय रूप से अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सफल रहा है।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यताएं बताइए.

२. तुलनात्मक लागत सिद्धांत पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए.

अति–लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. सारणी इंग्लैंड और पुर्तगाल के लागत दशाओं की तुलना दी गयी है , इसके आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए –

देश	उत्पादन की लागत(श्रम घंटों में)	
	१ इकाई शराब	१ इकाई कपड़ा
पुर्तगाल	10	20
इंग्लैंड	15	25

i. पुर्तगाल का घरेलु विनिमय अनुपात क्या है?

ii. इंग्लैंड का घरेलु विनिमय अनुपात क्या है?

iii. दो देशों का शराब के उत्पादन में तुलनात्मक लागत अनुपात?

iv. दो देशों का कपड़ा के उत्पादन में तुलनात्मक लागत अनुपात?

v. पुर्तगाल को किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण करना चाहिए?

vi. इंग्लैंड को किस वस्तु का निर्यात करना चाहिए?

vii. यदि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात **1** इकाई कपडा = **1** इकाई शराब तो पुर्तगाल को व्यापार से होने वाले लाभ का मापन कीजिये.

बहुविकल्पीय प्रश्नः

3. रिकार्डो के अनुसार निम्नलिखित में से कौन तुलनात्मक लागत में अंतर का कारण है?

i. लाभ में अंतर

ii. तकनीकि प्रगिति

iii. उत्पादन की श्रम लागत में अंतर

iv. उत्पादन की अन्य लागतो में अंतर

4. निम्नलिखित में से कौन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की मान्यता नहीं है?

i. उत्पादन में पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति नहीं है।

ii. दोनों देशों में पूर्ण रोजगार है तथा पूर्ण–प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है।

iii. उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णरूप से गतिशील तथा देशों के मध्य पूर्णरूप से अगतिशील हैं।

iv. श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है

सत्य व असत्य :

1. वास्तविक जगत में न तो उत्पादन में स्थिर लागत की स्थिति और न ही किसी देश में पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति पायी जाती है।
2. परिवहन लागतों व अन्य सम्बन्धित लागतों को जोड़कर कुल लागत के पदों में तुलनात्मक लाभों को पुनः परिभाषित करना सम्भव है।
3. तुलनात्मक सिद्धांत मूलतः एक स्थैतिक विश्लेषण है
4. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह बताने में सफल रहे कि विभिन्न देशो के उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न क्यों होते हैं।
5. तुलनात्मक सिद्धांत में उपभोक्ता की रुचि, उत्पादन फलन, उत्पादन के साधनों की मात्रा आदि को स्थिर नहीं माना गया है।

3.8 जे0एस0 मिल का प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत

रिकार्ड़ो ने अपने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में यह दिखाया कि यदि व्यापार–शर्त रेखा दोनों व्यापाररत देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच में है तो दोनों ही देशों को व्यापार से लाभ होगा। परन्तु दो देशों की घरेलू विनिमय अनुपातों के बीच वास्तविक विनिमय अनुपात कहाँ निर्धारित होगा अर्थात् वास्तविक व्यापार शर्त रेखा का निर्धारण किस प्रकार होगा, इसका उत्तर रिकार्ड़ो नहीं दे सके क्योंकि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री माँग–पक्ष की उपेक्षा कर देते हैं। इनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त दो देशों में आन्तरिक लागत अनुपातों अर्थात् सिर्फ पूर्ति दशाओं द्वारा निर्धारित होती है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा एक देश के अंदर के सापेक्षिक लागत अनुपात के बराबर है तो उस देश को व्यापार से कोई लाभ नहीं होगा। इस प्रकार दो देशों के आन्तरिक लागत अनुपात, उच्चतम तथा निम्नतम सीमा का निर्धारण करते हैं। जिसके बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा हो सकती है।

परन्तु व्यापार–शर्त अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का व्यापार किया जाता है, उनकी कीमते हैं और किसी भी अन्य कीमतों की तरह इसका निर्धारण की माँग और पूर्ति दोनों के द्वारा किया जाना चाहिए। स्मिथ और रिकार्डो माँग की दशाओं की उपेक्षा कर देते हैं इसलिए वास्तविक व्यापार–शर्त रेखा का निर्धारण नहीं कर पाते हैं। 1948 में जान स्टुअर्ट मिल ने वास्तविक व्यापार शर्त या विनिमय अनुपात के निर्धारण की समस्या का समाधान अपने प्रतिपूरक माँग सिद्धांत में किया। मार्शल तथा एजबर्थ ने प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से मिल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

संतुलित विनमय दर के निर्धारण की व्याख्या के लिए जे0एस0 मिल ने प्रतिपूरक मांग सिद्धांत का विकास किया। उन्होंने जोर दिया कि वास्तविक वस्तु विनिमय व्यापार शर्त केवल लागत दशाओं पर ही निर्भर नहीं करती है, जैसा कि रिकार्डो मान लेते हैं, बल्कि मूलतः यह मांग दशाओं पर भी निर्भर करती है। उनके अनुसार संतुलित व्यापार शर्त प्रतिपूरक मांग की दशाओं द्वारा निर्धारित होती है। प्रतिपूरक मांग का अर्थ है दो व्यापाररत देशों की अपने उत्पाद के पदों में एक–दूसरे के उत्पाद के लिए मांग की सापेक्षिक शक्ति तथा लोच। विनिमय का स्थिर अनुपात उस बिन्दु पर होगा जहाँ प्रत्येक देश आयातों व निर्यातों का मूल्य संतुलन में हो।

जे0एस0 मिल ने तुलनात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसमें संशोधन किया और यह बताया कि वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण कैसे और कहाँ होता है। मिल ने श्रम की एक दी हुई मात्रा से दो देशों में दो वस्तुओं के उत्पादन की तुलना के आधार पर तुलनात्मक लागत (लाभ) सिद्धांत को प्रस्तुत किया। इस प्रकार मिल का सिद्धांत तुलनात्मक लाभ या श्रम की क्षमता के रूप में है।

माना दो देश A और B हैं, जो संसाधनों की दी हुई मात्रा (जैसे एक श्रम वर्ष) से वस्तु X और Y का उत्पादन करते हैं। निम्नलिखित सारणी में दोनों देशों द्वारा व्यापार से पूर्व उत्पादन तथा उपभोग की स्थिति दी हुई है।

सारणी 3.7 संसाधनों की दी हुई मात्रा (जैसे एक श्रम वर्ष) से उत्पादन तथा उपभोग

	वस्तु X	वस्तु Y	घरेलू विनिमय अनुपात
देश A	250	150	250 X=150Y या 1x=0.6 y
देश B	200	100	200 X=100Y या 1x=0.5 y
तुलनात्मक लागत अनुपात	$\frac{200}{250} = 0.80$	$\frac{100}{150} = 0.66$	

देश A दिए हुए संसाधनों से वस्तु X की 250 इकाई या Y की 150 इकाई का उत्पादन करता है जबकि देश B, X की 200 तथा Y की 100 इकाई का उत्पादन करता है। देश A दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में देश B की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ की स्थिति में है। परन्तु तुलनात्मक लागत अनुपात से स्पष्ट है कि देश A में वस्तु X की उत्पादन लागत, देश B में वस्तु X की उत्पादन लागत की 0.80 % है। जबकि वस्तु Y की उत्पादन लागत देश A में देश B की अपेक्षा मात्र 66% है।

इस प्रकार देश A,वस्तु Y के उत्पादन में तुलनात्मक रूप से अधिक लाभ की स्थिति में है जबकि देश B का वस्तु X के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है। अतः देश A वस्तु Y के उत्पादन में और देश B वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। देश A, वस्तु X के बदले Y का निर्यात करेगा जबकि देश B, Y के बदले X का निर्यात करेगा।

अर्न्तराष्ट्रीय विनिमय अनुपात की संभावित सीमा का निर्धारण श्रम की क्षमता द्वारा स्थापित घरेलू विनिमय अनुपात के आधार पर होगा। सारणी 3.7 में दोनों देशों की घरेलू अनुपात रेखाएँ दी हुई है। 1 इकाई X के विनिमय की सीमा 0.5 तथा 0.6 के मध्य होगी। इस सीमा के भीतर वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण एक देश की वस्तु की दूसरे देश की माँग या प्रतिपूरक माँग की तीव्रता द्वारा होगा। संतुलित व्यापार शर्त रेखा पर दोनों देशों के आयात तथा निर्यात एक दूसरे के बराबर होंगे।

मार्शल व एजबर्थ ने मिल के प्रतिपूरक मांग सिद्धांत की प्रभावी व्याख्या के लिए प्रस्ताव वक्रों की तकनीकी का विकास व प्रयोग किया। एक देश का प्रस्ताव वक्र आयातों की मांगों के बदले निर्यातों की देय मात्रा को व्यक्त करता है।

प्रस्ताव वक्र एक ओर किसी देश द्वारा वस्तु–विशेष की एक निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा देने की इच्छा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न संभव व्यापार शर्तों या विनियम अनुपातों पर एक देश के उत्पाद के लिए मांग की इच्छा को व्यक्त करता है। इस प्रकार प्रस्ताव वक्र में मांग व पूर्ति दोनों की तत्व विद्यामान होते हैं।

प्रस्ताव वक्र दोनों देशों में व्यापार न होने की दशा की व्यापार–शर्त या घरेलू कीमत–रेखाओं के भीतर ही स्थित होते हैं। प्रस्ताव वक्र उत्पादन व उपभोग दशाओं द्वारा संयुक्त रूप से निर्धारित होते हैं। ये दशाएँ ही व्यापाररत देशों के प्रस्ताव वक्र के आकार को निर्धारित करता है; प्रस्ताव वक्र के आकार आगे व्यापार–शर्त को निर्धारित करते है।

मान लिया विश्व में दो देश A व B तथा दो वस्तुएँ X व Y हैं; तब प्रतिपूरक मांग के नियम के अनुसार व्यापार–शर्त देश B के उत्पाद (वस्तु X) के लिए A की मांग तथा देश A के उत्पाद (वस्तु Y) के लिए देश B की मांग द्वारा निर्धारित होगी। दूसरे शब्दों में व्यापार–शर्त विदेशी वस्तुओं के लिए घरेलू मांग की तीव्रता और घरेलू वस्तु के लिए विदेशी

मांग की तीव्रता द्वारा निर्धारित होती है। प्रस्ताव वक्र प्रतिपूरक मांग की लोच को प्रदर्शित करते हैं.

$$\text{प्रतिपूरक मांग की लोच} = \frac{\text{आयातों में प्रतिशत परिवर्तन}}{\left(\frac{\text{निर्यात की कीमतों में प्रतिशतपरिवर्तन}}{\text{आयात की कीमतों में प्रतिशतपरिवर्तन}}\right)}$$

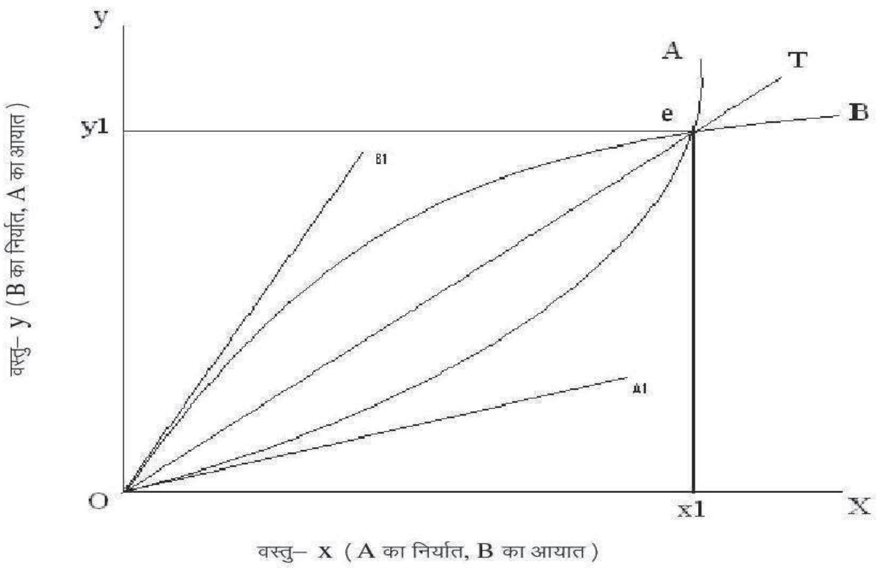

चित्र 3.1

देश A का प्रस्ताव वक्र देश B के उत्पाद Y के लिए उसकी मांग की तीव्रता को बताता है तथा देश B का प्रस्ताव वक्र देश A के उत्पाद X के लिए उसकी मांग की तीव्रता का दर्शाता है। संतुलित व्यापार–शर्त उस बिन्दु पर निर्धारित होती जहाँ दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं। चित्र 3.1 में OA देश A तथा OB देश B का प्रस्ताव वक्र है। दोनों प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को e बिन्दु पर काटते हैं। यही एक मात्र संतुलन बिंदु है और मूल बिंदु से खींची गयी रेखा OT संतुलित व्यापार शर्त रेखा है जो की e बिन्दु से होकर जाती है.

केवल संतुलित व्यापार शर्त पर ही देश A से X का निर्यात देश B से X के आयात के बराबर होगा तथा देश A में Y का आयात देश B से Y के निर्यात के बराबर होगा। इस प्रकार, बाजार संतुलन में होगा। दूसरे शब्दों में e बिन्दु पर B के उत्पाद के लिए A की मांग A के उत्पाद के लिए की B की मांग के बिन्कुल बराबर है।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त की रेखा दोनों देशों की घरेलू विनिमय अनुपात की रेखाओं OA_1 व OB_1 के मध्य A पर है तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होगा।

व्यापार शर्त एक देश के पक्ष और दूसरे देश के विपक्ष में हो सकती है। यह इस पर निर्भर करता है कि संबंधित देश में मांग की सापेक्षिक लोच क्या है, इससे व्यापार से होने वाले कुल लाभ में उस देश का हिस्सा निर्धारित होता है।

स्पष्टतः बेलोच मांग (आयातों के लिए) वाले देश को दूसरे वस्तु की निश्चित मात्रा (आयातों) के लिए अधिक वस्तुएँ (निर्यात) देनी पड़ेगी। इस प्रकार व्यापार–शर्त उस देश के प्रतिकूल होगी। जब एक देश व्यापार–शर्त को दूसरे देश की घरेलू लागत अनुपात की ओर कर देने में सफल हो जाता है तो उसका अपना लाभ बढ़ जाता है।

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. प्रतिपूरक मांग का अर्थ है
   i. दो व्यापाररत देशों की अपने उत्पाद के पदों में एक–दूसरे के उत्पाद के लिए मांग की सापेक्षिक शक्ति तथा लोच।
   ii. देश B के उत्पाद (वस्तु X) के लिए A की मांग तथा देश A के उत्पाद (वस्तु Y) के लिए देश B की मांग
   iii. विदेशी वस्तुओं के लिए घरेलू मांग की तीव्रता और घरेलू वस्तु के लिए विदेशी मांग की तीव्रता
   iv. उपरोक्त सभी
2. निम्नलिखित में से कौन सा कथन असत्य है ?
   i. प्रस्ताव वक्र प्रतिपूरक मांग की लोच को प्रदर्शित करते हैं.
   ii. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री माँग–पक्ष की उपेक्षा कर देते हैं।
   iii. मिल का सिद्धांत तुलनात्मक लाभ या श्रम की क्षमता के रूप में है।
   iv. संतुलित व्यापार शर्त रेखा पर दोनों देशों के आयात तथा निर्यात एक दूसरे के बराबर होंगे।
   v. उपरोक्त में से कोई नहीं

3.9 सारांश

एडम स्मिथ ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत के निर्माण की आधारशिला रखी. परन्तु डेविड रिकार्डो ने एडम स्मिथ के **सिद्धांत को** और स्पष्ट किया, इसका विस्तार किया तथा इसे वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत को रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत **तुलनात्मक लागत सिद्धांत या तुलनात्मक लाभ सिद्धांत** द्वारा जाना जाता है. बाद में जान स्टुअर्ट मिल ने **तुलनात्मक लागत सिद्धांत में** मांग पक्ष को समिलित कर प्रतिपूरक मांग का सिद्धांत दिया. एडम स्मिथ ने **लागतों में निरपेक्ष अंतर के आधार पर** अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का **सिद्धांत** प्रस्तुत किया.यदि एक देश को एक वस्तु

के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ तथा दुसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो तो फिर व्यापार होगा. प्रत्येक देश उस वस्तु का निर्यात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत लाभ होगा और उस वस्तु का आयात करेगा जिसके उत्पादन मे निरपेक्ष लागत हानि होगी. रिकार्डो यह दिखाते हैं की यदि एक देश को दुसरे देश की अपेक्षा किसी भी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ नहीं है तब भी व्यापार होगा. उनके अनुसार एक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टिकरण प्राप्त करेगा और निर्यात करेगा जिसमें उसे अधिकतम **तुलनात्मक लागत लाभ** या न्यूनतम **तुलनात्मक लागत** हानि हो. इसी प्रकार देश उस वस्तु का आयात करेगा जिसमें उसे **तुलनात्मक लागत लाभ** न्यूनतम या **तुलनात्मक लागत** हानि अधिकतम हो. जे0एस0 मिल ने तुलनात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसमें संशोधन किया और अपने प्रतिपूरक माँग सिद्धांत में यह बताया कि वास्तविक व्यापार–शर्त का निर्धारण कैसे और कहाँ होता है। मार्शल तथा एजबर्थ ने प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से मिल के सिद्धांत को आगे बढ़ाया।

3.10 शब्दावली

मूल्य का श्रम सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य–निर्धारण उस वस्तु में निहित श्रम की मात्रा के द्वारा होता है। यह सिद्धांत रिकार्डो द्वारा दिया गया निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

(1) श्रम ही उत्पादन का एकमात्र साधन है।

(2) सभी श्रम समरूप इकाईयाँ हैं।

(3) देश के भीतर श्रम पूर्णतया गतिशील हैं।

(4) श्रम बाजार में पूर्ण–प्रतियोगिता है।

श्रम के अन्र्तराष्ट्रीय स्तर पर अगतिशील होने के कारण यह सिद्धांत घरेलू व्यापार के संदर्भ में तो लागू होता है पर अन्र्तराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में विघटित हो जाता है।

लागतों का निरपेक्ष अन्तर–कुछ देश कुछ विशेष प्राकृतिक सुविधाओं के अधिक मात्र में उपलब्ध होने के कारण कुछ वस्तुओं का उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा कम लागत पर कर सकते हैं.लागत के इस अंतर को निरपेक्ष अंतर कहते हैं. माना दो देश X तथा Y हों, जो दो वस्तुओं का A तथा B उत्पादन करते हों, यदि देश X में A की श्रम लागत Xaa तथा B की श्रम लागत Xb तथा देश Y में क्रमशः Ya तथा Yb हो तों लागत के निरपेक्ष अंतर निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है:

$$\frac{\mathrm{Xa}}{\mathrm{Xb}} < 1 > \frac{Ya}{Yb}$$

अर्थात् देश X को A वस्तु के उत्पादन में तथा देश Y को B के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ है. एक देश की एक वस्तु के उत्पादन में लागत कम है तथा दूसरे देश की दूसरे वस्तु के उत्पादन में लागत कम है,अर्थात् एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष हानि हो।

लागतों में तुलनात्मक अन्तर—यदि एक देश की उत्पादन लागत दोनों ही वस्तु के संदर्भ में दूसरे देश से कम हो तो, उसे दोनों ही वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लागत लाभ प्राप्त होगा। ऐसी स्थिति में यह देखना होगा कि वह देश किस वस्तु के उत्पादन में अधिक दक्ष है अर्थात् उसकी तुलनात्मक लागत कम है तथा दूसरे देश की किस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक हानि कम है।

उपरोक्त उदाहरण से लागत के सापेक्ष अंतर को निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है:

$$\frac{\mathrm{Xa}}{\mathrm{Xb}} < \frac{Ya}{Yb} < 1$$

अर्थात देश X को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में देश Y की अपेक्षा निरपेक्ष लाभ है परन्तु वस्तु A के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ वस्तु B की अपेक्षा अधिक है.

प्रतिपूरक मांग

प्रतिपूरक मांग का अर्थ है दो व्यापाररत देशों की अपने उत्पाद के पदों में एक—दूसरे के उत्पाद के लिए मांग की सापेक्षिक शक्ति तथा लोच। अर्थात् विदेशी वस्तुओं के लिए घरेलू मांग की तीव्रता और घरेलू वस्तु के लिए विदेशी मांग की तीव्रता।

प्रस्ताव वक्र

प्रस्ताव वक्र एक ओर किसी देश द्वारा वस्तु—विशेष की एक निश्चित मात्रा के बदले दूसरी वस्तु की एक निश्चित मात्रा देने की इच्छा को व्यक्त करता है और दूसरी ओर यह विभिन्न संभव व्यापार शर्तों या विनियम अनुपातों पर एक देश के उत्पाद के लिए मांग की इच्छा को व्यक्त करता है।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न—1

अति—लघु उत्तरीय प्रश्नः

२. एन इन्क्वायरी इनटू नेचर एंड काजेज आफ वेल्थ आफ नेशंस ,2.डेविड रिकार्डो

सत्य व असत्य :

3. सत्य ,2.असत्य ,3.सत्य ,4.असत्य ,5.असत्य

अभ्यास प्रश्न–2

अति–लघु उत्तरीय प्रश्नः

i. 1 इकाई शराब = 0.5 इकाई कपड़ा,ii.1 इकाई शराब = 0.6 इकाई कपड़ा

iii. 10/15= 0.66 ,iv.20/25= 0.80 ,v.शराब ,vi.कपड़ा ,vii.0.5 इकाई कपड़ा

vi. 0.4 इकाई कपड़ा

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. iii ,2.i

सत्य व असत्य :

1. सत्य ,2.सत्य,3.सत्य,4.असत्य 5.असत्य

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. iv ,2.v

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

3.13 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999

- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- *डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2010*

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रतिष्ठित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धांत का विस्तृत विवेचन करते हुए इसकी कमियों का वर्णन कीजिए।

3- तुलनात्मक लागत व्यापार सिद्धांत की मान्यताएँ अवास्तविक है, इसलिए यह सिद्धांत अवैध है। विवेचना कीजिए।

4- जे.एस. मिल के प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत का विस्तृत वर्णन कीजिये.

इकाई- 4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव प्रतिष्ठित सिद्धांत

इकाई संरचना

3.15 प्रस्तावना

3.16 उद्देश्य

3.17 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव प्रतिष्ठित सिद्धांत – भूमिका

3.18 उत्पादन में स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

3.19 उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

3.20 उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल या ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

3.21 एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

3.22 मूल्यांकन

3.23 विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ

3.24 सारांश

3.25 शब्दावली

3.26 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.27 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.28 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

3.29 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "प्रस्तावना एवं सिद्धांत" से सम्बंधित यह चौथी इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभ, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत तथा प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का कारण क्या है तथा उससे होने वाला लाभ कैसे मापा जा सकता है. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जब तक श्रम लागतों का अंतर विद्यमान है व्यापररत देशों को व्यापार से लाभ होगा. परन्तु श्रम के अतिरिक्त दूसरे साधन भी उत्पादन में उतने ही महत्वपूर्ण होते है. इसलिए हैबर्लर ने अवसर लागत के रूप में लागतों का मापन करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत दिया. अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है।

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अवसर लागत सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है जो की हैबर्लर द्वारा दिया गया है. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नव प्रतिष्ठित सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नव प्रतिष्ठित सिद्धांत को समझ सकेंगे.
- उत्पादन में स्थिर लागतों के अंतर्गत अवसर लागटन सिद्धांत या व्यापार संतुलन के बारे में जान सकेंगे.
- उत्पादन में बढती हुई लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन या अवसर लागत सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- उत्पादन में घटती हुई लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन या अवसर लागत सिद्धांत के बारे में जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विनिमय तथा विशिष्टीकरण से होने वाले लाभों को जान सकेंगे.

4.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का नव प्रतिष्ठित सिद्धांत – भूमिका

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने अपने अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के शुद्ध सिद्धांत में यह दिखाने का प्रयास किया कि व्यापार सभी व्यापाररत देक्षों के लिए लाभदायक है। स्मिथ के मॉडल में व्यापार सम्भव तभी है जब एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में और दूसरे देश को दूसरे वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है। परन्तु रिकार्डों ने अपने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में यह दिखाया कि यदि एक देश दूसरे देश की अपेक्षा दोनों ही वस्तुओं के

उत्पादन में निरपेक्ष लाभ की स्थिति में हो तब भी व्यापार हो सकता है। यदि एक देश को एक वस्तु के उत्पादन में अत्यधिक तुलनात्मक लाभ तथा दूसरे देश को दूसरी वस्तु के उत्पादन में अत्यधिक तुलनात्मक हानि प्राप्त है तो भी व्यापार सम्भव है। यह प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की एक महान उपलब्धि है क्योंकि तुलनात्मक लागत सिद्धांत की वैधता सार्वभौमिक है।

परन्तु तुलनात्मक लागत सिद्धांत के मूल्य के श्रम सिद्धांत पर आधारित होने के कारण कटू आलोचना की जाती है। परन्तु मूल्य का श्रम सिद्धांत अनेक दुर्बल तथा त्रुटिपूर्ण मान्यताओं पर आधारित होने के कारण अर्थशास्त्रियों द्वारा अस्वीकृत किया जा चुका है। वास्तव मे, व्यवहारिक जगत में श्रम एक समरूप साधन नहीं है। श्रम कई अप्रतियोगी समूहों में बँटा होता है। जिसके मध्य मजदूरी के समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे, एक खेत में काम करने वाले मजदूर, आफिस में काम करने वाले क्लर्क तथा एक कम्पनी के प्रबन्धक, तीनों की अलग–अलग श्रेणिया हैँ, जो कि अप्रतियोगी हैं, इनकी मजदूरी के समान होने की प्रवृत्ति नहीं होती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं का उत्पादन केवल श्रम का ही नहीं बल्कि उत्पादन के अन्य साधनों भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमिता के भी संयोग से होता है।

परन्तु यदि हम मूल्य के श्रम सिद्धांत को अस्वीकार दें, तब भी रिकार्डो के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत का निष्कर्ष, कि यदि तुलनात्मक लाभ के आधार पर व्यापाररत दो देश विशिष्टीकरण करते हैं तो इससे विश्व के सकल घरेलू उत्पाद तथा आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी, प्रभावित नहीं होगा। इस प्रकार का प्रयास सबसे पहले 1936 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैबरलर ने किया। हैबरलर ने वास्तविक लागत सिद्धांत के विकल्प के रूप में 'अवसर लागत का सिद्धांत' प्रस्तुत किया। और जब तुलनात्मक लाभ को अवसर लागत रूप के रूप में परिभाषित किया जाता है तो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उत्पादन सिर्फ श्रम से हो रहा है या श्रम के साथ सभी उत्पादन के साधनों के संयोग से।
हैबरलर का मानना है कि लागतों का अर्थ वस्तु के उत्पादन मे निहित श्रम की मात्रा से नहीं बल्कि वस्तु के उत्पादन के लिए किए गए वैकल्पिक उत्पादन के त्याग अर्थात् अवसर लागत से है। हैबरलर इस बात को जोर देकर कहते हैं कि मूल्य के श्रम सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य दो व्यापाररत देशों में, प्रत्येक में एक वस्तु की अवसर लागत दूसरी वस्तु के पदों में निर्धारित करना था।

इस प्रकार अवसर लागत के पदों मे एक वस्तु की उत्पादन लागत उस वस्तु के मूल्य के बराबर होगी जिसका त्याग विचाराधान वस्तु के उत्पादन के लिए किया गया है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है। इस प्रकार दो वस्तुओं के मध्य विनिमय अवसर लागत के रूप में होता है, जिसकी व्याख्या उत्पादन संभावना वक्र के साथ की जा सकती है।

अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें

हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है। विशेषरूप से मीड ने आधुनिक ज्यामितीय तकनीकी की मदद से तुलनात्मक लागत के नवप्रतिष्ठित सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान किया।

नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत में मूल्य के श्रम सिद्धांत को त्यागने के साथ–साथ उत्पादन की अलग–अलग दशाओं में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है। जबकि प्रतिष्ठित सिद्धांत उत्पादन के स्थिर प्रतिफल के अंर्तगत ही व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है।

प्रतिफल के तीन नियमों के अनुरूप नवप्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत, निम्नलिखित तीन स्थितियो में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है–

1. जब उत्पादन में स्थिर पैमाने का प्रतिफल हो, अथवा जब उत्पादन में सीमान्त अवसर लागतें स्थिर हों।
2. जब उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल या बढ़ती हुई सीमान्त अवसर लागतों की स्थिति हो।
3. जब उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती हुई सीमान्त अवसर लागत की स्थिति हो।

4.4 उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों के अर्न्तगत व्यापार संतुलन

उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों की स्थिति में उत्पादन संभावना वक्र एक सीधी रेखा होगा। अर्थात् एक वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए दूसरी वस्तु की त्याग की गयी मात्रा सदैव स्थिर रहेगी।

माना दो देश A और B तथा दो वस्तुएँ A और B हैं। दोनों देशों को अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से लाभ की संभावना तब होगी जबकि दोनों देशों में उत्पादन संभावना वक्र का ढाल असमान होगा अर्थात् लागतों में तुलनात्मक भिन्नता की स्थिति होगी।

माना देश A का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है। देश A को X वस्तु तथा देश B को Y वस्तु के उत्पादन में निरपेक्ष लाभ प्राप्त है।

देश A के उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 से स्पष्ट है कि वह साधनों की दी हुई मात्रा से या तो OA_2 मात्रा में वस्तु X या OA_1 मात्रा में वस्तु Y का उत्पादन कर सकता है या A_1A_2 वक्र पर स्थित X और संभावित संयोग का उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार देश B दिए हुए साधनों से OB_2 मात्रा में वस्तु X या OY_1 मात्रा में वस्तु Y का उत्पादन कर सकता है या B_1B_1 रेखा पर स्थित दोनों का कोई संभावित संयोग उत्पादित कर सकता है।

व्यापार की अनुपस्थिति में देश A, वक्र A_1A_2 के e बिन्दु पर, तथा देश B वक्र B_1B_2 के f बिन्दु पर उत्पादन तथा उपभोग कर रहे हैं। बिन्दु e पर देश A के उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों सतुलन में है क्योंकि e बिन्दु पर

उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 की ढाल= समुदाय अधिमान वक्र IC_{A_1} की ढाल = कीमत रेखा A_1A_2 का ढाल(रेखा A_1A_2 देश A की घरेलू कीमत रेखा को भी दर्शाती है)

अर्थात् $MRTSxy=MRSxy= \frac{Py}{Px}$

अर्थात् उत्पादन में तकनीकि प्रतिस्थापन की सीमांत दर = उपभोग में सीमांत प्रतिस्थापन की दर = वस्तु कीमत अनुपात

इसी प्रकार बिन्दु f पर देश B में उत्पादन और उपभोग दोनों का एक साथ संतुलन में है क्योंकि f बिन्दु पर, उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 की ढाल= समुदाय अधिमान वक्र IC_{B1} की ढाल= कीमत रेखा (B_1B_2) का ढाल।

व्यापार न होने की दशा में दोनों ही देशों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे अपने उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के किसी बिन्दु को प्राप्त कर सकें। इस प्रकार बिन्दु e पर, देश A में और बिन्दु f पर देश B में उत्पादन के सभी संसाधन रोजगार में लगे हैं। दोनों बिन्दु संबन्धित देशों में उत्पादन तथा उपभोग या आर्थिक कल्याण के उच्चतर स्तरों को व्यक्त करते हैं।,

व्यापार के पश्चात् देश A वस्तु X के उत्पादन में तथा देश B, वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। इस प्रकार देश A अपने समस्त साधनों के प्रयोग से OA_2 मात्रा में X वस्तु का उत्पादन करेगा; जबकि देश B अपने सभी संसाधन Y वस्तु के उत्पादन में लगा देगा और OB_1 मात्रा में Y का उत्पादन करेगा। A देश, व्यापार के पश्चात् A_2 बिन्दु पर तथा B देश B_1 बिन्दु पर उत्पादन करेगा।

पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् दोनों देश अन्तर्राष्ट्रीय कीमत अनुपात या व्यापार–शर्त रेखा के अनुरूप आपस में व्यापार करेंगे। दोनों देशों को व्यापार से लाभ तभी होगा जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा दोनों देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच हो। चित्र 4.1 में रेखा B_1A_2 दोनों घरेलू कीमत रेखा के लगभग बीच में है। अतः व्यापार से A और B दोनों ही देशों को लाभ होगा। दोनों देश आपस में कितना व्यापार करेंगे या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर वास्तव में उपभोग का संतुलन कहाँ होगा, यह दोनों देशों के उपभोक्ताओं की रुचियों की प्रवृत्ति पर निर्भर करेगा।

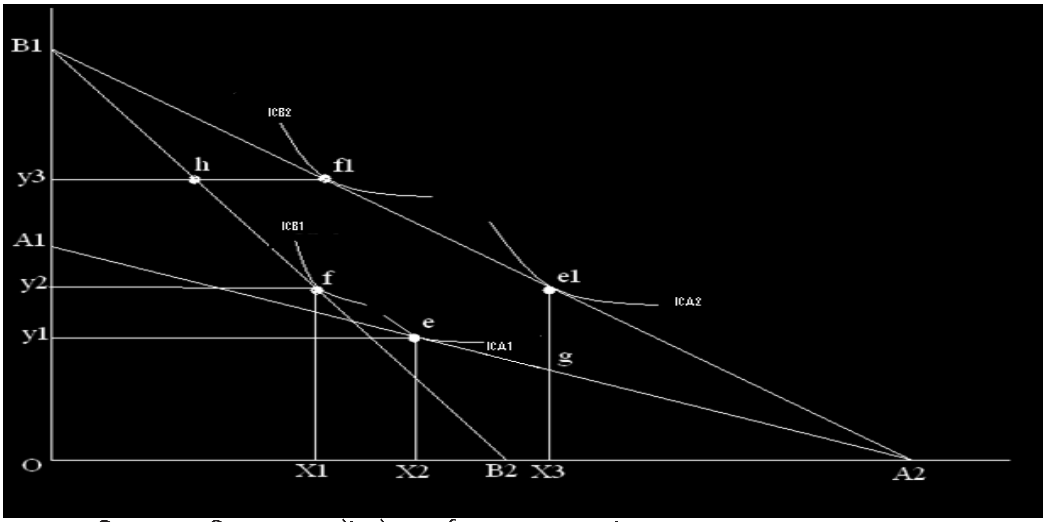

चित्र 4.1 स्थिर लागतों के अन्तर्गत व्यापार संतुलन

व्यापार के पश्चात् उपभोक्ताओं की रुचियाँ दी हुइ होने पर देश के उपभोक्ता अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर e_1 बिन्दु पर संतुलन में होंगे, जहाँ उसका समुदाय अधिमान वक्र IC_{A2} स्पर्श कर रहा है, जबकि B देश के उपभोक्ता f_1 बिन्दु पर संतुलन में होंगे, जहाँ अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा उसके समुदाय अधिमान वक्र IC_{B2} को स्पर्श कर रही है।

देश A को व्यापार से लाभ

$= e_1x_3 - gx_3$

$= e_1g$ इकाई वस्तु

देश B को व्यापार से लाभ

$= f_1y_3 - hy_3$

$= f_1h$ इकाई वस्तु–X

व्यापार के पश्चात् देश A, बिन्दु A_2 पर उत्पादन कर रहा है जबकि e_1 बिन्दु पर उपभोग कर रहा है।देश A, OA_2 मात्रा X का उत्पादन करता है, परन्तु OX_3 मात्रा का उपभोग करता है और बाकी X_3A_2 मात्रा देश B को निर्यात कर देता है जिसके बदले में वह वस्तु Y की e_1x_3 मात्रा देश B से आयात करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् देश A, X और Y दोनों ही वस्तुओं का पहले से अधिक उपभोग कर रहा हैं।

व्यापार से पूर्व e बिन्दु पर वह X की OX_2 तथा y की Oy_1 मात्रा का उपभोग कर रहा था, जबकि व्यापार के बाद e_1 बिन्दु पर X की OX_3 ($> OX_2$) तथा y की e_1X_1 ($> Oy_1$) का उपभोग कर रहा है। व्यापार के पश्चात् देश A निचले समुदाय अधिमान वक्र IC_{A1} के बिन्दु e से, ऊँचे` अधिमान वक्र IC_{A2} के बिन्दु e_1 पर संतुलन में है जो कि उसके उपभोग या आर्थिक कल्याण के बढ़े हुए स्तर को व्यक्त करता है।

देश B व्यापार के पश्चात् B_1 बिन्दु पर उत्पादन तथा f_1 बिन्दु पर उपभोग कर रहा है। वह y वस्तु के कुल OB_1 उत्पादन मं से Oy_3 मात्रा का उपभोग करता है, बाकी B_1y_3 मात्रा, देश A को निर्यात कर देता है जिसके बदले में वह Y_3F_1 मात्रा वस्तु X का देश A से आयात करता है। व्यापार से पूर्व वह Y वस्तु की OY_2 तथा X वस्तु OX_1 मात्रा का उपभोग करता था, जबक व्यापार के पश्चात् वह Y वस्तु की OY_3($>OY_2$) तथा X वस्तु की Y_3f_1 ($>Y_2f$) मात्रा का उपभोग करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् वह IC_{B1} समुदाय अधिमान वक्र से और ऊँचे अधिमान वक्र IC_{B2} पर चला जाता है, जो कि उसके बढ़े हुए उपभोग या आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है।

स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् दोनों ही व्यापाररत देशों के लिए यह सम्भव हो पा रहा है कि वह अपने उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से इतर किसी बिन्दु पर जा सके, व्यापार से पहले यह सम्भव नहीं था। चित्र 4.1 में, बिन्दु e_1 तथा f_1 क्रमशः देश A तथा B के उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से काफी ऊपर है। व्यापार के पश्चात् दोनों ही देश, दोनों ही वस्तुओं का पहले से अधिक उपभोग कर रहे हैं।

व्यापार के पश्चात् कुल विश्व उत्पादन में भी वृद्धि हो जाती है। व्यापार से पूर्व वस्तु X का कुल उत्पादन $=OX_1$ (देश B का उत्पादन) $\times$ OX_2(देश A का उत्पादन) है,

जो कि व्यापार के पश्चात् के कुल उत्पादन OA_2 की अपेक्षा कम है। इसी प्रकार वस्तु Y का व्यापार के पश्चात् का उत्पादन (OB_1) व्यापार के पूर्व के उत्पादन ($OY_1 \times OY_2$) से अधिक है।

स्थिर अवसर लागत की स्थिति में जबकि दोनों देश समान आर्थिक आकार के हों निरपेक्ष लाभ सिद्धांत के अर्न्तगत अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के संतुलन को अब आप अच्छी तरह से समझ गए होंगे।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

३. उत्पादन में स्थिर प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन की व्याख्या कीजिये.

४. उत्पादन में स्थिर प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को चित्र की सहायता से दर्शाइए .

बहुविकल्पीय प्रश्नः

१. व्यापार की अनुपस्थिति में किसी देश का उत्पादन तथा उपभोग का संतुलन होगा
   - iv. उत्पादन संभावना वक्र के दो अलग अलग बिंदुओं पर
   - v. उत्पादन संभावना वक्र के एक ही बिंदु पर
   - vi. उत्पादन संभावना वक्र के अंदर के बिंदुओं पर
   - vii. उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के बिंदुओं पर

२. निम्नलिखित में से कौन से अर्थशास्त्री व्यापार के नव प्रतिष्ठित सिद्धांत से जुड़े नहीं हैं
   - i. हैबरलर और लियोन्टीफ
   - ii. एडम स्मिथ तथा रिकार्डो
   - iii. लर्नर और मीड
   - iv. मार्शल और एजबर्थ

3. यदि एक देश की घरेलु कीमत रेखा तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा एक ही हो तो
   - i. उस देश को व्यापर से कोई ही लाभ नहीं होगा
   - ii. व्यापर से होने वाला समस्त लाभ उस देश को प्राप्त होगा
   - iii. उस देश को व्यापर से हानि होगी
   - iv. उस देश को व्यापर से लाभ और हानि होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता

4.5 उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि दोनों देशों में, दोनों वस्तुओं के उत्पादन में सीमान्त अवसर लागत बढ़ती हुई हो, तो दोनों देशों के उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल होगा।

इकाई–2 के अध्ययन बाद आप परिचित हो गए होंगे कि यदि उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति अवतल है तो उत्पादन में घटता हुआ प्रतिफल प्राप्त होता है। माना दो देश A और B हैं, जो कि समान आर्थिक आकार के हैं। वे दो वस्तुओं X और Y का उत्पादन करते हैं। देश A, वस्तु X के उत्पादन में और देश B, वस्तु Y के उत्पादन में अधिक दक्ष है। A देश का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है।

व्यापार से पूर्व दोनों देश अपने–अपने उत्पादन संभावना वक्र के उस बिन्दु पर संतुलन में हैं जहाँ घरेलू कीमत रेखा या लागत अनुपात उत्पादन संभावना वक्र तथा समुदाय अधिमान वक्र को स्पर्श करती है। चित्र 4.2 (A) तथा (B) में, देश A के उत्पादन तथा उपभोग का संतुलन बिन्दु e तथा देश B का बिन्दु f पर है। बिन्दु e पर,

देश A की घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 का ढाल = उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 की ढाल

= समुदाय अधिमान वक्र ICA_0 की ढाल

अर्थात्, $\frac{Py}{Px} = RTS_{XY} = MRS_X$

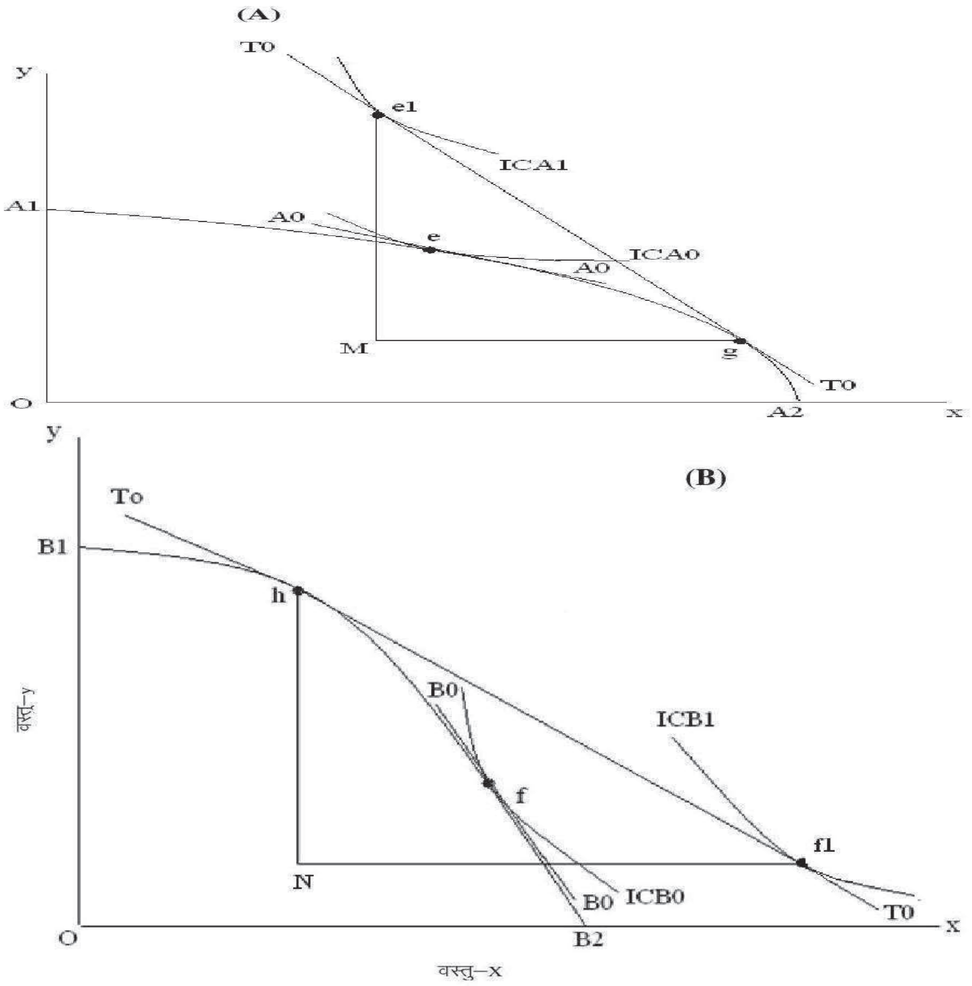

चित्र 4.2 : वृद्धिमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

बिन्दु f पर,

देश B की घरेलू कीमत रेखा B_0B_0 का ढाल = B के उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 का ढाल= समुदाय अधिमान वक्र ICB_0 की ढाल

अर्थात् $\frac{Py}{Px} = RTS_{XY} = MRS_X$

व्यापार न होने की स्थिति में, यह दोनों बिन्दु e और f देशों के अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अधिकतम संतुष्टि के स्तर को व्यक्त करता है क्योंकि दोनों ही बिन्दु (e तथा f) देश A तथा B के उत्पादन संभावना वक्र पर स्थित है। बिन्दु e तथा f पर वस्तु तथा साधन बाजार दोनों संतुलन की स्थिति में है। प्रत्येक देश में, साधन बाजार में प्रत्येक साधन का मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादन के बराबर है तथा वस्तु बाजार में कीमत अनुपात, सीमान्त लागत अनुपात के बराबर है।

कीमत रेखा A_0A_0 देश A में दो वस्तुओं के आन्तरिक लागत अनुपातों को व्यक्त करती है। इसी प्रकार B_0B_0 देश B में दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों या लागत अनुपातों को दर्शा रही है। A_0A_0 रेखा अधिक चपटी है जो कि देश A में Y वस्तु की अधिक इकाई लागत तथा X वस्तु के उत्पादन की कम इकाई लागत को व्यक्त करती है। B_0B_1 रेखा अधिक तिरछी है,जो कि देश B में X वस्तु की अधिक इकाई तथा Y वस्तु के उत्पादन की कम इकाई लागत को व्यक्त करती है। दो देशों में दो वस्तुओं के उत्पादन की सापेक्षिक लागतों में अन्तर व्यापार की संभावना को जन्म देता है। वस्तुओं के तुलनात्मक सस्तेपन के कारण लाभदायक व्यापार के लिए पर्याप्त अवसर है। स्पष्ट है कि देश A को X वस्तु तथा देश B को Y वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण हासिल करना चाहिए।

व्यापार शुरु होने के पश्चात् दोनों ही देश अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा (T_0T_0) के अनुरूप अपने उत्पादन के संसाधनों को दो वस्तुओं के उत्पादन में पुर्नआवंटित करेंगे। उत्पादन का संतुलन उस बिन्दु पर होगा जहाँ अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0, संबंधित देश के उत्पादन संभावना वक्र को स्पर्श करती है। चित्र 4.2 में, देश A का उत्पादन का संतुलन g बिन्दु पर होगा, जहाँ, T_0T_0, A_1A_2 को स्पर्श करती है अर्थात्

अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 का ढाल = उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 का ढाल

अर्थात् $\frac{Py}{Px} = MRTS_{XY}$

देश A का e बिन्दु से अंततः g बिन्दु तक की गति यह बताती है कि वह Y वस्तु से संसाधनों हटाकर X वस्तु उद्योग में लगा रहा है, क्योंकि अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में वस्तु X की सापेक्षिक कीमत घरेलू बाजार से अधिक है, जबकि X की सापेक्षिक उत्पादन लागत देश A में कम है। अर्थात् उसे X के उत्पादन में निरपेक्ष (या तुलनात्मक) लाभ प्राप्त है। इसलिए देश A, वस्तु X का उत्पादन बढ़ा रहा है तथा Y वस्तु का उत्पादन कम कर रहा है।

इसी प्रकार देश B व्यापार के पश्चात् वस्तु Y का उत्पादन बढाएगा क्योंकि उसे Y के उत्पादन में निरपेक्ष (या तुलनात्मक) लाभ प्राप्त है। जबकि अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में

वस्तु Y की कीमत देश B के घरेलू बाजार की अपेक्षा अधिक है। देश का अंतिम उत्पादन का संतुलन h बिन्दु पर होगा जहाँ उसके उत्पादन संभावना वक्र B_1B_2 का ढाल, अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 के ढाल के बराबर है। देश B संसाधनों को X वस्तु उद्योग से हटाकर Y वस्तु उद्योग में लगाएगा।

इस प्रकार, देश A वस्तु X के उत्पादन में तथा देश B, वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, परन्तु बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में विशिष्टीकरण पूर्ण नहीं होगा। देश A के लिए अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु Y तथा देश B के लिए g होगा। इस स्थिति में दोनों ही देशों का आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा। व्यापार के पश्चात्, देश A बिन्दु e_1 तथा देश B बिन्दु f_1 पर उपभोग करेगा। बिन्दु e_1 पर, अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार रेखा T_0T_0 देश A के समुदाय अधिमान वक्र ICA_1 को स्पर्श कर रही है। अर्थात् e_1 पर

T_0T_0 का ढाल = ICA_1 का ढाल

या $\frac{Py}{Px}$ = MRSxy

इसी प्रकार बिन्दु f पर T_0T_0 देश B के समुदाय अधिमान वक्र ICB_1 को स्पर्श कर रही है। अथार्त् T_0T_0 का ढाल = ICB_1, का ढाल

देश A वस्तु X की mg मात्रा का निर्यात करेगा और बदले में me मात्रा में वस्तु Y का आयात करेगा; देश B, वस्तु Y, की nh मात्रा (= e_1m) के निर्यात के बदले वस्तु X की nf_1 मात्रा (=mg) का आयात करेगा।

व्यापार के पश्चात् दोनों देश पहले की अपेक्षा ऊँच समुदाय अधिमान वक्र पर पहुँच जा रहे हैं जो कि उनके बढ़े हुए उपभोग या आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। बिन्दु e_1 तथा f_1 पर अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 का ढाल, दोनों देशों के समुदाय अधिमान वक्रों के ढाल के बराबर है। चूँकि बिन्दु g और h पर T_0T_0 का ढाल दोनों देशों के उत्पादन संभावना व्रक्रों के ढाल के बराबर है। अतः दोनों देश के उत्पादक तथा उपभोक्ता एक साथ सामान्य संतुलन की स्थिति में है। संतुलन की स्थिति में–

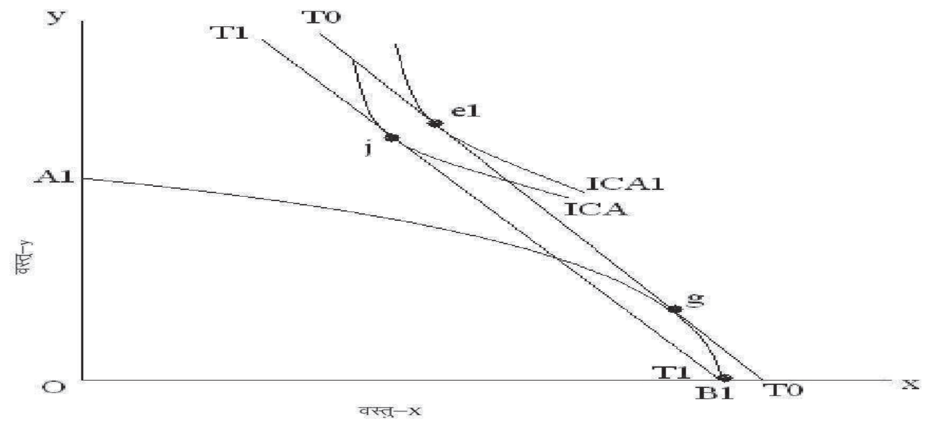

चित्र 4.3: बढ़ती हुई लागतों की दशा में पूर्ण तथा अपूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति में व्यापार के संतुलन की तुलना

उत्पादन संभावना वक्रों की ढाल = समुदाय अधिमान वक्रों की ढाल = अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा का ढाल

या $MRST_{XY} = MRSxy = \frac{Py}{Px}$

संतुलन की स्थिति में,

देश A का निर्यात् (वस्तु–x की mg मात्रा)= देश B का आयात (x की nf_1 मात्रा) तथा

देश A का आयात (y की mg मात्रा)= देश B का निर्यात (y की ny मात्रा)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बढ़ती हुई लागतों की दशा में उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव है परन्तु यह अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी। पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् उस देश के आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जायेगी। उदाहरण के तौर पर, यदि देश A वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो वह उत्पादन संभावना वक्र के बिन्दु B_1 पर उत्पादन करेगा। ऐसी स्थिति में, अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा $T_1T_{1;}$ जो कि T_0T_0 के समानान्तर है अर्थात् अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में X ओर Y की सापेक्षिक कीमतें अपरिवर्तित है, होगी। T_1T_1 रेखा, उत्पादन संभावना वक्र A_1B_1 को स्पर्श नहीं करती है। अतः B_1 उत्पादन का अनुकूलन बिन्दु नहीं है। पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति में उपभोग का बिन्दु e_1 से बिन्दु j पर आ जाएगा, जहाँ व्यापार शर्त T_1T_1 समुदाय अधिमान वक्र ICA को j बिन्दु पर स्पर्श करती है। बिन्दु j, देश A के उत्पादन संभावना वक्र की सीमा से बाहर है जो कि यह बताता है कि व्यापार न होने से व्यापार का होना बेहतर है, क्योंकि इससे आर्थिक कल्याण का स्तर बढ़ जाता है। परन्तु बिन्दु j, बिन्दु e की अपेक्षा निचले समुदाय अधिमान वक्र पर स्थित है। अर्थात् g की अपेक्षा B_1 बिन्दु पर उत्पादन करने पर आर्थिक कल्याण या उपभोग का स्तर कम हो जाएगा। इस प्रकार अपूर्ण विशिष्टीकरण बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें कि आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

३. **व्यापर होने पर** बढ़ती हुई लागतों की दशा में **एक** देश उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण नहीं करेगा. टिप्पणी कीजिये.

४. उत्पादन में घटता हुआ प्रतिफल प्राप्त **होने की स्थिति में एक देश के व्यापर के संतुलन की स्थिति को चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये.**

बहुविकल्पीय प्रश्नः वस्तु–X

5. बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति होगी जिसमें कि आर्थिक कल्याण अधिकतम होगा

   v. **जब** उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण होगा

   vi. **जब** उत्पादन में अपूर्ण विशिष्टीकरण होगा

vii. उपरोक्त दोनों ही स्थितियों में हो सकता है

viii. उपरोक्त दोनों ही स्थितियों में नहीं हो सकता है

6. बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में व्यापार के संतुलन की स्थिति में **होगा**

i. $MRST_{XY} = \frac{Py}{Px}$

ii. $MRST_{XY} = MRSxy$

iii. $MRSxy = \frac{Py}{Px}$

iv. उपरोक्त सभी

५. व्यापार के पश्चात् संतुलन की स्थिति में

i. उत्पादन संभावना वक्रों की ढाल = समुदाय अधिमान वक्रों की ढाल = अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा का ढाल

ii. $MRST_{XY} = MRSxy = \frac{Py}{Px}$

iii. देश A का निर्यात् = देश B का आयात तथा देश A का आयात = देश B का निर्यात

iv. उपरोक्त सभी

६. व्यापार के पश्चात में किसी देश का उत्पादन तथा उपभोग का संतुलन होगा

i. उत्पादन संभावना वक्र के दो अलग अलग बिंदुओं पर

ii. उपभोग का संतुलन उत्पादन संभावना वक्र पर तथा उत्पादन का संतुलन उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के किसी बिंदु पर

iii. उत्पादन का संतुलन उत्पादन संभावना वक्र पर तथा उपभोग का संतुलन उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के किसी बिंदु पर

iv. उत्पादन तथा उपभोग दोनों का संतुलन उत्पादन संभावना वक्र के बाहर के बिंदुओं पर होगा

सत्य व असत्य :

6. वास्तविक बढ़ती हुई लागतों की दशा में उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् उस देश के आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जायेगी।
7. अपूर्ण विशिष्टीकरण बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति को व्यक्त **नहीं** करता है ।
8. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा **किसी देश की घरेलु कीमत रेखा के जितनी ही पास होगी उसे व्यापर से लाभ उतना ही अधिक होगा.**
9. संतुलन की स्थिति **में दो देशों का आयत व् निर्यात आपस में बराबर होंगे.**
10. व्यापार के पश्चात् दोनों देश के उत्पादक तथा उपभोक्ता एक साथ सामान्य संतुलन की स्थिति में **होंगै**।

4.6 उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल या ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या ह्रासमान लागतों की स्थिति में, उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ औसत तथा सीमान्त लागतों में कमी आती है। प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी बड़े पैमाने के उत्पादन से प्राप्त आन्तरिक बचतों तथा वाह्य बचतों के कारण होता है। परन्तु ऐसी स्थिति में पूर्ण–प्रतियोगिता नहीं रहेगी। क्योंकि पूर्ण–प्रतियोगिता में सभी फर्में अनुकूलतम आकार की होती है, जिन्हें कोई आतरिक तथा वाह्य बचतें नहीं प्राप्त होती है। यदि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता का त्याग कर दिया जाय तो फर्मों के आकार में वृद्धि के कारण, उत्पादन बढने पर आंतरिक बचतें या मितव्ययिताओं में वृद्धि तथा उनका पूर्ण दोहन हो पाता है।

ह्रासमान लागतों की दशा में उत्पादन संभावना वक्र का आकार मूल बिन्दु के प्रति उत्तल होगा। एक अकेले देश के व्यापार संतुलन की स्थिति को भी हम घटती हुई लागतों की स्थिति में दिखा सकते हैं।

चित्र 4.4 में, एक देश A का उत्पादन संभावना वक्र AB दिया हुआ है, जो कि मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर है। दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में ह्रासमान लागतों या वृद्धिमान प्रतिफल की स्थिति है। व्यापार से पूर्व e बिन्दु पर संतुलन है जहाँ कि उस देश की घरेलू कीमत रेखा P_0P_0, उत्पादन संभावना वक्र AB को स्पर्श करती है। बिन्दु e पर A देश ox_1 मात्रा x तथा oy_1 मात्रा y का उत्पादन तथा उपभोग कर रहा है।

व्यापार शुरु होने के पश्चात् देश किसी भी वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त कर सकता है, क्योकि उत्पादन बढ़ने पर दोनों ही वस्तु उद्योगों को आन्तरिक बचतें प्राप्त है। वास्तव में यह देश किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर निर्भर करेगा। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा और घेरलू कीमत रेखा का ढाल बराबर हो, अर्थात् दोनों अनुपात एक ही हों तब भी देश A को अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से लाभ होगा।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत या व्यापार–शर्त रेखा AT_1, घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 एक समान हों, अर्थात् व्यापार के पश्चात् दोनों वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता है तो देश वस्तु y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है। चित्र 4.4 में अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा AT_1 घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 के समानान्तर है। व्यापार शुरु होने के पश्चात् देश अपने सभी संसाधनों को X वस्तु उद्योग से Y वस्तु उद्योग में लगा देता है और उत्पादन का बिन्दु e से बिन्दु A पर चला जाता है। जहाँ वह वस्तु y की OA तथा वस्तु X की शून्य मात्रा का उत्पादन करता है। परन्तु उपभोग का संतुलन बिन्दु e से बिन्दु f पर चला जाता है। बिन्दु f पर वह Ay_2 मात्रा Y का निर्यात करता है और बदले में y_2f मात्रा X का आयात करता है। स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात् देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि ो जा रही है। देश IC_1 के e बिन्दु से IC_2 के f बिन्दु पर चला जा रहा है जो कि उपभोग तथा कल्याण के बढ़े हुए स्तर को प्रदर्शित करता है।

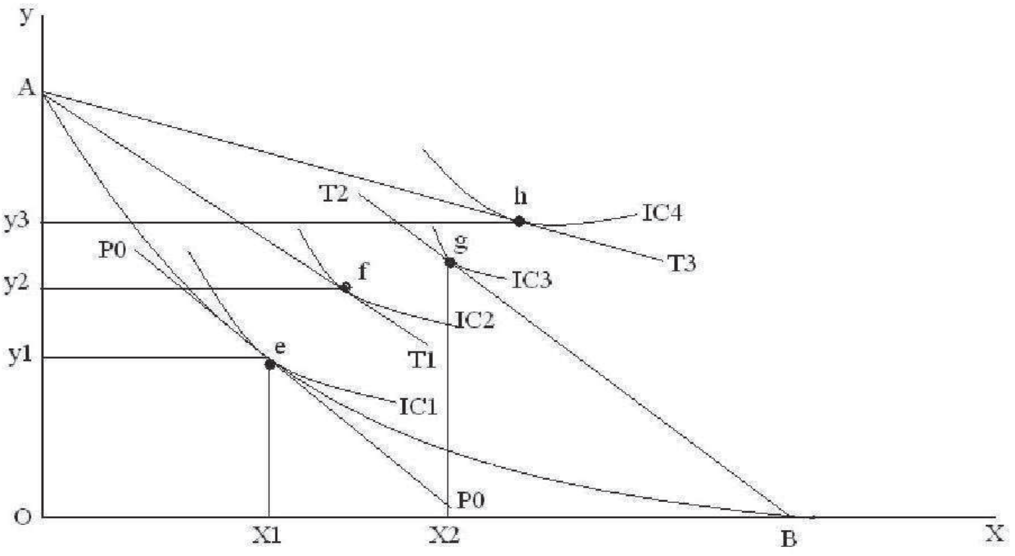

चित्र 4.4 ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो बिन्दु B पर उत्पादन का संतुलन होगा। यदि व्यापार–शर्त रेखा वही है अर्थात् रेखा BT_2, AT_1 तथा P_0P_0 के समानान्तर हो, तो देश X_2B मात्रा में X का निर्यात करेगा और बदले में X_2g मात्रा y का आयात करेगा। व्यापार–शर्त रेखा से स्पष्ट है कि X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करना देश A के लिए अधिक फायदेमंद है। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि अब उत्पादन का संतुलन बिन्दु g पर है जो कि ऊपर के समुदाय अधिमान वक्र IC_3 पर स्थित है। चूंकि बिन्दु f की अपेक्षा बिन्दु g आर्थिक कल्याण के ऊँचे स्तर के व्यक्त करता है इसलिए इस देश के लिए B बिन्दु पर उत्पादन और बिन्दु g पर उपभोग करना उपयुक्त होगा।

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के शुरु होने बाद व्यापार–शर्तों में परिवर्तन हो जाता है तो उत्पादन व उपभोग संतुलन परिवर्तित हो जाएगा। उदाहरण के लिए मान लिया अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा AT_3 है, जो कि व्यापार से पूर्व कि कीमत रेखा P_0P_0 से अधिक चपटी है। अर्थात् विश्व बाजार में वस्तु X की अपेक्षा वस्तु y काफी मंहगी है। इसलिए देश के लिए यह अधिक लाभदायक होगा कि वह वस्तु y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण हासिल करे। वह OA मात्रा में y वस्तु का उत्पादन करेगा, उसमें से Ay_3 मात्रा निर्यात करके बदले में Y_3h मात्रा X का आयात करेगा। देश का उत्पादन का संतुलन A बिन्दु पर तथा उपभोग का संतुलन h बिन्दु पर होगा। बिन्दु h, समुदाय अधिमान वक्र IC_4 पर स्थित है, जो कि पहले कि स्थितियों से सबसे अधिक आर्थिक कल्याण के स्तर को प्रदर्शित करता है।

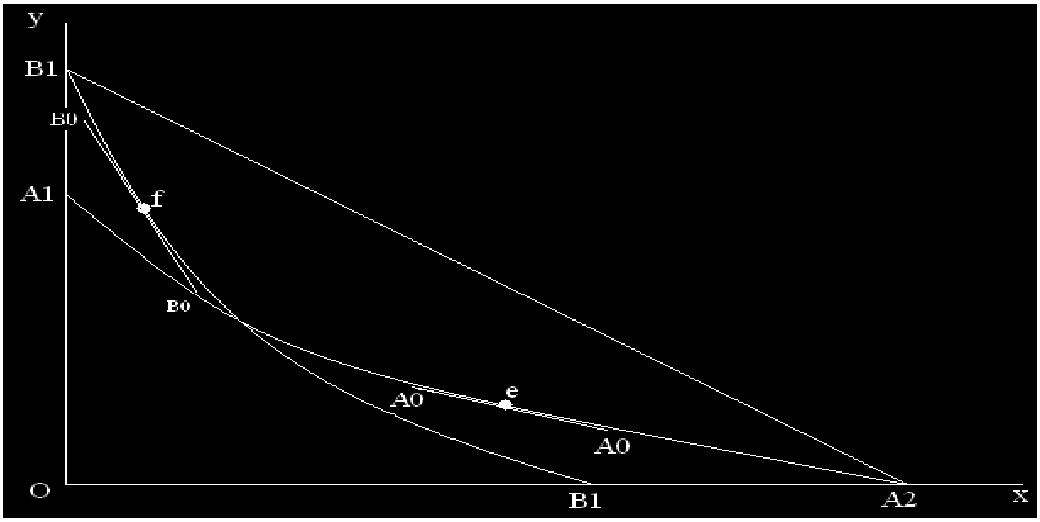

चित्र 4.5 ह्रासमान लागतों के अंतर्गत व्यापार संतुलन

जब दो देश A और B हों, जो दो वस्तुओं X और Y उत्पादन बढ़तें हुए प्रतिफल के अंर्तगत कर रहे हों, उनके व्यापार का संतुलन चित्र 4.5 में दिखाया गया है। देश A का उत्पादन संभावना वक्र A_1A_2 तथा देश B का B_1B_2 है व्यापार से पहले दोनों देश क्रमशः e और f बिन्दु पर संतुलन में है जहाँ घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 तथा B_0B_0 उनके उत्पादन संभावना वक्रों क्रमशः A_1A_2 तथा B_1B_2 को स्पर्श कर रही है।

देश A की घरेलू कीमत रेखा A_0A_0 अधिक चपटी है, जो कि यह बताती है कि y की अपेक्षा वस्तु X काफी सस्ती है। अर्थात् देश A को X के उत्पादन में अधिक लाभ प्राप्त है, क्योंकि उसकी उत्पादन लागत कम है। इसी प्रकार देश B की घरेलू कीमत रेखा B_0B_0 अधिक तिरछी है, जो यह दर्शाती है कि देश B को Y के उत्पादन में अधिक लाभ प्राप्त है। यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा B_1B_2 हो तो देश B, वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेंगे। रेखा B_1A_2 से स्पष्ट है कि वस्तु X की वैश्विक बाजार में कीमत देश A की घरेलू कीमत से अधिक है। इसी प्रकार, वस्तु Y की देश B में घरेलू कीमत की अपेक्षा अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में कीमत अधिक है।

इस प्रकार व्यापार के पश्चात् देश A वस्तु X में तथा देश B वस्तु Y में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में वस्तु X देश A के घरेलू बाजार से मंहगी है। जबकि वस्तु Y अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में देश B के घरेलू बाजार की अपेक्षा मंहगी है। देश A का उत्पादन का बिन्दु, e से हटकर A_2 तथा देश B का f से B_1 पर आ जाएगा। जबकि दोनों देशों में उपभोक्ताओं का संतुलन अंर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा B_1A_2 पर कहीं स्थित होगा। देश A, वस्तु X का निर्यात और वस्तु Y का आयात करेगा तथा देश B वस्तु Y का निर्यात तथा X का आयात करेगा। संतुलन की स्थिति में दोनों देशों के आयात व निर्यात परस्पर बराबर होंगे।

4.7 एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

एक वस्तु के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती हुई लागतों तथा दूसरे वस्तु के उत्पादन में घटते प्रतिफल या बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में व्यापार–संतुलन अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर निर्भर करेगा। साथ ही व्यापार संतुलन की स्थिति घटती हुई लागतों की स्थिति मजबूत है या सामान्य है, इस पर निर्भर करेगी।

चित्र 4.6 में, एक देश को X वस्तु के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल तथा Y वस्तु के उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल की स्थिति दिखायी गयी है। व्यापार के पश्चात् देश वस्तु–X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा या वस्तु–Y के उत्पादन में, यह पूरी तरह से अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा या वैश्विक बाजार में वस्तु X तथा Y की सापेक्षिक कीमतों पर निर्भर करेगा।

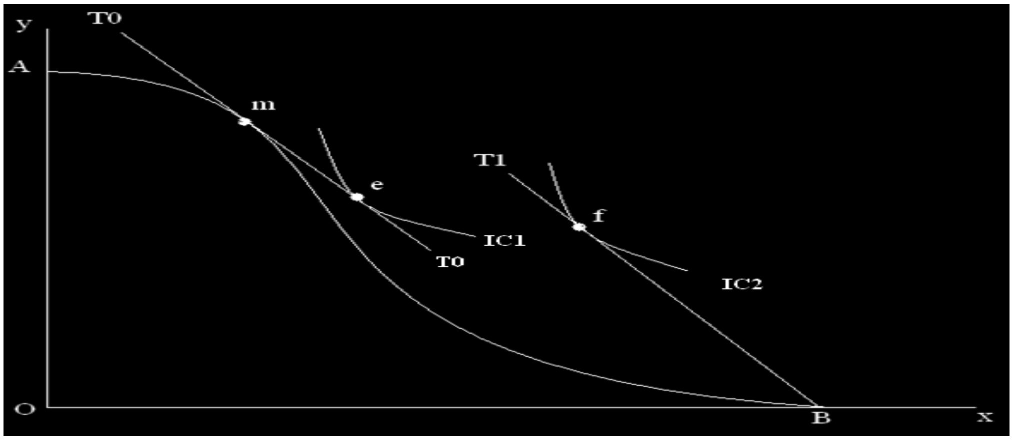

चित्र 4.6: एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा T_0T_0 है, तो स्पष्ट है कि वैश्विक बाजार में वस्तु Y की अपेक्षा वस्तु X मंहगी है। इसलिए देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा। वैश्विक माँग देशाओं के साथ ही देश में वस्तु X के लिए उत्पादन की दशाएँ भी अनुकूल हैं क्योंकि X के उत्पादन में बढ़ता हुआ प्रतिफल प्राप्त हो रहा है। व्यापार के पश्चात् उत्पादन का संतुलन B बिन्दु पर तथा उपभोग का f बिन्दु पर होगा, जो कि ऊँचे समुदाय अधिमान वक्र पर स्थित है।

देश, यदि वस्तु Y के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा तो भी व्यापार से पहले की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करेगा। चूँकि वस्तु Y के उत्पादन में घटते हुए प्रतिफल की स्थिति है इसलिए उत्पादन में अपूर्ण विशिष्टीकरण से ही उसका लाभ अधिकतम होगा। Y वस्तु में विशिष्टीकरण की स्थिति में उत्पादन का संतुलन M बिन्दु पर होगा जहाँ व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 (जो कि T_1B के समानान्तर है) वक्र AB का स्पर्श करती है तथा उपभोग का संतुलन अधिमान वक्र IC_1 के e बिन्दु पर होगा। IC_1 वक्र IC_2 के नीचे स्थित

है अतः बिन्दु e, बिन्दु f की अपेक्षा आर्थिक कल्याण के निम्नतर स्तर को व्यक्त करता है। अतः देश के लिए सबसे अच्छी स्थिति होगी वह वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करे तथा IC_2 के f बिन्दु पर उपभोग करें।

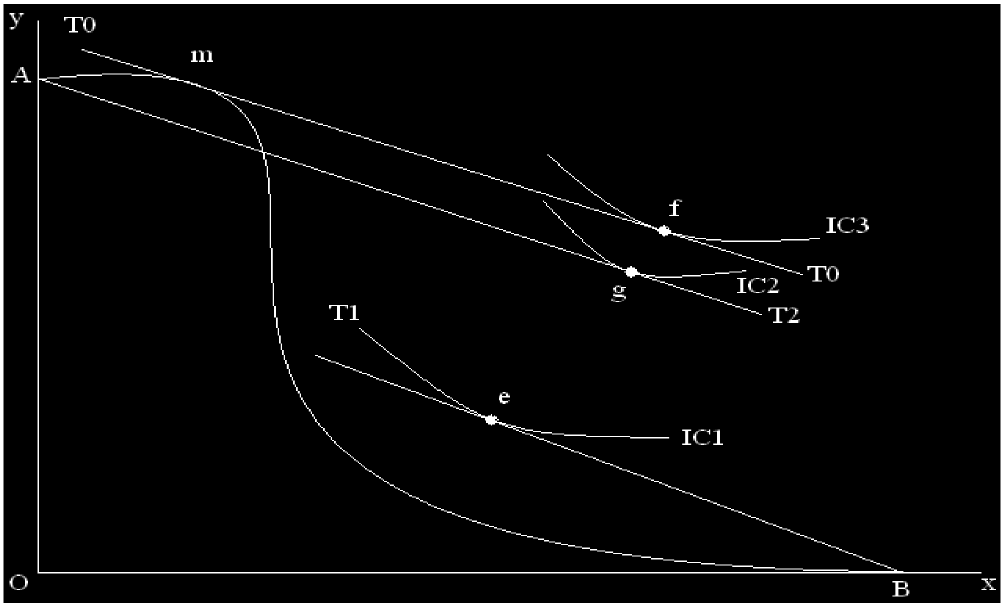

चित्र 4.7: एक वस्तु के उत्पादन में वृद्धिमान प्रतिफल तथा दूसरी वस्तु के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत व्यापार संतुलन

यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा बहुत चपटी है, अर्थात् यदि वैश्विक बाजार में वस्तु X की अपेक्षा वस्तु Y मंहगी हो, जैसा कि चित्र 4.7 में T_0T_0 (।। T_1B) से स्पष्ट है तो ऐसी स्थिति में वस्तु X के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् देश IC_1 के e बिन्दु पर उपभोग करेगा। जबकि यदि वह Y वस्तु के उत्पादन में m बिन्दु पर अपूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो IC_3 के f बिन्दु पर उपभोग कर रहा है जो e की अपेक्षा अधिक आर्थिक कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। अतः X के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थिति के बावजूद, व्यापार की शर्तों के विरुद्ध होने के कारण, इसके उत्पादन में विशिष्टीकरण नही करेगा। यदि देश Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण करता है तो IC_1 के e बिन्दु की अपेक्षा अधिक कल्याण अर्जित कर रहा है। चित्र में Y वस्तु के पूर्ण विशिष्टीकरण की स्थिति में उत्पादन का संतुलन A बिन्दु पर होगा जबकि उपभोग IC_2 के बिन्दु g पर होगा, जो कि IC_1 के e बिन्दु से ऊपर है। परन्तु IC_2 वक्र IC_3 के नीचे स्थित है। अतः स्पष्ट है कि देश, वस्तु Y के उत्पादन में अपूर्ण विशिष्टीकरण करके, अर्थात् बिन्दु M पर उत्पादन करके अपने उपभोग तथा आर्थिक कल्याण के स्तिर को बढ़ा सकता है।

4.7 मूल्यांकन

अवसर लागत पर आधारित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नवप्रतिष्ठित सिद्धांत, न सिर्फ मूल्य के श्रम सिद्धांत तथा उत्पादन में स्थिर प्रतिफल जैसे अवास्तविक बातों को त्याग कर व्यापार संतुलन का एक वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, बल्कि यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के

सामान्य संतुलन सिद्धांत का एक सरल मॉडल प्रस्तुत करता है जो कि विश्लेषण के महत्वपूर्ण यंत्रों से सुसज्जित है।

प्रतिष्ठित सिद्धांत के समर्थकों का मानना है कि नवप्रतिष्ठत सिद्धांत वस्तु के उत्पादन में निहित श्रम की अनुपयोगिता या कष्टानुभूति को मापने में असमर्थ है, यह सिद्धांत सिर्फ विश्लेषणात्मक कार्यों के लिए श्रेष्ठ है इसका वास्तविक लागतों या कल्याण संबंधी अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है परन्तु अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने जैसे केम्प, सैम्युलसन, बाल्डबिन आदि ने उत्पादन संभावना वक्र तथा समुदाय अधिमान वक्रों के माध्यम से अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त लाभों को कल्याण के रूप में प्रदर्शित किया है।

4.8 विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ

अब तक के अध्ययन से आप यह समझ गए होंगे कि यदि दो देशों के बीच एक वस्तु की उत्पादन लागतों में तुलनात्मक रूप से अंतर है तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार दोनों ही देशों के लिए लाभदायक होगा। व्यापार से होने वाले लाभ दो तरह के होते हैं विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ। ये दोनों लाभ मिलकर व्यापार से होने वाले कुल लाभों को बताते हैं। व्यापार से होने वाले लाभों या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को हम उपभोग में या उपभोक्ताओं की संतुष्टि में हुई वृद्धि के रूप में मापते हैं, जो कि समुदाय अधिमान वक्र के माध्यम से दर्शाया जाता है। यदि एक देश के उपभोक्ता निचले समुदाय अधिमान वक्र से ऊपर के समुदाय अधिमान वक्र पर पहुँच जाते हैं तो यह उस देश के रहन–सहन या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को दर्शाता है, जो कि व्यापार से होने वाले लाभ हैं। यह लाभ दो कारणों से होता है, एक तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्तों के देश के पक्ष होने कारण अर्थात् वह जिस वस्तु के उत्पादन में अधिक दक्ष है उसकी वैश्विक बाजार में कीमत, घरेलू बाजार से अधिक होती है, दूसरे देश के आर्थिक संसाधनों के प्रयोग में अर्थात् उत्पादन में, विशिष्टीकरण के कारण।

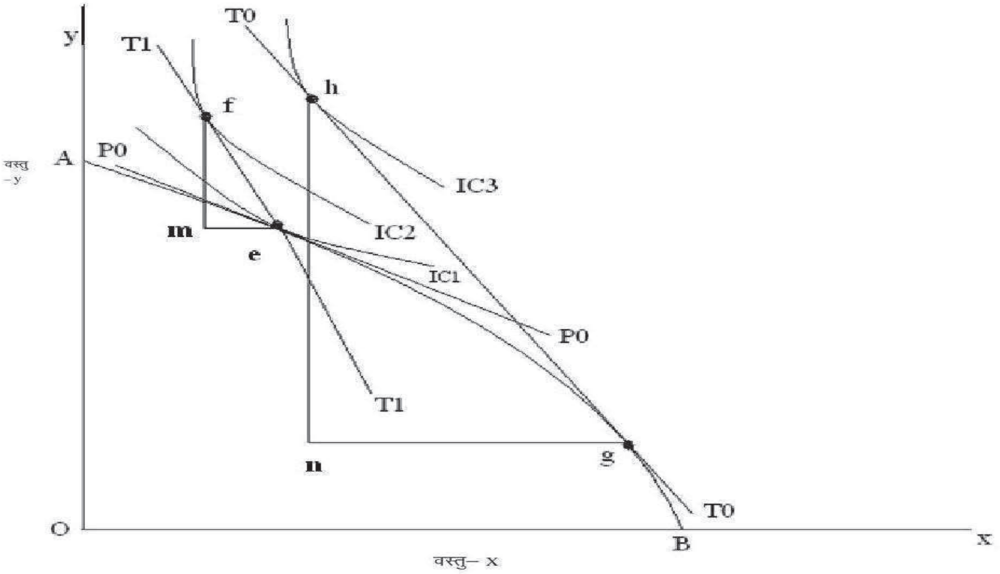

चित्र 4.8

चित्र 4.8 में, व्यापार न होने की स्थिति में, देश अपने उत्पादन संभावना वक्र AB के बिन्दु e पर संतुलन में है, जहाँ घरेलू कीमत रेखा P_0P_0, स्पर्श कर रही है। देश e बिन्दु पर उत्पादन के साथ–साथ उपभोग भी कर रहा है। क्योंकि कीमत रेखा P_0P_0 समुदाय अधिमान वक्र IC_1 के e बिन्दु पर स्पर्श करती है। जैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शुरु होता है नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा (T_0T_0) के अनुसार देश संसाधनों को पुर्नआवंटित करेगा। चूँकि देश में वस्तु X की सापेक्षिक लागत कम है, जबकि वस्तु X वैश्विक बाजार में तुलनात्मक रूप से मंहगी है। (रेखा T_0T_0, घरेलू कीमत रेखा P_0P_0 से अधिक तिरछी है) अतः देश वस्तु X के उत्पादन में विशिष्टीकरण करके व्यापार से अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहेगा। परन्तु संसाधनों को वस्तु Y उद्योग से हटाकर वस्तु X उद्योग में लगाने में कुछ समय लगेगा। ऐसी स्थिति में यदि उत्पादकों की प्रतिक्रिया पर विचार नहीं किया जाएगा, तो बिन्दु e पर उत्पादन करके, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 (II T_1T_1) के आधार पर देश के उपभोक्ता सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा लाभ कमा सकते है। चित्र में, देश के उपभोक्ता अन्तर्राष्ट्रीय कीमत रेखा T_1T_1, जो कि T_0T_0 के समानान्तर है और उत्पादन में संतुलन के प्रारंभिक बिन्दु e से होकर गुजरती है, के अनुसार व्यापार करेंगे। अनुकूल व्यापार शर्त के कारण उपभोक्ताओं का संतुलन बिन्दु IC_1 के e बिन्दु से IC_2 के f बिन्दु पर जाता है, जो कि ऊँचे संतुष्टि या कल्याण के स्तर को व्यक्त करता है। उत्पादन में बिना विशिष्टीकरण के यह सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा प्राप्त लाभ है। देश em मात्रा में वस्तु X का निर्यात करके fm मात्रा में वस्तु Y का आयात करेगा। इस प्रकार, बिना उत्पादन में परिवर्तन किए समुदाय अधिमान वक्र IC_1 के बिन्दु e से IC_2 के बिन्दु f तक की गति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा विनिमय से लाभ को प्रदर्शित करती है।

परन्तु उत्पादन e बिन्दु पर नहीं होता रहेगा, उत्पादक निष्क्रिय नहीं बैठेंगे। उत्पादक वस्तु Y उद्योग से संसाधनों को हटाकर तब तक वस्तु X उद्योग में लगाते रहेंगे, अर्थात् वस्तु X का उत्पादन तब तक बढ़ाते रहेंगे जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय अनुपात, उत्पादन की सीमांत प्रतिस्थापन दर के बराबर न हो जाए अर्थात् जहाँ व्यापार शर्त रेखा T_0T_0 तथा उत्पादन संभावना वक्र AB का ढाल बराबर हो जाए। इस प्रकार उत्पादन का अंतिम संतुलन g बिन्दु पर होगा जहाँ T_0T_0, AB को स्पर्श कर रही है। उत्पादन बिन्दु e में g से तक गति संसाधनो के उपभोग में बढ़ी हुई दक्षता को दर्शाता है। उत्पादन में इस बढ़ी हुई दक्षता के कारण देश के उपभोक्ता अब IC_3 समुदाय अधिमान वक्र के h बिन्दु पर उपभोग कर रहे हैं, जो कि IC_2 से ऊपर स्थित है और उपभोग तथा आर्थिक कल्याण के ऊँचे स्तर को व्यक्त करता है। देश ng मात्रा वस्तु X का निर्यात करेगा और बदले में nh मात्रा वस्तु Y का आयात करेगा. इस प्रकार IC_2 के बिन्दु f से IC_3 के बिन्दु h तक गति, उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण व्यापार से लाभ को प्रदर्शित करती है।

इस प्रकार व्यापार से होने वाला कुल लाभ, जो देश के उपभोग में या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को बताता है, दो प्रकार के लाभों का योग है– विनिमय से प्राप्त लाभ तथा विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभ।

विनिमय से लाभ = IC_1 के बिन्दु e से IC_2 के बिन्दु f तक की गति
विशिष्टीकरण से लाभ = IC_2 के f से IC_3 के g तक गति
व्यापार से कुल लाभ=IC_1 के बिन्दु e से IC_3 के g तक की गति

(e से f तक + f गति से g तक गति)

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि व्यापार के पश्चात् आय के वितरण में देश के भीतर जो परिवर्तन होता है उस पर विचार नहीं किया गया है। उत्पादन में परिवर्तन से देश के भीतर आय के वितरण से महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकता है परन्तु यहाँ, आय वितरण को स्थिर मानकर समुदाय अधिमान वक्र की रचना की गयी है।

अभ्यास प्रश्न–3

लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. एक वस्तु के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या घटती हुई लागतों तथा दूसरे वस्तु के उत्पादन में घटते प्रतिफल या बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में व्यापार–संतुलन की व्याख्या कीजिये.

२. विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ में अंतर स्पष्ट कीजिये.

बहुविकल्पीय प्रश्नः

१. ह्रासमान लागतों की दशा में यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा और घेरलू कीमत रेखा का ढाल बराबर हो तो देश को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से

v. लाभ होगा

vi. हानि होगी

vii. कोई लाभ नहीं होगा

viii. लाभ या हानि कुछ भी हो सकता है

२. व्यापार से होने वाले लाभ का अर्थ है

i. आर्थिक कल्याण में वृद्धि
ii. उपभोग में या उपभोक्ताओं की संतुष्टि में हुई वृद्धि
iii. उपभोक्ता का निचले समुदाय अधिमान वक्र से ऊपर के समुदाय अधिमान वक्र पर पहुँचना
iv. उपरोक्त सभी

३. व्यापार से लाभ है

i. विनिमय से लाभ
ii. विशिष्टीकरण से लाभ
iii. उपरोक्त दोनों
iv. उपरोक्त में से कोई नहीं

सत्य व असत्य :

i. एक वस्तु के उत्पादन में घटती हुई लागतों तथा दूसरे वस्तु के उत्पादन में घटते प्रतिफल की स्थिति में व्यापार–संतुलन अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा **पर नहीं सिर्फ** घटती हुई लागतों की स्थिति मजबूत है या सामान्य है, **इस** पर निर्भर करेगा।

ii. नवप्रतिष्ठित अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार सिद्धांत में व्यापार के पश्चात् आय के वितरण में देश के भीतर जो परिवर्तन होता है उस पर विचार नहीं किया गया है।

iii. ह्रासमान लागतों की दशा में **बाज़ार में** पूर्ण–प्रतियोगिता नहीं रहेगी।

iv. ह्रासमान लागतों की दशा में वास्तव में **एक** देश किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर निर्भर करेगा।

v. ह्रासमान लागतों की दशा में यदि अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा और घेरलू कीमत रेखा दोनों का अनुपात एक ही हो तब देश को अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार से लाभ नहीं होगा।

4.9 सारांश

अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धांत की मूल्य के श्रम सिद्धांत पर आधारित होने के कारण कटू आलोचना की जाती है। परन्तु जब तुलनात्मक लाभ को अवसर लागत रूप के रूप में परिभाषित किया जाता है तो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उत्पादन सिर्फ श्रम से हो रहा है या श्रम के साथ सभी उत्पादन के साधनों के संयोग से। हैबरलर ने वास्तविक लागत सिद्धांत के विकल्प के रूप में 'अवसर लागत का सिद्धांत' प्रस्तुत किया। हैबरलर का मानना है कि लागतों का अर्थ वस्तु के उत्पादन मे निहित श्रम की मात्रा से नहीं बल्कि वस्तु के उत्पादन के लिए किए गए वैकल्पिक उत्पादन के त्याग अर्थात् अवसर लागत से है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है। अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया। नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत में मूल्य के श्रम सिद्धांत को त्यागने के साथ–साथ उत्पादन की अलग–अलग दशाओं में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है। प्रतिफल नियमों के अनुरूप यह उत्पादन में स्थिरे, घटते तथा बढ़ते हुए प्रतिफल की स्थितियो में व्यापार–संतुलन की व्याख्या करता है.

उत्पादन मे स्थिर प्रतिफल या स्थिर लागतों की स्थिति में पूर्ण विशिष्टीकरण होगा। व्यापार से लाभ तभी होगा जब अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा दो देशों की घरेलू कीमत रेखा के बीच हो। व्यापार के पश्चात् कुल विश्व उत्पादन में वृद्धि हो जाती है। व्यापाररत देश पहले

से अधिक उपभोग करते हैं। ह्रासमान प्रतिफल या बढ़ती हुई लागतों की दशा में उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण सम्भव है परन्तु यह अनुकूलतम स्थिति नहीं होगी। पूर्ण विशिष्टीकरण के पश्चात् उस देश के आर्थिक कल्याण के स्तर में कमी आ जायेगी। अपूर्ण विशिष्टीकरण बढ़ती हुई लागतों की स्थिति में अनुकूलतम संतुलन की स्थिति को व्यक्त करगा। उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल या ह्रासमान लागतों की स्थिति में, देश किस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा, यह अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा पर निर्भर करेगा।

व्यापार से होने वाला कुल लाभ देश के उपभोग में या आर्थिक कल्याण में वृद्धि को बताता है। यह दो प्रकार के लाभों का योग है– विनिमय से प्राप्त लाभ तथा विशिष्टीकरण से प्राप्त लाभ। दोनों देश आपस में कितना व्यापार करेंगे या अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा पर वास्तव में उपभोग का संतुलन कहाँ होगा, यह अर्न्तराष्ट्रीय कीमत रेखा के ढाल पर निर्भर करेगा।

4.10 शब्दावली

अवसर लागतः एक वस्तु की उत्पादन या अवसर लागत उस वस्तु के मूल्य के बराबर होगी जिसका त्याग विचाराधान वस्तु के उत्पादन के लिए किया गया है। वस्तु X की अवसर लागत, वस्तु Y की वह मात्रा है जो कि वस्तु X की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन के लिए त्यागनी पड़ती है।

विनिमय से लाभः उत्पादन में बिना विशिष्टीकरण के अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा के आधार पर सिर्फ वस्तु विनिमय के द्वारा प्राप्त लाभ है।

विशिष्टीकरण से लाभः देश के आर्थिक संसाधनों के प्रयोग में अर्थात् उत्पादन में विशिष्टीकरण के कारण व्यापार से प्राप्त लाभ।

नव प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत : नए विश्लेषणात्मक यंत्रों के द्वारा प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धांत की पुनर्व्याख्या और इसके निष्कर्षों की पुनर्स्थापना करने वाले सिद्धांत. अवसर लागत व उत्पादन संभावना वक्र के साथ समुदाय अधिमान वक्रों के प्रयोग के द्वारा अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का नव–प्रतिष्ठित सिद्धांत विकसित किया गया, जिसमें हैबरलर, लियो–टीफ, लर्नर, मार्शल, एजबर्थ और मीड का योगदान है। विशेषरूप से मीड ने आधुनिक ज्यामितीय तकनीकी की मदद से तुलनात्मक लागत के नवप्रतिष्ठित सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान किया।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. ii ,2.ii , 3.i

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

i. ii ,ii. iv ,iii. iv , iv.iii

सत्य व असत्य :

4. सत्य 2.असत्य 3.असत्य 4.सत्य 5.सत्य

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. i , 2.iv ,3.iii

सत्य व असत्य :

2. असत्य ,2.सत्य ,3.सत्य ,4.सत्य ,5.असत्य

4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

4.13 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004

- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- *डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2010*

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

- उत्पादन में स्थिर तथा ह्रासमान प्रतिफल के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलन की व्याख्या कीजिये.
- ह्रासमान अवसर लागत के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन की विवेचना कीजिये.
- जब दो वस्तुओं के उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल या वृद्धिमान सीमांत लागत की स्थिति हो तो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संतुलन की विवेचना चित्र की सहायता से कीजिये.
- विनिमय से लाभ तथा विशिष्टीकरण से लाभ में अंतर स्पष्ट करते हुए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को चित्र की सहायता से समझाइए.

****

इकाई -5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत
5.3.1 भूमिका
5.3.2 मान्यताएं
5.3.3 साधन सम्पन्नता
5.3.4 साधन सम्पन्नता के कीमत मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या
5.3.5 साधन सम्पन्नता के भौतिक मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या
5.3.5.1 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव भिन्न दिशाओं में हो
5.3.5.2 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो
5.3.6 निष्कर्ष
5.4 प्रतिष्ठित सिद्धांत से तुलना
5.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की कमियां
5.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक जाँच
5.6.1 लियोंतिफ का विरोधाभास
5.6.2 अन्य अध्ययन
5.6.3 लियोंतिफ का विरोधाभास की आलोचना
5.7 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय
5.7.1 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय की आलोचना
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 उपयोगी /सहायक ग्रन्थ
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड एक "प्रस्तावना एवं सिद्धांत" से सम्बंधित यह पांचवीं इकाई है . ,इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के ,अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभप्रतिष्ठित सिद्धांत ,प्रतिपूरक मांग के सिद्धांत तथा अवसर लगत सिद्धांत के बारे में बता सकते हैं आप जान गए होंगे की . रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का मुख्य कारण श्रम उत्पादकता में अन्तर है, परन्तु श्रम की उत्पादकता में अन्तर क्यों है इसकी कोई व्याख्या प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री नहीं प्रस्तुत करते हैं। ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं।

हेक्सर ओहलिन के आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में व्यापार के कारणों की दूसरी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है. व्यापार का कारण है– विभिन्न देशों के पास भिन्न–भिन्न साधन उपलब्धता। विभिन्न देशों में साधन उपलब्धताओं में भिन्नता के कारण ही वस्तुओं की सापोक्षिक कीमतों में भिन्नता पायी जाती है जिससे देशों के बीच व्यापार सम्भव होता है।

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केहेक्सर ओह्लिन द्वारा दिये गये आधुनिक सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताया गया है .इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक व्यापार सिद्धांत के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत के मुलभूत स्थापनाओं को समझ सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत तथा प्रतिष्ठित सिद्धांत में अंतरों को जान सकेंगे.
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक अध्ययनों के आधार पर परख कर सकेंगे.
- साधन कीमत समानीकरण प्रमेय को समझ सकेंगे.

5.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत

5.3.1 भूमिका

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार जो मूल्य सिद्धान्त घरेलू बाजार में लागू होता है वह अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लागू नहीं होगा क्योंकि अंतरराष्ट्रीय तथा अंतरक्षेत्रीय व्यापार में अंतर है। परन्तु बर्टिल ओहलिन के अनुसार मूल्य का सामान्य साम्य विश्लेशण जो कि अतंरक्षेत्रीय व्यापार की व्याख्या के लिए उपयुक्त है वही बिना किसी विशेश परिवर्तन के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए भी उपयुक्त है; अंतरराष्ट्रीय व्यापार अंतरक्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेश स्थिति है।

मूल्य के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी समग्र मांग और समग्र पूर्ति की समानता के द्वारा निर्धारित होता है और संतुलन बिन्दु पर वस्तु की कीमत औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। उत्पादन की लागत उत्पादन मे लगे साधनों की कीमतें हैं जो कि वास्तव में संसाधनों की आय है जिससे आगे वस्तु की मांग उत्पन्न होती है। इस प्रकार वस्तुाओं की कीमत, साधनों की कीमत, वस्तुओं की मांग और साधनों की मांग और पूर्ति में पारस्परिक अंर्तसंबंध और निर्भरता होती है।

वास्तव में, मार्शल के मूल्य के सामान्य साम्य विश्लेषण मे समय आयाम (time dimensions) तो है परन्तु स्थान आयाम (space dimensioins) नहीं है। यह एक एकाकी बाजार सिद्धान्त है जो कि एक क्षेत्र या देश में प्रयुक्त होता है। ओहलिन का विचार है कि मूल्य के सामान्य सिद्धान्त में स्थान तत्व (space element) को सम्मिलित करके इसका बहु–बाजार सिद्धान्त दिया जा सकता है, और इसका प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों या देशों के मध्य व्यापार में मूल्य निर्धारण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार हेक्सर–ओहलिन का विद्धान्त अंतरराष्ट्रीय व्यापार का सामान्य संतुलन सिद्धान्त है।

सर्वप्रथम एली हेक्सर ने यह बताया कि जब दो देशों के मध्य व्यापार होता है तो मूल्य के पारस्परिक निर्भरता का सिद्धान्त क्रियाशील होता है। इसी आधार पर ओहलिन ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धान्त की व्याख्या प्रस्तुत की।

ओहलिन, रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त को अधूरा बताते हुए उसकी आलोचना करते हैं और तुलनात्मक लागतों में अन्तर के कारणों की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त की रिक्तता की पूर्ति करता है।

ओहलिन के अनुसार विभिन्न देशों में, विभिन्न वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में पायी जाने वाली भिन्नता के कारण ही अंतरराष्ट्रीय व्यापार उत्पन्न होता है। वस्तुओं की कीमतों में भिन्नता मुख्यतः उत्पादन साधनों की पूर्ति या उपलब्धता में भिन्नता के कारण होती है।

रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत तुलनात्मक लाभ सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का मुख्य कारण श्रम उत्पादकता में अन्तर है, परन्तु श्रम की उत्पादकता में अन्तर क्यों है इसकी कोई व्याख्या प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री नहीं प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक व्यापार सिद्धान्त में व्यापार के कारणों की दूसरी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है. हेक्सर ओहलिन के आधुनिक व्यापार सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का कारण है– विभिन्न देशों के पास भिन्न–भिन्न साधन उपलब्धता। विभिन्न देशों में साधन उपलब्धताओं में भिन्नता के कारण ही वस्तुओं की सापोक्षिक कीमतों में भिन्नता पायी जाती है जिससे देशों के बीच व्यापार सम्भव होता है।

सर्वप्रथम एली हेक्शर ने 1919 में यह विचार प्रस्तुत किया कि विभिन्न देशों में साधन सम्पन्नताओं में अन्तर के कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार सम्भव होता है। बर्टिन ओहलिन ने हेक्सर के इसी विचार के आधार पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया। ओहलिन ने अपनी पुस्तक Inter-regional and International Trade (1933) में प्रतिष्ठित सिद्धान्त की आलोचना की ओर अंतरराष्ट्रीय व्यापार का सामान्य संतुलन सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार एक देश को उस वस्तु के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ होगा और उसका निर्यात करेगा जो कि उस साधन का अधिक गहनता से प्रयोग करता है जो कि उस देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। दूसरे शब्दों में, कुछ देशों के पास पूँजी अधिक है और कुछ देशों के पास श्रम। सिद्धान्त के अनुसार जो देश पूँजी सम्पन्न है वह पूँजी –प्रधान वस्तु तथा जो देश श्रम सम्पन्न है वह श्रम–प्रधान वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा।

सिद्धान्त की व्याख्या से पहले हम इसकी मान्यताओं का अध्ययन करेंगे, जिन पर यह सिद्धान्त आधारित है।

5.3.2 मान्यताएं

1. मात्र दो उत्पादन के साधन हैं श्रम और पूँजी।
2. दो देश हैं जो कि साधन सम्पन्नता में भिन्न है। एक देश पूँजी सम्पन्न है और श्रम दुर्लभ तथा दूसरा देश श्रम सम्पन्न और पूँजी दूर्लभ है।
3. मात्र दो वस्तुएँ है। दोनों वस्तुओं के उत्पादन में श्रम और पूँजी दोनों संसाधन लगे हैं।
4. सभी उत्पादन–फलन प्रथम कोटि के समरूप हैं।
5. उत्पादन फलन इस प्रकार के हैं कि दो वस्तुओं की कारक गहनता भिन्न है परन्तु दो देशों में प्रत्येक वस्तु की कारक गहनता समान है।
6. दो वस्तुओं के उत्पादन फलन भिन्न है परन्तु दोनों देशों में एक ही वस्तु का उत्पादन–फलन समान है। अर्थात् वस्तुएँ दोनों ही देशों में एक ही तकनीकी से उत्पादित होती है।
7. परिवहन लागत, प्रशुल्क एवं अन्य प्रतिरोध नहीं है।
8. वस्तु तथा साधन बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता है।

इन मान्यताओं के आधार पर हेक्सर–ओहलिन प्रमेय कहती है कि पूँजी आधिक्य देश, पूँजी गहन वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण करेगा और निर्यात करेगा तथा श्रम–प्रधान देश, श्रम–गहन वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा।

5.3.3 साधन सम्पन्नता

हेक्सर–ओहलिन मॉडल में साधन–सम्पन्नता या प्रचुरता की धारणा को दो अर्थों में लिया गया है–

1. साधन–सम्पन्नता को साधन कीमतों के रूप में परिभाशित किया गया है। मूल्य मापदण्ड के अनुसार एक देश जिसमें पूँजी सापेक्षिक रूप से सस्ती और श्रम सापेक्षिक रूप से मंहगी है उसे पूँजी–प्रचुर देश कहा जाएगा भले ही इस देश में पूँजी और श्रम की उपलब्ध भौतिक मात्रा दूसरे देश के मुकाबले कितनी भी हो।

   यदि दो देश I और II हैं तो देश A पूँजी–प्रचुर देश होगा

   यदि $\left(\frac{Pk1}{Pl1}\right) < \left(\frac{Pk2}{Pl2}\right)$

जहाँ Pk_1 – देश I में पूँजी की कीमत

Pl_1 – देश I में श्रम की कीमत

Pk_2 – देश II में पूँजी की कीमत

Pl_2 – देश II में श्रम की कीमत

यह मापदण्ड दो देशों में उत्पादन के संसाधनों की माँग तथा पूर्ति दोनों दशाओं पर विचार करता है। ओहलिन सापेक्षिक संसाधन सम्पन्नता के लिए कीमत मापदण्ड का प्रयोग करते हैं परन्तु उनके अनुसार दो देशों में साधन कीमतों में अन्तर साधनों की आपूर्ति में भिन्नता के कारण होती है। दूसरे शब्दों में ओहलिन का विश्वास है कि किसी देश में साधनों की सापेक्षिक कीमत निर्धारण में पूर्ति पक्ष की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है।

2. साधन–सम्पन्नता को भौतिक पदों में भी परिभाषित किया जा सकता है। इस मापदण्ड के आधार पर एक देश सापेक्षिक रूप से पूँजी–प्रचुर देश होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ पूँजी का अनुपात श्रम से अधिक है। इसी प्रकार एक देश श्रम–प्रचुर होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ श्रम–पूँजी अनुपात अधिक है। देश I पूँजी–प्रचुर और देश II श्रम–प्रचुर होगा यदि

$$\left(\frac{\text{K}K1}{L1}\right) > \left(\frac{K2}{L2}\right)$$

जहाँ K_1– देश I में पूँजी की कुल मात्रा

K_2– देश II में में पूँजी की कुल मात्रा

L_1– देश I में श्रम की कुल मात्रा

L_2– देश II में श्रम की कुल मात्रा

यह विशुद्ध पूर्ति पक्ष दृष्टिकोण है जो कि माँग दशाओं की पूरी तरह से उपेक्षा करता है।

साधन सम्पन्नता के दो वैकल्पिक मापदण्ड समान नहीं है। हेक्सर–ओहलिन का सिद्धान्त या प्रमेय कीमत–मापदण्ड का प्रयोग करने पर सिद्ध किया जा सकता है पर भौतिक मापदण्ड के साथ यह सिद्ध हो पाए, यह आवश्यक नहीं है। ओहलिन कीमत–मापदण्ड के आधार पर ही साधन–सम्पन्नता को परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार यदि एक देश में पूँजी सापेक्षतया पूँजी सस्ती है तो वहाँ पूँजी की पूर्ति अवश्य ही अधिक होगी और यदि श्रम सापेक्षिक सस्ता है तो उस देश में श्रम की प्रचुरता होनी चाहिए।

5.3.4 साधन सम्पन्नता के कीमत मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

हेक्सर–ओहलिन प्रमेय; कि एक देश यदि पूँजी–प्रधान है तो पूँजी प्रधान वस्तु का उत्पादन और निर्यात करेगा तथा दूसरा देश जहाँ श्रम की प्रचुरता है वह श्रम–प्रधान वस्तु

का उत्पादन तथा निर्यात करेगा; का परीक्षण हम चित्र की सहायता से साधन–सम्पन्नता को कीमत–मापदण्ड के आधार परिभाशित करके करेंगे।

माना दो देश I और II हैं जो कि दो साधनों श्रम (L) और पूँजी (K) के प्रयोग से दो वस्तुएँ X और Y का उत्पादन करते हैं।

चित्र मे P_0P_0 देश I में साधन कीमत अनुपात तथा P_1P_1 देश II में साधन कीमत अनुपात को दर्शाता है। P_0P_0 तथा P_1P_1 की सापोक्षिक ढाल यह बताती है कि देश I में पूँजी सस्ती तथा श्रम मँहगा है और देश II में श्रम सस्ता और पूँजी मँहगी है। क्योंकि देश I में पूँजी प्रचुर तथा देश II श्रम–प्रचुर देश है।

वस्तु X का समोत्पाद वक्र xx तथा वस्तु Y का yy है जो कि क्रमशः वस्तु x तथा y की एक इकाई उत्पादन मात्रा को व्यक्त करते हैं। दोनों ही देशों में वस्तु x पूँजी–प्रधान तथा वस्तु y श्रम प्रधान है।

चित्र में समोत्पाद वक्र xx तथा yy एक दूसरे को केवल एक ही बार बिन्दु M पर काटते हैं। इससे यह प्रदर्शित होता है कि साधन गहनता की प्रतिलोमता नहीं है। अर्थात् एक वस्तु दोनों ही देशों में श्रम–प्रधान (वस्तु y) तथा दूसरी वस्तु दोनों ही देशों में पूँजी–प्रधान (वस्तु x) है। जैसी कि हेक्सर–ओहलिन की मान्यता है कि दो देशों में प्रत्येक वस्तु का उत्पादन फलन एक ही है।

चित्र की सहायता से अब आप इस बात को समझ सकते हैं कि कैसे पूँजी प्रधान देश पूँजी–गहन वस्तु तथा श्रम–प्रधान देश श्रम–गहन वस्तु का निर्यात करेगा।

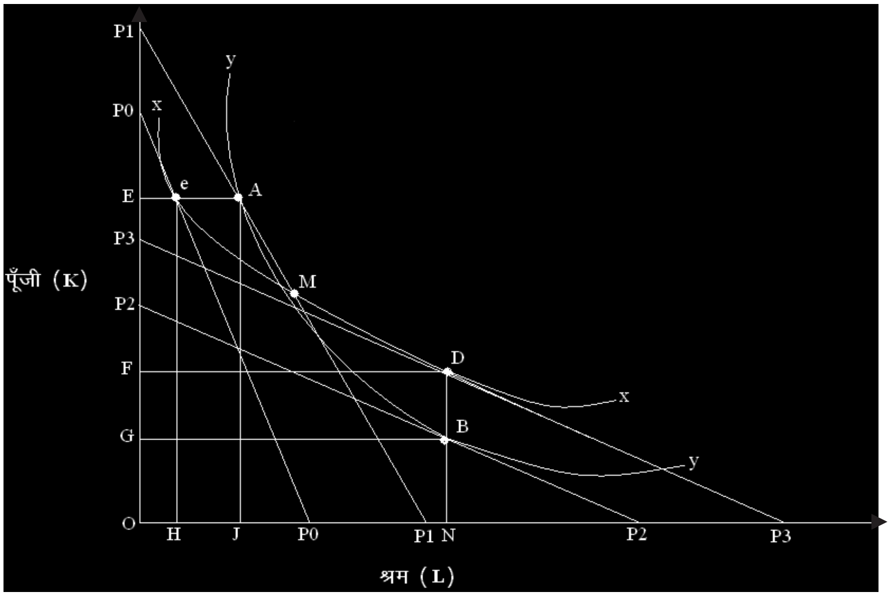

चित्र 5.1 कीमत–मापदण्ड के आधार पर साधन–सम्पन्नता

पूँजी–प्रचुर देश I में साधन कीमत अनुपात रेखा P_0P_0 तथा P_1P_1 है, जो एक दूसरे समानान्तर है। श्रम–प्रचुर देश II में साधन कीमत अनुपात को सामानान्तर रेखाएँ P_2P_2

तथा P_3P_3 द्वारा दिखाया गया है। P_0P_0 या P_1P_1 के ढाल से स्पश्ट है कि देश I में पूँजी सस्ती है। इसी प्रकार P_2P_2 या P_3P_3 के ढाल से स्पश्ट है कि देश II में श्रम सस्ता है।

देश I एक इकाई वस्तु–X का उत्पादन CH मात्रा में पूँजी तथा CE मात्रा में श्रम के संयोग से करता है, क्योंकि C बिन्दु पर x वस्तु का समोत्पाद वक्र, समलागत रेखा P_0P_0 को स्पर्श करता है। इसी प्रकार देश I में एक इकाई y वस्तु की लागत AJ मात्रा पूँजी तथा AE मात्रा श्रम का संयोग है।

स्पश्ट है कि देश में I में एक इकाई वस्तु y के उत्पादन के लिए लगी पूँजी की मात्रा (AJ) वस्तु–x के उत्पादन में लगी पूँी की मात्रा (CH) के बराबर है, परन्तु श्रम की मात्रा (AE), वस्तु x के उत्पादन में लगी श्रम की मात्रा (CA) से अधिक (AE=CE+CA) ळें

आप इसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

देश I में, वस्तु–x की उत्पादन लागत = CH पूँजी + CE श्रम

वस्तु y की उत्पादन लागत

= AJ पूँजी + AE श्रम

= CH पूँजी + AE श्रम (क्योंकि चित्र में CH=AJ)

= CH पूँजी + (CE+CA) श्रम (क्योंकि AE=CE+CA)

= (CH पूँजी + CE श्रम) + CA श्रम

= वस्तु–x की उत्पादन लागत + CA श्रम

(क्योंकि वस्तु–x की उत्पादन लागत=eH पूँजी+ eE श्रम) इसका अर्थ यह हुआ कि देश I में वस्तु–x,y की अपेक्षा सस्ती है। इसलिए पूँजी–प्रचुर देश I पूँजी–गहन वस्तु–x के उत्पादन में विशिश्टीकरण तथा निर्यात करेगा।

देश II एक इकाई वस्तु y का उत्पादन BN मात्रा में पूँजी तथा BG मात्रा में श्रम के संयोग से करता है। परन्तु वस्तु–x की उत्पादन लागत DN मात्रा में पूँजी तथा DF मात्रा मे। श्रम है। स्पश्ट है कि वस्तु–x की उत्पादन लागत में श्रम की मात्रा वस्तु–y के बराबर (DF=BG) परन्तु पूँजी की मात्रा (DN) वस्तु–y के उत्पादन में लगी मात्रा (BN) से अधिक है (DN=BN+BD)।

समीकरण के रूप में, आप इसे निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

देश II में, वस्तु–y की उत्पादन लागत = BG श्रम + BN पूँजी

वस्तु–x की उत्पादन लागत = DF श्रम + (BN+BD) पूँजी

(क्योंकि DF=BG तथा DN=BN+BD)

= (BG श्रम + BN पूँजी) + BD पूँजी

= वस्तु–y की उत्पादन लागत + BD पूँजी

स्पश्ट है कि देश II में वस्तु–y, वस्तु–x की अपेक्षा सस्ती है। इसलिए श्रम–प्रचुर देश II, श्रम गहन वस्तु–y के उत्पादन में विशिश्टीकरण तथा निर्यात करेगा।

इस प्रकार साधन–सम्पन्नता को साधन कीमतों के रूप में परिभाशित करने पर हेक्सर–ओहलिन प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है। इस प्रमेय का उल्टा भी उतना ही सही है अर्थात् यदि एक देश पूँजी प्रधान वस्तु का निर्यात करता है तो पूँजी उस देश में सापेक्षतया सस्ता उत्पादन का साधन है।

परन्तु साधन कीमतों के आधार प्रमेय को स्थापित करने में माँग दशाओं या साधन उपलब्धता को ध्यान में नहीं रखा गया है। वास्तव में साधन कीमतें साधन की माँग तथा पूर्ति की पारस्परिक क्रिया का प्रतिफल है और साधन की माँग उत्पादन की तकनीक के साथ–साथ वस्तुओं की माँग पर निर्भर करती है। स्पश्ट है कि सिर्फ साधन–सम्पन्नता के आधार पर साधन–कीमतों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है।

5.3.5 साधन सम्पन्नता के भौतिक मापदण्ड के आधार पर सिद्धांत की व्याख्या

जैसा कि आप ऊपर देख चुके हैं कि यदि दो देश I तथा II हैं, देश I पूँजी–प्रचुर तथा देश II श्रम–प्रचुर देश होगा, यदि

$$\frac{K1}{L1} > \frac{K2}{L2}$$

जहाँ K_1 तथा K_2 क्रमशः देश I तथा II में पूँजी की कुल मात्रा और L_1 तथा L_2 श्रम की मात्रा है।

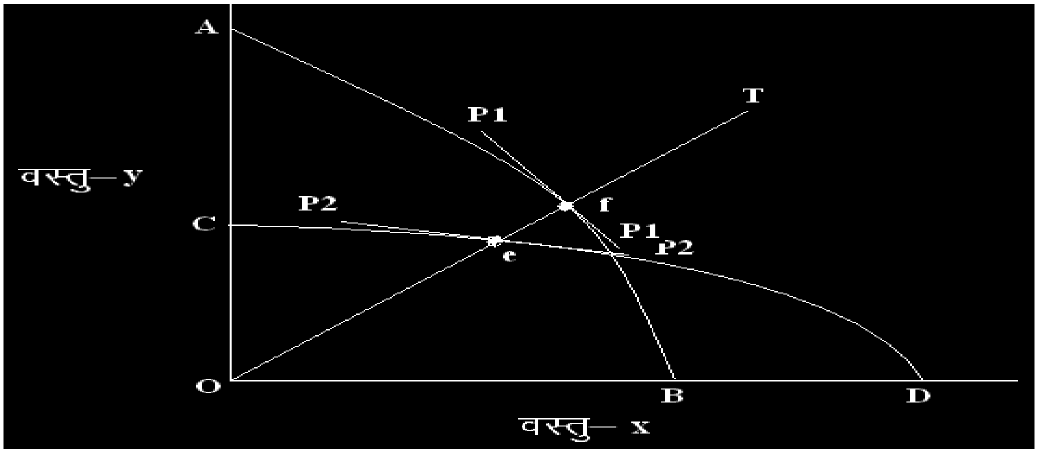

चित्र 5.2 भौतिक मापदण्ड के आधार पर साधन–सम्पन्नता

इस आधार पर अब हम यह दिखाएगें कि देश I जो कि भौतिक मापदण्ड के आधार पर पूँजी–सम्पन्न देश हैं, पूँजी– प्रधान वस्तु के उत्पादन की ओर झुकाव होगा तथा श्रम–सम्पन्न देश II का झुकाव श्रम–प्रधान वस्तु की ओर होगा। इसे चित्र में दिखाया गया है।

चित्र 5.2 में तुलनात्मक रूप से वस्तु y पूँजी–प्रधान तथा वस्तु–x श्रम प्रधान वस्तु है। देश I का उत्पादन सम्भावना वक्र AB तथा देश II का CD है। मान लीजिए कि यदि दोनों देशों में दोनों वस्तुओं का उत्पादन समान अनुपात में, मूल बिन्दु से खींची गयी रेखा OT पर होता है, तो देश I अपने उत्पादन सम्भावना वक्र AB के बिन्दु f पर देश II, अपने

उत्पादन सम्भावना वक्र eD के बिन्दु e पर उत्पादन करेगा। देश I के उत्पादन सम्भावना वक्र AB की बिन्दु f पर ढाल, देश II के वक्र eD के बिन्दु e की ढाल से अधिक तिरछी है। इसी प्रकार देश I की वस्तु कीमत रेखा P_1P_1, देश II की कीमत रेखा P_2P_2 से अधिक तिरछी है। इन सबका अर्थ यह है कि देश I में देश II की अपेक्षा वस्तु y सस्ती है तथा देश II से देश I की अपेक्षा वस्तु x सस्ती है यदि दोनों देश क्रमशः बिन्दु f तथा e पर उत्पादन कर रहे होते हैं।

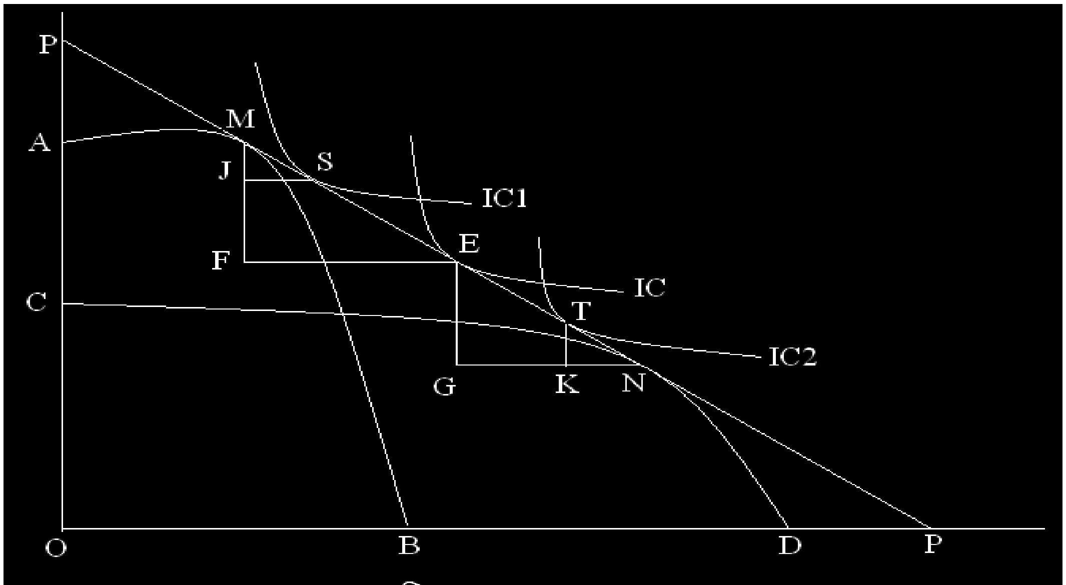

चित्र 5.3

अतः देश I में वस्तु y के उत्पादन के विस्तार की अवसर लागत, देश II की अपेक्षा कम है तथा देश II में वस्तु X के उत्पादन में विस्तार की अवसर लागत देश I की अपेक्षा कम है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देश I, जो कि पूँजी–सम्पन्न देश है पूँजी–प्रधान वस्तु y तथा देश II, जो कि श्रम–प्रचुर देश है, श्रम–प्रधान वस्तु x का उत्पादन बढ़ाने को उत्सुक होगा।

परन्तु इसके आधार पर हम यह निश्कर्श नहीं निकाल सकते कि देश I, वस्तु y, का तथा देश II, वस्तु x का निर्यात करेगा। कौन सा देश किस वस्तु का निर्यात करेगा यह माँग कारकों पर निर्भर करेगा। भौतिक मापदण्ड के आधार पर हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त उसी स्थिति में सत्य हो सकता है जबकि दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं की रुचियाँ उपभोग अधिमान समान हो और आयात माँग की लोच इकाई के बराबर हो।

5.3.5.1 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव भिन्न दिशाओं में हो

चित्र 5.3 में देश I तथा II का उत्पादन संभवना वक्र चित्र 5.2 की तरह ही है। चित्र में दोनों में माँग की दशाओं को भी दिखाया गया है। दोनों देशों के बीच व्यापार शुरु होने के पश्चात्, देश I, वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है और उसका

उत्पादन बिन्दु M पर विवर्तित हो जाता है। जबकि देश II वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है और अब N बिन्दु पर उत्पादन करता है। बिन्दु M तथा N उत्पादन के अनुकूलतम बिन्दु है क्योंकि अंतरराष्ट्रीय व्यापार–शर्त रेखा, M तथा N को स्पर्श करती है जो व्यापार के पश्चात् दोनों देशों की सापेक्षिक साधन कीमत रेखा भी है। इस प्रकार पूँजी–प्रचुर देश I, पूँजी–प्रधान वस्तु y का तथा श्रम–प्रचुर देश II, श्रम–प्रधान वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण करता है।

यदि दोनों देशों में माँग की दशाएँ ऐसी हों, जिसे कि चित्र में IC वक्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है, तो दोनों देश बिन्दु E पर उपभोग करते हैं। इस स्थिति में देश I, FM मात्रा वस्तु y का निर्यात तथा FE मात्रा में वस्तु x का आयात करेगा जबकि देश II वस्तु x की GM मात्रा निर्यात तथा वस्तु y की GE मात्रा का आयात करेगा। अतः पूँजी प्रधान देश I, पूँजी प्रधान वस्तु y का निर्यात तथा श्रम–प्रधान वस्तु x का आयात करेगा। इसी प्रकार श्रम–प्रधान देश II, श्रम–प्रधान वस्तु x का निर्यात तथा पूँजी–प्रधान वस्तु y का आयात कर रहा है। ऐसी स्थिति में हेक्सर–ओहलिन प्रमेय स्थापित होती है, और पूरी तरह वैध है।

वास्तव में, हेक्सर–ओहलिन प्रमेय की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि उपभोग बिन्दु, जैसे चित्र 5.3 में बिन्दु E, दोनों देशों के उत्पादन बिन्दुओं के बीच में कहीं हो अर्थात् बिन्दु M के दाहिनी ओर तथा बिन्दु N के बायीं ओर स्थित है।

दोनों देशों में उपभोक्ताओं की रुचियाँ समान होने पर चित्र 5.3 में दोनों देशों के लिए एक ही अधिमान वक्र IC है। परन्तु यदि दोनों देशो में उपभोक्ताओं की रुचियाँ भिन्न हों तो भी हेक्सर–ओहलिन प्रमेय मान्य होगा यदि उपभोग बिन्दु M और N के बीच स्थित है। चित्र में, उपभोक्ताओं की रुचियाँ दोनों देशों में भिन्न होने पर देश I का समुदाय अधिमान वक्र IC_1 तथा देश II का IC_2 है। इस स्थिति में, देश उत्पादन M तथा उपभोग S पर और देश II उत्पादन N तथा उपभोग T बिन्दु पर कर रहा है। देश I, JM मात्रा में वस्तु y का निर्यात तथा JS मात्रा में वस्तु x का आयात कर रहा है जबकि देश II KN मात्रा में वस्तु x का निर्यात तथा KT मात्रा में वस्तु y का आयात कर रहा है। और इस प्रकार हेक्सर–ओहलिन प्रमेय मान्य है।

यदि माँग दशाएँ ऐसी है कि देश I का समुदाय अधिमान वक्र बिन्दु S तथा देश II का बिन्दु N पर स्पर्श करें तो दोनों देश उसी बिन्दु पर उपभोग करेंगे जहाँ उत्पादन कर रहे हों। ऐसी स्थिति में दोनों देशों में व्यापार नहीं होगा। इस स्थिति में भी हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त मान्य होगा, परन्तु सिर्फ उत्पादन में विशिश्टीकरण के सम्बन्ध में माँग की दशाएँ व्यापार की दिशा में परिवर्तन ला सकती है।

5.3.5.2 जब उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो

जब दोनों देशों में उत्पादन तथा उपभोग का झुकाव एक ही दिशा में हो तो ऐसी स्थिति को चित्र 5.4 में दिखाया गया है। चित्र 5.4 में देशा I का समुदाय अधिमान वक्र IC_1 है और देश II का IC_2, जोकि यह दर्शाता है कि देश I में माँग का झुकाव पूँजी–प्रधान वस्तु की ओर तथा देश II माँग का झुकाव श्रम–प्रधान वस्तु की ओर है। फलस्वरूप, देश

I, उत्पादन M बिन्दु पर करता है और पूँजी–प्रधान वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करता है। दी हुई माँग दशाओं के अंतर्गत देश I, बिन्दु E पर उपभोग करेगा, अर्थात् वह GM मात्रा में वस्तु x का निर्यात करेगा तथा GE मात्रा में वस्तु y का आयात करेगा। इसी प्रकार देश II, वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करेगा और बिन्दु N पर उत्पादन करेगा। परन्तु दी हुई माँग दशाओं के अंर्तत उपभोग बिन्दु F पर करेगा। इस प्रकार देश II, NH मात्रा में वस्तु y का निर्यात तथा HF मात्रा में वस्तु x का आयात करेगा।

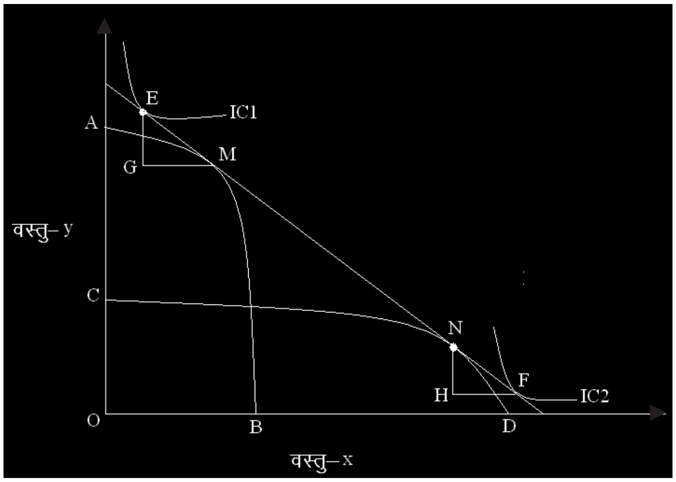

चित्र– 5.4

स्पश्ट है कि माँग की प्रतिलोमता की स्थिति में पूँजी–प्रचुर देश I, श्रम–प्रधान वस्तु x का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु y का आयात करेगा, जबकि श्रम–प्रचुर देश II, पूँजी प्रधान वस्तु y का निर्यात तथा श्रम–प्रधान वस्तु x का आयात करेगा। इस प्रकार पूर्ति या लागत दशाओं के आधार पर जो व्यापार की दिशा होनी चाहिए, उसे माँग की दशाएँ उलट देती है, और इस स्थिति में हेक्सर–ओहलिन प्रमेय असत्य हो जाती है।

5.3.6 निष्कर्षः

निश्कर्श के रूप में कहा जा सकता है कि हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त में साधन–सम्पन्नता की दोनों व्यवस्थाएँ समान नहीं हैं। केवल साधन कीमतों के मापदण्ड के आधारपर साधन सम्पन्ता को परिभाशित करने पर ही यह सिद्धान्त सत्य सिद्ध होता है। भौतिक मापदण्ड के रूप में साधन सम्पन्नता को परिभाशित करने पर यह सिद्धान्त केवल तभी वैध होगा जब माँग की प्रतिलोमता की स्थिति न हो।

5.4 प्रतिष्ठित सिद्धान्त से तुलना

यह सिद्धान्त काफी व्यापाक और तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करता है।

उपरोक्त विवेचना से आप समझ गए होंगे की हेक्सर ओहलिन द्वारा दिया गया,व्यापार का आधुनिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित सिद्धान्त से काफी भिन्न है। साथ ही आधुनिक सिद्धान्त को निम्नलिखित आधार पर प्रतिष्ठित सिद्धान्त से बेहतर कहा जा सकता है–

1. प्रतिष्ठित सिद्धान्त की तरह ओहलिन अंतरराष्ट्रीय व्यापार का एक अलग सिद्धान्त नहीं देते हैं, बल्कि मार्शल द्वारा दिए मूल्य के सामान्य सिद्धान्त में स्थान तत्व को सम्मिलित करके उसे अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में विस्तार देते हैं। वे अंतरराष्ट्रीय व्यापार को अंतरक्षेत्रीय व्यापार की ही एक विशेश स्थिति मानते हैं।
2. आधुनिक सिद्धान्त मूल्य के सामान्य संतुलन पर आधारित है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त मूल्य के श्रम सिद्धान्त पर आधारित हो, जो कि अवास्तविक है।
3. रिकार्डो के सिद्धान्त में मात्र एक साधन श्रम है, जबकि ओहलिन श्रम और पूँजी दो साधन को लेकर अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं। परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि दो से अधिक साधन होंगे तो साधन गहनता की संकल्पना को परिभाशित करना मुश्किल हो जाएगा।
4. आधुनिक सिद्धान्त साधनों की पूर्ति में अन्तर के आधार पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार के ढाँचे को निर्धारित करता है। साथ ही यह साधनों की सापेक्षिक कीमतों पर आधारित होने के कारण आधिक वास्तविक है। जबकि रिकार्डो साधनों की पूर्ति पर ध्यान नहीं देते हैं और सिर्फ वस्तुओं की सापोक्ष कीमतों पर ही विचार करते हैं।

ओहलिन श्रम और पूँजी की सापेक्ष उत्पादकता के अंतरों को व्यापार का आधार मानते हैं। जबकि रिकार्डो सिर्फ श्रम की उत्पादकता के आधार पर ही सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं।

5. रिकार्डो दो देशों में श्रम की गुणवत्ता में भिन्नता के आधार पर उत्पादन फलन में अंतर की व्याख्या करते हैं, जो कि व्यापार का आधार है। जबकि ओहलिन देशों की बीच साधन–सम्पन्नता में भिन्नता के कारण कीमतों में अन्तर की व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार प्रतिष्ठित सिद्धान्त उत्पादन फलनों में अन्तर के आधार पर तुलनात्मक लाभ की व्याख्या करते हैं, इसके विपरीत आधुनिक सिद्धान्त दोनों देशों में एक वस्तु का एक उत्पादन–फलन मानता है और तुलनात्मक लाभ का आधार देशों के बीच साधन अनुपातों में भिन्नता को मानता है।

6. रिकार्डो तुलनात्मक लागत अंतरों का आधार क्या है, यह स्पश्ट नहीं करते हैं। ओहलिन के अनुसार संसाधनों की भौतिक मात्रा में अंतर के कारण देशों के बीच अन्तरराश्ट्रीय व्यापारका उदय होता है न कि विभिन्न क्षेत्रों में साधनों की गुणवत्ता में अंतर के कारण। ओहलिन ने स्पश्ट किया कि विभिन्न क्षेत्रों/देशों में साधन–अनुपातों में अन्तर के कारण ही तुलनात्मक लागतों में अन्तर होता है।
7. प्रतिश्ठत सिद्धान्त विदेशी व्यापार के कल्याणात्मक या मूल्यात्मक पक्ष को स्थापित करता है। इसके अनुसार व्यापार में सम्मिलित सभी देशों को व्यापार से लाभ होगा। परन्तु ठीक यही बात आधुनिक सिद्धान्त के संदर्भ में नहीं कही जा सकती है।

आधुनिक सिद्धान्त व्यापार से होने वाले लाभ पर ध्यान नहीं देता है बल्कि वह व्यापार की संरचना और साधन–कीमतों की स्थिति पर ही ध्यान देता है और इस आधार पर सिर्फ व्यापार के संतुलन की व्याख्या करता है, जो कि धनात्मक अर्थशास्त्र का हिस्सा बन जाता है न कि कल्याणकारी अर्थशास्त्र का। इस प्रकार, आधुनिक सिद्धान्त व्यापार के आधार

पर केन्द्रित है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त अंतरराष्ट्रीय व्यापार से होने वाले लाभों को दिखाने का प्रयास करता है। वस्तुतः आधुनिक सिद्धान्त, प्रतिश्ठत सिद्धान्त से बेहतर ढंग से अंतरराष्ट्रीय व्यापार के कारणों की व्याख्या करता है और यह उसमें एक बेहतर सुधार करता है।

5.5 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधुनिक सिद्धांत की कमियां

आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है–

1. आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की मान्यताएँ अवास्तविक तथा अति सरलीकृत हैं। यह सिद्धान्त केवल दो देश, दो वस्तुओं तथा दो साधनों को लेकर ही व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पूर्ण–प्रतियोगिता, पूर्ण–रोजगार, समान–उत्पादन–फलन, शून्य परिवहन लागत जैसी मान्यताएँ भी अवास्तविक हैं।
   परन्तु बाद में ओहलिन ने अनेक, प्रदेशों, अनेक वस्तुओं तथा अनेक साधनों के संदर्भ अपने सिद्धान्त को विस्तारित किया। इसी प्रकार ओहलिन के अनुसार अन्य मान्यताओं में ढील देने पर भी उनका सिद्धान्त उसी प्रकार मान्य है।
2. इस सिद्धान्त के अनुसार व्यापार का कारण दो देशों या क्षेत्रों के बीच साधन सम्पन्नता में भिन्नता है। परन्तु व्यवहार में विश्व व्यापार का एक बड़ा भाग ऐसे देशो के बीच होता है जिनकी साधन–सम्पन्नता लगभग एक जैसी है।
   वस्तुतः तुलनात्मक लागत मे भिन्नता के कारण की व्यापार होता है। ओहलिन का सिद्धान्त अंतरराष्ट्रीय व्यापार में लागत को प्रभावित करने वाले घटको जैसे, परिवहन लागतों, पैमाने की बचतें, आन्तरिक व वाह्य बचतें आदि की उपेक्षा करता है, और इस प्रकार यह सामान्य साम्य की प्रणाली को विकसित करने में असमर्थ है।
   प्रो0 हैबरलर का कहना है कि यद्यपि ओहलिन का सिद्धान्त वास्तविकता के अधिक निकट है परन्तु यह पूर्ण सामान्य संतुलन प्रणाली को विकसित करने में असफल है। मोटे तौर पर यह एक आंशिक संतुलन विश्लेशण ही है।
3. हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि दो देशों में एक वस्तु के उत्पादन–फलन समान हो एवं कारक–गहनता की प्रतिलोमता हो। अर्थात् दो वस्तुओं के समोत्पाद वक्र एक–दूसरे को केवल एक ही बार काटे।
   कारण–गहनता की प्रतिलोमता की स्थिति में, अर्थात् जब दो समोत्पाद वक्र एक दूसरे को एक से अधिक बार काटेंगे, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त अवैध हो जाता है।
   मिन्हास तथा अन्य लोगों ने 19 देशों के 24 उद्योगों के आँकड़ों के आधार पर यह पाया कि 5 मामलों में साधन प्रतिलोमता की स्थिति है। हालांकि लियोन्टीफ तथा मोरोनी मिन्हास के निश्कर्शों की आलोचना करते हैं।
   परन्तु यह स्पश्ट है कि साधन–प्रतिलोमता की स्थिति में हेक्सर–ओहलिन मॉडल, अंतरराष्ट्रीय व्यापार की संरचना तथा दिशा के निर्धारण में महत्वहीन हो जाता है।
4. ओहलिन के अनुसार दो देशों के बीच साधनों की कीमतों में सापेक्षिक अंतर का कारण साधनों की उपलब्धता में सापेक्षिक अन्तर है। अर्थात् साधनों के मूल्य निर्धारण

में माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु यदि माँग की दशाएँ पूर्ति की अपेक्षा साधनों के कीमत निर्धारण में अधिक महत्वपूर्ण हो जाएँ तो सम्भव है कि पूँजी–प्रधान देश श्रम–प्रधान वस्तु का निर्यात करने लगे, जो कि ओहलिन की परिकल्पना के विपरीत है।

लियोन्टीफ ने अपने आनुभविक जाँच में यह पाया कि अमेरिका एक पूँजी प्रधान देश होते हुए भी, श्रम–प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी गहन वस्तु का आयात करता है। इसी को 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहते हैं।

5. यदि उपभोक्ताओं के अधिमान और वस्तुओं की माँग पर भी विचार किया जाए तो वस्तु कीमत अनुपात लागत अनुपात से भिन्न हो सकता है। ऐसी स्थिति में ओहलिन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।

दो देशों में समान साधन अनुपात होते हुए भी उपभोक्ता के अधिमान, रुचि या आय–वितरण में अन्तर के कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार हो सकता है।

इस प्रकार दो देशों में साधन तथा वस्तु बाजारों में माँग दशाओं में सापेक्षिक भिन्नता भी अंतरराष्ट्रीय व्यापार का आधार हो सकती है।

दो A देश और B हैं, जो कि x और y का उत्पादन करते हैं। दोनों ही देशों का उत्पादन संभावना वक्र AB है। व्यापार से पूर्व देश A का उत्पादन तथा उपभोग का साम्य बिन्दु e पर तथा देश B का f पर है। स्पष्ट है कि देश A में वस्तु y के लिए तथा देश B में वस्तु x के लिए उपभोक्ताओं की रुचि अत्यन्त तीव्र है।

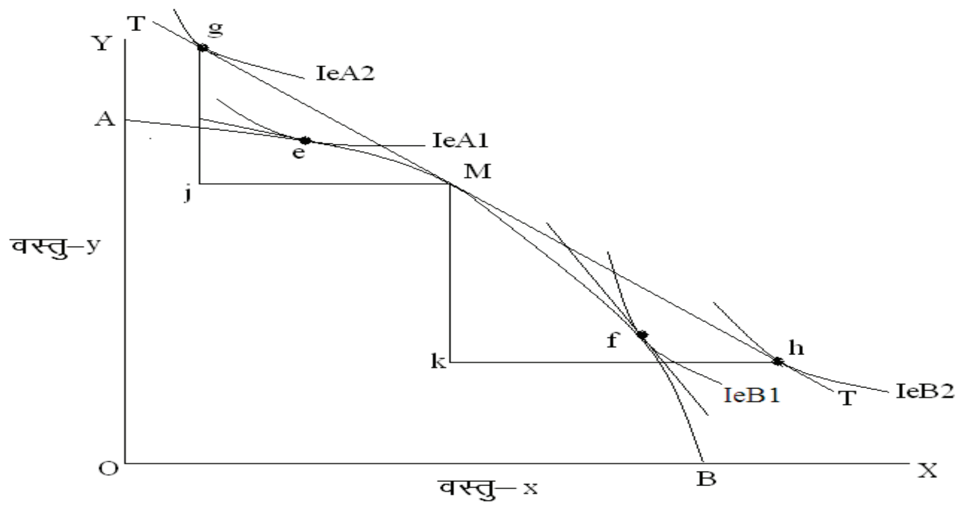

चित्र– 5.5

व्यापार शुरू होने के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय व्यापार शर्त रेखा TT के अनुसार दोनों देश व्यापार करते हैं। दोनों देशों का उत्पादन का संतुलन बिन्दु M पर होगा। देश A , वस्तु x तथा देश B वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण का प्रयास करता है। परन्तु व्यापार के

पश्चात् दोनों देश अपने उत्पादन संभावना वक्र के बाहर बिन्दु पर उपभोग कर रहे हैं। देश A, बिन्दु g पर तथा देश B का संतुलन बिन्दु h पर होगा। स्पश्ट है कि साधन समानुपात भिन्न होने पर भी व्यापार हो सकता है।

6- साधनों में गुणात्मक भिन्नता, भिन्न उत्पादन तकनीक, उपभोक्ताओं की माँग में भिन्नता आदि कारणों से भी दो देशों की सापेक्षिक कीमतों में भिन्नता हो सकती है। ओहलिन भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके अनुसार साधनों की उपलब्धता में अन्तर व्यापार के आधार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है।

7. विजनहोल्ड्स का कहना है कि वस्तुओं की कीमतें उनकी उत्पादन लागतों से निर्धारित नहीं होती है बल्कि उसकी उपभोक्ताओं के लिए उसकी उपयोगिता से। कच्चे माल और श्रम की कीमतें अंततः वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर करती हैं।

8. आधुनिक सिद्धान्त भी स्थैतिक है क्योंकि यह उत्पादन के साधनों की मात्रा, उपभोक्ताओं की आय तथा पसन्दगी, उत्पादन फलन इत्यादि दिया हुआ मान लेता है।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की मान्यताएँ बताइए।
2. विदेशी व्यापार के सामान्य संतुलन दृश्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।
3. साधन–गहनता की प्रतिलोमता क्या है?
4. साधन–प्रचुरता का क्या अर्थ है? समझाइए।
5. आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की आलोचना कीजिए।
6. आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की प्रतिष्ठित सिद्धान्त से तुलना कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्नः

४. सामान्य संतुलन दृश्टिकोण को अर्न्तराश्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त में लागू करने के लिए ओह्लिन इसमें किस तत्व को जोड़ते हैं?

ix.समय

x.बाज़ार

xi.स्थान

xii.कीमत

५. ओह्लिन के अनुसार तुलनात्मक लागत अंतर का कारण है :

v. श्रम लागत अंतर

vi. विभिन्न देशों में संसाधन उपलब्धता में अंतर

vii. विनिमय दरों में अंतर

viii. उपरोक्त में से कोई नहीं

६. ओह्लिन के अनुसार प्रत्येक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण प्राप्त करेगा

v. जिसके उत्पादन में उस देश में उपलब्ध प्रचुर संसाधनों का प्रयोग होता हो

vi. जिसके उत्पादन में उस देश में उपलब्ध सस्ते संसाधनों का प्रयोग होता हो

vii. उपरोक्त दोनों

viii. उपरोक्त में से कोई नहीं

सत्य व असत्य :

vi. आधुनिक सिद्धान्त मूल्य के सामान्य संतुलन पर आधारित है, जबकि प्रतिष्ठित सिद्धान्त मूल्य के श्रम सिद्धान्त पर आधारित है।

vii. वस्तुओं की कीमतों में भिन्नता मुख्यतः उत्पादन साधनों की पूर्ति या उपलब्धता में भिन्नता के कारण नहीं होती है।

viii. हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार जो देश पूँजी सम्पन्न है वह पूँजी –प्रधान वस्तु तथा जो देश श्रम सम्पन्न है वह श्रम–प्रधान वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा।

ix. कीमत मापदण्ड दो देशों में उत्पादन के संसाधनों की माँग तथा पूर्ति दोनों दशाओं पर विचार नहीं करता है।

x. हेक्सर–ओहलिन का सिद्धान्त या प्रमेय भौतिक मापदण्ड का प्रयोग करने पर सिद्ध किया जा सकता है पर कीमत–मापदण्ड के साथ यह सिद्ध हो पाए, यह आवश्यक नहीं है।

xi. भौतिक मापदण्ड के रूप में साधन सम्पन्नता को परिभाशित करने पर यह सिद्धान्त केवल तभी वैध होगा जब माँग की प्रतिलोमता की स्थिति हो।

xii. आधुनिक सिद्धान्त व्यापार से होने वाले लाभ पर ध्यान नहीं देता है बल्कि वह व्यापार की संरचना और साधन–कीमतों की स्थिति पर ही ध्यान देता है

xiii. दो देशों में समान साधन अनुपात होते हुए भी उपभोक्ता के अधिमान, रुचि या आय–वितरण में अन्तर के कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार हो सकता है।

5.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आधुनिक सिद्धांत की आनुभविक जाँच

जो सिद्धान्त व्यावहारिक स्थितियों की व्याख्या जितने ही बेहतर ढंग से करेगा वह उतना ही अधिक उपयोगी होगा। सर्वप्रथम मैकडूगल ने व्यापार सिद्धान्तों के सत्यापन का प्रयास आनुभाविक जाँच के आधार पर किया। बाद में अनेक अर्थशास्त्रियों ने आधुनिक व्यापार सिद्धान्त को आधुनिक प्रयासों की कसौटी पर कसने का प्रयास किया।

5.6.1 लियोन्टीफ का विरोधाभास

हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के सत्यापन के संदर्भ में पहला व्यापक अध्ययन 1951 में लियोन्टीफ ने किया। लियोन्टीफ ने संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि पूँजी प्रधान है, के आयातों–निर्यातों का अध्ययन किया। वे अपने अध्ययन में हेक्सर–ओहलिन के सिद्धान्त के विपरीत निश्कर्श पर पहुँचते हैं। अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। अर्थात् निर्यात उद्योगों की अपेक्षा आयात प्रतियोगी उद्योंग सापेक्षतया अधिक पूँजी–गहन है। लियोन्टीफ के शब्दों में "श्रम के अंतरराष्ट्रीय विभाजन में अमेरिका की भागीदारी उत्पादन के पूँजी–गहन तरीकों की अपेक्षा श्रम–गहन तरीकों के विशिश्टीकरण पर आधारित है।" चूँकि लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

5.6.2 अन्य अध्ययन

लियोन्टीफ के अध्ययन से प्रोत्साहित होकर अनेक देशों में हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का परीक्षण अर्थशास्त्रियों ने किया। जापान के दो अर्थशास्त्री **टेटमोटो तथा इशिमूरा** ने जापान के व्यापार–ढाँचे का अध्ययन किया और लियोन्टीफ–विरोधाभास की पुश्टि की। अध्ययन के अनुसार जापान एक श्रम–प्रधान देश है, जबकि यह पूँजी–गहन वस्तुओं का निर्यात करता है। उसी प्रकार **स्टोप्लर और रोस्कैम्प** ने पूर्वी जर्मनी के अध्ययन में पाया कि पूर्वी जर्मनी पूँजी गहन वस्तु का निर्यात करता है और श्रम गहन वस्तु का आयात, जबकि पूर्वी जर्मनी वास्तव में एक पूँजी–प्रधान देश नहीं है। इसी प्रकार **वाल** ने कनाडा के अमेरिका के साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन में पाया कि कनाडा के निर्यात उसके आयातों की अपेक्षा अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि अमेरिका, कनाडा से अधिक पूँजी प्रधान देश है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के अमेरिका के साथ व्यापार ढाँचे के अध्ययन मे पाया कि भारत के आयातों की अपेक्षा, निर्यात अधिक पूँजी–गहन थे। जबकि भारत एक श्रम–गहन देश है। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त का खण्डन करता है।

5.6.3 लियोन्टीफ विरोधाभास की आलोचना

लियोन्टीफ विरोधाभास, हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त ने इस विरोधाभास के हल के लिए अनेक वैकल्पिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की और हेक्सर–ओहलिन प्रमेय की रक्षा करने का प्रयास किया। लियोन्टीफ द्वारा लिए गए आँकड़ो की विश्वसनीयता तथा उपयुक्तता पर सवाल भी खड़े किय गए। कुछ आलोचको ने उनकी अध्ययन प्रणाली को भी चुनौती दी।

1. आलोचक लियोन्टीफ के जाँच करने की विधि को तर्कपूर्ण नहीं मानते। वास्तविक आयातों की जगह उनका अध्ययन निर्यात उद्योगों तथा प्रतियोगी आयात प्रतिस्थापन उद्योागों पर केन्द्रीत है। लियोन्टीफ ने जो मेथडोलॉजी अपनायी वह अमेरिका के वास्तविक आयातित वस्तुओं की पूँजी गहनता को नहीं बताता है। यदि वास्तविक आयातित वस्तुओं के पूँजी–श्रम अनुपात का अध्ययन किया जाता तो निश्चित ही वे आयात श्रम–गहन होता।

2. प्रो0 बुकानन ने लियोन्टीफ द्वारा पूँजी की माप को दोशपूर्ण बताया क्योंकि लियोन्टीफ ने पूँजी–गुणांक की नहीं बल्कि वांछित निवेश गुणांक की गणना की है। इस प्रकार विविध उद्योगों में पूँजी के टिकाऊपन पर ध्यान नहीं दिया है।
3. अनेक शोधकर्ताओं का कहना है कि यदि भौतिक पूँजी में मानव पूँजी को भी जोड़ दिया तो लियोन्टीफ विरोधाभास का समाधान हो जाएगा। वास्तव में निर्यात क्षेत्र में लगी 'मानव पूँजी' उच्चकोटि की है जिसकी उत्पादकता काफी अधिक है। इसलिए कैनन अमेरिकी निर्यातों को "श्रम–गहन" कहने की बजाए "मानव पूँजी गहन" वस्तु कहते हैं।
4. पी0टी0 एल्सवर्थ के अनुसार लियोन्टीफ को अमेरिका के निर्यात तथा विदेशी निर्यात की तुलना करनी चाहिए थी। आयात–प्रतिस्थापन के लिए श्रम–पूँजी अनुपात की गणना दूसरे देश की आगत–निर्गत सारणी के आधार पर करनी चाहिए थी क्योंकि अमेरिका अपने आयातों को प्रतिस्थापित करने के लिए जिन वस्तुओं का उत्पादन करेगा वे पूँजी–प्रधान ही होंगी।
5. हैबरलर के अनुसार लियोन्टीफ ने पूँजी में श्रम को छोड़कर उत्पादन के अन्य साधन, मशीनरी एवं प्लांट आदि को सम्मिलित किया जबकि प्राकृतिक सम्पदा, साहसी एवं प्रबंध को छोड़ दिया। इन अन्य साधनों के कारण उत्पादन फलन भिन्न–भिन्न देशों में समरूप नहीं है।
6. ट्राविस का कहना है कि प्रतिबंधित व्यापार नीति की अवस्था में साधन–समानुपाती सिद्धान्त व्यापार के वास्तविक प्रवाह को दर्शाने में असमर्थ होता है। ट्राविस के अनुसार लियोन्टीफ विरोधाभास प्रतिबंधित व्यापार नीति का ही परिणाम है।
7. लियोन्टीफ विरोधाभास अमेरिका ने निर्यातों तथा आयातों पर माँग के प्रभाव की उपेक्षा करता है। रोमने राबिन्सन तथा जोन्स सहित अनेक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि लियोन्टीफ का विरोधाभास माँग की दशाओं का परिणाम है। पूँजी प्रचुर देश होने के बाद भी चूँकि अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय काफी अधिक है, वहाँ पूँजी–प्रधान वस्तुओं की माँग अधिक हो सकती है।
8. लियोन्टीफ ने स्वयं ही इस विरोधाभास का हल ढूँढने का प्रयास किया। लियोन्टीफ के अनुसार मात्रात्मक रूप से अमरिका मे श्रम की आपूर्ति या उपलब्धता भले सीमित लगे परन्तु यदि श्रम की गुणवत्ता पर विचार किया जाए तो अमेरिकी श्रम अन्य देशों की तुलना में कई गुना अधिक कुशल है। फलस्परूप यहाँ श्रम की प्रभावी आपूर्ति, भौतिक उपलब्धता से तीन गुना अधिक है। यह अधिक उत्पादकता उद्याशीलता, श्रेश्ठ संगठन तथा बेहतर वातावरण का परिणाम है। इस प्रकार यदि श्रम की उत्पादकता का समायोजन कर दिया जाए तो अमेरिका पूँजी–प्रधान नहीं बल्कि श्रम–प्रधान देश होगा। ऐसी स्थिति में लियोन्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त को पुश्ट करते हैं।

परन्तु लियोन्टीफ की इस व्याख्या की अनेक अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की। क्रेनिन ने अपने अध्ययन में पाया कि अमेरिकी श्रमिक, अन्य देशों में श्रमिकों की अपेक्षा मात्र 20 से 25% ही अधिक कुशल है, 300% नहीं, जैसा कि लियोन्टीफ का अनुमान है।

9. अन्य अध्ययनों में लियोन्टीफ–विरोधाभास के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन इसका खण्डन करते हैं।

जापान के अध्ययन में टाटेमोटो तथा इथीमूरा ने पाया कि जापान द्वारा अमरिका के निर्यातों का पूँजी–श्रम अनुपात अमेरिका के आयातों के पूँजी–श्रम अनुपास से कम था। यह निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त के अनुरूप है।

पूर्वी जर्मनी पर किए गए अध्ययन में देखा गया कि उसका 75% व्यापार साम्यवादी देशों से होता है और पूर्वी जर्मनी अपने अन्य व्यापार भागीदारों से अधिक पूँजी–प्रचुर है। इस अध्ययन के निश्कर्श कि पूर्वी जर्मनी पूँजी–गहन वस्तु का निर्यात तथा श्रम गहन वस्तु का आयात करता है, ओहलिन प्रमेय से मेल खाता है।

आर0 भारद्वाज ने भारत के संदर्भ में भी यह देखा कि भारत के आयातों की अपेक्षा उसके निर्यात अधिक श्रम गहन थे। जहाँ तक अल्पविकसित देशों द्वारा पूँजी–गहन वस्तुओं के निर्यात करने का सवाल है तो यहाँ उल्लेखनीय है कि ये देश अधिकांशतः आयातित तकनीकी और मशीनरी का प्रयोग करते हैं और साथ ही पूँजी–प्रचुर विकसित देशों की बहुराश्ट्रीय कम्पनियाँ इन देशों में प्रत्यक्ष–विदेशी निवेश करके वस्तुओं का उत्पादन तथा निर्यात करने में संलग्न रहती है। और फिर इन देशों में कई कारणों से साधन कीमतें सही साधन–अनुपात को नहीं दर्शाती हैं।

वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि भूमि प्रचुर देश आस्ट्रेलिया भूमि–प्रधान वस्तुओं जैसे ऊन, माँस और गेहूँ आदि का निर्यात करता है। ब्राजील और कोलम्बिया कॉफी के बड़े निर्यातक हैं। खाड़ी देश पेट्रोलियम उत्पादों के बड़े निर्यातक हैं। ये सभी हेक्सर–ओहलिन सिद्धान्त की पुश्टि करते हैं। इस सिद्धान्त के अनेक अपवाद / विरोधाभास विश्व व्यापार में पाए जा सकते हैं परन्तु इससे सिद्धान्त अवैध नहीं हो जाता है।

वनेक ने अपने अध्ययन में बताया कि अमेरिका में अनेक प्राकृतिक संसाधन और पूँजी परस्पर पूरक है। इसलिए अमेरिका का व्यापार ढाँचा ऐसा है कि वह अपने दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखता है। दूसरे`शब्दों में अमेरिका प्राकृतिक संसाधन गहन उत्पादन का आयात करता है न कि पूँजी–गहन उत्पाद का।

लघु–उत्तरीय प्रश्न–

1. लियोन्टीफ विरोधाभास पर टिप्पणी लिखिए।
2. लियोन्टीफ विरोधाभास की आलोचना लिखिए।

5.7 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय

एली हेक्सर के अनुसार स्वतंत्र व्यापार से साधन कीमतों में पूर्ण समानता हो जाती है। दूसरी तरफ ओहलिन का कहना था कि व्यवहार में साधन–कीमतों में पूर्ण समानता सम्भव नहीं है। स्वतंत्र व्यापार से सिर्फ साधन–कीमत समानीकरण की प्रवृति आती है और सिर्फ आंशिक साधन कीमत समानीकरण ही सम्भव है। स्टॉलपर तथा सैम्युल्सन और ऊजावा ने भी बाद में अपने मॉडलों में आंशिक समानीकरण का ही समर्थन किया। सैम्युल्सन ने बाद

में और लर्नर ने पूर्ण साधन–कीमत समानीकरण के मॉडल दिए।आप 2×2×5 मॉडल (अर्थात 2 देश, 2 वस्तुएँ और 2 साधन) के द्वारा देखेंगे कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार के फलस्परूप किस प्रकार साधन–कीमतों में समानीकरण होता है।

साधन कीमत समानीकरण के अनुसार अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है। दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।

देश A एक श्रम–प्रचुर देश है और पूँजी–दुर्लभ। इसलिए श्रम सस्ता तथा पूँजी मंहगी है। अतः पूँजी–श्रम अनुपात (K/L) सापेक्षतया कम है। इसी प्रकार देश B में श्रम दुर्लभ और मंहगा तथा पूँजी प्रचुर और सस्ती है तथा पूँजी–श्रम अनुपात (K/L) सापेक्षतया अधिक है। यह स्थिति व्यापार से पहले की है। व्यापार के पश्चात देश A में पूँजी–श्रम अनुपात बढ़ेगा और देश B में कम होगा, जब तक कि K/L अनुपात दो देशों में बराबर नहीं हो जाता। वास्तव में व्यापार शुरु होने के पश्चात देश A श्रम–प्रधान वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करेगा और उसका निर्यात करेगा। जिससे श्रम सापेक्षितया दुर्लभ होता जाएगा और उसकी कीमत बढ़ेगी। जबकि दुर्लभ साधन पूँजी सापेक्षिक रूप से प्रचुर हो जाएगी और इसकी कीमत गिरेगी। इसी प्रकार देश B में व्यापार के बाद पूँजी–प्रधान वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण से पूँजी की कीमत बढ़ेगी तथा दुर्लभ साधन श्रम सापेक्षतया प्रचुर हो जाएगा और उसकी कीमत घटेगी तथा इस प्रकार K/L घटेगा।

इस प्रकार व्यापार के परिणामस्वरूप बिना उत्पादन के संसाधनों की गति के दो देशों के बीच साधन कीमतें (K/L अनुपात) समान हो जाती है। साधन–कीमत समानीकरण की प्रक्रिया को एडवर्थ–बाडले बाक्स–चित्र की सहायता से आप समझ सकते हैं।

दो देश A और B में वस्तु x तथा y का उत्पादन होता है। चित्र 5.6 में x और y का मूल बिन्दु क्रमशः 0 तथा 0^1 दिखाया गया है। पूँजी को उर्ध्व अक्ष तथा श्रम को क्षेतिज अक्ष पर लिया गया है। दोनों ही देशों में सदैव ही वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी–गहन है। देश A श्रम–प्रचुर तथा देश B पूँजी–प्रचुर देश है।चित्र 5.6 में बाक्स $OA0^1B$ देश A के साधन पूर्ति को देर्शाता है। संविद वक्र $Oe0^1$ है जो कि यह बताता है कि वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी गहन है।

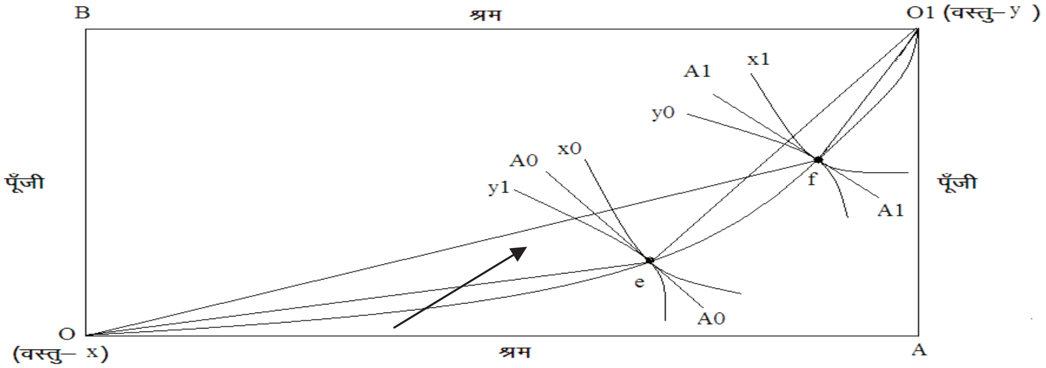

चित्र– 5.6

समोत्पाद वक्र X_0, X_1 वस्तु x के लिए तथा Y_0, Y_1 वस्तु y के लिए है।

व्यापार से पहले देश A, बिन्दु e पर उत्पादन करता है। जहाँ कि वस्तु x का समोत्पाद वक्र X_0, वस्तु y के समोत्पाद वक्र Y_0 को स्पर्श करता है। साधन कीमत रेखा P_0P_0 भी बिन्दु e पर दोनों वस्तुओं के समोत्पाद वक्रों को स्पर्श कर रही है। बिन्दु e पर वस्तु x में पूँजी–उत्पाद अनुपात (K_x/L_x) वस्तु y के पूँजी–उत्पाद अनुपात (K_y/L_y) से कम है। जो कि यह स्पष्ट करता है कि वस्तु y पूँजी–गहन तथा वस्तु x श्रम–गहन है।

ज्यामितीय रूप में–

वस्तु x पूँजी श्रम अनुपात– $\frac{Kx}{Lx} = \angle eoA$ तथा $\frac{Ky}{Ly} = \angle eo'B$

चित्र में, $\angle eo^1B > \angle eoA$

अर्थात $\frac{Ky}{Ly} > \frac{Kx}{Lx}$

अर्थात वस्तु y पूँजी प्रधान तथा x श्रम–प्रधान है। व्यापार शुरु होने के पश्चात देश A वस्तु x के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करेगा और वह उत्पादन संसाधनों को वस्तु y से वस्तु x उद्योग में लगाएगा। परिणाम स्वरूप संविदा वक्र पर उसका उत्पादन का संतुलन e से बिन्दु f पर चला जाएगा। देश A द्वारा व्यापार के पश्चात वस्तु x का उत्पादन बढ़ाने पर बिन्दु f पर इसके उत्पादन पूँजी–श्रम अनुपात में वृद्धि हो गयी जबकि वस्तु y का उत्पादन घटाने से उसके उत्पादन पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Ky}{Ly})$ में भी वृद्धि हो गयी।

बिन्दु f पर, $\angle FoA > \angle eoA$ तथा

$\angle fo^1B > \angle eo^1B$

स्पष्ट है कि व्यापार के पश्चात, श्रम–प्रचुर देश A में दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात में वृद्धि हो गयी। यह साधन कीमत रेखा के ढाल में परिवर्तन से भी स्पष्ट है। व्यापार के पश्चात की साधन कीमत रेखा P_1P_1, व्यापार–पूर्व की कीमत रेखा P_0P_0 से अधिक तिरछी है।

1

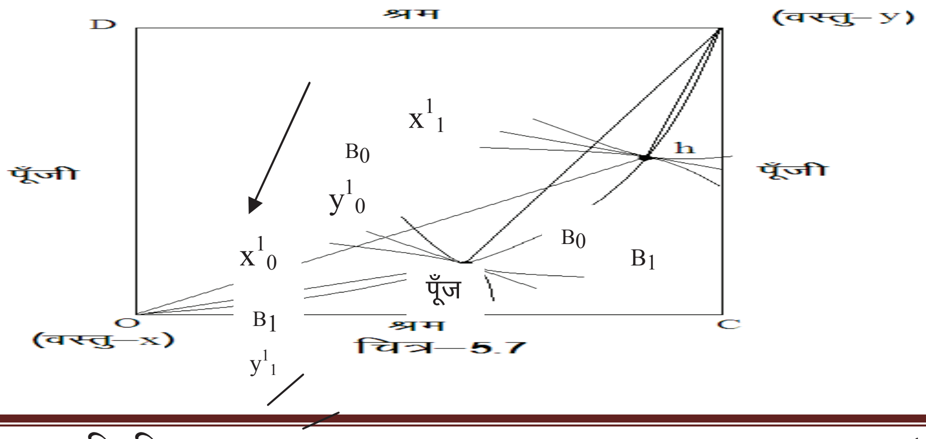

चित्र—5.7

चित्र 5.7 में, OCO^1D के बाक्स, देश B, जो कि पूँजी–प्रचुर देश है, के कुल संसाधन आपूर्ति को बताता है। संविदा वक्र O^1hO से स्पष्ट है कि वस्तु y, पूँजी गहन तथा वस्तु x, श्रम गहन है। व्यापार से पहले देश B बिन्दु h पर उत्पादन करता है, जहाँ दोनों वस्तुओं के समोत्पादन वक्र x_o तथा y_0 साधन कीमत रेखा P_0P_0, पर, बिन्दु h पर स्पर्श करते हैं। बिन्दु h पर, $\frac{Kx}{Lx}$ (X के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात)= $\angle hoe$ तथा $\frac{Kx}{Lx} = \angle ho^1D$

$\angle ho^{11}D > \angle hoe$

अर्थात् वस्तु y पूँजी–प्रधान तथा वस्तु x श्रम प्रधान है। व्यापार शुरु होने के पश्चात देश B, वस्तु y के उत्पादन में विशिश्टीकरण प्राप्त करने के लिए उसका उत्पादन बढ़कर और नया उत्पादन का संतुलन j बिन्दु पर होगा। फलस्वरूप देश B में वस्तु x तथा y दोनों में पूँजी–श्रम अनुपात में कमी आ जाती है।

बिन्दु j पर, $\frac{Kx}{Lx} = \angle joc$ तथा $\frac{Ky}{Ly} = \angle jo^{11}D$

चि0 में स्पश्ट है कि $\angle joc < \angle hoe$ तथा

$\angle jo^{11}D < \angle ho^{11}D$

स्पश्ट है कि व्यापार के पश्चात्, पूँजी–प्रचुर देश B में दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात में कमी हो गयी। यह साधन की सापेक्षिक कीमत अनुपात रेखा के ढाल में परिवर्तन से भी स्पश्ट है। व्यापार के पश्चात P_1P_1, P_0P_0 से अधिक सपाट हो जाती है।

अब आप दोनों देशों के बाक्स चित्र को संयुक्त रूप से एक साथ दिखाकर साधन–कीमत समानीकरण को दिखा सकते हैं।

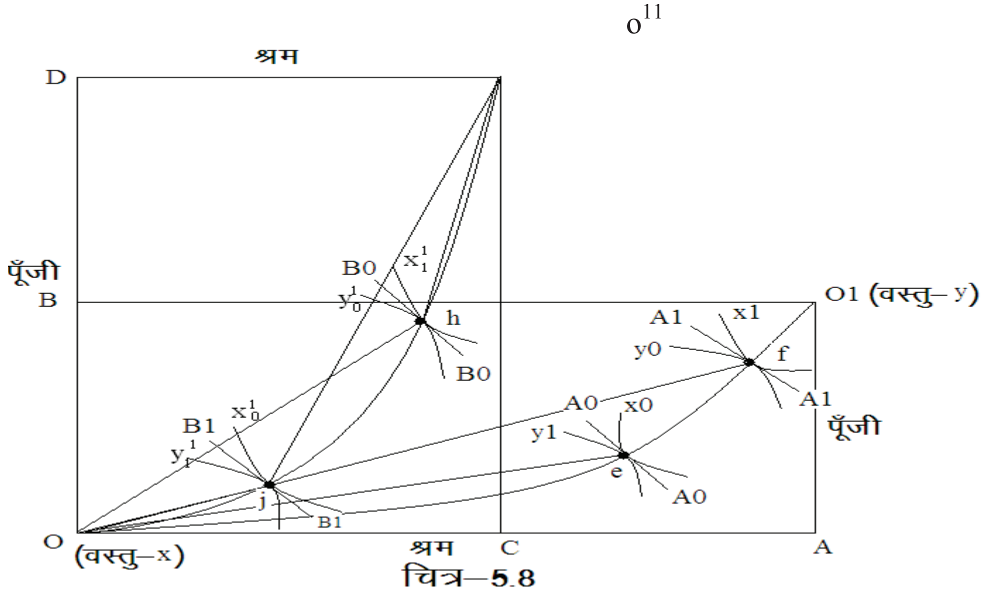

चित्र–5.8

चित्र 5.8 में दोनों देशों के बाक्स चित्रों को एक साथ दिखाया गया है। वस्तु x के लिए दोनों देशों का मूल बिन्दु o है। जबकि वस्तु y के लिए देश A का मूल बिन्दु o^1 oतथा देश B मूल बिन्दु o^{11} oहै। देश A में वस्तु x तथा y के समोत्पाद वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं से प्राप्त संविदा वक्र oeo^1 है जबकि देश B का संविदा वक्र ojo^{11} है। दोनों देशों के संविदा वक्र इस प्रकार से है कि दोनों ही देशों में सभी साधन–कीमत अनुपातों पर वस्तु x श्रम–गहन तथा वस्तु y पूँजी–गहन है क्योंकि दोनों वस्तुओं के उत्पादन फलन दोनों देशों में समान हैं, भले ही साधनों की कीमतों में भिन्नता हो।

व्यापार से पूर्व देश A, बिन्दु e तथा देश B, बिन्दु j पर उत्पादन कर रहा है। दोनों देशों में साधन कीमत अनुपात भिन्न है- देश A में A_oA_o तथा देश B में B_oB_o व्यापार से पूर्व साधन कीमत अनुपात को व्यक्त कर रही है।

व्यापार शुरू होने के बाद दोनों देशों में उत्पादन का संतुलन परिवर्तित हो जाता है और साधन कीमत अनुपात भी परिवर्तित हो जाता है देश .A में उत्पादन का संतुलन बिंदु E से बिंदु F पर तथा देश B में h से j पर चला जायेगा साधन कीमत रेखा .देश A में A_1A_1 तथा देश B में B_1B_1 हो जाती है। साधन–कीमत रेखा A_1A_1 तथा देश B_1B_1 में समानान्तर है। अर्थात् दोनों का ढाल बराबर है जो यह प्रदर्शित करता है कि व्यापार के पश्चात्, व्यापार के कारण दोनों देंशों में साधनों की कीमतें समान हो जाएगी। चित्र में व्यापार के पश्चात् देश A में वस्तु x के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Kx}{Lx})_A = \angle fOA$ तथा देश में पूँजी–श्रम अनुपात $(\frac{Ky}{Ly})_B = \angle joA$

चूँकि $\angle fOA = \angle joA$

अतः वस्तु y में भी, दोनों देशों में, व्यापार के पश्चात् साधन–कीमत अनुपात समान हो जाता है।

अतः स्पश्ट है कि देशों के बीच संसाधनों की आवाजाही न होने पर भी अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधन–कीमतों में समानीकरण ले आता है और इस अर्थ में वस्तु और सेवाओं में अंतरराष्ट्रीय व्यापार श्रम और पूँजी की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता का स्थानापन्न है।

5.7.1 साधन कीमत समानीकरण प्रमेय की आलोचना

साधन–कीमत समानकरण प्रमेय के अनुसार–व्यापार के पश्चात् दोनों देशों में वस्तु के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात समान होगा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वास्तविक जगत में भी व्यवहार में साधन कीमत समानीकरण सम्भव है। यह प्रमेय वास्तव में जिन मान्यताओं पर आधारित है वे अवास्तविक है और ऐसे अनेक बिन्दु हैं जो कि साधन–कीमत समानीकरण में अवरोध पैदा करते हैं–

1. व्यापार में सम्मिलित सभी देशों में उत्पादन फलन समरूप न होने की स्थिति में यह सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। वास्तव में वस्तुओं के उत्पादन के लिए भौतिक जलवायु और सामाजिक तथा बौद्धिक वातावरण अलग–अलग देशों में उत्पादन फलन समरूप नहीं हो सकते।
2. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता तथा उत्पादन में पैमाने के समान प्रतिफल की मान्यता पर आधारित है परन्तु वास्तविक विश्व में अपूर्ण तथा एकाधिकारिक प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है तथा साथ ही बहुत सारी वस्तुओं के उत्पादन में बढ़ते हुए प्रतिफल नियम भी लागू होता है।
3. यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि पूरी तरह से स्वतंत्र व्यापार हो रहा है साथ ही व्यापार से परिवहन लागतें भी शून्य है। परन्तु वास्तविक जगत में अनेक प्रकार के प्रशुल्क तथा गैर–प्रशुल्क बाधाएँ व्यापार में आती ही हैं और फिर परिवहन लागत शून्य नहीं हो सकती । व्यापार प्रतिबन्धों और परिवहन लागतों की उपस्थिति में साधन कीमत समानीकरण सम्भव नही होगा। इसी कारण ओहलिन पूर्ण साधन कीमत समानीकरण की सम्भावना से इन्कार करते हैं। साधन कीमतों में पूर्ण समानता तथी सम्भव है जब उत्पादन के साधन स्वयं पूर्ण रूप से गतिशील हों।
4. इस सिद्धान्त क लिए यह भी आवश्यक है कि दोनों देश दोनों वस्तुओं का उत्पादन करें। यदि एक देश एक वस्तु के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त करता है तो यह सिद्धान्त असफल हो जाता है।
5. साधन कीमतों में समानता के लिए यह जरूरी है कि साधनों की संख्या वस्तु की संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए। अनेक वस्तुओं, देशों तथा साधनों की स्थिति में साधन कीमतों की समानता संभव नहीं है।
6. यह सिद्धान्त संसाधनों की मात्रा को प्रत्येक देश में स्थिर मान लेता है जो कि अवास्तविक है।
7. साधन–प्रतिलोमता की स्थिति में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि इस स्थिति में पूँजी सम्पन्न देश पूँजी प्रधान तकनीकी का प्रयोग करके पूँजी गहन वस्तु का उत्पादन व निर्यात करेगा किन्तु श्रम प्रधान देश श्रम प्रधान तकनीकी से उसी वस्तु का उत्पादन करता है।
8. यह एक स्थैतिक सिद्धान्त है। यह एक दिए हुए समय में एक दी हुई संतुलन की स्थिति की कुछ विशेषताओं का केवल अध्ययन करता है। दी हुई तकनीक पर संसाधनों इत्यादि के दिए होने पर व्यापार का प्रभाव क्या होगा, परन्तु वास्तविक जगत में चीजें तेजी से बदलती रहती हैं। ऐसे में वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार के जरिए साधन कीमत में पूर्ण समानता संभव नहीं है।

इन तमाम आलोचनाओं के बावजूद इतना अवश्य कहा जा सकता है कि देशों की बीच संसाधनों की अगतिशीलता हो तो, वस्तुओं व सेवाओं का अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधन कीमत समानीकरण के सबसे बेहतर स्थितियाँ पैदा करता है। निःसंदेह व्यापार के अभाव में साधन मूल्यों की भिन्नता और अधिक हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. किसके के अनुसार व्यवहार में साधन–कीमतों में पूर्ण समानता सम्भव नहीं है
   i. एली हेक्सर
   ii. ओहलिन
   iii. सैम्युल्सन
   iv. लर्नर
2. साधन कीमत समानीकरण प्रमेय के अनुसार
   i. अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है।
   ii. स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।
   iii. यापार के पश्चात् दोनों देशों में वस्तु के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात समान होगा।
   iv. उपरोक्त सभी

5.8 सारांश

हेक्सर ओहलिन सिद्धान्त के अनुसार पूँजी आधिक्य देश, पूँजी गहन वस्तु के उत्पादन में विशिश्टीकरण करेगा और निर्यात करेगा तथा श्रम–प्रधान देश, श्रम–गहन वस्तु का उत्पादन तथा निर्यात करेगा। हेक्सर–ओहलिन मॉडल में साधन–सम्पन्नता या प्रचुरता की धारणा को दो अर्थों में लिया गया है– साधन कीमतों के रूप में तथा भौतिक पदों में । मूल्य मापदण्ड के अनुसार एक देश जिसमें पूँजी सापेक्षिक रूप से सस्ती और श्रम सापेक्षिक रूप से मंहगी है उसे पूँजी–प्रचुर देश कहा जाएगा भले ही इस देश में पूँजी और श्रम की उपलब्ध भौतिक मात्रा दूसरे देश के मुकाबले कितनी भी हो। भौतिक मापदण्ड के आधार पर एक देश सापेक्षिक रूप से पूँजी–प्रचुर देश होगा यदि दूसरे देश की अपेक्षा यहाँ पूँजी का अनुपात श्रम से अधिक है।

हेक्सर–ओहलिन का सिद्धान्त या प्रमेय कीमत–मापदण्ड का प्रयोग करने पर सिद्ध किया जा सकता है पर भौतिक मापदण्ड के साथ यह सिद्ध हो पाए, यह आवश्यक नहीं है। ओहलिन कीमत–मापदण्ड के आधार पर ही साधन–सम्पन्नता को परिभाशित करते हैं। उनके अनुसार यदि एक देश में पूँजी सापेक्षतया पूँजी सस्ती है तो वहाँ पूँजी की पूर्ति अवश्य ही अधिक होगी और यदि श्रम सापेक्षिक सस्ता है तो उस देश में श्रम की प्रचुरता होनी चाहिए। भौतिक मापदण्ड के रूप में साधन सम्पन्नता को परिभाशित करने पर यह सिद्धान्त केवल तभी वैध होगा जब माँग की प्रतिलोमता की स्थिति न हो – जबकि दोनों देशों में प्रत्येक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं की रुचियाँ उपभोग अधिमान समान हो और आयात माँग की लोच इकाई के बराबर हो।

लियोन्टीफ ने अपने अध्ययन में हेक्सर–ओहलिन के सिद्धान्त के विपरीत निश्कर्श पर पहुँचते हैं। अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। अर्थात् निर्यात उद्योगों की अपेक्षा आयात प्रतियोगी उद्योंग सापेक्षतया अधिक पूँजी–गहन है। लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

साधन कीमत समानीकरण प्रमेय के अनुसार अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधनों की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता का प्रतिस्थापन है। दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है। देशों के बीच संसाधनों की आवाजाही न होने पर भी अंतरराष्ट्रीय व्यापार साधन–कीमतों में समानीकरण ले आता है और इस अर्थ में वस्तु और सेवाओं में अंतरराष्ट्रीय व्यापार श्रम और पूँजी की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता का स्थानापन्न है। साधन–कीमत समानकरण प्रमेय के अनुसार–व्यापार के पश्चात् दोनों देशों में वस्तु के उत्पादन में पूँजी–श्रम अनुपात समान होगा।

5.9 शब्दावली

मूल्य के सामान्य साम्य सिद्धान्त– के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसकी समग्र माँग तथा समपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

कारक गहनता– उत्पादन में प्रयुक्त साधनों का अनुपात। यदि दो साधन श्रम और पूँजी है तो श्रम और पूँजी का अनुपात कारक महनता को व्यक्त करता है।

कारक गहनता की प्रतिलोमता– उस स्थिति में पायी जाती है जब एक समोत्पाद वक्र दूसरे समोत्पाद वक्र पर स्थित हो या उसे एक अधिक बिन्दुओं पर काटे। इस तरह पहले को एक साधन गहनता प्रतिलोमता तथा दूसरे को बहुसाधन गहनता प्रतिलोमता कहते हैं।

संविदा वक्र– किसी देश के दो वस्तुओं के समोत्पाद वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने पर प्राप्त रेखा। संविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर पूँजी और श्रम की सीमांत उत्पादकता का अनुपात समान होता है इसलिए इसे उत्पादन के कुशलता बिन्दुओं का बिन्दूपथ कहते हैं।

लियोन्टीफ का विरोधाभास–लियोन्टीफ ने संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि पूँजी प्रधान है, के आयातों–निर्यातों का अध्ययन किया। लियोन्टीफ के अनुसार अमेरिका पूँजी प्रधान देश होते हुए भी श्रम प्रधान वस्तु का निर्यात तथा पूँजी प्रधान वस्तु का आयात करते हैं। चूँकि लियान्टीफ के निश्कर्श हेक्सर–ओहलिन के निश्कर्शों के विपरीत थे, इसलिए इसे 'लियोन्टीफ विरोधाभास' कहा गया।

साधन कीमत समानीकरण– दो देशों की बीच वस्तुओं का स्वतंत्र व्यापार तुलनात्मक लागतों की भिन्नता को समाप्त कर देता है और साधनो के सापेक्षिक मूल्यों में समानता स्थापित हो जाती है।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

3. Iii ,2.ii , 3.iii

सत्य व असत्य :

5. सत्य ,2.सत्य ,3. असत्य ,4.असत्य ,5.असत्य ,6.असत्य ,7.सत्य ,8.सत्य

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

ii. ii , ii. iv

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics*,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd ,2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc. ,Illinois , 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन ,नई दिल्ली ,2007
- एम०एल०झिंगन ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,वृंदा पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहादि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , ,नई दिल्ली ,लिमिटेड1979.

5.12 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics*,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd ,2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc. ,Illinois , 1968
- Dominik Salvatore, conomicsInternational E, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल ,*अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र*, शिव पब्लिशिंग हाउस ,इलाहबाद ,2004

- एच० एस० अग्रवाल ,बरला ०एस०तथा सी ,*अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा ,2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन ,नई दिल्ली ,2007
- एम०एल०झिंगन ,अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,वृंदा पब्लिकेशन ,दिल्ली ,2010.
- *डॉम .पी .जे .सिंघई एवं डॉ .सी .जी .िश्रा ,अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्तसाहित्य , ,भवन पब्लिकेशंस आगरा ,2010*

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. हेक्सर–ओहलिन के अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. साधन–कीमत सामनीकरण प्रमेय की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
3. चित्र की सहायता से आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. प्रतिष्ठित व्यापार सिद्धान्त तथा आधुनिक व्यापार सिद्धान्त की तुलना कीजिए तथा बताइए कि किस प्रकार से आधुनिक सिद्धान्त, प्रतिष्ठित सिद्धान्त से श्रेश्ठ है?
5. लियोन्टीफ विरोधाभास का परीक्षण कीजिए।

****

इकाई 6 – व्यापार की शर्तें और आर्थिक संवृद्धि

इकाई संरचना

61 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 व्यापार की शर्त

6.3.1 व्यापार की शर्त का अर्थ

6.3.2 व्यापार की शर्त के प्रकार

6.4 व्यापार की शर्त के सिद्धांत

6.4.1 जे०एस० मिल का प्रतिपूरक मांग सिद्धांत

6.4.2 प्रस्ताव वक्र विश्लेषण

6.5 व्यापार की शर्त एवं आर्थिक संवृद्धि

6.5.1 व्यापार की शर्त और आर्थिक संवृद्धि में सम्बन्ध

6.5.2 इमिजेराइजिंग विकास का सिद्धांत (Theory of Immiserising Growth)

6.5.3 व्यापार की शर्त एवं विकासशील देश

6.6 सारांश

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

6.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड – दो "व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण, एवं सीमा संघ के सिद्धांत" से सम्बंधित यह पहली इकाई है. इस इकाई का शीर्षक "व्यापार की शर्तें और आर्थिक संवृद्धि है". प्रस्तुत इकाई में व्यापार की शर्त का अर्थ, इसके विभिन्न प्रकार, और इसको निर्धारित करने वाले तत्वों के बारे में विस्तार से बताया गया है. इस इकाई में व्यापार की शर्त से सम्बंधित कुछ सिद्धांत भी दिए गए हैं. साथ ही व्यापार की शर्त और आर्थिक संवृद्धि के बीच के सम्बन्ध को भी रेखांकित किया गया है. इसके अलावा विकसित और विकासशील देशों के बीच व्यापार के कारण पैदा हुई विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है.

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- व्यापार की शर्त के अर्थ को समझ सकेंगे.
- व्यापार की शर्त के विभिन्न प्रकार से परिचित होंगे.
- व्यापार की शर्त से सम्बंधित जे०एस० मिल के विचार और प्रस्ताव वक्र तकनीक से परिचित होंगे.
- व्यापार की शर्त को प्रभावित करनेवाले घटक को जान पाएंगे.
- व्यापार की शर्त तथा आर्थिक संवृद्धि के बीच के सम्बन्ध से परिचित होंगे.
- विकासशील देशो का व्यापार की शर्त क्यों प्रतिकूल होता है, इसके बारे में जान सकेंगे.
- व्यापार को विकास का इंजन क्यों कहा जाता है, यह समझ सकेंगे.

6.3 व्यापार की शर्त

6.3.1 व्यापार की शर्त का अर्थ

साधारण शब्दों में जिस दर पर एक देश की वस्तुओं का विनिमय दूसरे देश की वस्तुओं से होता है, उसे व्यापार की शर्त कहा जाता है. इस प्रकार किसी देश के निर्यात और आयात के बीच का विनिमय अनुपात ही व्यापार की शर्त है. किन्तु आगे जब हम व्यापार की शर्त के विभिन्न प्रकार का अध्ययन करेंगे तब हमें पता चलेगा कि व्यापार की शर्त का मतलब इससे कहीं अधिक व्यापक है. इसको निर्धारित करने में न सिर्फ विनिमय होने वाले वस्तुओं की भौतिक मात्रा का महत्व है बल्कि उनके मूल्यों का भी उतना ही अधिक महत्व है. साथ ही विनिमय होनेवाले वस्तुओं के उत्पादन में लगे साधनों व उनके पारिश्रमिक की दर का भी महत्व है.

6.3.2 व्यापार की शर्त के प्रकार

व्यापार की शर्त को निर्धारित करने के लिए अर्थशास्त्रियों ने कई सूत्र दिए हैं. इन्हें तीन श्रेणीओं में रखा गया है.

1. वस्तु-विनिमय अनुपात से सम्बंधित व्यापार की शर्त
2. संसाधनों के हस्तांतरण से सम्बंधित व्यापार की शर्त
3. उपयोगिता से सम्बंधित व्यापार की शर्त

1. **वस्तु-विनिमय अनुपात से सम्बंधित व्यापार की शर्तें**: इनकी तीन श्रेणियाँ हैं – a) सकल वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त, b) शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त तथा c) आय व्यापार की शर्त. इनमें प्रथम दो अर्थात् सकल वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त तथा शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त का सूत्र डब्लु०एफ० टौसिग (W.F. Taussig) ने दिया है, जबकि अंतिम अर्थात् आय व्यापार की शर्त का सूत्र डी०एस० डौरेंस (D.S. Dorrance) ने दिया है.

a) सकल वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त (Gross Barter Terms of Trade): – इसके अनुसार व्यापार की शर्त, आयात की भौतिक मात्रा सूचकांक तथा निर्यात की भौतिक मात्रा सूचकांक का अनुपात है. इसके अनुसार हमें इस बात का पता चलता है की देश की वस्तु के निर्यात की भौतिक मात्र और आयात की भौतिक मात्रा के बीच विनिमय का अनुपात क्या है. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$G = \frac{M_q}{X_q} \times 100$$

यहाँ G सकल वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त है, M_q आयात की भौतिक मात्रा का सूचकांक तथा X_q निर्यात की भौतिक मात्रा का सूचकांक है. मात्रा सूचकांक की गणना किसी आधार वर्ष को मानकर किया जाता है.

b) शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त(Net Barter Terms of Trade): - इसके अनुसार व्यापार की शर्त, निर्यात मूल्य सूचकांक तथा आयात मूल्य सूचकांक का अनुपात है. इसके अनुसार देश से निर्यात की जाने वाली वस्तु के सापेक्षिक मूल्य का पता चलता है. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$N = \frac{X_p}{M_p} \times 100$$

यहाँ N शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त है, X_p निर्यात मूल्य सूचकांक तथा M_p आयात मूल्य सूचकांक है. यहाँ भी मूल्य सूचकांक की गणना किसी आधार वर्ष को मानकर किया जाता है. व्यापार की शर्त निकालने के लिए प्रायः इसी सूत्र का प्रयोग किया जाता है.

c) आय व्यापार की शर्त(Income Terms of Trade): - आय व्यापार की शर्त शुद्ध व्यापार की शर्त का संशोधित रूप है. इससे किसी देश की आयात क्षमता(capacity to import) का पता चलता है. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$I = \frac{\text{निर्यात आय सूचकांक}}{\text{आयात मूल्य सूचकांक}}$$

यहाँ I, आय व्यापार की शर्त है.

$$I = \frac{X_p \times X_q}{M_p}$$

अर्थात् $I = N \times X_q$

यानि, आय व्यापार की शर्त ज्ञात करने के लिए शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त को निर्यात मूल्य सूचकांक से गुणा किया जाता है.

2. **संसाधनों के हस्तांतरण से सम्बंधित व्यापार की शर्तें:** इनका प्रतिपादन जैकब वाइनर (Jacob Viner) ने किया है. ये दो प्रकार की हैं – a) एक घटकीय व्यापार की शर्त (Single Factoral Terms of Trade), तथा b) द्वि घटकीय व्यापार की शर्त (Double Factoral Terms of Trade). यहाँ शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त को साधनों की उत्पादकता में हुए परिवर्तन के साथ समायोजित करने का प्रयास किया गया है.

   a) एक घटकीय व्यापार की शर्त (Single Factoral Terms of Trade): इसे प्राप्त करने के लिए शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त को निर्यात-वस्तु के उत्पादकता में हुए परिवर्तन के साथ समायोजित किया जाता है. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$S = \frac{X_p \times X_z}{M_p}$$

यहाँ S एक-घटकीय व्यापार की शर्त है और X_z निर्यात उत्पादकता सूचकांक है. शेष संकेत पूर्व-उद्धरित हैं.

   b) द्वि-घटकीय व्यापार की शर्त(Double Factoral Terms of Trade): इसे ज्ञात करने के लिए शुद्ध वस्तु-विनिमय व्यापार की शर्त को निर्यात-वस्तु तथा आयात-वस्तु के उत्पादकता में हुए परिवर्तनों के साथ समायोजित किया जाता है. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$D = \frac{X_p \times X_z}{M_p \times M_z}$$

   यहाँ D द्वि-घटकीय व्यापार की शर्त है और M_z आयात-वस्तु उत्पादकता सूचकांक है. शेष संकेत पूर्व-उद्धरित हैं.

   इन दोनों सूत्रों की सबसे बड़ी कमी यह है कि आयात-वस्तु अथवा निर्यात-वस्तु की उत्पादकता में परिवर्तन की गणना करना बहुत मुश्किल है जिसके कारण इनका प्रयोग बहुत कम होता है.

3. **उपयोगिता से सम्बंधित व्यापार की शर्त:** ये दो प्रकार की हैं – a) वास्तविक लागत व्यापार की शर्त (Real Cost Terms of Trade), तथा b) उपयोगिता व्यापार की शर्त (Utility Terms of Trade).

   a) वास्तविक लागत व्यापार की शर्त (Real Cost Terms of Trade): यह एक-घटकीय व्यापार की शर्त की कमी दूर करने का प्रयास करता है और निर्यात उत्पाद की वास्तविक लागत के आधार पर व्यापार की शर्त का निर्धारण करता है. निर्यात उत्पाद को उत्पादित करने में प्रति इकाई संसाधन की उपयोगिता में ह्रास को वास्तविक लागत कहते हैं (The amount of utility lost or sacrificed per unit of resources employed in producing exports is the “real cost” of producing export). इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$R = \frac{X_p \times X_z}{M_p \times X_r}$$

$$\text{अथवा,} \quad R = N \times \frac{X_z}{X_r}$$

यहाँ, R वास्तविक लागत व्यापार की शर्त और X_r निर्यात उत्पाद को उत्पादित करने का वास्तविक लागत सूचकांक है. शेष संकेत पूर्व-उद्धरित हैं. लेकिन इस व्यापार की शर्त की यह कमी है कि वास्तविक लागत का आकलन बहुत मुश्किल है क्योंकि निर्यात वस्तु में लगे संसाधनों की उपयोगिता में ह्रास का आकलन भला कैसे हो सकता है!

b) उपयोगिता व्यापार की शर्त (Utility Terms of Trade): इस अवधारणा को डी०एच० रॉबर्टसन (D.H. Robertson) ने वास्तविक व्यापार की शर्त (True Terms of Trade) कहा. इसका सूत्र इस प्रकार है:

$$U = N \times \frac{X_z}{X_r} \times \frac{1}{U_m}$$

यहाँ, U उपयोगिता व्यापार की शर्त तथा U_m वह सूचकांक है जो आयात वस्तु के कारण घरेलु वस्तु के उपभोग के त्याग की वांछनीयता को दर्शाता है. शेष संकेत पूर्व-उद्धरित हैं. किन्तु यह सूत्र भी अत्यंत जटिल होने के कारण अपनी प्रासंगिकता नहीं रख पाता.

6.4 व्यापार की शर्त के सिद्धांत

एडम स्मिथ ने अपने निरपेक्ष लागत सिद्धांत और डेविड रिकार्डो ने अपने तुलनात्मक लागत सिद्धांत में इस बात का उल्लेख किया की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण का अवसर प्रदान करता है जिसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि होती है. उनके अनुसार उत्पादन वृद्धि के फलस्वरूप देशों का उपभोग लाभ अथवा कल्याण में वृद्धि व्यापार की शर्त पर निर्भर करेगा. किन्तु ये दोनों सिद्धांत इस बात की चर्चा नहीं करते की व्यापार की शर्त का निर्धारण कैसे होता है और व्यापार की शर्त किन बातों पर निर्भर करता है. दोनों सिद्धांत सिर्फ इस बात की चर्चा करते हैं कि व्यापार की शर्त किसी देश के आतंरिक लागत अनुपात या आतंरिक व्यापार की शर्त से जितना ही दूर होगा, उस देश को कल्याण में वृद्धि का लाभ उतना ही अधिक प्राप्त होगा. ये दोनों सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए केवल लागत पक्ष पर बल देते हैं. मांग पक्ष को नजरअंदाज करने के कारण संभवतः ये दोनों प्रतिष्ठित सिद्धांत व्यापार की शर्त निर्धारण तक नहीं पहुँच पाए. जब कभी भी व्यापार की शर्त के सिद्दांत की बात आती है तब सर्वप्रथम जे०एस० मिल का नाम लिया जाता है जिन्होंने अपने प्रतिपूरक मांग सिंद्धांत (Theory of Reciprocal Demand) में व्यापार की शर्त को निकालने का प्रयास किया किन्तु एजवर्थ तथा मार्शल ने इसको प्रस्तावना वक्र की मदद से और अधिक तर्क संगत बनाया. इन दोनों सिद्धांतों की चर्चा करने के उपरांत हम आगे बढेंगे.

6.4.1 जे०एस० मिल का प्रतिपूरक मांग सिद्धांत (Theory of Reciprocal Demand)

जे०एस० मिल के पूर्व एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो का मत था कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को निर्धारित करने में लागत की दशाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. मिल के अनुसार लागत ही नहीं बल्कि मांग की दशा भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करता है. उनके अनुसार दो देशों के बीच व्यापार परस्पर मांग पर निर्भर करता है. बिना मांग के व्यापार होगा ही नहीं चाहे वास्तु की लगत अत्यंत कम क्यों न हो. जे०एस० मिल व्यापार की शर्त तो नहीं निकाल पाए किन्तु उन्होंने व्यापार की शर्त की सीमा को

अवश्य निर्धारित किया अर्थात् दो देशों के बीच वस्तुओं का आदान-प्रदान की दर किस सीमा के बीच होगा, यह मिल ने हमें बताया.

मिल के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रतिपूरक मांग सिद्धांत और उनके द्वारा निर्धारित व्यापार की शर्त की सीमा(range) को समझने के लिए हम दो देश, दो वस्तु मॉडल का सहारा लेते हैं. प्रस्तुत उदाहरण में भारत और श्रीलंका दो देश हैं, जबकि कपड़ा और चाय दो वस्तु हैं.

देश	कपड़ा(इकाई)		चाय(इकाई)	श्रम लागत
भारत	120	या	100	x
श्रीलंका	40	या	80	x

ऊपर की सारणी से स्पष्ट है कि भारत को कपड़े के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है जबकि श्रीलंका को चाय के उत्पादन में तुलनात्मक लाभ प्राप्त है, क्योंकि

$$\frac{120}{40} > \frac{100}{80}$$

अथवा,

$$\frac{80}{100} < \frac{40}{120}$$

भारत के लिए 120 इकाई कपड़े के लिए न्यूनतम स्वीकार्य मूल्य 100 इकाई चाय है. अतः 1 इकाई कपड़े के लिए $\frac{100}{120} = 0.83$ इकाई चाय हुआ. इसी प्रकार श्रीलंका तभी व्यापार में सम्मिलित होगा जब उसे 40 इकाई कपड़े के लिए 80 इकाई से कम चाय निर्यात करना पड़े. यानि श्रीलंका के लिए 1 इकाई कपड़े के लिए स्वीकार्य मूल्य अधिक से अधिक $\frac{80}{40} = 2.0$ इकाई चाय हुआ. इस प्रकार व्यापार की शर्त की सीमा निम्न प्रकार निर्धारित होगी:

1 इकाई कपडा = 2.0 इकाई चाय (ऊपरी सीमा)

1 इकाई कपड़ा = 0.83 इकाई चाय (निचली सीमा)

यहाँ मिल ने दो देशों के बीच व्यापार की शर्त की सीमा निर्धारित करने में सफलता प्राप्त की जो दोनों देशों की लागत और मांग की दशाओं पर निर्भर करता है. एजवर्थ तथा मार्शल ने इस मुद्दे को आगे बढ़ाया और अपने प्रस्ताव वक्र विश्लेषण की मदद से व्यापार की शर्त के निश्चित मान को निर्धारित करने में सफलता प्राप्त की जो दोनों देशों की लागत तथा मांग की दशाओं पर निर्भर करता है. इसकी चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं.

6.4.2 प्रस्ताव वक्र विश्लेषण (Offer Curve Anaysis)

प्रस्ताव वक्र तकनीक जे०एस० मिल के प्रतिपूरक मांग सिद्धांत का विकसित रूप है. इसे प्रस्तुत करने का श्रेय एजवर्थ और मार्शल को जाता है. प्रस्ताव वक्रों के माध्यम से दो देशों के बीच व्यापार की कुल मात्रा तथा व्यापार की शर्त का निश्चित मान निर्धारित होता है. किसी देश का प्रस्ताव वक्र उस देश की मांग तथा पूर्ति दोनों ही दशाओं का चित्रण करता है. यह विदेशी वस्तु के लिए घरेलु मांग को दर्शाता है, साथ ही यह उस देश की पूर्ति दशा को भी दर्शाता है यदि इसके माध्यम से आयातित वस्तु की मांग के लिए किये जानेवाले निर्यात-मात्रा को लागत के रूप में प्रदर्शित किया जाय. प्रस्ताव वक्र का स्वरुप गैर-रेखीय होता है क्योंकि खरीदी जानेवाली वस्तु पर क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम लागू होता है. जहाँ पर दोनों देशों के प्रस्ताव वक्र एक दुसरे को काटते हैं वहां पर कुल आयात-निर्यात की मात्रा तथा

साथ ही व्यापार की शर्त का निर्धारण होता है. प्रस्ताव वक्र का निर्माण तथा इसकी मदद से व्यापार की शर्त के निर्धारण को समझने के लिए हम प्रस्तुत सारणी की मदद लेते हैं.

यहाँ भारत और श्रीलंका दो देश हैं जो कपड़ा और चाय का लेन-देन करना चाहते हैं. भारत कपड़ा निर्यातक है और श्रीलंका चाय निर्यातक है. सर्वप्रथम हम भारत के प्रस्ताव वक्र का निर्माण प्रस्तुत सारणी की मदद से करते हैं.

कपड़ा(निर्यात) इकाई	चाय(आयात) इकाई	व्यापार की शर्त अनुपात
25	5	5:1
40	10	4:1
60	20	3:1
80	40	2:1
100	100	1:1

प्रारंभ में भारत 25 इकाई कपड़े के बदले 5 इकाई चाय आयात करने को तैयार है, जिससे व्यापार की शर्त का अनुपात 5:1 हुआ. भारत जैसे-जैसे कपड़े की निर्यात मात्रा बढ़ाने को तैयार होता है, भारत के लिए कपड़े की सीमांत उपयोगिता बढ़ती है और आयातित वस्तु चाय की मात्रा बढ़ने से उसकी सीमान्त उपयोगिता भारत के लिए घटती है, जिसके कारण व्यापार की शर्त का अनुपात क्रमशः 4:1, फिर 3:1, 2:1 और अंत में 1:1 हो जाता है.

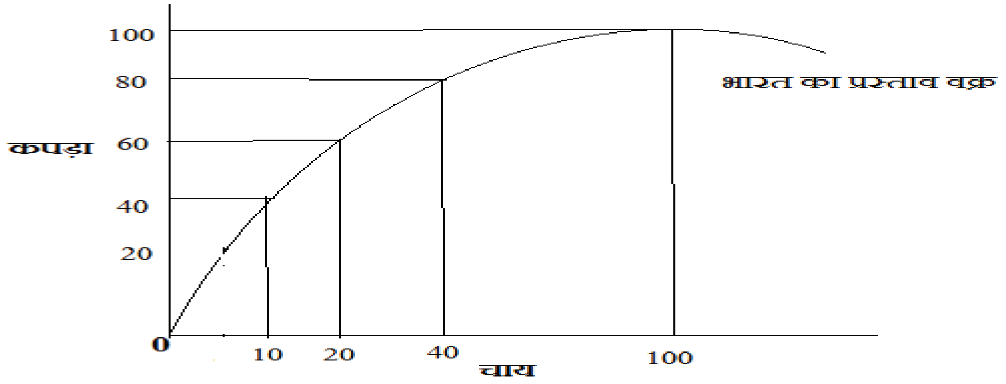

इसी प्रकार हम श्रीलंका के प्रस्ताव वक्र का निर्माण करते हैं. संतुलन का व्यापार की शर्त वहां निर्धारित होता है जहाँ दोनों देशों के प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को काटते हैं. Oe व्यापार की शर्त रेखा है जो हमें

दोनों देशों के प्रस्ताव वक्रों के कटान विन्दु से प्राप्त हुआ है. कटान विन्दु पर हमें व्यापार की कुल मात्रा (oa+ob) का भी पता चल जाता है.

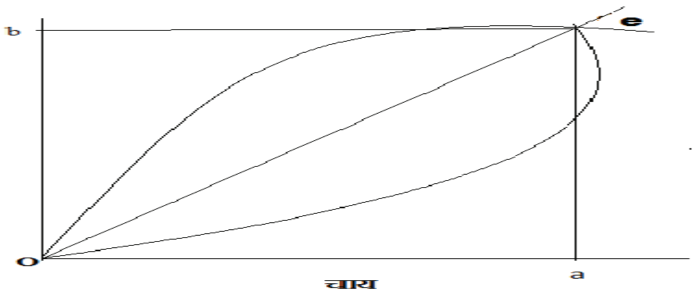

संतुलन का व्यापार की शर्त

अभ्यास प्रश्न 1:

1. लघु उत्तरीय प्रश्न:

i) व्यापार की शर्त का क्या तात्पर्य है?

ii) व्यापार की शर्त कितने प्रकार के होते हैं?

2. अति लघुउत्तरीय प्रश्न:

i) प्रस्ताव वक्र तकनीक किसने विकसित की?

ii) प्रतिपूरक मांग सिद्धांत किसने प्रस्तुत किया?

3. बहुविकल्पीय प्रश्न:

i) प्रस्ताव वक्र किसी देश की स्थिति को प्रदर्शित करता है –

a) मांग की दशा को b) पूर्ति की दशा को c) मांग और पूर्ति दोनों दशा को.

ii) प्रस्ताव वक्र तकनीक विकसित की –

a) मार्शल ने b) एजवर्थ ने c) मार्शल तथा एजवर्थ दोनों ने

iii) अर्थव्यवस्था का प्रस्ताव वक्र पूर्णतः लोचदार होता है -

a) विशाल अर्थव्यवस्था b) लघु अर्थव्यवस्था c) अतिलघु अर्थव्यवस्था

iv) प्रतिपूरक मांग सिद्धांत से ज्ञात होता है –

a) व्यापार की शर्त का निश्चित मान b) व्यापार की शर्त की सीमा c) व्यापार की कुल मात्रा

v) प्रस्ताव वक्रों के कटान से ज्ञात होता है –

a) व्यापार की शर्त b) कुल व्यापार की मात्रा c) दोनों

6.5 व्यापार की शर्त और आर्थिक संवृद्धि

6.5.1 व्यापार की शर्त और आर्थिक संवृद्धि में सम्बन्ध

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ अथवा हानि निर्धारित करने में व्यापार की शर्त का महत्वपूर्ण योगदान है. किसी देश के घरेलू उत्पादन में वृद्धि, चाहे वह उत्पादन-पैमाने के विस्तार से संभव हुआ हो या साधनों के कुशलता में वृद्धि से, उसका लोगों के खुशहाली या जीवन-स्तर के सुधार के रूप में रूपांतरित होना तभी संभव है जब उस देश के व्यापार की शर्त उसके लिए अनुकूल हो. जगदीश भगवती ने अपने इमिजेराइजिंग विकास (Immiserising Growth) का सिद्धांत में इसी बात को प्रमाणित करने का प्रयास किया है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे. व्यापार की शर्त का देश की आर्थिक विकास तथा वितरण पर भी प्रभाव पड़ता है. देश की व्यापार की शर्तों में सुधार होने से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में देश की क्रय शक्ति बढ़ती है जो उसके आर्थिक विकास में सहायक होती है, क्योंकि वह देश एक निश्चित निर्यात के बदले अधिक वस्तुओं का आयात कर सकने में सफल होता है. इससे न केवल निर्यात उद्योगों बल्कि आयात प्रतिस्थापन उद्योगों को भी लाभ होता है. व्यापार की शर्त प्रतिकूल होने से इसका उल्टा असर होता है. आज विकसित और विकासशील देशों के बीच विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचो पर टकराव का एक कारण यह भी है. विकासशील देशों की यह शिकायत रहती है कि विकसित देश कोई न कोई हथकंडा अपनाकर विकासशील देशों के उत्पादों को अपने बाजार में उचित मूल्य प्राप्त नहीं होने देते. इसके कारण विकसित और विकासशील देशों के बीच आर्थिक विषमता की खाई और चौड़ी होती जा रही है. इस मुद्दे पर विकसित और विकासशील देशो के बीच जो वार्तालाप होता है उसे उत्तर-दक्षिण संवाद (North-South Dialogue) के नाम से भी जाना जाता है.

6.5.2 इमिजेराइजिंग विकास का सिद्धांत (Theory of Immiserising Growth)

सर्वप्रथम एजवर्थ ने इस बात की आशंका व्यक्त की थी कि निर्यात क्षेत्र में लागत में कमी का लाभ देश को नहीं भी मिल सकता है यदि व्यापार की शर्त देश के प्रतिकूल हो जाय. इसी बात को जगदीश भगवती ने ज्यामितीय विधि से अपने इमिजेराइजिंग विकास (Immiserising growth) सिद्धांत में विधिवत प्रस्तुत किया. जगदीश भगवती के सिद्धांत को हम प्रस्तुत चित्र की मदद से समझ सकते हैं.

देश गेंहू के उत्पादन में चाय के उत्पादन की तुलना में अधिक निपुण है जिसके कारण गेहूं उसके लिए निर्यात-योग्य वास्तु है जबकि चाय आयात-योग्य वास्तु है. हम यहाँ वास्तु विनिमय प्रणाली की मदद से स्थिति को समझने का प्रयास करेंगे. जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, प्रारम्भ में देश, उत्पादन संभावना वक्र AB के E विन्दु पर उत्पादन कर रहा है और व्यापार की शर्त P_1P_1 होने पर तटस्थता वक्र IC_2 के F विन्दु पर उपभोग कर रहा है. अब देश के उत्पादन संभावना वक्र में विस्तार होता है जिसके कारण देश अब उत्पादन उत्पादन संभावना वक्र CD के G विन्दु पर उत्पादन करने लगता है. इस बढ़े हुए उत्पादन से यह उम्मीद की जा सकती थी कि देश अब एक ऊँचे तटस्थता वक्र पर उपभोग करेगा और उसके कल्याण का स्तर पहले से ऊँचा यानि तटस्थता वक्र IC_2 से ऊपर होगा. किन्तु व्यापार की शर्त, जो अब P_2P_2 रेखा से दर्शाया गया है, पहले से प्रतिकूल हो गया. यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि P_2P_2 की ढाल P_1P_1 से कम है जो इस बात को इंगित करता है कि व्यापार की शर्त पहले से प्रतिकूल हो गया है. इसके कारण देश के उपभोग का स्तर यानि कल्याण का स्तर अब तटस्थता वक्र IC_1 के H विन्दु पर आ गया. स्पष्ट है, IC_1 के कल्याण का स्तर IC_2 के कल्याण-स्तर से नीचे है. इससे स्पस्ट होता है कि प्रतिकूल व्यापार के शर्त के कारण देश के उत्पादन में वृद्धि का लाभ देश की जनता को प्राप्त नहीं हो पा रहा है. देश के उत्पादन-वृद्धि का लाभ देश की जनता को प्राप्त न होकर व्यापार में साझीदार दूसरे देश की जनता को हस्तानांतरित हो गया.

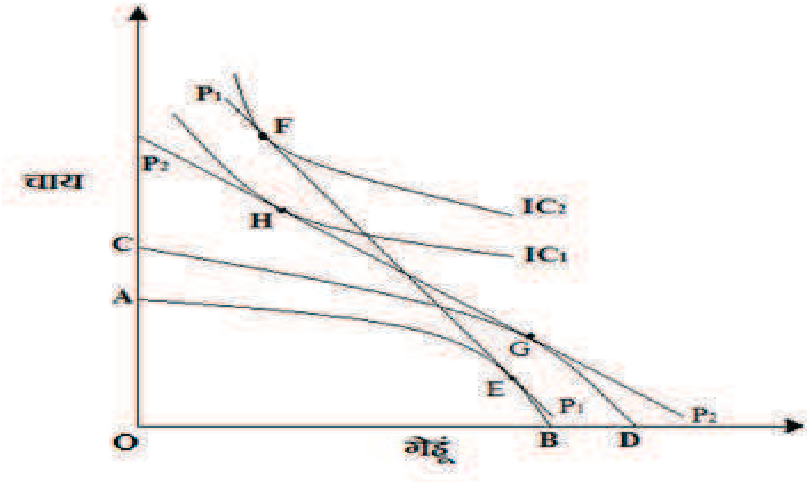

व्यापार की शर्त के प्रतिकूल होने के दो कारण हो सकते हैं. पहला, देश के उत्पादन में वृद्धि निर्यात-वस्तु के उत्पादन में वृद्धि के कारण हुआ हो और दूसरा, दुनिया में देश के निर्यात की मांग की लोच कम हो. किन्तु यह बात तभी लागू होती है जब निर्यातक देश की अर्थव्यवस्था विशाल हो जिससे उसकी पूर्ति विश्व को प्रभावित करे. यदि अर्थव्यवस्था का आकार बहुत छोटा है तब इमिजेराइजिंग विकास (Immiserising growth) का सिद्धांत उसपर लागू नहीं होता क्योंकि उसकी पूर्ति विश्व अर्थव्यवस्था के पूर्ति का बहुत छोटा भाग होगा, जिसके कारण व्यापार की शर्त प्रभावित नहीं होगी.

6.5.3 व्यापार की शर्त और विकासशील देश

इसमें कोई संदेह नहीं कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से उत्पादन में वृद्धि होती है. कारण, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है जिसके कारण उत्पादन तथा व्यापार में वृद्धि होती है. इसीलिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को विकास का इंजन भी कहा गया है. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हमें मौका देता है कि हम किसी वस्तु का उत्पादन न करते हुए भी उसका उपभोग कर लेते हैं. किन्तु यह बात शत-प्रतिशत सही नहीं है. अगर ऐसा होता तब दुनिया में न गरीबी होती और न ही आय की विषमता उत्पन्न होती. अभी हमने जगदीश भगवती के इमिजेराइजिंग विकास (Immiserising growth) के सिद्धांत में यह अध्ययन किया कि व्यापार की शर्त प्रतिकूल होने पर देश के उत्पादन वृद्धि का लाभ विकासशील देश की जनता को नहीं भी मिल सकता है. विकासशील देशों के सन्दर्भ में व्यापार की शर्त के महत्व को रौल प्रेबिश तथा हेंस सिंगर ने रेखांकित करते हुए कहा है कि यदि विकासशील देशों को अपने उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त करना है तब उन्हें अपने को प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक से औद्योगिक वस्तुओं के निर्यातक के रूप में बदलना होगा क्योंकि विकासशील देशों के प्राथमिक वस्तुओं की मांग की आय-लोच तथा मूल्य-लोच विकसित देशों में कम होती है. मांग की आय लोच कम होने के कारण विकसित देशों की आय में वृद्धि होने से उनके यहाँ उसी अनुपात में विकासशील देशों के प्राथमिक वस्तुओं की मांग में वृद्धि नहीं हो पाती. मांग की मूल्य लोच के कम होने के कारण विकासशील देश अपनी प्राथमिक वस्तुओं के मूल्य में कमी करके उनकी मांग को विकसित देशों में उसी अनुपात में वृद्धि करने में सफल नहीं हो पाते. दूसरी तरफ विकसित देशों के उत्पाद की मांग की आय-लोच तथा मूल्य-लोच विकासशील देशों में अधिक होती है. इसका परिणाम यह होता है कि व्यापार की शर्त विकासशील देशों के प्रतिकूल हो जाता है और उन्हें भुगतान संतुलन की समस्या से

जूझना पड़ता है. प्राथमिक वस्तुओं के अंतर्गत कृषि तथा कृषि-आधारित उत्पाद, खनिज आदि आते हैं जबकि औद्योगिक वस्तुओं में विनिर्मित वस्तुएं आती हैं. प्रेबिश ने विकसित देशों को केंद्र (center) कहा जबकि विकासशील देशों के लिए उन्होंने हाशिया (periphery) शब्द का प्रयोग किया. प्रेबिश ने अपने तर्क को व्यापार चक्र(Business Cycle) की घटना से जोड़ने का प्रयास किया है. उनका कहना है कि अर्थव्यवस्था में तेजी के समय लाभ, मजदूरी और मूल्य में वृद्धि होती है. किन्तु लाभ मजदूरी की तुलना में अधिक वृद्धि पाता है. विकासशील देशों में मूल्य में वृद्धि विकसित देशों की तुलना में अधिक होती है, जिसके कारण विकासशील देशों में लाभ विकसित देशों की तुलना में अधिक वृद्धि पाता है. किन्तु मंदी के समय उल्टा होता है. लाभ, मजदूरी और मूल्य मंदी के समय विकसित और विकासशील दोनों श्रेणी के देशों में गिरना चाहिए किन्तु विकसित देशों में मजदूरी के गिरने की प्रवृति नहीं होती. जबकि विकासशील देशों में श्रमिक संगठित नहीं होते जिसके कारण इन देशों में लाभ के साथ मजदूरी में भी गिरावट आती है. निष्कर्षतः, विकसित देशों में लाभ में गिरावट विकासशील देशों में हुए लाभ में गिरावट की तुलना में कम होता है. विकसित देश अपने लाभ में हुए गिरावट की भरपाई बेहतर व्यापार की शर्त होने के कारण, विकासशील देश से करने में सफल हो जाते हैं.

अभ्यास प्रश्न 2

1. लघु उत्तरीय प्रश्न:

i) व्यापार की शर्त से संबधित प्रेबिश-सिंगर के क्या विचार हैं ?

ii) इमिजेराइजिंग विकास का सिद्धांत(Theory of Immiserising Growth) किसने दिया?

2. अति लघुउत्तरीय प्रश्न:

i) प्रेबिश ने केंद्र (center) और हाशिया (periphery) शब्द का प्रयोग किन देशों के लिए किया?

ii) कृषि प्रधान और औद्योगिक वस्तु में किसकी मांग की लोच अधिक होती है?

iii) प्रेबिश और सिंगर के अनुसार आद्योगिक और कृषि प्रधान वस्तु में व्यापार की शर्त किसके पक्ष में होती है?

3. सत्य-असत्य का चुनाव करें:

i) व्यापार की शर्त का प्रभाव निर्यात आय पर नहीं पड़ता है.

ii) किसी देश का प्रस्ताव वक्र उसके मांग और लागत की दशा को दर्शाता है.

iii) प्रेबिश ने विकसित देशों को केंद्र (center) कहा.

6.6 सारांश

इस इकाई में हमने व्यापार की शर्त और इसके विभिन्न प्रकार की चर्चा की. व्यापार की शर्त आयात मूल्य और निर्यात मूल्य के बीच का अनुपात है. हमने जाना कि व्यापार की शर्त और आर्थिक संवृद्धि में गहरा सम्बन्ध है. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के फलस्वरूप देश को लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब व्यापार की शर्त उसके पक्ष में हो, अन्यथा देश के उत्पादन वृद्धि का का लाभ दूसरे देश को हस्तांतरित हो जाता है. इस बात का खुलासा पहले एजवर्थ और फिर जगदीश भगवती ने अपने इमिजेराइजिंग विकास के सिद्धांत (Theory of Immiserising Growth) में किया. प्रेबिश तथा सिंगर ने विकासशील देशों के

प्रतिकूल व्यापार की शर्त से निपटने के लिए आद्योगीकरण के रास्ते पर चलने की सलाह दी क्योंकि उनका तर्क था कि विकासशील देश प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक होते हैं जिनकी मांग की आय-लोच तथा मूल्य-लोच कम होती है जबकि विकसित देशों के आद्योगिक उत्पाद की मांग की आय-लोच तथा मूल्य कोच अधिक होती है. इसका नतीजा होता है, विकासशील देशों का प्रतिकूल व्यापार की शर्त. जगदीश भगवती और प्रेबिश-सिंगर के तर्कों से यही लगता है कि मुक्त व्यापार की नीति विकासशील देशों के लिए फयादेवंद नहीं है और उन्हें संरक्षणवादी नीति अपनानाने का पूरा अधिकार है.

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. व्यापार की शर्त: साधारण शब्दों में, किसी देश के निर्यात और आयात के बीच के विनिमय अनुपात को व्यापार की शर्त कहते हैं.
2. प्रतिपूरक/पारस्परिक मांग: प्रतिपूरक मांग(reciprocal demand) शब्द का प्रयोग जे०एस० मिल ने दो देशों के द्वारा एक दूसरे के वस्तुओं के परस्पर मांग के लिए किया.
3. प्रस्ताव वक्र: किसी देश का प्रस्ताव वक्र उस देश की विदेशी वस्तु की मांग की तीव्रता को प्रकट करता है और साथ ही विदेशी वस्तु को प्राप्त करने के लिए घरेलु वस्तु को त्यागी जाने वाली मात्रा को लागत के रूप में प्रगट करता है.
4. केंद्र (center): रोल प्रेबिश ने विकसित आद्योगिक देशों के लिए केंद्र(Center) शब्द का प्रयोग किया.
5. हाशिया(Periphery): रोल प्रेबिश ने विकासशील देशों के लिए हाशिया (Periphery) शब्द का प्रयोग किया.
6. निर्यात की आय-लोच और मूल्य-लोच: दूसरे देश की आय में आनुपातिक परिवर्तन के फलस्वरूप देश की निर्यात मांग में होनेवाले आनुपातिक परिवर्तन की दर को निर्यात की आय लोच कहते हैं. जबकि निर्यात किए जाने वाले वस्तु के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन के फलस्वरूप देश के निर्यात मांग में आनुपातिक परिवर्तन की दर को निर्यात की मूल्य लोच कहते हैं.
7. इमिजेराइजिंग विकास (Immiserising growth): इस शब्द का प्रयोग जगदीश भगवती ने किसी देश की उस अवस्था के लिए किया जब उसके उत्पादन-वृद्धि का लाभ प्रतिकूल व्यापार की शर्त के कारण दूसरे देश को हस्तानांतरित हो जाये और इसके परिणामस्वरूप उस देश का कल्याण स्तर पहले से नीचे आ जाये.
8. प्राथमिक क्षेत्र के उत्पाद: प्राथमिक क्षेत्र के उत्पाद के अंतर्गत कृषि, पशुपालन, वानिकी, खनन आदि आते हैं.

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

अभ्यास प्रश्न: 1

2. अति लघुउत्तरीय प्रश्न:

i) एजवर्थ और मार्शल ने

ii) जे० एस० मिल ने

3) बहुविकल्पीय प्रश्न:

i) (c) मांग और पूर्ति दोनों दशा को.

ii) (c) मार्शल तथा एजवर्थ दोनों ने

iii) (a) विशाल अर्थव्यवस्था

iv) (b) व्यापार की शर्त की सीमा

v) (c) दोनों

अभ्यास प्रश्न 2

2. अति लघुउत्तरीय प्रश्न

i) विकसित देशों के लिए केंद्र (center) विकासशील देशों के लिए हाशिया (periphery).

ii) औद्योगिक वस्तु की मांग की लोच अधिक होती है.

iii) औद्योगिक वस्तु के पक्ष में.

3. सत्य-असत्य का चुनाव करें:

i) असत्य

ii) सत्य

iii) सत्य

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- Bo Sodersten; International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger; International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).

- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ,(अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

6.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and* Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

6.11 निबंधात्मक प्रश्न:

1. व्यापार की शर्त से क्या समझते हैं? यह कितने प्रकार के होते है?
2. व्यापार की शर्त से सम्बंधित जे०एस० मिल के प्रतिपूरक मांग सिद्धांत की व्याख्या करें.
3. प्रस्ताव वक्र की मदद से व्यापार की शर्त कैसे निर्धारित होता है?
4. व्यापार की शर्त के महत्व को विकासशील देशों के सन्दर्भ में रेखांकित करें. इस सम्बन्ध में जगदीश भगवती और प्रेबिश-सिंगर के विचार प्रस्तुत करें.

इकाई 7 मुक्त व्यापार एवं संरक्षण

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 मुक्त व्यापार का अर्थ

6.3.1 मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क

6.3.2 मुक्त व्यापार सीमाएं

7.4. संरक्षण का अर्थ

7.4.1 संरक्षण के पक्ष में मुख्य तर्क

7.4.2 संरक्षण के विपक्ष में तर्क

7.5 संरक्षण की विधियाँ

7.6 सारांश

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

7.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड – दो "व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण, एवं सीमा संघ के सिद्धांत" से सम्बंधित यह दूसरी इकाई है. इस इकाई का शीर्षक "मुक्त व्यापार एवं संरक्षण" है. प्रस्तुत इकाई में मुक्त व्यापार का अर्थ, इसके पक्ष में तर्क तथा इससे उत्पन्न चुनौतिओं से अवगत कराया गया है. साथ ही इस इकाई में संरक्षण का अर्थ, इसके पक्ष और विपक्ष में तर्क तथा संरक्षण की विभिन्न विधिओं के बारे में बताया गया है.

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- मुक्त व्यापार का अर्थ समझ पाएंगे.
- मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क से अवगत होंगे.
- मुक्त व्यापार से उत्पन्न चुनौतिओं से अवगत होंगे.
- संरक्षण का अर्थ जान पाएंगे.
- संरक्षण से लाभ व इससे उत्पन्न चुनौतिओं से अवगत होंगे
- संरक्षण के विभिन्न विधिओं से अवगत होंगे.

7.3 मुक्त व्यापार का अर्थ

मुक्त व्यापार वह नीति है जिसके अंतर्गत अर्तार्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण स्वतंत्रता होती है. ऐसी स्थिति में दो देशों के बीच वस्तुओं के आयात-निर्यात में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती. मुक्त व्यापार के महत्व को रेखांकित करने का श्रेय एडम स्मिथ को जाता है. उनके पहले सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के बारे में जो विचारधारा प्रचलित थी उसे आर्थिक विचारों के इतिहास में वणिकवाद के नाम से जाना जाता है. वणिकवाद वहुत ही संकीर्ण विचारधारा थी. वणिकवाद के अनुसार निर्यात से देश की सम्पदा में वृद्धि होती है, जबकि आयात से देश की सम्पदा में कमी आती है. एडम स्मिथ ने इस मान्यता का खंडन किया और बताया की व्यापार से सभी देशों को लाभ होता है इसलिए उन्होंने मुक्त व्यापार की वकालत की. उनके अनुसार "मुक्त व्यापार की धारणा का उपयोग व्यापारिक नीति की उस प्रणाली को बंद करने के लिए किया जाता है जिसमें देश तथा विदेशी वस्तुओं में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता इसलिए न तो विदेशी वस्तुओं पर अनावश्यक कर लगाये जाते हैं और न ही स्वदेशी उद्योगों को कोई विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती हैं." इस प्रकार, मुक्त व्यापार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा आतंरिक व्यापार में कोई अंतर नहीं करता. जिस प्रकार आतंरिक व्यापार में स्वतंत्रता होने पर कोई भी व्यक्ति सबसे कम मूल्य वाले बाज़ार में वस्तु खरीद सकता है अथवा उत्पादक अपनी वस्तु को उस बाज़ार में बेंच सकता है जहाँ उसे सबसे ज्यादा मूल्य प्राप्त हो सके. ठीक उसी प्रकार मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में कोई भी देश सबसे कम मूल्य पर वस्तु खरीद सकता है और साथ ही सबसे अधिक मूल्य देने वाले देश में अपनी वस्तु बेंच सकता है.

7.3.1 मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क

एडम स्मिथ के आगमन के साथ ही मुक्त व्यापार के पक्ष में हवा चल गई. उन्होंने इसके लाभ के बारे में इतना ठोस तर्क रखा कि सभी प्रतिष्ठित व नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री इसके पक्ष में बोलने लगे. एक

जुमला चल पड़ा “some trade is better than no trade and free trade is better than protected or restricted trade.” यानि कुछ व्यापार शून्य व्यापार से बेहतर है, जबकि मुक्त व्यापार प्रतिबंधित या संरक्षित व्यापार से बेहतर है.

मुक्त व्यापार के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं:

i) उत्पादन के साधनों का समुचित प्रयोग:- मुक्त व्यापार के अंतर्गत प्रत्येक देश केवल उसी वस्तु का उत्पादन करता है जिसमें उसे लागत सम्बन्धी लाभ प्राप्त हो. यह लाभ चाहे वह निरपेक्ष हो या तुलनात्मक, उत्पादन के साधनों के समुचित तथा कुशलतम प्रयोग को सुनिश्चित करेगा.

ii) तकनीकी विकास को प्रोत्साहन:- मुक्त व्यापार में देशों के बीच पारस्परिक प्रतियोगिता रहती है. इस प्रतियोगिता के कारण प्रत्येक उत्पादक भरसक कोशिश करता है कि उसके उत्पाद की लागत कम हो जिससे कि वह कम मूल्य पर अपने उत्पाद को बेंच सके. इसके लिए उत्पादक तकनीकी अनुसंधान व विकास को प्रोत्साहन देता है.

i) सामाजिक उत्पादन का अधिकतमीकरण: मुक्त व्यापार श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को बढ़ाता है जिसके कारण कुल उत्पादन में वृद्धि होती है और साथ ही वस्तु का उत्पादन लागत भी गिरता है. यानि समाज को पहले से कम मूल्य पर और साथ ही अधिक वस्तुओं का उपभोग करने का मौका मिलता है. वस्तुओं का मूल्य उनके सीमान्त लागत के बराबर हो जाता है. यह स्थिति अनुकूलतम उत्पादन की स्थिति को प्रदर्शित करता है. प्रत्येक देश की आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति होती है और यह मुक्त व्यापार में प्राप्त किया जा सकता है.

ii) आयातित वस्तुओं के मूल्यों में कमी: मुक्त व्यापार सस्ते आयातित वस्तुओं की उपलब्धता को सुनिश्चित करता है. उपभोक्ताओं को ऐसे देश की वस्तु का उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है जहाँ वह कम-से कम लागत पर प्राप्त किया जाता है. यह अलग बात है कि इस तर्क में देशी उत्पादकों के हितों की अवहेलना की गई है और साथ ही रोजगार के पहलू को भी नजरंदाज किया गया है.

iii) एकाधिकारिक शोषण से मुक्ति: मुक्त व्यापार में प्रतियोगिता होने के कारण उपभोक्ता एकाधिकारिक शोषण से बच जाते हैं. प्रत्येक देश के उत्पादक को केवल देश के ही नहीं बल्कि विदेशी उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है जिसके कारण एकाधिकार का जन्म नहीं होता और फलस्वरूप उपभोक्ताओं को सस्ते मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त होती है.

iv) स्वर्णमान प्रणाली के अनुकूल: मुक्त व्यापार देशी मुद्रा के विदेशी मुद्रा में पूर्ण परिवर्तनीयता को सुनिश्चित करता है. यह एक प्रकार से स्वर्णमान प्रणाली वाली स्थिति उपलब्ध कराता है क्योंकि विभिन्न मुद्राओं का क्रय-विक्रय आसानी से हो जाता है.

v) विश्व के सभी देशों के आर्थिक हितों की सुरक्षा: मुक्त व्यापार व्यवस्था से विश्व के सभी देशों के हितों की रक्षा होती है. मुक्त व्यापार प्रणाली व्यापारिक संघर्ष नहीं बल्कि समरसता उत्पन्न करता था. मुक्त व्यापार के फलस्वरूप आयात करनेवाले देश और निर्यात करनेवाले देश दोनों को लाभ प्राप्त होता है. मुक्त व्यापार के अंतर्गत एक देश दूसरे देश पर निर्भर होता है फलस्वरूप उन देशों के बीच सहयोग एवं सद्भावना जागृत होती है. एडम स्मिथ के पूर्व यह मत था कि आयात करनेवाले देश को नुकशान और निर्यात करनेवाले देश को लाभ प्राप्त होता है. यह व्यापार का संकुचित दृष्टिकोण था, जिसके कारण व्यापार ने औपनिवेशिक प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया और देशों के बीच युद्ध भी हुए. एडम स्मिथ ने यह

समझाया की मुक्त व्यापार श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को जन्म देता है, जिसके कारण सभी देशों के आर्थिक हितों की सुरक्षा सुनिश्चित होती है.

7.3.2 मुक्त व्यापार की सीमाएं

मुक्त व्यापार से लाभ के बारे में अभी हम अवगत हुए. इससे हम यह सोंच लेते हैं कि यही आदर्शातम स्थिति है. किन्तु मुक्त व्यापार की अपनी सीमाएं हैं, जिसके कारण हमें अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होता. अनुभव तो यही बताता है कि जैसे-जैसे दुनिया मुक्त व्यापार की और अग्रसर हो रही है, विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई और चौड़ी होती जा रही है. बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं का जाल विकासशील देशों में फैलता जा रहा है. उनके यहाँ के घरेलू उद्योग इन बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के आगे प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे है. कई उद्योग तो बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के सामने अपना अस्तित्व ही खो चुके हैं. ऐसे में अब पुनः इन देशों में संरक्षण के उपाय की बात की जा रही है. मुक्त व्यापार की निम्नलिखित सीमाएं हैं:

1. मुक्त व्यापार अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है: मुक्त व्यापार की पुरजोर वकालत करनेवाले एडम स्मिथ और अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री ऐसी मान्यताएं ले बैठे जो वास्तविकता से दूर हैं. जैसे स्थिर लागत की दशा का उत्पादन, साधन की गतिशीलता की मान्यता आदि शायद ही देखने को मिलता है.

2. पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित: मुक्त व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभ वस्तु तथा साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जो शायद ही उपलब्ध हो पाती है. इसके कारण साधनों का अनुकूलतम आवंटन और वस्तुओं का अनुकूलतम वितरण नहीं हो पता जिसके कारण मुक्त व्यापार से वो स्थिति प्राप्त नहीं हो पाती जो दावा किया जाता है.

3. शिशु उद्योग के लिए अनुपयुक्त: मुक्त व्यापार शिशु उद्योग के लिए अनुपयुक्त है क्योंकि ऐसे उद्योग प्रतियोगिता को झेल पाने में सक्षम नहीं होते. फ्रेडरिक लिस्ट ने अपने शिशु उद्योग तर्क में इस बात को बहुत सरल तरीके से बताया है और ऐसे उद्योगों को प्रारंभ में संरक्षण देने की वकालत की है.

4. मांग और पूर्ति का पूर्णतः लोचदार होना आवश्यक: मुक्त व्यापार इस मान्यता पर आधारित है कि दीर्घकाल में मांग और पूर्ति पूर्णतः लोचदार हो जाते हैं जिसके कारण उद्योगों की लागतें स्थिर हो जाती है. किन्तु वास्तविक जगत में ऐसा संभव नहीं.

अभ्यास प्रश्न 1.

i. लघु उत्तरीय प्रश्न
   a) मुक्त व्यापार किसे कहते हैं?
   b) वणिकवाद क्या है?
   c) संरक्षण से क्या समझते हैं?

ii. सत्य/असत्य का चुनाव करें
   a) वणिकवादी मुक्त व्यापार के समर्थक थे.
   b) एडम स्मिथ ने मुक्त व्यापार के पक्ष में तर्क दिया.
   c) मुक्त व्यापार से श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण घटता है.

d) भूमंडलीकारण मुक्त व्यापार की दिशा में कदम है.

iii. बहुविकल्पी प्रश्न

a) एडम स्मिथ के अनुसार मुक्त व्यापार से

i) कुल उत्पादन बढ़ता है ii) कुल उपभोग बढ़ता है iii) कुल उत्पादन और कुल उपभोग दोनों बढ़ता है iv) कुल उत्पादन बढ़ता है और कुल उपभोग घटता है.

b) मुक्त व्यापार से विश्व बाज़ार में

i) वस्तु का मूल्य समान होने लगता है ii) साधन का मूल्य समान होने लगता है iii) वस्तु व साधन दोनों का मूल्य समान होने लगता है iv) वस्तु अथवा साधन मूल्य का मुक्त व्यापार से कुछ लेना-देना नहीं

7.4 संरक्षण

7.4.1 संरक्षण का अर्थ

देश के उद्योगों को विभिन्न प्रोत्साहनों द्वारा विकसित करने तथा विदेशी वस्तुओं के प्रतिस्पर्धा से बचाने की नीति को संरक्षण कहते हैं. इसका मुख्य उद्देश्य देश के उद्योग-धंधों का विकास करना होता है. संरक्षण की वकालत सर्वप्रथम अमेरिकी राजनीतिज्ञ अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने की. उनके अनुसार देश में उद्योगों के विकास तथा अधिक से अधिक लोगों को रोजगार देने के लिए संरक्षण की नीति अपनानी चाहिए. जर्मन राष्ट्रवादी अर्थशाष्त्री फ्रेडेरिक लिस्ट ने अपने शिशु उद्योग तर्क के माध्यम से संरक्षण पर जोर दिया.

7.4.2 संरक्षण के पक्ष में मुख्य तर्क

1. देश की मुद्रा देश में ही रहने का तर्क: संरक्षण के पक्ष में दिया जानेवाला यह सामान्य तर्क है. इसके अनुसार यदि देश के लोग देश में निर्मित वस्तुओं का उपभोग करेंगे तब देश की मुद्रा देश में ही रहेंगी जबकि विदेशी वस्तु खरीदने से देश की मुद्रा का भुगतान विदेशी वस्तु के निर्माताओं को हो जाने से मुद्रा का पलायन हो जायेगा. वणिकवादी प्रायः यही तर्क देते थे. उनका मत था कि देश का स्वर्ण आयात करने से देश से बाहर चला जायेगा.

2. भुगतान संतुलन का तर्क: इस तर्क के अनुसार आयात होने से भुगतान संतुलन में घाटा और निर्यात से भुगतान संतुलन में लाभ होता है.

3. घरेलू बाज़ार का तर्क: यह तर्क विशेषकर विकासशील देशों के सन्दर्भ में दिया जाता है. इस तर्क के अनुसार विकासशील देश एक निम्न-संतुलन की स्थिति में होते हैं. पूर्ति में वृद्धि होने पर मांग में भी उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती. गुन्नार मिर्डल के अनुसार, "अल्पविकसित देशों के औद्योगिक विकास में एक बड़ी कठिनाई तथा विकास सम्बन्धी नीति को मूर्त रूप देने में एक बड़ी बाधा यह है कि ये देश पूर्ति में वृद्धि के साथ-साथ घरेलू मांग में वृद्धि नहीं कर पाते." इस प्रकार अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों में प्रभावी मांग में कमी एक बड़ी बाधा है. संरक्षण के माध्यम से घरेलु उद्योगों के निर्मित वस्तुओं की मांग को सुनिश्चित किया जा सकता है.

4. मजदूरी का तर्क: इस तर्क के अनुसार जिन देशों में मजदूरी की दर ऊँची होती है वहां लागत भी अधिक होती है जिसके कारण ऊँचा मूल्य रखना पड़ता हैं. ऐसे देश कम मजदूरी दर वाले देश से आने

वाली वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं. इसलिए उद्योग को संरक्षण देने की आवश्यकता होती है. आजकल तो विकासशील देशों में भी शक्तिशाली श्रम-संघों के उदय के कारण मजदूरी की दर ऊँची होने लगी है. कई बार तो मजदूरी की दर मजदूर के सीमान्त उत्पादकता से भी ज्यादा होती है. इसके कारण लागत में वृद्धि हो जाती है जिसके परिणाम-स्वरुप मूल्य भी अधिक रखना पड़ता है. ऐसी स्थिति में संरक्षण की आवश्यकता होती है.

5. लागतों को सामान करने का तर्क: ऐसा शायद ही हो कि एक वस्तु का दो देशों में उत्पादन लागत समान हो. परिस्थितिओं में भिन्नता होने के कारण उत्पादन लागत भी भिन्न होते हैं, जिसके कारण मूल्य भी भिन्न हो जाते है. यदि घरेलु वस्तु की उत्पादन लागत विदेशी वस्तु के उत्पादन लागत से 10% अधिक हो तो वह देश आयातित वस्तु पर 10% आयात शुल्क लगा कर मूल्य को समान करने की चेष्टा करेगा जिससे उपभोगताओं को दोनों वस्तु एक ही मूल्य के प्रतीक हो.

6. शिशु उद्योग से सम्बंधित तर्क: संरक्षण के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क शिशु उद्योग को लेकर है. सर्वप्रथम अलेक्जेंडर हेमिल्टन ने शिशु उद्योग के संरक्षण की बात कही. बाद में जर्मन अर्थशास्त्री फ्रेडरिक लिस्ट ने इसे तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया. उनका कहना था कि शिशु उद्योगों का विकास मुक्त व्यापार के सिद्धांतों के आधार पर नहीं हो सकता. कम विकसित देशों के शिशु उद्योग अपने स्थापना के प्रारंभिक दौर में विकसित देशों के बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं होते. इसलिए उन्हें प्रारंभिक दौर में संरक्षण की आवश्यकता होती है. परन्तु लिस्ट ने इस बात पर बल दिया कि संरक्षण कुछ ही समय के लिए दिया जाना चाहिए तथा उद्योग विशेष की 'परिपालना' अर्थात् नर्सिंग के उपरांत जब वे अपनी आतंरिक बचतों(Internal Economies) का पूर्ण प्रयोग कर चुके होंगे तब संरक्षण नीति समाप्त कर देनी चाहिए.

7. उद्योगों में विविधता लाने सम्बन्धी तर्क: आद्योगिक उत्पादन में विविधता लाने के उद्देश्य से भी संरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाता है. देश में सुनियोजित आद्योगिक विकास के लिए संरक्षण का सहारा लिया जाता है.

8. राशिपातन(Dumping) से बचाने हेतु: राशिपातन से बचाने के लिए भी संरक्षण की नीति का प्रयोग किया जाता है. यदि प्रतियोगी देश कम मूल्य पर अथवा घाटा सह दूसरे देश में अपने उत्पाद को उतारते हैं तब इसे राशिपातन(Dumping) इससे घरेलु उद्योगों के नष्ट होने का खतरा बना रहता है. ऐसी स्थिति में संरक्षण अपरिहार्य हो जाता है.

9. बेरोजगारी एवं संरक्षण: सरक्षण की नीति का समर्थन इस बात पर किया जाता है कि इससे घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है जिससे देश में रोजगार का सृजन होता है और बेरोजगारी दूर करने में मदद मिलती है.

10. प्रतीकात्मक संरक्षण: कभी-कभी देश के लिए मुक्त व्यापार की नीति पर चलना संभव नहीं हो पाता क्योंकि अन्य देश घरेलु उत्पादकों को कई प्रकार से रियायतें देकर संरक्षण दिए होते हैं. ऐसी स्थिति में उस देश को भी संरक्षण की नीति अपनानी पड़ती है.

7.4.3 संरक्षण के विपक्ष में तर्क

1. मुद्रा स्फीति में वृद्धि: देशी उद्योग को संरक्षण देने के नाम पर आयातित वस्तु पर आवश्यकता से अधिक प्रतिबन्ध लगाने से देश में स्फीतिकारी स्थिति पैदा होने का खतरा उत्पन्न होने लगता है. आयात

पर प्रतिबंधों के फलस्वरूप उन उद्योगों का विकास अवरूद्ध हो जाता है जिनमें आयातित मशीनों व कच्चे माल का उपयोग होता है जिसके परिणामस्वरूप देश के निर्यातों में भी कमी होने की संभावना हो जाती है.

2. एकाधिकार को प्रोत्साहन: घरेलू उद्योग को संरक्षण देने से उनमें एकाधिकारी शक्ति के उदय होने का भी खतरा उत्पन्न होता है. इसके फलस्वरूप देश की जनता निरपेक्ष/तुलनात्मक लागतों के लाभ से वंचित रह जाती है.

3. भुगतान-असंतुलन को प्रोत्साहन: यह तर्क कि संरक्षण से भुगतान संतुलन में सुधार आता है, पूर्णतः सत्य नहीं है. कई बार भुगतान संतुलन को ठीक रखने के लिए अधिक आयात कर भुगतान संतुलन में घाटे के स्थिति उत्पन्न करती है. यह कोई आवश्यक नहीं कि अधिक आयात कर आयात में कमी ला दे. इसके अलावा अधिक आयात पर निर्भरता की स्थिति में आयात कर, निर्यात में भी कमी ला सकता है.

4. व्यावसायिक शिथिलता: जैसा कि पहले चर्चा किया गया, संरक्षण घरेलू रोजगार सृजन में मदद करता है. किन्तु यह भी संभव है कि अत्यधिक संरक्षणवादी नीति व्यावसायिक शिथिलता उत्पन्न कर दे, जिसके परिणामस्वरूप रोजगार में वृद्धि न होकर इसमें कमी आ जाय.

7.5 संरक्षण की विधियाँ

संरक्षण की निम्नलिखित विधियाँ हैं. इनका संक्षेप में परिचय प्रस्तुत है:

1. प्रशुल्क (Tariffs): संरक्षण प्रदान करने की यह सबसे प्रचलित विधि है. आयात होने वाले वस्तु पर जब कर लगाया जाता है तब उसका मूल्य घरेलू बाज़ार में बढ़ जाता है जिसके कारण देश में निर्मित वही वस्तु अधिक प्रतिस्पर्धी हो जाती है.
2. अभ्यंश एवं लाइसेंस(Quota and Licences):अभ्यंश अथवा कोटा के अंतर्गत सरकार आयातित वस्तु की अधिकतम मात्रा निर्धारित करती है. इसके कारण घरेलू उद्योगों के लिए निश्चिन्तता हो जाती है कि उसे सीमित विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा. लाइसेन्सिंग प्रणाली के अंतर्गत सरकार सोंच-समझकर और घरेलू उद्योगों का हित देखकर आयात का लाइसेंस प्रदान करती है.
3. अनुदान (Subsidies): अनुदान भी घरेलू उद्योग को संरक्षण प्रदान करने की विधि है. अनुदान के अंतर्गत घरेलू उद्योग के उत्पाद को प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए सरकार उसके उत्पादन लागत का कुछ भाग स्वयं वहन करती है. कभी-कभी निर्यात बोनस, निर्यात पुरस्कार, निर्यात करों में छूट के द्वारा भी सरकार घरेलू निर्यातकों को संरक्षण प्रदान करती है. इन सब विधियों से वस्तुओं के मूल्यों को कृत्रिम रूप से कम करके निर्यातों को प्रोत्साहित किया जाता है.
4. राज्य व्यापार (State Trading): राज्य व्यापार संरक्षण प्रदान करने की प्रत्यक्ष विधि है. विशेषकर समाजवादी देशों में राज्य व्यापार के माध्यम से घरेलू उद्योग के उत्पाद को विश्व बाज़ार में बेचने की जिम्मेवारी सरकार अपने ऊपर लेती है. इसके लिए सरकार ट्रेडिंग एजेंसियां निर्मित करके विदेश व्यापार करती है.

5. अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Cartel): कई देश आपस में मिलकर संघ बना लेते हैं जिसका उद्देश्य अपने उत्पाद का विश्व बाज़ार में अधिक मूल्य सुनिश्चित करना होता है. ऐसे संघ को कार्टेल कहा जाता है. उदाहरणस्वरूप तेल निर्यातक देशों का संगठन ओपेक (OPEC) एक प्रकार का कार्टेल है जिसका उद्देश्य विश्व बाज़ार में तेल का उचित मूल्य प्राप्त करना है. इससे घरेलू तेल उत्पादक कम्पनिओं को संरक्षण प्राप्त होता है.

अभ्यास प्रश्न 2.

i. लघु उत्तरीय प्रश्न:
   a) संरक्षण से क्या समझते हैं?
   b) कार्टेल क्या है?
   c) राशिपातन(Dumping) क्या है?

ii. सत्य/असत्य का चुनाव करें:
   a) प्रशुल्क व कोटा मुक्त व्यापार में बाधक हैं.
   b) प्रशुल्क व अनुदान संरक्षण के उपाय हैं.
   c) राज्य व्यापार मुक्त-व्यापार की दिशा में उपाय है.
   d) कोटा एक प्रकार का कर है.

iii. बहुविकल्पी प्रश्न
   a) निम्नलिखित में कौन संरक्षण का उपाय है
      i) प्रशुल्क
      ii) कोटा
      iii) राज्य व्यापार
      iv) उपर्युक्त तीनों
   b) आयात को कम करने का प्रत्यक्ष विधि है
      i) प्रशुल्क
      ii) कोटा
      iii) प्रशुल्क व कोटा दोनों
      iv) इनमें से कोई नहीं

7.6 सारांश

इस इकाई में हमने मुक्त व्यापार और संरक्षण विषय पर विचार किया. दोनों ही विषय एडम स्मिथ के ज़माने से लेकर आज भूमंडलीकरण के दौर में महत्वपूर्ण हैं. श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण के लाभ को रेखांकित करते हुए एडम स्मिथ ने मुक्त व्यापार की वकालत की थी. उनके पूर्व वणिकवादियों का तर्क था कि आयात से देश को नुकसान तथा निर्यात से देश को फायदा होता है. किन्तु एडम स्मिथ ने तर्क दिया कि मुक्त व्यापार से आयात व निर्यात करनेवाले दोनों पक्षों को लाभ मिलता है और इससे विश्व में कल्याण का स्तर ऊँचा उठता है. आज का युग भूमंडलीकरण का युग है जिसमें व्यापार के

अवरोध तोड़े जा रहे हैं और विश्व मुक्त-व्यापार की तरफ़ तेजी से बढ़ रहा है. किन्तु कहना न होगा कि इस प्रणाली ने दुनिया में कई विसंगतियां पैदा की है जिसका दुस्सपरिणाम कई देशों विशेषकर विकासशील देशों को भुगतना पड़ रहा है. विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई अब और चौड़ी हो गई है. बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं का जाल विकासशील देशों में फैलता जा रहा है. उनके यहाँ के घरेलू उद्योग इन बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के आगे प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे है. कई उद्योग तो बहुराष्ट्रीय कम्पनिओं के सामने अपना अस्तित्व ही खो चुके हैं. ऐसे में अब पुनः इन देशों में संरक्षण के उपाय की बात की जा रही है. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद मुक्त व्यापार के अवरोध जैसे प्रशुल्क, अनुदान आदि को हटाने की बात थी. अब प्रश्न उठना लाजिमी है कि बिना संरक्षण के विकासशील देशों के छोटे उद्योग कैसे पनपेंगे. मुक्त व्यापार के पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं वे कुछ अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं जिसके कारण इसके लाभ के जो दावे किये जाते हैं वे उपलब्ध नहीं हो पाते. मुक्त व्यापार से लाभ का जो सब्जबाग विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा दिखाया जाता है वह सिर्फ अपने हितों को ध्यान में रखकर होता है. इसलिए आज भी संरक्षणवादी नीतिओं का महत्व है जिसका प्रयोग विकासशील देशों को अपने आवश्यकतानुसार करने में संकोच नहीं करनी चाहिए.

7.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. मुक्त व्यापार: यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें विश्व में बिना अवरोध के व्यापार होता है. वस्तुओं और उत्पादन के साधनों का एक देश से दूसरे देश में स्थानांतरण निर्वाध होता है.
2. वणिकवाद: सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप में प्रचलित विचारधारा जो प्रतिबंधित व्यापार का समर्थक था. इस मत का विश्वास था कि निर्यात करने से देश की सम्पदा में वृद्धि होती है और आयात करने से कमी होती है. यह विचारधारा कट्टर राष्ट्रवाद से प्रभावित था.
3. संरक्षण: संरक्षण का तात्पर्य ऐसी नीति से है जिसके अंतर्गत घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए उपाय किये जाते है. इसके लिए विदेशी वस्तुओं पर प्रशुल्क या कोटा लगाकर उनके सामने घरेलू वस्तुओं को प्रतिस्पर्धी बनाया जाता है और साथ ही अनुदान देकर उनकी लागत को कृत्रिम रूप से कम किया जाता है.
4. राशिपातन: यह एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण है जिसके अंतर्गत वस्तु का मूल्य विदेशी बाज़ार में घरेलू बाज़ार की तुलना में कम रखा जाता है. घरेलु बाजार में एकाधिकारी मूल्य तथा विदेशी बाजार में प्रतिस्पर्धी मूल्य की स्थिति राशिपातन के अंतर्गत बनती है. कभी-कभी तो उत्पादक अपने को विदेशी बाजार में स्थापित करने के लिए अपनी वस्तु का मूल्य विदेशी बाज़ार में लागत से भी कम रखता है. ऐसी स्थिति को गला-काट प्रतियोगिता (Cut throat competition) कहते हैं.
5. शिशु उद्योग: शिशु उद्योग शब्द का प्रयोग वैसे उद्योग के लिए किया जाता है जिसने अभी हाल ही में उत्पादन प्रारंभ किया है और अभी अपनी आतंरिक बचतों(Internal economies) का पूर्ण दोहन नहीं कर सका है, जिसके कारण उसकी प्रति इकाई लागत अधिक होती है और वह अन्य उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा कर सकने की स्थिति में नहीं होता.

6. राज्य व्यापार: राज्य व्यापार से आशय सरकार के उस हस्तक्षेप से है जिसमें सरकार द्वारा राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय बाजार में होने वाले निजी व्यापार पर पूर्ण अथवा अंशिक नियंत्रण कर लिया जाता है. राज्य व्यापार प्रायः समाजवादी देशों में देखने को मिलता है. यह मुक्त-व्यापार की अवधारणा के विपरीत है.

7. अनुदान (Subsidy): अनुदान लागत का वह भाग है जो सरकार वहन करती है. इससे वस्तु का मूल्य कृत्रिम रूप से कम हो जाता है. अपने देश के उद्योग को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में स्थापित करने के लिए सरकारें निर्यात-अनुदान प्रदान करती हैं. यह एक संरक्षणवादी उपाय है.

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

ii) सत्य/असत्य का चुनाव

a) असत्य, b) सत्य c) असत्य d) सत्य

iii) बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर

a) iii) कुल उत्पादन और कुल उपभोग दोनों बढ़ता है

b) iii) वस्तु और साधन दोनों का मूल्य समान होने लगता है

अभ्यास प्रश्न 2.

ii) सत्य/असत्य का चुनाव

a) सत्य, b) सत्य, c) असत्य, d) असत्य

iii) बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर

a) iv) उपर्युक्त तीनों,

ii) कोटा,

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- Bo Sodersten; International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger; International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).

- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ,(अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

7.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and* Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुक्त व्यापार से आप क्या समझते हैं? इससे क्या लाभ है ? इसकी सीमाओं का भी उल्लेख करें.
2. संरक्षण से आप क्या समझते हैं? संरक्षण के पक्ष और विपक्ष में अपना तर्क प्रस्तुत करें.
3. संरक्षण की प्रमुख विधिओं का विवरण प्रस्तुत करें.

इकाई 8 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं

8.3.1 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का औचित्य

8.3.2 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के वर्गीकरण

8.4 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के प्रकार

8.5 देश के आर्थिक विकास में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की भूमिका:

8.6 सारांश

8.7 पारिभाषिक शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

8.10 सहायक/उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड – दो "व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण, एवं सीमा संघ के सिद्धांत" से सम्बंधित यह तीसरी इकाई है. इस इकाई का शीर्षक "गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं" है. जैसा कि हम जानते हैं कि जब स्वतंत्र बाजार की शक्तियां देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के ढांचे में वांछित परिणाम लाने में असफल हो जाती हैं तो देश की सरकार विभिन्न प्रकार की प्रतिबंधात्मक और निर्देशात्मक उपायों को अपनाती है. इन उपायों में प्रशुल्क यानि टैरिफ की चर्चा हम पूर्व की इकाई में कर चुके हैं. प्रस्तुत इकाई में गैर टैरिफ व्यापार बाधाओं की चर्चा हम करने जा रहें हैं जो घरेलू उत्पाद के पक्ष व विदेशी उत्पाद में विभेद उत्पन्न करने के लिए सरकार द्वारा अपनाये जाते हैं. इस इकाई में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का मुख्य वर्गीकरण करने के उपरांत गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के प्रकार से आपको परिचित कराया गया है. इसके अलावा देश के आर्थिक विकास में इन गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की भूमिका से भी आपको अवगत कराया गया है.

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

– गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के औचित्य को समझ पाएंगे.
– गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के वर्गीकरण का आधार जान पाएंगे.
– गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के विभिन्न प्रकार से परिचित होंगे.
– गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का देश के आर्थिक विकास में भूमिका से अवगत होंगे.

8.3 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं

8.3.1 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का औचित्य

घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने, भुगतान संतुलन को ठीक रखने व देश को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने में प्रशुल्क के अतिरिक्त कुछ गैर-प्रशुल्क यानि गैर-टैरिफ उपायों का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है. यह बात विकासशील देशों पर विशेष रूप से लागू होती है. कई बार ऐसा होता है कि विदेशी कम्पनियाँ विशेषकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ प्रशुल्क लगने के बावजूद अपनी वस्तु के मूल्य में कमी करके देश के बाजार में उसी कीमत पर बेचने में सफल हो जाती है. इससे घरेलू उद्योग को संरक्षण देने का प्रशुल्क-उपाय सफल नहीं हो पाता. ऐसी स्थिति में गैर-प्रशुल्क उपाय कारगर साबित होते हैं और इनकी मदद से आयात को सीमित करने का प्रयास किया जाता है.

8.3.2 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के वर्गीकरण

गैर-प्रशुल्क बाधाओं को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है:

1. मात्रात्मक व्यापार प्रतिबन्ध: इसके अंतर्गत आयात अभ्यंश, प्रशुल्क अभ्यंश, स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें, सुव्यवस्थित विपणन व्यवस्था अथवा अनुबंध, बहु-तंतु व्यवस्था आदि सम्मिलित हैं.
2. राजकोषीय उपाय: इसके अंतर्गत निर्यात अथवा उत्पादन सब्सिडी, निर्यात ऋण सब्सिडी, निर्यात पर कर-राहत, सरकारी वसूली, प्रति-राशिपातन शुल्क, प्रतिकार शुल्क आदि आते हैं.
3. प्रशासनिक, प्रमाणिक तथा विनियमन उपाय: इसके अंतर्गत स्वास्थ्य, आरोग्य तथा सुरक्षा विनियम, पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण, सीमा मूल्यांकन तथा वर्गीकरण, मार्किंग तथा पैकेजिंग

आवश्यकताएं, आयात लाइसेंसिंग कार्रवाई, सरकारी व्यापार एवं एकाधिकार, आयात की सीमाओं पर विलम्ब, सरकारी कर्मचारियों को देश में बनी वस्तुएं खरीदने के आदेश या स्वदेशी खरीद अभियान, स्थानीय अंतर्वस्तु आवश्यकता (local content requirement) आदि आते हैं.

अन्य गैर-प्रशुल्क व्यापार बाधाओं में द्विपक्षीय व्यापार समझौते, राशिपातन, अंतर्राष्ट्रीय वस्तु समझौते, अंतर्राष्ट्रीय कार्टेल, आदि आते हैं.

8.4 गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के प्रकार

उपरिलिखित गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के वर्गीकरण के उपरान्त हम इसके मुख्य प्रकार पर विचार करते हैं. इनका विवरण प्रस्तुत किया गया है.

1. आयात कोटा (Import Quota): यह एक प्रभावशाली गैर-टैरिफ व्यापार बाधा है जिसका प्रयोग बहुधा किया जाता है. इसे टैरिफ यानि प्रशुल्क के विकल्प के रूप में देखा जाता है. आयात कोटा से तात्पर्य, वस्तु की उस निश्चित मात्रा अथवा मूल्य से है जिसका समय के एक निश्चित अवधि में देश में आयात किया जाता है. आयात को सीमित करने का यह एक प्रत्यक्ष, प्रभावी और लोचशील विधि है. देश की सरकार को विभिन्न कारणों से इसका प्रयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ता है. इसके द्वारा आयात की भौतिक मात्रा अथवा आयात मूल्य की सीमा सरकार निर्धारित करती है. इस सीमा के ऊपर आयात की मनाही रहती है. जैसा कि हम जानते हैं, आयात को कम करने का आयात प्रशुल्क एक प्रचलित उपाय है किन्तु कभी-कभी आयात-प्रशुल्क को निष्प्रभावी बनाने के लिए विदेशी उत्पादक अपने उत्पाद का मूल्य कम कर देते हैं, जिससे प्रशुल्क लगने के उपरान्त भी उनके उत्पाद का मूल्य अधिक नहीं हो पाता. ऐसी स्थिति में आयात-कोटा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता है. आयात कोटा पांच प्रकार के होते हैं:

   a) टैरिफ कोटा: इस कोटा प्रणाली में टैरिफ व कोटा दोनों के गुण विद्यमान होते हैं. इसके अंतर्गत वस्तु की एक निर्धारित मात्रा को बिना शुल्क या सापेक्षतया कम शुल्क पर देश में प्रवेश की अनुमति दी जाती है. किन्तु निर्धारित मात्रा से अधिक आयात पर सापेक्षतया ऊंची शुल्क दर पर आयात की अनुमति दी जाती है.

   b) एकपक्षीय कोटा: एकपक्षीय कोटा प्रणाली के अन्तर्गत आयात की जानेवाली वस्तु की कुल मात्रा या मूल्य को दूसरे देश के साथ समझौता या परामर्श किये बिना ही लागू किया जाता है. इस प्रकार के कोटा में दो देशों के बीच व्यापारिक विवाद उत्पन्न होने की संभावना रहती है.

   c) बहुपक्षीय कोटा: इस कोटा-प्रणाली के अन्तर्गत दूसरे देश के साथ सहमति या समझौते के आधार पर कोटा लागू किया जाता है. इस प्रकार के कोटा में दोनों देशों के बीच विवाद होने की संभावना नहीं होती.

d) मिश्रित कोटा: इस कोटा प्रणाली के अन्तर्गत निर्मित वस्तु में लगनेवाले कच्चा माल या अर्धनिर्मित वस्तु के एक निश्चित अंश को ही आयात करने की अनुमति होती है, शेष को देश में ही प्राप्त करना होता है. इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती है, घरेलू उद्योग को प्रोत्साहन मिलता है व देश विदेशी निर्भरता से मुक्त होता है.

कोटे का प्रभाव: यदि किसी वस्तु की घरेलू मांग व पूर्ति वक्र बेलोचदार नहीं है तब आयात पर प्रशुल्क लगाने या कोटा निश्चित करने का प्रभाव लगभग एक समान होता है. इसे प्रस्तुत चित्र की मदद से समझा जा सकता है.

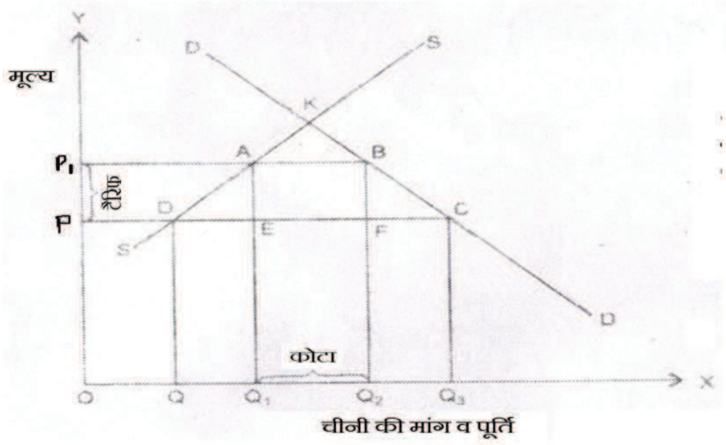

इस चित्र में किसी वस्तु, उदाहरणस्वरूप चीनी, की घरेलू मांग DD वक्र से व पूर्ति SS वक्र से से दर्शाया गया है. OP मूल्य पर विदेशी चीनी की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है. इस मूल्य पर चीनी की घरेलू मांग OQ3 है, जबकि घरेलू उत्पादकों द्वारा उत्पादित चीनी की पूर्ति केवल OQ है. इस प्रकार इस मूल्य पर देश में चीनी की मांग इसकी घरेलू पूर्ति से कहीं अधिक है. मुक्त व्यापार की स्थिति में अतिरिक्त मांग QQ3 (OQ3 – OQ) की पूर्ति विदेश से आयात करने पर होगी. यदि सरकार चीनी की Q1Q2 मात्रा का आयात कोटा निश्चित कर देती है तब चीनी की इस मात्रा का आयात कोटा की अनुपस्थिति में तब किया जायेगा जब सरकार चीनी के आयात पर PP1 के बराबर टैरिफ लगा देती है. इस स्थिति में आयात कोटा व आयात टैरिफ के प्रभाव में कोई अंतर नहीं रह जायेगा और दोनों ही स्थितियों में संरक्षण प्रभाव QQ1AD के बराबर, उपभोग प्रभाव Q२Q३CB के बराबर और पुनर्वितरण प्रभाव PDAP1 के बराबर होगा. किन्तु इनके राजस्व प्रभाव में भिन्नता होगी. टैरिफ से सरकार को ABEF के बराबर राजस्व प्राप्त होता है जो कोटा लगाने से संभव नहीं था. हां, यदि सरकार कोटा देने के लिए लाइसेंस शुल्क लगाती है तो प्राप्त राजस्व सरकार के खजाने में जाएगा. ऐसी स्थिति में टैरिफ व कोटा दोनों का कल्याण सम्बन्धी पुनर्वितरण प्रभाव एक हो सकता है.

किन्तु दोनों के उद्देश्य भले ही आयात को सीमित करना हो, दोनों के क्रिया-विधि भिन्न होते हैं. जहाँ टैरिफ वस्तु के मूल्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है वहीँ आयात मात्रा पर इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है. वहीँ कोटा का आयात मात्रा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और मूल्य पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है. इस

प्रकार टैरिफ व कोटा दोनों आयात मूल्य में वृद्धि करके आयात मात्रा में कमी लाते हैं. इसलिए उपभोग, उत्पादन, व्यापार संतुलन, राष्ट्रीय आय की मात्रा व इसके वितरण, अन्य आर्थिक क्रिया-कलाप व कल्याण पर इनके प्रभाव लगभग एक समान होते हैं.

जहाँ तक प्रभाव में भिन्नता का प्रश्न हैं तो टैरिफ से सरकार को राजस्व प्राप्त होता है वहीँ कोटा से कोई राजस्व की प्राप्ति नहीं होती. इससे कल्याण सम्बन्धी मुद्दे उभर आते हैं. सरकार टैरिफ से प्राप्त राजस्व के कुछ भाग को कल्याणकारी याजनाओं पर खर्च कर सकती है. चूँकि कोटा से कोई राजस्व की प्राप्ति नहीं होती इसलिए इससे कल्याण सम्बन्धी कोई लाभ नहीं होता. हाँ, यदि सरकार कोटा को लागू करने के लिए कोई लाइसेंस शुल्क रख देती है तो उससे प्राप्त राजस्व को कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च किया जा सकता है और ऐसी स्थिति में कोटा का कल्याणकारी प्रभाव टैरिफ के कल्याणकारी प्रभाव के समान ही होगा. किन्तु कोटा लाइसेंसिंग व्यवस्था प्रशासन में भ्रष्टाचार को जन्म दे सकती है. यह बात टैरिफ में नहीं होती. कोटा कई मामलों में टैरिफ से ज्यादा प्रभावी होता है, ख़ासकर तब जब किसी वस्तु की घरेलू मांग व पूर्ति की लोच बेलोचदार हो. रही बात व्यापार की शर्त की तब टैरिफ से तो व्यापार की शर्त पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन किया जा सकता है किन्तु कोटा का व्यापार की शर्त पर पड़ने वाला प्रभाव अनिश्चित (indeterminate) होता है. इसे प्रस्तुत चित्र से समझा जा सकता है:

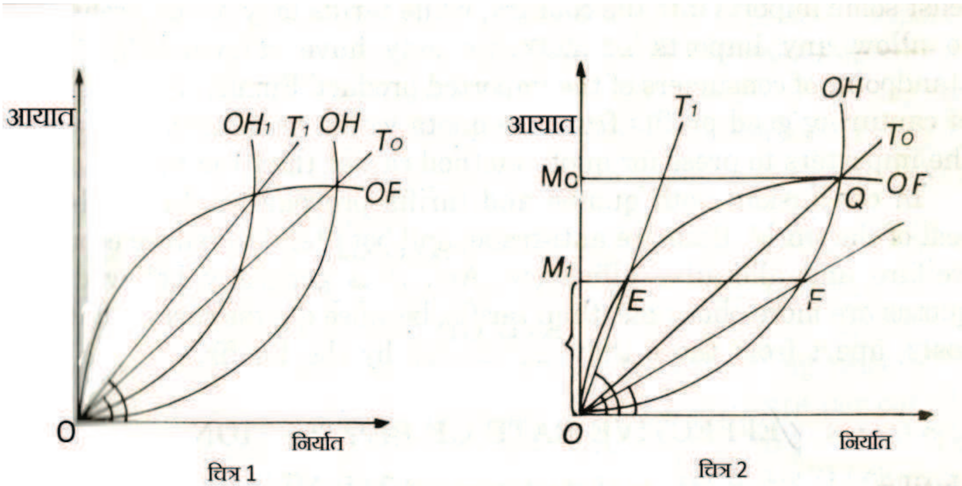

चित्र 1 चित्र 2

चित्र 1 और चित्र 2 में क्रमशः टैरिफ और कोटा के व्यापार की शर्त पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है. दोनों चित्रों में OH व OF वक्र क्रमशः घरेलू देश व विदेशी देश के प्रस्ताव वक्र हैं. चित्र 1 में टैरिफ लगने के उपरान्त टैरिफ लगाने वाले देश का प्रस्ताव वक्र OH से OH1 हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप व्यापार की शर्त OT से OT1 हो जाता है जो दर्शाता है कि टैरिफ लगने के बाद देश का व्यापार शर्त पहले से अनुकूल हो गया है. अब हम चित्र 2 में कोटा लगने पर व्यापार शर्त पर पडनेवाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं. मुक्त व्यापार की स्थिति में संतुलन Q विन्दु पर है जिससे व्यापार की शर्त OT0 निर्धारित होता है. ऐसी स्थिति में घरेलू देश का आयात OM0 तथा निर्यात M0Q होता है. यदि घरेलू देश अपने देश में कोटा लागू कर आयात को OM1 कर देती है तब हम इसके फलस्वरूप व्यापार शर्त पर पडनेवाले प्रभाव पर विचार करते हैं. इसके लिए M1 एक क्षैतिज रेखा

खींचते हैं जो विदेशी देश के प्रस्ताव वक्र को E विन्दु पर तथा घरेलू देश के प्रस्ताव वक्र को F विन्दु पर कटता है. अब यदि कोटा लगने के बाद व्यापार संतुलन E विन्दु पर होता है तब कोटा लगाने वाले देश का व्यापार शर्त अनुकूल हो जाता है क्योंकि जैसा कि चित्र से स्पष्ट है व्यापार की शर्त रेखा OT1 की ढाल OT0 से अधिक है. दूसरी तरफ यदि कोटा लगने के बाद व्यापार संतुलन F विन्दु पर स्थापित होता है तब घरेलू देश का व्यापार शर्त प्रतिकूल को जायेगा क्योंकि तब नई व्यापार शर्त रेखा OT2 की ढाल OT0 से कम है. इससे स्पष्ट है कि कोटा का व्यापार शर्त पर प्रभाव का अनुमान लगाना संभव नहीं है. वहीँ हमने चित्र 1 की मदद से देखा कि टैरिफ का व्यापार शर्त पर प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है.

2. निर्यात सब्सिडी(Export Subsidy): निर्यात सब्सिडी किसी देश की सरकार द्वारा एक निर्यातक फर्म अथवा उत्पादक को दी जानेवाली आर्थिक सहायता है ताकि निर्यात वस्तुओं की कीमत में कमी की जा सके. इससे निर्यात-वस्तु को विदेशी बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धी बनाया जाता है. सरकार निर्यात को प्रोत्साहित करने तथा विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए अपने देश के निर्यातकों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष आर्थिक अनुदान देकर उत्पाद को कम मूल्य पर बेंचने के लिए प्रोत्साहित करती है. किन्तु प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडी GATT तथा उसके बाद WTO के प्रावधानों के विरुद्ध होने के कारण सरकारें विभिन्न प्रकार की अप्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडी ही देती हैं, जैसे रियायती दरों पर ऋण, उनके द्वारा दिए गए प्रशुल्कों में वापसी, कमी वाले कच्चे माल के आवंटन में प्राथमिकता, व्यापार मेले जैसी गतिविधियाँ आयोजित करने के लिए वित्तीय सहायता, बाजार अनुसन्धान, विज्ञापन में वित्तीय सहायता, कर-राहत आदि.

निर्यात सब्सिडी के प्रभाव: निर्यात सब्सिडी के प्रभाव का हम आंशिक संतुलन विश्लेषण की मदद से प्रस्तुत चित्र की मदद से करते हैं.

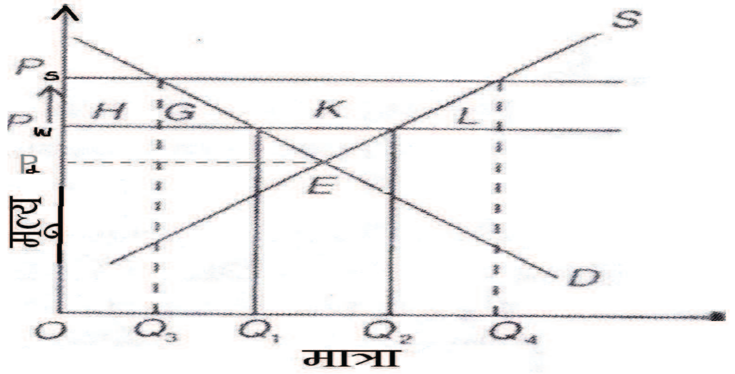

इस चित्र में एक छोटे से देश, जैसे नेपाल के मामले में आंशिक संतुलन के अंतर्गत निर्यात सब्सिडी के आर्थिक प्रभावों को दर्शाया गया है. यहाँ निर्यात सब्सिडी का आयातक देश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता. इस चित्र में D और S निर्यात योग्य वस्तु के क्रमशः घरेलू मांग व पूर्ति वक्र हैं तथा बाजार संतुलन E विन्दु पर स्थापित होता है जिसके कारण घरेलू मूल्य OPd स्थापित होता है. विश्व बाजार मूल्य OPw है जो घरेलू मूल्य OPd से ऊपर है. ऐसी स्थिति में घरेलू मांग OQ1 है तथा घरेलू पूर्ति OQ2 है. मांग से पूर्ति अधिक (OQ2 – OQ1 = Q1Q2) होने के कारण देश Q1Q2 के बराबर निर्यात करता है. निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार प्रत्येक निर्यातित इकाई पर PwPs देती है. इससे घरेलू

कीमत, घरेलू उत्पादकों व उपभोक्ताओं दोनों के लिए बढ़कर OPs हो जाती है. निर्यात सब्सिडी के कारण निर्यात में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप घरेलू बाजार में बस्तु के पूर्ति में कमी आ जाती है. परिणामस्वरूप उस वस्तु की घरेलू कीमत में वृद्धि हो जाती है. उदाहरणस्वरूप काजू उत्पादकों को भारत में निर्यात सब्सिडी मिलने के कारण काजू के घरेलू पूर्ति में कमी आ जाती है जिसके कारण इसके घरेलू मूल्य में वृद्धि हो जाती है. इससे काजू के घरेलू उपभोक्ताओं के उपभोक्ता अतिरेक (consumer's surplus) में हानि होती है. निर्यात पर सब्सिडी मिलने के कारण वस्तु का प्रवाह अंतर्राष्ट्रीय बाजार की ओर होने लगता है, जिसके कारण इसकी पूर्ति घरेलू बाजार में कम हो जाती है. फलस्वरूप वस्तु की कीमत घरेलू बाजार में अंतर्राष्ट्रीय बाजार की तुलना में बढ़ जाती है. चित्र से स्पष्ट है, घरेलू बाजार की कीमत अंतर्राष्ट्रीय बाजार से अधिक होने के कारण इस कीमत पर वस्तु की घरेलू मांग OQ3 पर गिर जाती है जबकि पूर्ति OQ4 तक बढ़ जाती है. फलस्वरूप कुल निर्यात Q1Q2 से Q3Q4 तक बढ़ जाती है.

इस निर्यात सब्सिडी के फलस्वरूप घरेलू कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोक्ता अतिरेक (consumer's surplus) में H+G क्षेत्र के बराबर कमी आती है. वहीँ उत्पादक अतिरेक (prducer's surplus) में H+G+K क्षेत्र के बराबर वृद्धि होती है. सरकार को निर्यात सब्सिडी पर कुल लागत G+K+L उठानी पड़ती है. इस प्रकार देश के कल्याण में शुद्ध हानि त्रिभुज G और L के बराबर है. संक्षेप में, निर्यात सब्सिडी के फलस्वरूप

उत्पादक अतिरेक में वृद्धि	= H+G+K
उपभोक्ता अतिरेक में हानि	= –(H+G)
सरकार का सब्सिडी लागत	= –(G+K+L)
शुद्ध कल्याण हानि	= –(G+L)

इस प्रकार, देश में होनेवाली शुद्ध कल्याण हानि वस्तु पर दी जाने वाली सब्सिडी लागत और उपभोक्ता अतिरेक के हानि के योग के उत्पादक अतिरेक से अधिक होने के कारण होता है.

एक बात और, निर्यात सब्सिडी के कारण देश के व्यापार शर्त में गिरावट भी आ सकती है. यदि देश अपनी वस्तु को बड़े पैमाने पर सब्सिडी दे रहा हो तब उसकी सब्सिडी देने की लागत बढ़ जाती है. जैसे-जैसे उसके निर्यात में और विस्तार होगा, उसके व्यापार शर्त में गिरावट आएगी और उसका शुद्ध कल्याण हानि और अधिक हो जायेगा.

निर्यात सब्सिडी बनाम टैरिफ: निर्यात सब्सिडी व टैरिफ के प्रभाव में कुछ भिन्नताएं हैं:

पहला, निर्यात सब्सिडी और टैरिफ दोनों में, वस्तु के घरलू तथा अंतर्राष्ट्रीय मूल्य में अंतर पैदा जो जाता है. जहाँ निर्यात सब्सिडी निर्यातयोग्य वस्तु की घरेलू कीमत बढ़ा देता है, वहीँ आयात टैरिफ आयातयोग्य वस्तु के घरेलू कीमत में वृद्धि कर देता है.

दूसरा, निर्यात सब्सिडी संसाधनों को निर्यातयोग्य वस्तुओं की ओर मोड़ती है. परन्तु आयात प्रशुल्क संसाधनों को घरेलू उपभोग के लिए वस्तुओं के उत्पादन की ओर ले जाते हैं.

तीसरा, निर्यात सब्सिडी से सरकार को शुद्ध राजस्व हानि होती है, जबकि आयात-टैरिफ से सरकार को शुद्ध राजस्व लाभ प्राप्त होता है.

चौथा, घरलू उत्पादकों को दी जानेवाली सब्सिडी आयात की जगह ले लेगी तथा देश में वास्तविक बचत बढ़ेगी. वास्तविक आय में यही लाभ वस्तु की घरेलू कीमत में वृद्धि के साथ उसी प्रतिशत में प्रशुल्क द्वारा प्राप्त किया जा सकता है. परन्तु वस्तु के उपभोग पर रोक के कारण उपभोक्ता अतिरेक(consumer’s surplus) की हानि होगी.

पांचवां, निर्यात-सब्सिडी घरेलू कीमत ढांचे को बाहरी कीमत ढांचे के अनुसार ढालती है और इस प्रकार निर्यात को विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करती है. दूसरी ओर आयात-प्रशुल्क घरेलू कीमत ढांचे को घरेलू लागत ढांचे के अनुसार ढालता है. इससे अकुशलतायें पैदा होती है तथा निर्यात के लिए विश्व बाजार में प्रतियोगिता करना कठिन हो जाता है.

अंतिम, पिछड़े देशों के दृष्टिकोण से निर्यात-सब्सिडी आयात-प्रशुल्क से श्रेष्ठ है क्योंकि यह निर्यात प्रोत्साहन के द्वारा आर्थिक विकास लाता है जबकि प्रशुल्क का उद्देश्य आयात का प्रतिस्थापन है. लेकिन विश्व मंदी के दौर में निर्यात सब्सिडी भी कभी-कभी कारगर साबित नहीं होता. परिणामस्वरूप, निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित करके भुगतान संतुलन को ठीक करने का उद्देश्य पूरा नहीं होता. आयात प्रशुल्क के पक्ष में यह तर्क है कि यह आयात को सीमित करने के साथ देश को राजस्व प्रदान करता है जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति बेहतर होती है.

3. स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें(Voluntary Export Restrains – VERs): स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें(VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है. यह आयातक देश द्वारा तब किया जाता है जब उसका घरेलू उद्योग बड़े पैमाने पर आयातों से पीड़ित होता है. कहने को तो स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें ‘स्वैच्छिक’ होती हैं, किन्तु यह कभी-कभार ही ‘स्वैच्छिक’ होती हैं. इन्हें निर्यातकों को विवशता में स्वीकार करना पड़ता है. किन्तु यदि निर्यातक ऊंचे मूल्य पर कम निर्यात करके अधिक लाभ कमाने की स्थिति में होता है, तो उसे इन तथाकथित स्वैच्छिक निर्यात रुकावटों को स्वीकार करने में कोई परेशानी नहीं होती. अमेरिका तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय(EEC) के देशों द्वारा इसका प्रयोग जापान तथा विकासशील देशों से स्टील, टीवी, वाहन, वस्त्र आदि के आयात पर रोक लगाने के लिए किया गया है. प्रशुल्क तथा कोटा जैसे व्यापारिक प्रतिबन्धों पर GATT तत्पश्चात विश्व व्यापार संगठन (WTO) द्वारा मनाही के कारण स्वैच्छिक व्यापार प्रतिबन्धों को कई देश अपनाते रहें है.
4. तकनीकी बाधाएं: कई देश विशेषकर विकसित देश अपने देश में कुछ गैर-आर्थिक प्रकृति की तकनीकी बाधाओं को लगाकर आयात को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं. तकनीकी बाधाएं कई तरह की होती हैं जैसे स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धी मानक, स्वच्छता मानक, औद्योगिक मानक, लेबलिंग और पैकेजिंग मानक आदि आते हैं. इस तरह के मानक-सम्बन्धी विनियम(regulations) लाकर देश की सरकारें अपने यहाँ आयात की मात्रा को नियंत्रित करने का प्रयास करती हैं.
5. आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाएं (Import Licensing Procedures): कई देश की सरकारें अपने यहाँ आयात को प्रतिबंधित अथवा सीमित करने के लिए जटिल तथा महँगी आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाओं को अपनाते हैं. आयात लाइसेंस की ऊँची शुल्क तय की जाती है. इसके अलावे कई अन्य जटिल औपचारिकताओं से इच्छुक लाइसेंस-धारक को गुजरना पड़ता है. किन्तु एक बात यहाँ

ध्यान देनेयोग्य है कि आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रिया जटिल हो जाने से भ्रष्टाचार उत्पन्न होने का भी खतरा रहता है. कहना न होगा, भूमंडलीकरण के इस युग में आयात लाइसेन्सिंग प्रक्रियाएं अब पहले से सरल हो गई हैं.

6. सीमाशुल्क मूल्यांकन तथा वर्गीकरण(Customs Valuation and Classification): कई बार सीमाशुल्क अधिकारी आयातित वस्तु के मूल्य का निर्धारण उसपर लिखे मूल्य के अनुसार न करके अपने देश में उत्पादित उसी वस्तु के मूल्य के आधार पर करते हैं. एक और तरीका है, आयातित वस्तु को विलम्ब से छोड़ना, जिससे आयातित वस्तु की लागत अपने आप बढ़ जाये. इसके अलावा सीमा शुल्क अधिकारी वस्तुओं का वर्गीकरण भी करते हैं और अलग-अलग वर्ग के लिए अलग-अलग शुल्क निर्धारित करते हैं और प्रयास यही रहता है कि आयातित वस्तु को घरेलू बाजार में गैर-प्रतिस्पर्धी बनाना. इससे आयातकों में अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है.

7. सरकारी वसूली(Government Procurement): कई देशों की सरकारें अपने घरेलू उद्योग को प्रोत्साहित और संरक्षण देने के लिए सरकारी खरीद नियम बनाते हैं जिसके अंतर्गत घरेलू आपूर्तिकर्ताओं से ही माल खरीदने के लिए दिशा-निर्देश दिए जाते हैं. उदाहरण के लिए अमेरिका में Buy-American Act के अंतर्गत अमेरिका के सरकारी विभागों अथवा एजेंसिओं को घरेलू निविदाएँ ही स्वीकार करनी पड़ती हैं चाहे वे विदेशी निविदाओं से 12 प्रतिशत तक अधिक मूल्य की ही क्यों न हो. रक्षा सामग्री में यह 50 प्रतिशत अधिक होने पर भी मान्य होता है. जापान में तो विदेशी निविदाओं पर विचार ही नहीं किया जाता है. इस प्रकार, सरकारें विदेशी निविदाएँ स्वीकार अथवा अस्वीकार करने में अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करती हैं. इसका उद्देश्य घरेलू उद्योग को संरक्षण प्रदान करना होता है.

अभ्यास प्रश्न 1.

---

iv. लघु उत्तरीय प्रश्न

d) किन्हीं चार गैर-टैरिफ बाधाएं बताएं.

e) टैरिफ-अभ्यंश से क्या समझते हैं?

f) मिश्रित कोटा क्या है?

v. सत्य/असत्य का चुनाव करें

e) राज्य-व्यापार गैर-टैरिफ व्यापार बाधा की श्रेणी में आता है.

f) आयात-अभ्यंश आयात को कम करने की प्रत्यक्ष विधि है.

g) गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का मुक्त व्यापार पर प्रभाव नहीं पड़ता है.

h) जहाँ प्रशुल्क आयात को कम करने में विफल होता है, वहां आयात-अभ्यंश अधिक प्रभावशाली होता है.

vi. बहुविकल्पी प्रश्न

c) निम्नलिखित गैर-टैरिफ व्यापार बाधा है

iv) आयात अभ्यंश ii) निर्यात सब्सिडी iii) राज्य व्यापार iv) सभी.

d) आयात कोटा का मूल्य पर प्रभाव होता है

i) प्रत्यक्ष ii) अप्रत्यक्ष iii) प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों iv) कोई प्रभाव नहीं पड़ता

e) आयात कोटा का आयात मात्रा पर प्रभाव होता है

i) प्रत्यक्ष ii) अप्रत्यक्ष iii) प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों iv) कोई प्रभाव नहीं पड़ता

f) प्रशुल्क का मूल्य पर प्रभाव होता है

i) प्रत्यक्ष ii) अप्रत्यक्ष iii) प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों iv) कोई प्रभाव नहीं पड़ता

g) प्रशुल्क का आयात मात्रा पर प्रभाव होता है

i) प्रत्यक्ष ii) अप्रत्यक्ष iii) प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों iv) कोई प्रभाव नहीं पड़ता

8.5 देश के आर्थिक विकास में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की भूमिका

देश के आर्थिक विकास के निर्देशन में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है. विशेषकर, घरेलू उद्योगों को संरक्षित करने में गैर-टैरिफ बाधाएं बहुत प्रभावी होती हैं. टैरिफ जैसे उपाय कई बार कारगर साबित नहीं होते. ऐसी स्थिति में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की मदद लेनी पड़ती है. विकासशील देश इस तरह की कई व्यापार बाधाओं को अपनाकर अपने उद्योगों को विकसित देश के कम लागत पर बने वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा से बचाते हैं. ये व्यापार रुकावटें विकासशील देशों के विकास को प्रोत्साहित करने में निम्न प्रकार से मदद करती हैं:

1. ये बाधाएं घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करती हैं और इन्हें अपनी स्थिति मजबूत करने का अवसर प्रदान करती हैं ताकि बाद में विदेशी प्रतिस्पर्धा और बहुर्राष्ट्रीय कम्पनिओं से प्रतिस्पर्धा कर सकने की स्थिति में ये आ सकें.
2. ये बाधाएं विकासशील देशों को औद्योगिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में मदद करते हैं. घरेलू उद्योगों को संरक्षण देकर तथा आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों की स्थापना करके, इस तरह के व्यापार प्रतिबन्ध विकासशील देशों को आद्योगिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में मदद करते हैं.
3. टैरिफ व गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं विकासशील देशों के भुगतान संतुलन को सुधारने में मदद करती हैं. अधिकांश विकासशील देश प्राथमिक वस्तुओं के निर्यातक व आद्योगिक निर्मित वस्तुओं के आयातक होते हैं. प्रेबिश व सिंगर ने इनके प्रतिकूल भुगतान संतुलन होने के पीछे यही कारण माना है. टैरिफ व गैर-टैरिफ व्यापार प्रतिबन्ध इनके लिए न सिर्फ़ राजस्व जुटाने में मदद करते हैं बल्कि इनके घरेलू उद्योगों के विकास में भी सहायक होते हैं. परिणामस्वरूप, आयात कम होता है, निर्यात बढ़ता है और देश विदेशी मुद्रा अर्जित करने की स्थिति में आ जाता है जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार होता है.
4. व्यापार प्रतिबंधों से उच्च बचत दर तथा घरेलू पूंजी-निवेश को प्रोत्साहन मिलता है. इससे भुगतान संतुलन में सुधार होता है और विदेशी ऋण से मुक्ति मिलती है. किन्तु यह सब घरेलू उद्योगों द्वारा इन उपायों से लाभ लेने पर ही सम्भव होता है.

5. व्यापार पर टैरिफ तथा गैर-टैरिफ बाधाओं जैसे कोटा लाइसेंस से सरकारी राजस्व में वृद्धि होती है. किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इन उपायों का मुख्य उद्देश्य सरकारी राजस्व में वृद्धि करना नहीं होता.
6. इन बाधाओं से जब घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है तब घरेलू क्षेत्र में श्रमिकों के लिए रोजगार के ज्यादा अवसर पैदा होते हैं और बेरोजगारी की समस्या से निजात मिलता है.

अभ्यास प्रश्न 2.

i) लघु उत्तरीय प्रश्न

a) गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं किसी देश के आर्थिक विकास में किस प्रकार मदद करती है?

b) विकासशील देशों का व्यापार-संतुलन प्रतिकूल होने के पीछे प्रेबिश-सिंगर ने क्या तर्क दिया?

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें

a) प्रेबिश-सिंगर के अनुसार विकासशील देश प्राथमिक वस्तुओं के आयातक होते हैं.

b) गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं आयात-प्रतिस्थापन उद्योग को प्रोत्साहित करते हैं.

c) कोटा लाइसेंस से देश के राजस्व में वृद्धि होती है.

8.6 सारांश

इस प्रकार हमने देखा कि जब स्वतंत्र बाजार की शक्तियां देश के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के ढांचे में वांछित परिणाम लाने में असफल हो जाती हैं तो सरकार विभिन्न प्रकार की प्रतिबंधात्मक और निर्देशात्मक उपायों को अपनाती है. सरकार की सबसे बड़ी चिंता आयात को कम करने तथा निर्यात बढ़ाने की होती है जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति अनुकूल हो सके. आयात कम करने के लिए सरकार प्रशुल्क यानि टैरिफ और निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहनों जैसे उपायों को अपनाती है. किन्तु आयात कम करने में प्रशुल्क की भी अपनी सीमा है. इसलिए सरकार को कुछ गैर-प्रशुल्क उपायों का सहारा लेना पड़ता है.

गैर टैरिफ बाधाओं के अंतर्गत मात्रात्मक व्यापार प्रतिबन्ध, राजकोषीय उपाय, प्रशासनिक, प्रमाणिक तथा विनियमन जैसे उपायों की चर्चा हमने की. इन उपायों में आयात अभ्यंश, निर्यात सब्सिडी, स्वैक्षिक निर्यात रुकावटें, जटिल आयात लाइसेंसिंग प्रक्रिया आदि बहुत प्रचलित हैं. इसके अलावा कुछ गैर-आर्थिक बाधाएं भी प्रयोग में लाईं जाती हैं जैसे स्वास्थ्य व सुरक्षा सम्बन्धी मानक, पर्यावरण व पैकेजिंग सम्बन्धी मानक आदि. अन्य गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं में द्विपक्षीय व्यापार समझौते, राशिपातन, अंतर्राष्ट्रीय वस्तु समझौते, अंतर्राष्ट्रीय कार्टेल, आदि आते हैं. इस इकाई में हमने किसी देश विशेषकर विकासशील देश के आर्थिक विकास में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं की भूमिका पर भी प्रकाश डाला. इन उपायों से घरेलू देश के उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है, देश का भुगतान संतुलन सुधारने में मदद मिलती है और विदेशी मुद्रा की समस्या से देश को निजात मिलता है. घरेलू उद्योगों के प्रोत्साहन से देश में रोजगार के नए अवसर पैदा होते हैं. किन्तु कहना न होगा कि अत्यधिक व्यापार प्रतिबन्ध कभी-कभी देश के लिए नुकसानदेह भी होता है. इस प्रकार के प्रतिबन्ध तभी तक लगाने चाहिए

जबतक देश के उद्योग अपने पैरों पर खड़े न हो जाय और विदेशी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में न हो जांए. बाद में इन प्रतिबंधात्मक उपायों को धीरे-धीरे हटा लेनी चाहिए और देश के उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा और चुनौतिओं से जूझने का अवसर देना चाहिए.

8.7 पारिभाषिक शब्दावली:

- प्रशुल्क (Tariffs): संरक्षण प्रदान करने की यह सबसे प्रचलित विधि है. आयात अथवा निर्यात पर लगने वाले कर को प्रशुल्क कहते हैं. आम तौर पर आयात पर ही कर लगाने की परम्परा रही है जिसके कारण जब भी प्रशुल्क की चर्चा होती है तब इसका अर्थ आयात-कर से ही लिया जाता है. आयातित होने वाले वस्तु पर जब कर लगाया जाता है तब उसका मूल्य घरेलू बाज़ार में बढ़ जाता है जिसके कारण देश में निर्मित वही वस्तु अधिक प्रतिस्पर्धी हो जाती है.
- अभ्यंश(कोटा) एवं लाइसेंस(Quota and Licences): अभ्यंश अथवा कोटा के अंतर्गत सरकार आयातित वस्तु की अधिकतम मात्रा अथवा अधिकतम मूल्य निर्धारित करती है. इसके कारण घरेलू उद्योगों के लिए निश्चिन्तता हो जाती है कि उसे सीमित विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा. लाइसेन्सिंग प्रणाली के अंतर्गत सरकार सोंच-समझकर और घरेलू उद्योगों का हित देखकर आयात का लाइसेंस प्रदान करती है.
- अनुदान (Subsidies): अनुदान भी घरेलू उद्योग को संरक्षण प्रदान करने की विधि है. अनुदान के अंतर्गत घरेलू उद्योग के उत्पाद को प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए सरकार उसके उत्पादन लागत का कुछ भाग सरकार स्वयं वहन करती है. कभी-कभी निर्यात बोनस, निर्यात पुरस्कार, निर्यात करों में छूट के द्वारा भी सरकार घरेलू निर्यातकों को संरक्षण प्रदान करती है. इन सब विधियों से वस्तुओं के मूल्यों को कृत्रिम रूप से कम करके निर्यातों को प्रोत्साहित किया जाता है. इसके कारण विदेशी वस्तुओं को घरेलू बाजार में संघर्ष करना पड़ता है.
- राज्य व्यापार (State Trading): राज्य व्यापार संरक्षण प्रदान करने की प्रत्यक्ष विधि है. विशेषकर समाजवादी देशों में राज्य व्यापार के माध्यम से घरेलू उद्योग के उत्पाद को विश्व बाज़ार में बेचने की जिम्मेवारी सरकार अपने ऊपर लेती है. इसके लिए सरकार ट्रेडिंग एजेंसियां निर्मित करके विदेश व्यापार करती है. इससे विदेशी वस्तु को घरेलू बाजार में अपना स्थान बनाने में बाधा उत्पन्न होती है.
- अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Cartel): कई देश आपस में मिलकर संघ बना लेते हैं जिसका उद्देश्य अपने उत्पाद का विश्व बाज़ार में अधिक मूल्य सुनिश्चित करना होता है. ऐसे संघ को कार्टेल कहा जाता है. उदाहरणस्वरूप तेल निर्यातक देशों का संगठन ओपेक (OPEC) एक प्रकार का कार्टेल है जिसका उद्देश्य विश्व बाज़ार में तेल का अधिक मूल्य प्राप्त करना है. इससे घरेलू तेल उत्पादक कम्पनिओं को संरक्षण प्राप्त होता है.
- स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें(Voluntary Export Restrains – VERs): स्वैच्छिक निर्यात रुकावटें(VER) एक ऐसा समझौता है जो निर्यातक देश के निर्यातकों अथवा सरकार द्वारा आयातक देश के साथ उसके निर्यातों को सीमित करने के लिए किया जाता है.

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें

a) राज्य-व्यापार गैर-टैरिफ व्यापार बाधा की श्रेणी में आता है – सत्य

b) आयात-अभ्यंश आयात को कम करने की प्रत्यक्ष विधि है – सत्य

c) गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं का मुक्त व्यापार पर प्रभाव नहीं पड़ता है – असत्य

d) जहाँ प्रशुल्क आयात को कम करने में विफल होता है वहां आयात-अभ्यंश अधिक प्रभावशाली होता है – सत्य

iii) बहुविकल्पी प्रश्न

a) iv) सभी.

b) ii) अप्रत्यक्ष

c) i) प्रत्यक्ष

d) i) प्रत्यक्ष

e) ii) अप्रत्यक्ष

अभ्यास प्रश्न 2

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें

a) प्रेबिश-सिंगर के अनुसार विकासशील देश प्राथमिक वस्तुओं के आयातक होते हैं – असत्य.

b) गैर-टैरिफ व्यापार बाधाएं आयात-प्रतिस्थापन उद्योगों को प्रोत्साहित करते हैं – सत्य

c) कोटा लाइसेंस से सरकार के राजस्व में वृद्धि होती है – सत्य

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- Bo Sodersten; International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger; International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)

- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, (अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

8.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001.
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं से क्या अभिप्राय है? गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त विवरण दीजिए.
2. किसी देश के आर्थिक विकास में गैर-टैरिफ व्यापार बाधाओं के महत्व तथा इसकी सीमाओं पर प्रकाश डालें.

इकाई 9 राशिपातन और राज्य व्यापार

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 राशिपातन

9.3.1 राशिपातन का अर्थ

9.3.2 राशिपातन के उद्देश्य

9.3.3: राशिपातन के लिए आवश्यक शर्तें

9.3.4: राशिपातन नियंत्रण उपाय (Anti-dumping Measures)

9.4. राज्य व्यापार

9.4.1 राज्य व्यापार का अर्थ एवं इसका उदेश्य

9.4.2 राज्य व्यापार के उदय के कारण

9.4.3 राज्य व्यापार की विधियाँ

9.5: राज्य व्यापार के लाभ एवं दोष

9.5.1 राज्य व्यापार के लाभ

9.5.2 राज्य व्यापार के दोष

9.6 सारांश

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

9.10उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड – दो "व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण, एवं सीमा संघ के सिद्धांत" से सम्बंधित यह चौथी इकाई है. इस इकाई का शीर्षक "राशिपातन और राज्य व्यापार" है. प्रस्तुत इकाई में राशिपातन का अर्थ, इसके उद्देश्य व राशिपातन के विभिन्न तरीकों के बारे में बताया गया है. साथ ही इस इकाई में राज्य व्यापार का अर्थ, इसका उद्देश्य, इसके गुण-दोष आदि के बारे में भी चर्चा की गई है.

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- राशिपातन के अर्थ को समझ सकेंगे.
- राशिपातन के उद्देश्य को जान पाएंगे.
- राशिपातन की आवश्यक शर्तों से अवगत होंगे.
- राज्य व्यापार के अर्थ को समझ पाएंगे.
- राज्य व्यापार के उद्देश्य को जान सकेंगे.
- राज्य व्यापार के लाभ और हानि से अवगत होंगे.

9.3 राशिपातन

9.3.1 राशिपातन का अर्थ

राशिपातन(Dumping) एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण है जहाँ किसी उत्पाद के लिए घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में अलग-अलग मूल्य निर्धारित किये जाते है. जैकब वाइनर (Jacob Viner) के शब्दों में "राशिपातन दो बाज़ारों में मूल्य विभेद है (Dumping is price discrimination between two markets). एल्सवर्थ (P.T. Ellsworth) के अनुसार राशिपातन विदेशी बाज़ार में वस्तु की उत्पादन लागत से कम मूल्य पर बेचने की क्रिया मात्र नहीं है. उनके अनुसार, "यातायात व्ययों, करों, एवं अन्य सभी हस्तान्तरण लागतों के समायोजन के पश्चात् विदेशी बाज़ार में वस्तु को देशी बाज़ार में प्राप्त होनेवाले मूल्य से कम पर बेचने को राशिपातन कहते हैं" (It means, sales in a foreign market at a price below that received in home market, after allowing transportation charges and all other costs of transfer). अतः, राशिपातन के अंतर्गत विदेशी बाज़ार में वस्तु का मूल्य घरेलू बाज़ार की तुलना में कम करके रखा जाता है. राशिपातन का सहारा लेने वाले उत्पादक को घरेलू बाजार में कुछ हद तक एकाधिकारी शक्ति प्राप्त होती है जहाँ वह अपने उत्पाद का मूल्य प्रतियोगी मूल्य की अपेक्षा अधिक रखने में सफल हो जाता है. किन्तु उसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है जिसके कारण उसे अपने उत्पाद का प्रतिस्पर्धी मूल्य रखना पड़ता है जो घरेलू बाजार के मूल्य की तुलना में कम होता है. राशिपातन के अंतर्गत प्रायः उत्पाद का मूल्य विदेशी बाज़ार में घरेलू बाज़ार से भी कम रखा जाता है. कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि वस्तु का मूल्य विदेशी बाज़ार में उसकी लागत से भी कम रखा जाता है. जब घरेलू बाज़ार में वस्तु की मांग कम होती है तब विदेशी बाज़ार में राशिपातन का सहारा लिया जाता है. इसके अलावा, राशिपातन का उदेश्य विदेशी बाज़ार में अपनी वस्तु को स्थापित करना अथवा

प्रतिस्पर्धी वस्तु को बाज़ार से बाहर करना भी होता है. कभी-कभी तो राशिपातन अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में गला-काट प्रतियोगिता (cut-throat competition) को जन्म देता है. इसलिए राशिपातन द्विपक्षीय व्यापार संबंधों में तनाव भी उत्पन्न करता है.

9.3.2 राशिपातन के उद्देश्य

राशिपातन के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं:

1. राशिपातन संरक्षणवादी उपाय के अंतर्गत भी आता है. देश के किसी उद्योग-विशेष के उत्पाद को निर्यातोन्मुख बनाने के लिए सरकार निर्यात-सब्सिडी देकर उसके मूल्य को विदेशी बाज़ार में कृत्रिम रूप से कम रखने में मदद करती है. ऐसा होने से वस्तु विदेशी बाज़ार में प्रतिस्पर्धी बन जाता है जिससे उस उद्योग को फायदा होता ही है, साथ में देश को विदेशी मुद्रा अर्जित करने में भी मदद मिलती है.
2. जब अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में किसी देश का प्रबल प्रतिस्पर्धी उपस्थित हो जाता है तब ऐसी स्थिति में बाज़ार में अपने उत्पाद की स्थिति मजबूत करने के लिए राशिपातन का प्रयोग किया जाता है. ऐसा भी होता है कि एक शक्तिशाली उत्पादक छोटे-मोटे उत्पादकों को बाज़ार से बाहर का रास्ता दिखने के लिए राशिपातन का प्रयोग करे. ऐसी स्थिति को गला-काट(Cut-throat competition) प्रतियोगिता कहते हैं.
3. कभी-कभी कई कम्पनियाँ मिलकर कार्टेल (cartel) का निर्माण कर लेती हैं और फिर ये कम्पनियाँ अन्तर्रष्ट्रीय बाजार में अपने उत्पाद का ऊंचा मूल्य प्राप्त करने में सफल हो जाती हैं. यह भी के प्रकार का राशिपातन ही है.
4. कभी-कभी विक्री-मौसम के अंत में घरेलू बाज़ार में वस्तु की विक्री बंद हो जाती है या कम हो जाती है. ऐसी स्थिति में इसे विदेशी बाज़ार में कम मूल्य पर (at throw away prices) बेचने की योजना बनाई जाती है. यह भी राशिपातन की श्रेणी में आता है.

9.3.3: राशिपातन के लिए आवश्यक शर्तें

हैबरलर ने राशिपातन के लिए दो आवश्यक शर्तों का उल्लेख किया है. पहला, जिस वस्तु पर राशिपातन किया गया हो उसे फिर से देश के बाज़ार में बेचने से रोका जाय. यदि नहीं रोका गया तो वही वस्तु फिर घरेलू बाजार में कुछ अधिक मूल्य पर आ जायेगी और घरेलू उपभोक्ता उसे खरीदना पसंद करेंगे. दूसरी शर्त यह कि घरेलू बाज़ार में उत्पादक को एकाधिकार प्राप्त हो जहाँ वह अधिक मूल्य वसूल सके. प्रतियोगिता की स्थिति में उत्पाद का घरेलू मूल्य कम हो जाता है और फिर घरेलू और विदेशी बाज़ारों के मूल्य में अंतर समाप्त हो सकता है. ऐसी स्थिति में राशिपातन नहीं हो पायेगा, क्योंकि विदेशी बाज़ार में कम मूल्य पर उत्पाद को बेचने से जो क्षति होगी उसकी भरपाई घरेलू बाज़ार नहीं कर पायेगा.

9.3.4: राशिपातन नियंत्रण उपाय (Anti-dumping Measures)

जिस देश में राशिपातन किया जाता है, उसे आर्थिक क्षति होने की संभावना रहती है क्योंकि उसके घरेलू उद्योग के लिए समस्या खाड़ी हो जाती है. कुछ वर्ष पूर्व जापान ने अमेरिकी बाज़ार में अपने कार काफ़ी कम मूल्य पर उतारे जिसके कारण अमेरिकी कार उद्योग में हडकंप मच गया और डेट्रॉइट की

कार निर्माता कम्पनिओं को अमेरिकी सरकार के समक्ष गुहार लगानी पड़ी थी. इसलिए अब हमें राशिपातन से निपटने के उपाय पर भी विचार करनी चाहिए, जो निम्नलिखित हो सकते हैं:

1. आयात कर लगाना:- राशिपातन से बचाने का यह सामान्य तरीका है. इसके घरेलू कीमत और राशिपातन की जानेवाली वस्तुओं की कीमतों में जो अंतर बैठता है, उसके बराबर आयात शुल्क लगा दिया जाता है.
2. अभ्यंश लगाना:- राशिपातन का सामना करने के लिए वस्तु के आयात का कोटा या विनिमय नियंत्रण के माध्यम से आयातों की मात्रा को नियंत्रित कर दिया जाता है. राशिपातन को रोकने के लिए आयात शुल्क की तुलना में मात्रात्मक प्रतिबन्ध या अभ्यंश अधिक प्रभावशाली सिद्ध होते हैं.
3. राशिपातन वाले देश से समझौता:- यह एक बीच-बचाओ वाला उपाय है जिसमें राशिपातन करनेवाले देश और उससे प्रभावित देश आपस में मिल-बैठकर समस्या का निदान खोजते हैं और कोई बीच का रास्ता ढूढते हैं.

अभ्यास प्रश्न 1

i) लघु उत्तरीय प्रश्न

a) राशिपातन क्या है?

b) राशिपातन के क्या उद्देश्य हैं?

c) राशिपातन की कौन-कौन सी शर्तें हैं?

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें.

a) राशिपातन संरक्षण का उपाय है

b) राशिपातन एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण है.

c) राशिपातन के अंतर्गत घरेलू बाज़ार में उत्पाद का मूल्य विदेशी बाज़ार से अधिक होता है.

d) राशिपातन गला-काट प्रतियोगिता को जन्म दे सकता है.

iii) बहुविकल्पी प्रश्न

a) निम्नलिखित राशिपातन नियंत्रण उपाय है

i) आयात कर ii) कोटा iii) दोनों iv) इनमें से कोई नहीं

b) राशिपातन संभव होता है

i) आयात कर से ii) निर्यात सब्सिडी से iii) आयात कोटा से iv) निर्यात कर से

iv) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

a) राशिपातन में घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तु का मूल्य _____ होता है (एक ही/अलग-अलग).

b) निर्यात सब्सिडी देने से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में देश के उत्पाद का मूल्य___________है (बढ़ता/घटता).

c) राशिपातन की स्थिति में देश के उत्पाद को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में ________ का सामना करना पड़ता है(प्रतिस्पर्धा/एकाधिकार).

9.4. राज्य व्यापार

9.4.1 राज्य व्यापार का अर्थ एवं इसका उदेश्य

राज्य व्यापार का तात्पर्य विदेशी व्यापार में सरकार का हस्तक्षेप से है. आयात और निर्यात से सम्बंधित समस्त निर्णय सरकार खुद करती है अथवा उसमें हस्तक्षेप करती है. राज्य व्यापार उस अवस्था को कहते हैं जहाँ वस्तुओं के आयात व निर्यात सरकार द्वारा नियंत्रित या सरकारी संस्था द्वारा किया जाता है. इस प्रकार, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सरकार के हस्तक्षेप को राज्य व्यापार कहते हैं. राज्य व्यापार का इतिहास बहुत पुराना है. वणिकवादी विचारधारा के समर्थक इसे यूरोप में सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर एडम स्मिथ के आगमन तक, यानि अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करते थे. बीसवीं शताब्दी में, रूस में साम्यवाद के उदय से राज्य व्यापार का महत्व बढ़ा. तीस के दसक के मंदी से निपटने के लिए विश्व में राज्य व्यापार को महत्व को स्वीकार किया गया और पूंजीवादी देशों ने भी इससे परहेज नहीं किया. राज्य व्यापार के कई रूप हो सकते हैं. यह सरकारी एजेंसी का रूप लेकर किसी एकाधिकारी निजी फर्म की तरह कार्य कर सकता है, अथवा सरकार का कोई मंत्रालय देश के समस्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित कर सकता हैं जैसा कि साम्यवादी देशों में देखने को मिलता है. आगे हम इसके बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे.

9.4.2 राज्य व्यापार के उदय के कारण:

राज्य व्यापार के उदय के निम्नलिखित कारण हैं:

1. समाजवाद/साम्यवाद का उदय:- विश्व में समाजवाद के उदय से आर्थिक क्रिया-कलापों में राज्य की भूमिका बहुत बढ़ गई. चूँकि समाजवाद में उत्पादन और वितरण के अधिकार सरकार के हाथ में आ जाते हैं अतः स्वाभाविक है कि व्यापार में भी राज्य की भूमिका बढ़ जाती है. यहाँ तक कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे पूंजीवादी देशों ने भी पूंजीवाद के दोषों को नियंत्रित करने के लिए राज्य व्यापार को अपनाया. आजकल विकासशील देशों में भी समाजवादी लक्ष्यों को ध्यान में रखकर राज्य व्यापार को अपनाया जाता है.
2. आर्थिक नियोजन का प्रारंभ:- विश्व के कई देशों ने सुनियोजित आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाया, जिसके कारण आर्थिक क्षेत्र में राज्य की भूमिका बढ़ी. खासकर विकासशील देशों में जहाँ आर्थिक क्रियाओं के संचालन में बाजार की शक्ति पर निर्भर नहीं रहा जा सकता वहां राज्य व्यापार का महत्व बढ़ा और सरकारें आयात और निर्यात को निर्देशित करने लगी.
3. विदेशी मुद्रा की समस्या:- भारत जैसे विकासशील देश प्रायः विदेशी मुद्रा के संकट से जूझते रहें हैं. ऐसी स्थिति में आयात-निर्यात को नियंत्रित करने की जिम्मेवारी सरकारों के लिए बढ़

गई. आयात करने के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है. सरकारें सभी वस्तुओं के आयात के लिए विदेशी मुद्रा नहीं निर्गत करती. ये अलग बात है कि उदारीकरण और भूमंडलीकारण के इस दौर में सरकारों की भूमिका अब घटने लगी है.

4. राजनीतिक उद्देश्य:- राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी सरकारें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अपनी भागीदारी बढाती हैं, जिसके कारण व्यापार की मात्रा, संरचना, एवं दिशा को निर्धारित करने के लिए राज्य व्यापार को प्रोत्साहन मिला.

9.4.3 राज्य व्यापार की विधियाँ

राज्य व्यापार की निम्नलिखित विधियाँ हैं:

1. विदेशों में वस्तुओं की खरीद-विक्री राज्य स्वयं करे.
2. विदेशों में वस्तुओं की खरीद-विक्री के लिए राज्य स्वायत्त संस्थाओं की स्थापना करे.
3. निजी व्यापार कम्पनिओं को सरकार आयात अथवा निर्यात करने के लिए लाइसेंस जारी करे और फिर इनके क्रिया-कलापों पर नज़र रखे.

राज्य व्यापार देश की आर्थिक नीति पर निर्भर करती है. कोई आवश्यक नहीं कि राज्य सभी वस्तुओं के आयात व निर्यात अपने हाथ में ले ले. प्रायः ऐसा देखा गया है कि राज्य कुछ विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं के आयात-निर्यात को अपने हाथ में लेती है. हाँ इतना जरुर है कि समाजवादी देशों में राज्य व्यापार अधिक होता है.

9.5 राज्य व्यापार के लाभ एवं दोष

9.5.1 राज्य व्यापार के लाभ

राज्य व्यापार राष्ट्रीय उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है. निजी व्यापार कम्पनियों का उद्देश्य लाभ कमाना होता जिसके कारण निजी उद्देश्य राष्ट्रीय उद्देश्य को पूरा नहीं कर पाते.

1. लागत में कमी:- राज्य एक बड़ा खरीददार या विक्रेता बनता है तो एक-मुश्त खरीद-विक्री का लाभ जो प्राप्त होता है वह राज्य को मिलता है. परिवहन लागत में कमी होती है जिसका लाभ उपभोक्ताओं को प्रदान किया जा सकता है. राज्य के लिए यह भी संभव है कि वह बड़ी मात्रा में वस्तुएं खरीदने व बेचने के लिए अन्य देशों से द्विपक्षीय व्यापार समझौता कर ले. ऐसी स्थिति में आयात के लिए वित्त जुटाने की समस्या नहीं रहती.
2. सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि:- राज्य एक बड़ी ताकत है और जब उसे आयात या निर्यात करने की एकाधिकारी शक्ति प्राप्त होती है तब उसकी सौदेबाजी की शक्ति भी बढ़ जाती है. ऐसी स्थिति में राज्य अपनी शर्तो पर आयात या निर्यात कर सकता है.
3. नए बाज़ार की खोज:- नए बाज़ार की खोज के लिए निजी व्यापार कंपनियों की अपेक्षा सरकार के पास अधिक साधन एवं विशेषज्ञों की सेवाएँ विद्यमान होती हैं. इसके लिए निवेश करने का सामर्थ्य निजी कंपनियों की तुलना में सरकार के पास अधिक होती है.
4. व्यापार के अतिरिक्त अन्य आर्थिक नीतियों का क्रियान्यवन:- राज्य व्यापार के माध्यम से राष्ट्रीय उद्देश्य को पूरा करनेवाले अन्य नीतियों का संचालन किया जा सकता है. जैसे– नेशनल

बैंकिंग, परिवहन, बीमा आदि का विस्तार इसी बहाने किया जा सकता है. भारत जैसे देश में लघु उद्द्योगों जैसे कारपेट उद्द्योग, खादी उद्द्योग आदि को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने राज्य ट्रेडिंग कम्पनियाँ बना रखी है.

5. भुगतान संतुलन में सुधार:- राज्य व्यापार भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार ला सकता है. जिस देश के साथ देश का भुगतान संतुलन प्रतिकूल है, उससे आयात को रोका जा सकता है और उस देश को निर्यात बढ़ाने के उपाय किये जा सकते है.
6. राज्य व्यापार से मूल्य विभेदीकरण संभव:- चूँकि राज्य की एजेंसी आयात करनेवाली एकमात्र संस्था होती है, वह आयातों के लिए ऊँचे मूल्य का भुगतान करके देश के उपभोक्ताओं को उससे कम मूल्य पर वस्तु को उपलब्ध करा सकती है यदि इससे किसी राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति हो रही हो. यह भी संभव है कि राज्य आयातित वस्तु का देश के अलग-अलग उपभोक्ता-समूहों के लिए अलग-अलग मूल्य निर्धारित करे.
7. अन्य नियंत्रणों से बेहतर:- आयातों को नियंत्रित करने के लिए सरकार टैरिफ व कोटा जैसे उपाय करती है. किन्तु इनके अपने दोष हैं. राज्य व्यापार की संस्था कीमतों, उत्पाद की गुणवत्ता, व्यापार की शर्तों, आदि के आधार पर राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर खरीद कर सकती है.
8. दुर्लभ किस्म की वस्तु के आयात व निर्यात का नियंत्रण:- दुर्लभ किस्म की वस्तुओं के आयात-निर्यात में कई तरह की कालाबाजारी होने की संभावना रहती है. राज्य एक शक्तिशाली संस्था है, इसलिए ऐसी वस्तुओं के आयात-निर्यात अपने हाथ में लेकर सरकार इस तरह की गतिविधि को नियंत्रित कर सकती है.
9. घरेलू कीमतों में स्थायित्व: राज्य व्यापार के माध्यम से घरेलू कीमतों में स्थायित्व लाया जा सकता है. कीमतों में उतार-चढ़ाव होने का प्रमुख कारण विदेशी व्यापार में सट्टेबाजी जैसी क्रियाएं हैं जिन्हें राज्य व्यापार के माध्यम से दूर किया जा सकता है.
10. विदेशी व्यापार से सम्बंधित अन्य दोषों का निराकरण:- विदेशी व्यापार से सम्बंधित अन्य दोषों का निराकरण राज्य व्यापार के माध्यम से किया जाता है; जैसे निजी आयातकर्ताओं व निर्यातकर्ताओं द्वारा करों की चोरी, विदेशी मुद्रा की कालाबाजारी आदि पर रोक इसके माध्यम से हो सकता है.

9.5.2 राज्य व्यापार के दोष

राज्य व्यापार मुक्त व्यापार के सिद्दांत के प्रतिकूल है. मुक्त व्यापार के समर्थक अर्थव्यवस्था में इस तरह के सरकारी हस्तक्षेप का विरोध करते हैं. इसलिए राज्य व्यापार के उपर्युक्त लाभों के बावजूद इसके विरूद्ध अनेक आपत्तियां उठाई गई हैं. ये निम्न हैं:

1. एकाधिकार सम्बन्धी दोष:- व्यापार में प्रतियोगिता की स्थिति आदर्शतम मानी गई है. व्यापार में राज्याधिकार के कारण निजी प्रोत्साहनों को आघात लगता है. यदि व्यापार में स्वस्थ प्रतियोगिता रहे तथा उसे कुशलता से संचालित किया जाय तो विदेशी व्यापार निजी हाथों द्वारा अच्छी तरह संचालित किया जा सकता है.

2. बहुपक्षीय व्यापार को क्षति:- राज्य व्यापार में, बहुपक्षीय व्यापार के स्थान पर, द्विपक्षीय व्यापार को समर्थन मिलाता है. एक देश प्रायः आयात करने के लिए उन्हीं देशों को प्राथमिकता देता है जो उससे आयात करने के लिए तैयार रहते हैं. यदि स्वतंत्र प्रतियोगिता रहती है तो बहुपक्षीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलाता हैं.
3. राजनीति से प्रभावित:- राज्य व्यापार शर्तें विशुद्ध आर्थिक न होकर राजनीतिक होती हैं. एक देश उस बाज़ार से उत्पाद नहीं खरीदता जहाँ वे सबसे सस्ती मिलाती हैं और न ही उन बाज़ारों में अपने उत्पाद को बेचता है जहाँ उसकी कीमत अधिकतम होती है. इन सबका निर्धारण राजनीतिक आधारों एवं पूर्वाग्रहों द्वारा होता है.
4. व्यापार में अकुशलता:- राज्य व्यापार सरकारी कर्मचारिओं और अधिकारिओं द्वारा संचालित होती है जहाँ लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का बोलबाला रहता है. इसके कारण व्यापार में अकुशलता उत्पन्न हो जाती है. कई अर्धविकसित देश इस समस्या के शिकार रहें हैं.
5. व्यापार में कठिनाई:- यदि उत्पादन की प्रणाली निजी हाथों में हो तब राज्य व्यापार करना कठिन हो जाता है. क्योंकि तब समन्वय का अभाव रहता है. राज्य व्यापार घरेलू उत्पादन और वितरण पर सख्त नियंत्रण द्वारा ही संचालित हो सकता है.
6. व्यापार के विशिष्ट ज्ञान का अभाव:- सरकार के अधिकारिओं और कर्मचारिओं में व्यापार करने के हुनर कम देखे गए हैं. उनके पास व्यापार का विशिष्ट ज्ञान नहीं होता जिसके कारण कम-से-कम प्रारम्भिक वर्षों में राज्य व्यापार करने में कई कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं.
7. निजी तथा व्यक्तिगत रूचि का अभाव:- किसी भी कार्य की सफलता के लिए यह आवश्यक है की उसमें व्यक्तिगत अभिरुचि हो, किन्तु राज्य व्यापार में ऐसा नहीं है. राज्य व्यापार के संस्थाओं के कर्मचारी इस कार्य में दिल से जुड़े नहीं होते जिसके कारण उन्हें हानि की परवाह नहीं होती. इस कारण राज्य व्यापार की संस्थाओं का कार्य कुशलता से नहीं हो पाता.

अभ्यास प्रश्न 2

i) लघु उत्तरीय प्रश्न
   a) राज्य व्यापार से क्या समझते हैं?
   b) राज्य व्यापार की कौन-कौन विधियाँ है?

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें
   a) राज्य व्यापार संरक्षण उपाय है
   b) राज्य व्यापार मुक्त व्यापार के सिद्धांत पर आधारित है.
   c) एडम स्मिथ राज्य व्यापार के समर्थक थे
   d) भूमंडलीकारण के दौर में राज्य व्यापार का महत्व बढ़ा है

iii) बहुविकल्पी प्रश्न
   a) राज्य व्यापार से बल मिलता है

i) बहुपक्षीय व्यापार को ii) द्विपक्षीय व्यापार को iii) एकपक्षीय व्यापार को iv) उपर्युक्त सभी को

b) राज्य व्यापार किन देशों में अधिक प्रचलित है

i) पूंजीवादी देशों में ii) समाजवादी देशों में iii) दोनों में

c) राज्य व्यापार के अंतर्गत होता है

i) राज्य स्वयं खरीद-विक्री करता है.

ii) खरीद-विक्री के लिए राज्य स्वायत्त संस्थाओं की स्थापना करता है.

iii) निजी व्यापार कम्पनिओं को राज्य आयात-निर्यात का लाइसेंस जारी करता है.

iv) उपर्युक्त सभी

iv) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

a) राज्य व्यापार मुक्त व्यापार के सिद्धांत के ______________में है (पक्ष/विपक्ष).

b) राज्य व्यापार __________________देशों में प्रचलित है (पूंजीवादी/समाजवादी).

c) राज्य व्यापार ___________________की नीति है (मुक्त व्यापार/संरक्षणवाद)

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने राशिपातन व राज्य व्यापार पर विचार किया. दोनों ही संरक्षण की विधियाँ हैं. दोनों ही स्थितिओं में सरकार का सहयोग घरेलू उत्पादकों को मिलता है. राशिपातन की स्थिति में वस्तु का मूल्य घरेलू बाज़ार की तुलना में विदेशी बाज़ार में कम होता है जिसके पीछे सरकार का भी सहयोग रहता है. सरकार उत्पाद पर सब्सिडी देकर उसके मूल्य को विदेशी बाज़ार में कृत्रिम रूप से कम रखने में मदद करती है. यह अलग बात है कि कभी-कभी निर्यातक भी भविष्य की संभावना के मद्देनज़र अपने उत्पाद का मूल्य विदेशी बाज़ार में कुछ समय के लिए कम रख सकता है. राज्य व्यापार के अंतर्गत तो सरकार समस्त विदेशी व्यापार गतिविधिओं को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपने नियंत्रण में रखती है. राज्य व्यापार का उदय विश्व में समाजवाद के उदय तथा आर्थिक नियोजन के प्रारम्भ के कारण हुआ. विश्व में राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी राज्य व्यापार की भूमिका बढ़ी. राज्य व्यापार के अपने फायदे और नुकशान हैं. अपने राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य व्यापार को अपनाया जाता है. सरकार व्यापारिक एजेंसियां बनाकर अथवा निजी व्यापारियों को लाइसेंस देकर विदेश व्यापार को अपने नियंत्रण में रखती है. राज्य एक बड़ी ताकत होती है इसलिए वह उन क्षेत्रों में भी व्यापारिक गतिविधियां चला सकता है जहाँ निजी क्षेत्र साहस नहीं दिखा पाते. राज्य एक मुश्त खरीददार होने के कारण उसके मोल-भाव करने की ताकत अधिक होती है और वह सस्ते मूल्य पर वस्तुओं का आयात कर सकता है. किन्तु राज्य व्यापार के कुछ सीमाएं भी हैं. यह मुक्त व्यापार के सिद्धांत के विपरीत है जिसके कारण मुक्त व्यापार के कई फायदे से देश वंचित होता है. निजी और व्यक्तिगत हित सम्मिलित नहीं होने और व्यापार सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान के अभाव के कारण राज्य व्यापार में अकुशलता उत्पन्न होती है. इसके अलावा व्यापार में लाल फीताशाही और भ्रष्टाचार भी व्याप्त होने की संभावना रहती है.

9.7 पारिभाषिक शब्दावली

राशिपातन:- यह एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण है जिसमें विदेशी बाज़ार में वस्तु का मूल्य घरेलू बाज़ार की तुलना में कम रखा जाता है.

राज्य व्यापार:- जब राज्य विदेशी व्यापार में सीधा हस्तक्षेप करता है और अपने देश की आर्थिक नीतिओं को ध्यान में रखकर संचालित करता है तब ऐसी स्थिति को राज्य व्यापार कहते हैं.

प्रशुल्क:- आयात अथवा निर्यात पर लगने वाले कर को प्रशुल्क कहते हैं. वैसे आम तौर पर प्रशुल्क का तात्पर्य आयात पर लगनेवाले कर से है.

सब्सिडी:- लागत का वह भाग जो सरकार वहन करती है और जिसके फलस्वरूप वस्तु का मूल्य कृत्रिम रूप से कम हो जाता है, सब्सिडी कहलाता है.

भुगतान संतुलन:- विदेशी व्यापार का लेखा-जोखा जिसमें देश की समस्त देनदारी व प्राप्ति का उल्लेख होता है, भुगतान संतुलन कहलाता है.

मूल्य विभेदीकरण:- जब एक ही उत्पाद का अलग-अलग क्रेताओं से अलग-अलग मूल्य वसूला जाता है तब ऐसी स्थिति को मूल्य विभेदीकरण कहते हैं. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में राशिपातन(Dumping) एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण कहते हैं.

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें.

a) राशिपातन संरक्षण का उपाय है – सत्य

b) राशिपातन एक प्रकार का मूल्य विभेदीकरण है – सत्य

c) राशिपातन के अंतर्गत घरेलू बाज़ार में उत्पाद का मूल्य विदेशी बाज़ार से अधिक होता है – सत्य

d) राशिपातन गला-काट प्रतियोगिता को जन्म दे सकता है - सत्य

iii) बहुविकल्पी प्रश्न

a) निम्नलिखित राशिपातन नियंत्रण उपाय है -iii) दोनों

b) राशिपातन संभव होता है

ii) निर्यात सब्सिडी से

iv) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

a) अलग-अलग होता है.

b) उत्पाद का मूल्य घटता है.

c) प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है.

अभ्यास प्रश्न 2

ii) सत्य/असत्य का चुनाव करें

a) राज्य व्यापार संरक्षण उपाय है – सत्य

b) राज्य व्यापार मुक्त व्यापार के सिद्धांत पर आधारित है – असत्य

c) एडम स्मिथ राज्य व्यापार के समर्थक थे – असत्य

d) भूमंडलीकारण के दौर में राज्य व्यापार का महत्व बढ़ा है – असत्य

iii) बहुविकल्पी प्रश्न

a) राज्य व्यापार से बल मिलता है
ii) द्विपक्षीय व्यापार को

b) राज्य व्यापार किन देशों में अधिक प्रचलित है
ii) समाजवादी देशों में

c) राज्य व्यापार के अंतर्गत होता है

v) उपर्युक्त सभी

iv) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

a) विपक्ष में है

b) समाजवादी देशों में प्रचलित है

c) संरक्षणवाद की नीति है

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- Bo Sodersten; International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger; International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).

- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ,(अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

9.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001.
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. राशिपातन से क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों को रेखांकित करें व इसके आवश्यक शर्तों को बताएं.
2. राज्य व्यापार से क्या समझते हैं? राज्य व्यापार के लाभ व इसकी सीमाओं को रेखांकित करें.

इकाई 10 सीमा संघ के सिद्धांत

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 सीमा संघ का अर्थ

10.4 व्यापार सृजन और व्यापार दिशा-परिवर्तन

10.5 सीमा संघ का आंशिक व सामान्य संतुलन विश्लेषण

10.5.1 सीमा संघ का आंशिक संतुलन विश्लेषण

10.5.2 सीमा संघ का सामान्य संतुलन विश्लेषण

10.6 सारांश

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूचि

10.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के खंड – दो "व्यापार की शर्तें, मुक्त व्यापार, संरक्षण, एवं सीमा संघ के सिद्धांत" से सम्बंधित यह अंतिम इकाई है. इस इकाई का शीर्षक "सीमा संघ के सिद्धांत" है. प्रस्तुत इकाई में सीमा संघ का अर्थ एवं महत्व के बारे में विस्तार से बताया गया है. साथ ही सीमा संघ के सिद्दांत से सम्बंधित आंशिक व सामान्य संतुलन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गए हैं.

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- सीमा संघ के अर्थ को समझ सकेंगे.
- सीमा संघ से सम्बंधित जैकब वाइनर के व्यापार सृजन (Trade Creation) व व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) जैसी अवधारणाओं से परिचित होंगे
- सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण से आप परिचित होंगे.
- सीमा संघ से सम्बंधित लिप्से (R. G. Lipse) व वानेक (Jaroslav Vanek) के सामान्य संतुलन मॉडल से आप परिचित होंगे.

10.3 सीमा संघ का अर्थ

मुक्त व्यापार के समर्थक मुक्त व्यापार को आदर्शतम स्थिति मानते हैं. उनका तर्क है कि इससे साधनों का ईष्टतम आवंटन व वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है. किन्तु मुक्त व्यापार अपने आप में वास्तविकता से बहुत दूर है. वास्तविकता तो यह है कि विभिन्न देश अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर संरक्षणवादी नीति अपनाते रहें हैं और कई प्रकार के अवरोध खड़े करते रहे हैं जिनमें टैरिफ व गैर टैरिफ बाधाएं हैं जिनकी चर्चा पूर्व में की गई है. सीमा संघ का सिद्धांत मुक्त व्यापार व संरक्षण के बीच की अवस्था है. इसे द्वितीय श्रेष्ट का सिद्धांत (Theory of the Second Best) भी कहते हैं. सीमा संघ के अंतर्गत दो या दो से अधिक देश एक संगठन बनाते हैं, जिसके सदस्य आपस में सीमा शुल्क(टैरिफ) को समाप्त कर देते हैं और संगठन के बाहर के देशों से आनेवाली वस्तुओं पर साझा शुल्क (common tariff) लगाते हैं. इस प्रकार के संगठन का उद्देश्य सदस्य देशों में कल्याण के स्तर को ऊंचा उठाना होता है.

अतः सीमा संघ सदस्य देशों के बीच एक प्रकार का आर्थिक एकीकरण है. इसी प्रकार के कुछ अन्य आर्थिक एकीकरण के संगठन भी हैं जो यहाँ दिए गए हैं:

प्रेफरेंसियल व्यापार संगठन (Preferencial Trading Union): इसमें दो या दो से अधिक देश संगठन बना कर संघ के देशों के लिए आयात शुल्क को कम कर देते हैं. सदस्य देश संगठन के बाहर के देशों से आनेवाली वस्तुओं पर अपने-अपने आयात शुल्क निर्धारित करते हैं. राष्ट्रमंडल(Commonwealth) को इसी श्रेणी का संगठन माना जाता है.

मुक्त व्यापार संगठन (Free Trade Union/Association): इसमें संगठन के देश आपस में समस्त आयात शुल्क को समाप्त कर देतें हैं और संगठन के बाहर से आनेवाले वस्तुओं पर सदस्य देश अपना-अपना शुल्क निर्धारित करतें हैं.

साझा बाज़ार (Common Market): इस प्रकार के संगठन में सदस्य देश आपस में समस्त व्यापार शुल्क को समाप्त कर देतें हैं और साथ ही उत्पादन के साधनों के मुक्त आवाजाही की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं. यूरोपीय साझा बाज़ार (Europian Common Market) इसका उदाहरण है.

आर्थिक संगठन (Economic Union): यह सर्वोच्च श्रेणी का आर्थिक एकीकरण है. इसमें साझा बाज़ार की विशेषताओं के अतिरिक्त वित्तीय, मौद्रिक, विनिमय-दर, आर्थिक नीतियों आदि में भी समानता लाई जाती है. साथ ही एक साझा मुद्रा जारी करने का प्रयास किया जाता है. यूरोपीय साझा बाज़ार (ECM) अब यूरोपीय आर्थिक संगठन (Europian Economic Union) बन चुका है. इसका एक साझा मुद्रा यूरो (Euro) भी है, जो सदस्य देशों के बीच तो स्वीकार्य है ही, दुनिया के अन्य देशों में भी इसकी स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है.

सीमा संघ के सिद्धांत को प्रस्तुत करने का श्रेय जैकब वाइनर (Jacob Viner), जे०ई०मीड(J.E. Meade), आर०जी० लिप्से(R.G.Lipse) आदि को जाता है. वैसे तो सीमा संघ के गठन का उद्देश्य सदस्य-देशों में कल्याण के स्तर को उंचा उठाना होता है किन्तु जैकब वाइनर ने व्यापार सृजन (Trade Creation) व व्यापार दिशा परिवर्तन (Trade Diversion) जैसी अवधारणाओं की मदद से यह सिद्ध किया कि यह कोई जरूरी नहीं है कि सीमा संघ का गठन सदस्य देशों के कल्याण के स्तर को ऊँचा उठाये.

10.4 व्यापार सृजन (Trade Creation) व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion)

जैकब वाइनर ने सीमा संघ के गठन के पश्चात् व्यापार सृजन व व्यापार दिशा परिवर्तन के माध्यम से सदस्य देशों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया. उनके अनुसार व्यापार सृजन (Trade Creation) तब होता है जब सीमा संघ के गठन के बाद किसी वस्तु का घरेलू उत्पादन बंद करके उसे अधिक कुशल(more efficient) सदस्य देश से आयातित किया जाता है. जबकि, व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) तब होता है जब किसी वस्तु का आयात किसी गैर सदस्य किन्तु अधिक कुशल(more efficient) देश से हटाकर कम कुशल(less efficient) सदस्य-देश से किया जाता है. (Trade creation takes place when domestic production is replaced by imports from a more efficient member-country of the Custom Union, where as, Trade Diversion takes place when import from a more efficient non-member country is switched to a less efficient member country of the Custom Union.) यहाँ उत्पादन में कुशलता या अकुशलता का आकलन उत्पादन लागत में अंतर के आधार पर किया जाता है. सारिणी संख्या 1 की मदद से व्यापार सृजन को समझा जा सकता है:

सारिणी 1: व्यापार सृजन

देश	उत्पादन लागत रु प्रति इकाई	जर्मनी एक समान प्रति इकाई 100% आयात शुल्क लगाता है	जर्मनी फ्रांस से आयातित वास्तु से सभी आयात शुल्क हटा लेता है किन्तु जापानी वस्तु पर से नहीं
जर्मनी	50	50	50
फ्रांस	40	80	40
जापान	30	60	60

सर्वप्रथम, सारिणी 1 की मदद से व्यापार सृजन को समझने का प्रयास करते हैं. सारिणी 1 में तीन देश जर्मनी, फ्रांस और जापान दर्शाये गए हैं. जर्मनी और फ्रांस सीमा संघ का गठन कर लेते हैं जबकि जापान सीमा संघ के बाहर का देश है. तीनों देशों में किसी वस्तु, जैसे टेलीविज़न, का उत्पादन लागत अगले कॉलम में दिया गया है जिसके अनुसार जर्मनी में इसकी प्रति इकाई उत्पादन लागत 50 डॉलर है जबकि फ्रांस व जापान में क्रमशः 40 डॉलर और 30 डॉलर है. उत्पादन लागत के लिहाज से जापान टेलीविज़न के उत्पादन में सबसे अधिक निपुण है जबकि जर्मनी सबसे कम. मुक्त व्यापार की स्थिति में जापान से टेलीविज़न का आयात जर्मनी व फ्रांस दोनों देशों में होगा और इन दोनों देशों को इसका उत्पादन बंद करना पड़ेगा. अब मान लीजिए जर्मनी टेलीविज़न के आयात पर 100% आयात शुल्क लगाता है. ऐसी स्थिति में फ्रांस के टेलीविज़न का मूल्य 80 डॉलर तथा जापानी टेलीविज़न का मूल्य 60 डॉलर हो जायेगा. जर्मन टेलीविज़न का मूल्य तो 50 डॉलर ही रहेगा. ऐसी स्थिति में जर्मन टेलीविज़न की विक्री घरेलू बाज़ार में होगी. 100% के आयात शुल्क के कारण फ्रांस व जापान के उत्पाद का मूल्य जर्मन बाज़ार में जर्मन टेलीविज़न से अधिक हो जायेगा जिसके कारण उनकी विक्री नहीं हो पायेगी.

अब मान लीजिए, जर्मनी व फ्रांस सीमा संघ बना लेते हैं और एक दूसरे देश से आने वाली टेलीविज़न सहित समस्त वस्तुओं पर से सीमा शुल्क हटा लेते हैं, जबकि जापान से आनेवाली वस्तुओं पर एक समान टैरिफ जो 100% है, बना रहता है. परिणामस्वरूप, जर्मन बाजार में जर्मन टेलीविज़न का मूल्य 50 डॉलर और फ्रांस के टेलीविज़न का मूल्य 40 डॉलर हो जाता है, जबकि जापानी टेलीविज़न का मूल्य 60 डॉलर हो जायेगा, जैसा की सारिणी 1 के अंतिम कॉलम में दर्शाया गया है. अब सीमा संघ के गठन के पश्चात् जर्मनी टेलीविज़न का उत्पादन बंद कर उसे फ्रांस से आयात करेगा क्योंकि वहां से उसे सस्ते मूल्य पर प्राप्त किया जा सकता है. यह स्थिति व्यापार सृजन (Trade Creation) का है, जो संसाधनों का बेहतर आवंटन के कारण प्राप्त होता है और जिसके कारण जर्मनी में कल्याण का स्तर ऊँचा हो जाता है.

अब हम सारिणी 2 की मदद से अब हम व्यापार दिशा परिवर्तन (Trade Diversion) को समझने का प्रयास करेंगे.

सारिणी 2: व्यापार दिशा-परिवर्तन

देश	उत्पादन लागत रु प्रति इकाई	जर्मनी एक समान प्रति इकाई 50% आयात शुल्क लगाता है	जर्मनी फ्रांस के उत्पाद पर से सभी आयात शुल्क हटा लेता है किन्तु जापानी उत्पाद पर से नहीं
जर्मनी	50	50	50
फ्रांस	40	60	40
जापान	30	45	45

इस सारिणी में भी टेलीविज़न की उत्पादन लागत तीनों देशों में वही है जो सारिणी संख्या 1 में थी. यदि जर्मनी अपने यहाँ आनेवाली वस्तु पर 50% आयात शुल्क लगाता है तब फ्रांस से आनेवाले टेलीविज़न का मूल्य 60 डॉलर तथा जापान से आनेवाले टेलीविज़न का मूल्य 45 डॉलर हो जाता है. ऐसी स्थिति में टैरिफ लगने के बावजूद जर्मनी के लिए जापानी टेलीविज़न सबसे सस्ता होगा. अब यदि जर्मनी और फ्रांस सीमा संघ गठन कर लेते हैं तब जर्मनी जापान से टेलीविज़न का आयात बंद कर फ्रांस से टेलीविज़न का आयात करने लगेगा क्योंकि तब उसका मूल्य सबसे कम होगा, जैसा कि सारिणी संख्या 2 के अंतिम कॉलम से स्पष्ट है. यह स्थिति व्यापार दिशा-परिवर्तन(Trade Diversion) की है. यहाँ जर्मनी ने टेलीविज़न का आयात सबसे कम लागत पर उत्पादित करनेवाले देश (जापान) से बंद कर उससे अधिक लागत वाले सीमा संघ के सदस्य देश (फ्रांस) से करने लगा. यह व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) संसाधनों के अकुशल आवंटन के कारण उत्पन्न होता है और जिसके कारण जर्मनी में कल्याण का स्तर नीचा हो जाता है. अतः हम देखते हैं कि सीमा संघ का गठन देश के कल्याण को प्रभावित करता है. शुद्ध कल्याण में वृद्धि अथवा ह्रास इस बात पर निर्भर करेगा कि व्यापार सृजन और व्यापार दिशा-परिवर्तन में कौन अधिक बलशाली है.

अभ्यास प्रश्न 1:

4. लघु उत्तरीय प्रश्न:

iii) सीमा संघ से क्या समझते हैं?

iv) व्यापार सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन किसे कहते हैं?

5. अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

iii) व्यापार सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन की अवधारण किसने विकसित की?

iv) द्वितीय सर्वोत्तम का सिद्धांत किसे कहते हैं?

6. बहुविकल्पीय प्रश्न:

vi) निम्नलिखित में किसमें आर्थिक एकीकरण सबसे अधिक होता हैं –

b) सीमा संघ में b) साझा बाज़ार में c) आर्थिक संगठन में.

vii) द्वितीय सर्वोत्तम का सिद्धांत किसने विकसित की –

b) मार्शल ने b) लिप्से तथा लेंकास्टर ने c) जैकब वाइनर ने

viii) सीमा संघ के सदस्य, संघ के बाहर के देशों पर लगाते है -

b) एक समान शुल्क लगाते हैं b) अलग-अलग शुल्क लगाते हैं c) शुल्क लगाते ही नहीं.

ix) जैकब वाइनर ने सीमा संघ का प्रभाव निम्न पर डाला –

b) उत्पादन पर b) उपभोग पर c) उत्पादन तथा उपभोग दोनों पर

x) शुद्ध कल्याण में वृद्धि निर्भर करता है–

b) व्यापार सृजन की मात्रा पर b) व्यापार दिशा-परिवर्तन की मात्रा पर c) व्यापार सृजन तथा व्यापार दिशा-परिवर्तन दोनों की मात्रा पर

10.5 सीमा संघ का आंशिक व सामान्य संतुलन विश्लेषण

10.5.1 सीमा संघ का आंशिक संतुलन विश्लेषण

सीमा संघ का आंशिक संतुलन विश्लेषण प्रस्तुत करने के पूर्व बता दें कि जैकब वाइनर ने अपने विश्लेषण में सीमा संघ के गठन का उत्पादन-प्रभाव पर प्रकाश डाला जबकि मीड तथा लिप्से ने इसके उत्पादन व उपभोग दोनों प्रभावों पर प्रकाश डाला. यहाँ हम सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण में दोनों पक्षों के विचारों को समेकित करते हुए प्रस्तुत कर रहे हैं.

यहाँ हम एक वस्तु, टेलीविज़न का उदाहरण लेकर सीमा संघ के गठन के फलस्वरूप कल्याण पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे. हम ज्यामितीय विधि से आंशिक संतुलन विश्लेषण को प्रस्तुत कर रहे हैं. यहाँ तीन देशों का उदाहरण लिया गया है. ये देश हैं जर्मनी, जो घरेलू देश है, दूसरा देश है फ्रांस जो जर्मनी के साथ सीमा संघ का गठन करता है. तीसरा देश है जापान जो सीमा संघ के बाहर का देश है. जर्मनी में टेलीविज़न की मांग व पूर्ति वक्र क्रमशः DD और SS हैं. इसके कारण इसका मूल्य OP_1 निर्धारित होता है. फ्रांस व जापान के टेलीविज़न का मूल्य क्रमशः OP_3 और OP_4 हैं. इससे स्पष्ट होता है कि जापान टेलीविज़न के उत्पादन में सबसे निपुण देश है क्योंकि उसके उत्पाद का मूल्य सबसे कम है. फ्रांस की स्थिति जर्मनी व जापान के बीच की है. फ्रांस और जापान के पूर्ति वक्र पूर्णतः लोचदार हैं जो यह दर्शाता है कि वे अपने मूल्य पर टेलीविज़न की कोई भी मात्रा की पूर्ति करने को तैयार हैं. अब मान लीजिए जर्मनी P_2P_4 के बराबर सीमा शुल्क जर्मनी से बाहर से आनेवाले टेलीविज़न पर लगाता है. इसके कारण जापान से आनेवाले टेलीविज़न का मूल्य बढ़कर OP_2 हो जाता है. फ्रांस के उत्पाद का मूल्य अधिक हो जाने के कारण उसकी स्थिति का आकलन यहाँ नहीं किया जा रहा है. जर्मनी OP_2 मूल्य पर टेलीविज़न का उत्पादन OC मात्रा के बराबर करेगा किन्तु उसकी मांग OD के बराबर है. शेष CD मात्रा वह जापान से आयात करेगा. ऐसी स्थिति में (a) कुल उपभोक्ता की बचत(Consumer’s Surplus) WSP_2 के बराबर होगा (b) कुल उत्पादक की बचत(Producer’s Surplus) P_2RZ के बराबर होगा, और (c) सरकार को प्राप्त कुल राजस्व RIJS के बराबर होगा.

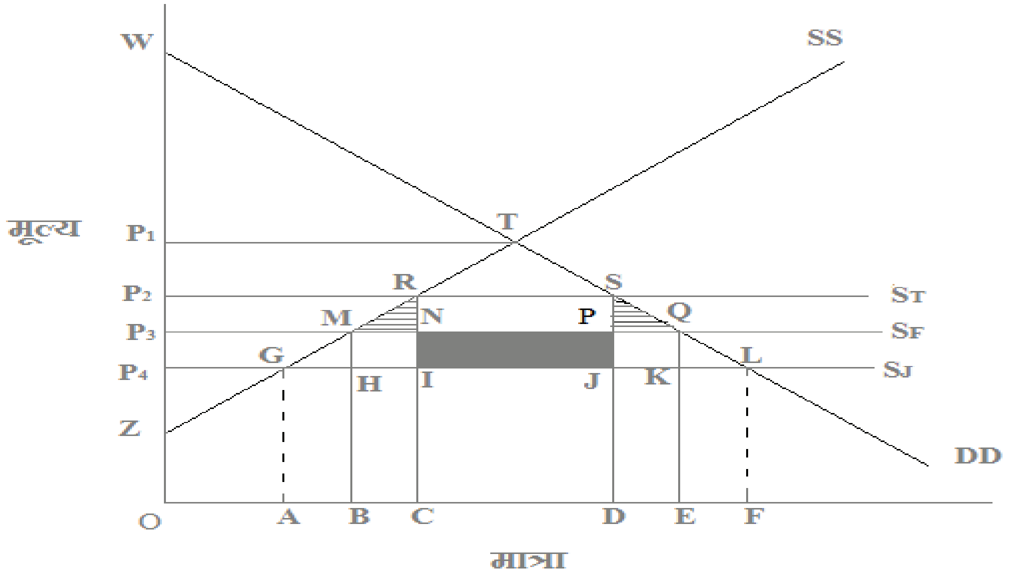

अब मान लीजिए जर्मनी फ्रांस के साथ सीमा संघ बना लेता है और दोनों एक दूसरे के उत्पाद पर से समस्त आयात शुल्क हटा लेते हैं. ऐसी स्थिति में जर्मनी फ्रांस से बिना आयात शुल्क के टेलीविज़न का आयात करेगा जिसका मूल्य OP_3 के बराबर होगा जो जापान के टेलीविज़न के मूल्य OP_2 (आयात शुल्क सहित) से कम है. ऐसी स्थिति में अधिक मूल्य होने के कारण जापानी टेलीविज़न की विक्री जर्मन बाज़ार में नहीं होगी.

अब हम ऐसी स्थिति में हम सीमा संघ के गठन का जर्मनी पर पड़ने वाले कुल प्रभाव का आकलन करते हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

(a) मूल्य प्रभाव (Price Effect): जर्मनी की खरीददारी मूल्य OP_2 से घटकर OP_3 हो जाता है.

(b) उत्पादन प्रभाव (Production Effect): जर्मनी में टेलीविज़न का उत्पादन OC(OP_2 मूल्य पर) से घटाकर OB(OP_3 मूल्य पर) हो जाता है. जिसके कारण जर्मनी के आयात में BC के बराबर वृद्धि होती है जो सीमा संघ के गठन के बाद टेलीविज़न के घरेलू उत्पादन में कमी के कारण संभव हुआ और यह मात्रा अधिक कुशल(more efficient) सदस्य देश से आयातित होता है. जैकब वाइनर के अनुसार यह व्यापार सृजन है.

(c) उपभोग प्रभाव (Consumption Effect): मूल्य में कमी(OP_2 से OP_3) हो जाने से जर्मनी के टेलीविज़न उपभोग में DE के बराबर वृद्धि होती है. उपभोग में यह वृद्धि फ्रांस से शुल्क-रहित टेलीविज़न के आयात से पूरा किया जाता है. यह भी व्यापार सृजन है जिसे जैकब वाइनर ने नहीं पहचाना. इसे प्रस्तुत करने का श्रेय मीड, लिप्से,

जॉनसन जैसे अर्थशास्त्रियों को जाता है. इन लोगों ने सीमा संघ के गठन का उत्पादन तथा उपभोग प्रभाव दोनों को महत्व दिया.

(d) कल्याण सृजन प्रभाव (Welfare Creation Effect): जैसा कि हमने देखा, सीमा संघ के गठन के पश्चात् उत्पादन में वृद्धि(BC) व उपभोग में वृद्धि(DE) के बराबर होता है. इनके कारण सीमा संघ का व्यापार सृजन प्रभाव क्रमशः RMN और SPQ के बराबर होता है. इन दोनों का योग जर्मनी के कल्याण में कुल वृद्धि को मापता हैं.

(e) कल्याण ह्रास प्रभाव (Welfare Reducing Effect): सीमा संघ के गठन के कारण व्यापार सृजन के साथ ही व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) भी होता है. इसका कारण यह है कि जर्मनी सीमा संघ के गठन के पश्चात् एक अधिक निपुण(more efficient) देश जापान के बदले एक कम निपुण(less efficient) देश फ्रांस से टेलीविज़न का आयात करने लगा. जापानी टेलीविज़न की उत्पादन लागत सबसे कम 30 डॉलर प्रति इकाई थी. यह व्यापार दिशा-परिवर्तन, व्यापार सृजन के विपरीत जर्मनी के कल्याण में कमी लाता है.

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि सीमा संघ के गठन के बाद, जर्मनी का टेलीविज़न आयात CD(जापान से) की जगह BE(फ्रांस से) हो रहा है. इनमें BC और DE के बराबर आयात में वृद्धि व्यापार सृजन करता है जिसके कारण कल्याण में वृद्धि होती है. CD मात्रा के आयात का दिशा-परिवर्तन(जापान से फ्रांस) होता है जिसका हमें कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करना है.

सीमा संघ के गठन के पूर्व जर्मनी के लिए CD मात्रा के आयात (जापान से) पर ग्राहकों द्वारा कुल भुगतान CRSD था जिसमें RIJS के बराबर जर्मन सरकार को राजस्व के रूप में प्राप्त होता था. यह एक प्रकार का आतंरिक हस्तानान्तरण था जिसे सम्पूर्ण देश के सन्दर्भ में लागत नहीं माना जायेगा. अतः CD मात्रा के आयात का वास्तविक लागत CIJD माना जायेगा.

अब देखते हैं, सीमा संघ के गठन का बाद क्या स्थिति बनती है. सीमा संघ के गठन के बाद CD मात्रा के आयात के लिए जर्मनी फ्रांस को CDPN भुगतान करता है, जो सीमा संघ के गठन के पूर्व जापान को किये गए भुगतान(CDJI) से IJPN अधिक है. सीमा संघ के गठन के बाद यही व्यापार दिशा परिवर्तन की लागत है जिसे हम कल्याण ह्रास प्रभाव(Welfare reducing effect) कहेंगे.

(f) शुद्ध कल्याण प्रभाव (Net Welfare Effect): इस प्रकार हमने देखा कि सीमा संघ का गठन व्यापार सृजन व व्यापार दिशा परिवर्तन को जन्म देता है. व्यापार सृजन कल्याण में वृद्धि करता है जबकि व्यापार दिशा-परिवर्तन कल्याण में कमी लाता है. इस प्रकार शुद्ध कल्याण-प्रभाव इन दोनों का अंतर होगा. जैसा कि चित्र से स्पष्ट है

कल्याण में वृद्धि = (RMN + SPQ) और कल्याण में कमी = IJPN

यदि, (RMN + SPQ) = IJPN,

तब सीमा संघ के गठन से जर्मनी के कल्याण के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं

यदि, (RMN + SPQ) > IJPN,

तब सीमा संघ के गठन से जर्मनी के कल्याण के स्तर में वृद्धि होगी

यदि, (RMN + SPQ) < IJPN

तब सीमा संघ के गठन से जर्मनी के कल्याण के स्तर में कमी होगी

अब यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कौन-कौन से कारक सीमा संघ के गठन से शुद्ध कल्याण को प्रभावित करेंगे. तो यहाँ बता दें कि निम्नलिखित दो कारक इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं:

i) घरेलू देश (जर्मनी) की मांग व पूर्ति की लोच, और

ii) सीमा संघ के गठन पूर्व मुक्त-व्यापार मूल्य OP_4, सीमा संघ के गठन पूर्व शुल्क-सहित मूल्य OP_2, तथा सीमा संघ के गठन के बाद का मूल्य OP_3, इन तीनों के बीच का अंतर.

सीमा संघ के गठन से कल्याण पर प्रभाव कुछ अन्य बातों पर भी निर्भर करते है, जो इस प्रकार है:

a) यदि सीमा संघ के दोनों सदस्य देश किसी वस्तु का उत्पादन ही नहीं करते तो इसके गठन का कोई औचित्य नहीं हैं क्योंकि तब दोनों ही देशों को वह वस्तु सीमा संघ के बाहर के देश से आयात करना पड़ेगा.

b) यदि किसी देश का प्रारंभिक सीमा शुल्क दर बहुत कम हो तो सीमा संघ के गठन से कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि तब व्यापार सृजन व्यापार दिशा-परिवर्तन से कम होगा. इसके विपरीत, यदि सीमा शुल्क दर बहुत अधिक हो तो सीमा संघ के गठन से कल्याण पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा.

c) यदि सीमा संघ के सदस्य-देश आपस में पूरक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तब सीमा संघ के गठन से कल्याण सम्बन्धी लाभ कम होगा, और यदि वे स्थानापन्न व प्रतिस्पर्धी वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तब सीमा संघ के गठन से कल्याण सम्बन्धी लाभ अधिक होगा.

10.5.2 सीमा संघ का सामान्य संतुलन विश्लेषण

सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण में हमने कई बातों की अनदेखी की जो सीमा संघ के गठन से उत्पन्न होती है. सीमा संघ व्यापार-सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन के अतिरिक्त कई अन्य प्रभाव भी उत्पन्न करते हैं, जैसे भुगतान संतुलन प्रभाव, व्यापार की शर्त पर प्रभाव आदि. अतः सीमा संघ का सामान्य संतुलन विश्लेषण का अध्ययन अपरिहार्य हो जाता है. यहाँ हम

सीमा संघ के सामान्य संतुलन से सम्बंधित दो मॉडल की चर्चा करेंगे, एक लिप्से(R.G. Lipse) का मॉडल तथा दूसरा वानेक(Jaroslav Vanek) का मॉडल.

a) लिप्से का मॉडल

जैकब वाइनर ने कहा था कि सीमा संघ के गठन का व्यापार दिशा-परिवर्तन(Trade Diversion)प्रभाव कल्याण के स्तर में कमी लाता है. लिप्से ने जैकब वाइनर के इस मत पर इसी शर्त पर सहमती जताई कि सीमा संघ के गठन के बाद भी देश में वस्तु का उपभोग पूर्व के ही अनुपात में हो, भले ही वस्तुओं के सापेक्षिक मूल्य में परिवर्तन हो गया हो. वाइनर की ही तरह लिप्से भी अपने विश्लेषण को इस मान्यता के आधार पर आगे बढ़ाते हैं कि देश में उत्पादन स्थिर लागत के नियम के अनुसार हो रहा है.

यहाँ भी हम तीन देश – जर्मनी, फ्रांस और जापान का उदाहरण लेते है, जिसमें जर्मनी घरेलू देश है, फ्रांस उसके सीमा संघ का जोड़ीदार देश है जबकि जापान सीमा संघ के बाहर का देश है. जर्मनी वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त कर चुका है. सीमा संघ के गठन के पूर्व AC व्यापार की शर्त पर वह जापान से वस्तु Y के निर्यात के बदले वस्तु X का आयात करता है. वह उत्पादन A बिंदु पर करता है और उपभोग E बिंदु पर करता है और उसके कल्याण का स्तर अनाधिमान वक्र IC_2 से दर्शाया गया है.

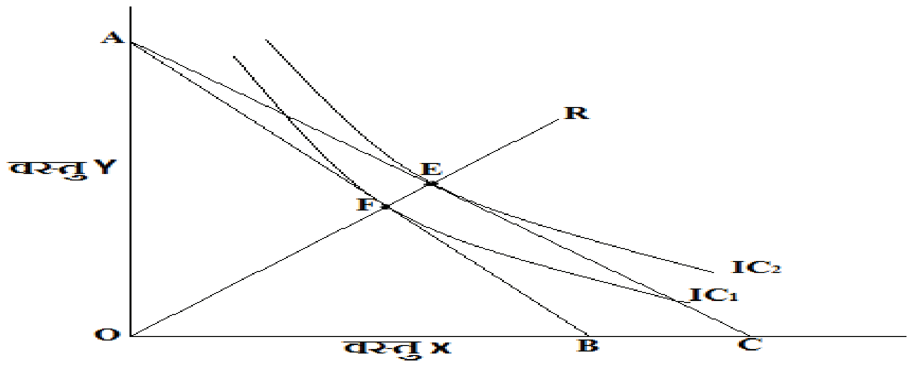

अब मान लीजिए कि जर्मनी फ्रांस के साथ सीमा संघ बना लेता है. जिसके कारण अब व्यापार दिशा-परिवर्तन होता है जहाँ जर्मनी का आयात कम लागत पर उत्पादन करने वाले देश जापान से परिवर्तित होकर फ्रांस से होने लगता है. फ्रांस से व्यापार की शर्त AB है, जो यह दर्शाता है कि वस्तु X अब सापेक्षिक रूप से महँगी हो गई है. अब जर्मनी का उपभोग F बिंदु पर हो रहा है जो पूर्व की भांति स्थिर उपभोग-अनुपात है जिसे OR रेखा से दर्शाया गया है. चित्र से स्पष्ट है कि F बिंदु पर कल्याण का स्तर जिसे IC_1 से दर्शाया गया है, वह E विन्दु के कल्याण IC_2 से नीचे है.

इस प्रकार सीमा संघ के गठन से व्यापार दिशा परिवर्तन के कारण जर्मनी के कल्याण का स्तर पहले से कम हो गया. किन्तु यह तभी होगा जब जैकब वाइनर के स्थिर उपभोग की मान्यता

को स्वीकार किया जाय. यह मान्यता अत्यंत कठोर और वास्तविकता से दूर है. वास्तविकता तो यह है कि सीमा संघ के गठन के पश्चात् वस्तुओं के सापेक्ष मूल्य में बदलाव आता है.

अब हम दूसरे चित्र में स्थिर उपभोग अनुपात की मान्यता को त्याग कर देखते हैं. यहाँ भी जर्मनी वस्तु Y के उत्पादन में पूर्ण विशिष्टीकरण प्राप्त कर A बिंदु पर उत्पादन करता है. मुक्त व्यापार के अवस्था में वह AC व्यापार की शर्त पर जापान से वस्तु X का आयात वस्तु Y के बदले करता है और उसका उपभोग अनाधिमान वक्र IC_2 के E बिंदु पर होता है. अब यदि जर्मनी जापान के वस्तु Y पर सीमा शुल्क लगा देता है तब दोनों वस्तुओं का सापेक्षिक मूल्य बदल जाता है जिसे मूल्य-रेखा PP से दर्शाया गया है. ऐसी स्थिति में जर्मनी का उपभोग, मूल्य रेखा PP के G बिंदु पर होगा जहाँ एक नीचा अनाधिमान वक्र IC_1 मूल्य रेखा PP स्पर्श करता है. यह स्थिति अनुकूलतम दशा को नहीं दर्शाता क्योंकि IC_1 व्यापार की शर्त रेखा AC को G बिंदु पर स्पर्श नहीं करता बल्कि काटता है. यह अनुकूलतम से नीचे (Sub-obtimal) अवस्था है.

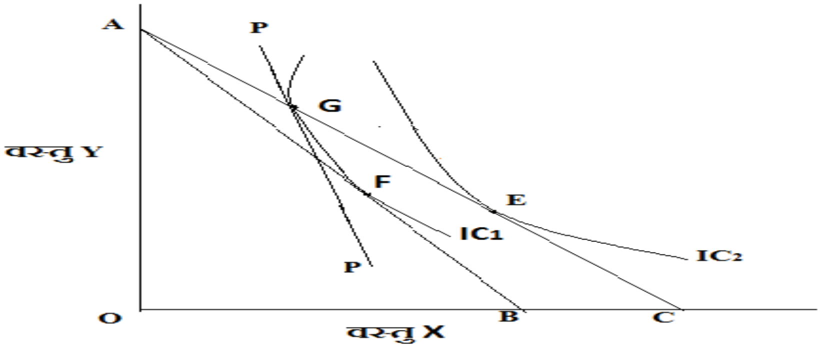

अब जर्मनी और फ्रांस सीमा संघ बना लेते हैं और सभी प्रकार के टैरिफ समाप्त कर देते हैं. दोनों के बीच का व्यापार की शर्त AB है जो दर्शाता है कि वस्तु X का सापेक्षिक मूल्य फ्रांस में जापान की तुलना में अधिक है. किन्तु फ्रांस के वस्तु X पर सीमा शुल्क नहीं लगने के कारण वह शुल्क-युक्त जापानी वस्तु से सस्ती है. ऐसी स्थिति में जर्मनी में वस्तु X का प्रतिस्थापन वस्तु Y के बदले होगा फलस्वरूप वस्तु X का उपभोग बढ़ेगा और नया संतुलन अनाधिमान वक्र IC_1 के F विन्दु पर स्थापित होगा जहाँ वह व्यापार की शर्त रेखा AB को स्पर्श करता है. अब ध्यान देने योग्य बात है कि बिंदु F और बिंदु G एक ही अनाधिमान वक्र IC_1 पर स्थित हैं, जिससे यह पता चलता है कि फ्रांस के साथ सीमा संघ के गठन के बाद, व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) के बावजूद जर्मनी में कल्याण के स्तर में कोई बदलाव नहीं आया. जैकब वाइनर के अनुसार तो प्रत्येक व्यापार दिशा-परिवर्तन (Trade Diversion) कल्याण में कमी लाता है.

यहाँ एक बात निकलकर आती है. यदि सीमा संघ के गठन के पश्चात् जर्मनी व फ्रांस के व्यापार की शर्त का स्थान AC व AB के बीच स्थित होता है तब तो सीमा संघ के गठन के बाद

व्यापार दिशा-परिवर्तन होने के बावजूद जर्मनी के कल्याण के स्तर में वृद्धि ही होती और उपभोग का स्तर अनाधिमान वक्र IC_1 और IC_2 के बीच स्थित होता. अतः व्यापार दिशा-परिवर्तन के फलस्वरूप देश के कल्याण के स्तर में परिवर्तन सीमा संघ के गठन के पूर्व व बाद लागत तथा सापेक्षिक मूल्य की दशा पर निर्भर करता है.

b) वानेक का मॉडल

जारोस्लाव वानेक (Jaroslav Vanek) ने प्रस्ताव वक्र तकनीक(offer curve technique) की मदद से सीमा संघ का सामान्य संतुलन विश्लेषण प्रस्तुत किया है. उनके विश्लेषण को समझने के लिए मान लीजिए कि जर्मनी और फ्रांस सीमा संघ का गठन करते हैं जबकि जापान सीमा संघ के बाहर का देश है. जर्मनी और फ्रांस क्रमशः वस्तु X और वस्तु Y का निर्यात करते हैं जबकि जापान केवल वस्तु Y का निर्यात कर सकता है. OA और OB सीमा संघ गठन के पूर्व क्रमशः जर्मनी व फ्रांस के प्रस्ताव वक्र हैं. सीमा संघ के गठन के बाद संघ का प्रस्ताव वक्र OU है जिसे अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र (excess offer curve) कहा गया है. अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र वस्तु X की वह मात्रा प्रदर्शित करता है जो सीमा संघ के देश जापान से वस्तु Y की एक निश्चित मात्रा के बदले लेन-देन करने का प्रस्ताव करते है.

अब जर्मनी व फ्रांस के प्रस्ताव वक्र एक दूसरे को H बिंदु पर काटते हैं जिससे दोनों देशों के बीच व्यापार की शर्त OT_1 निर्धारित होता हैं. ऐसी स्थिति में संघ का प्रस्ताव वक्र यह दर्शाता है कि अभी संघ के बाहर के देश जापान से लेन-देन की स्थिति उनके लिए नहीं बनी है. व्यापार की शर्त यदि OT_2 हो जाता है तब स्पष्ट है कि जर्मनी अपने प्रस्ताव वक्र के M बिंदु पर व्यापार करना चाहगा जबकि फ्रांस अपने प्रस्ताव वक्र के R बिंदु पर व्यापार करना चाहेगा. यानि जर्मनी वस्तु X के कम निर्यात के बदले वस्तु Y का अधिक आयात चाहता है. चित्र में RM इस अतिरिक्त मात्रा को प्रदर्शित करता है. यदि हम मूल बिंदु से OT_2 रेखा पर RM के बराबर दूरी लें जो OD के बराबर है, तब हमें अतिरिक्त प्रस्ताव की मात्रा प्राप्त होगी. इसी प्रकार व्यापार की शर्त OT_3 पर OE के बराबर अतिरिक्त प्रस्ताव की मात्रा प्राप्त होगी.

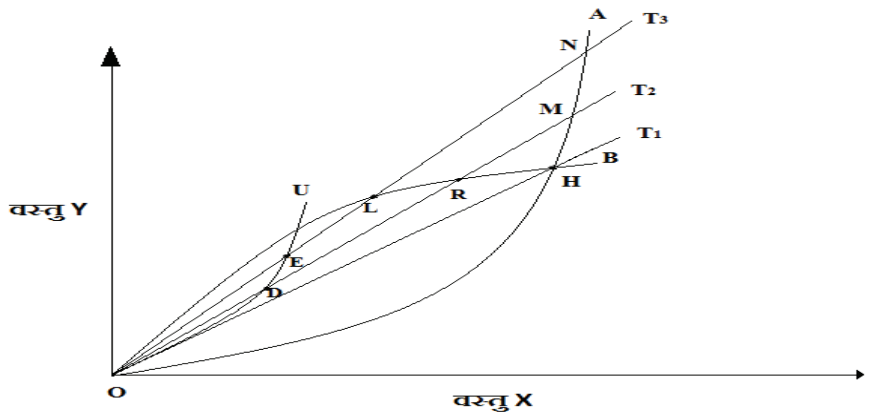

इन विभिन्न बिन्दुओं D,E, आदि को मिलाने से हमें संघ का प्रस्ताव वक्र OU प्राप्त होगा. इसकी मदद से सीमा संघ के देश संघ के बाहर के देश जापान से उसके प्रस्ताव वक्र को रखकर व्यापार की संभावना देखेंगे. जिसे अगले चित्र की मदद से दर्शाया गया है.

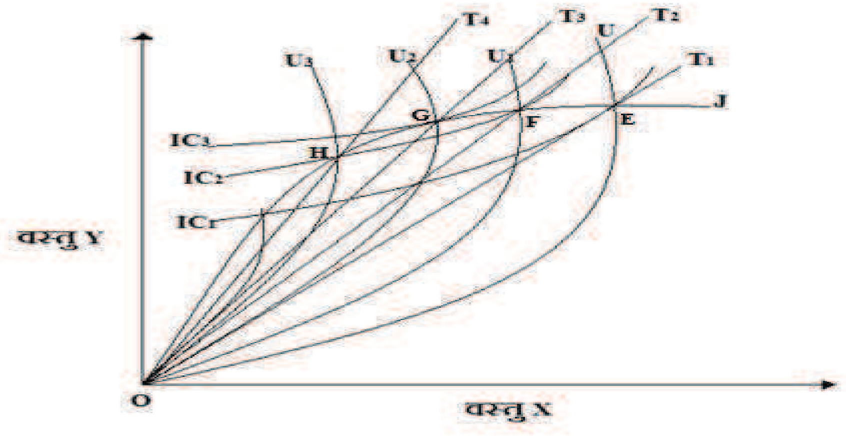

हम सीमा संघ के अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र (excess offer curve) OU को संघ के बाहर के देश जापान के प्रस्ताव वक्र OJ पर रखते हैं. तब E बिंदु व्यापार संतुलन का बिंदु होगा और व्यापार की शर्त OT_1 निर्धारित होगा. सीमा संघ के गठन के बाद संघ के बाहर से आने वाली वस्तुओं पर एक समान सीमा शुल्क लगेगा. टैरिफ लगाने पर संघ का अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र OU से खिसककर क्रमशः OU_1, OU_2, OU_3 होता जायेगा और संघ के लिए व्यापार की शर्त अनुकूल होता जायेगा जो क्रमशः OT_2, OT_3, OT_4 आदि से प्रगट होता है. ऐसी स्थिति में संघ के कल्याण में भी वृद्धि होती जाएगी. संघ का कल्याण, व्यापार अनाधिमान वक्र (Trade Indifference curve) IC_3 के G बिंदु पर अधिकतम होगा जहाँ वह जापान के प्रस्ताव वक्र को स्पर्श करता है और व्यापार की शर्त OT_3 स्पर्श बिंदु G से होकर गुजरता है. इस सीमा शुल्क (टैरिफ) को अनुकूलतम टैरिफ कहते हैं.

अभ्यास प्रश्न 2:

4. लघु उत्तरीय प्रश्नः

iii) सीमा संघ का सामान्य संतुलन विश्लेषण क्या है ?

iv) सीमा संघ में सदस्य-देशों की न्यूनतम संख्या कितनी होती है?

v) अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र क्या है?

vi) व्यापार अनाधिमान वक्र क्या है.

5. सत्य-असत्य का चुनाव करें:

iv) व्यापार सृजन से कल्याण घटता है.

v) व्यापार दिशा-परिवर्तन से कल्याण बढ़ता है.

vi) लिप्से के अनुसार व्यापार दिशा-परिवर्तन से कल्याण अनिवार्यतः नहीं घटता.

10.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में आप सीमा संघ के अर्थ, इसके सिद्धांत आदि से परिचित हुए. सीमा संघ मुक्त व्यापार व संरक्षण के बीच की स्थिति है. इसे द्वितीय श्रेष्ट का सिद्धांत भी कहते हैं.

सीमा संघ एक प्रकार का आर्थिक एकीकरण है. इसके अंतर्गत दो या दो से अधिक देश एक संगठन बनाते हैं, जिसके सदस्य देश आपस में सीमा शुल्क(टैरिफ) को समाप्त कर देते हैं और संगठन के बाहर के देशों से आनेवाली वस्तुओं पर साझा शुल्क लगाते हैं. इस प्रकार के संगठन का उद्देश्य सदस्य देशों में कल्याण के स्तर को ऊंचा उठाना होता है.

सीमा संघ के सिद्धांत को प्रस्तुत करने का श्रेय जैकब वाइनर (Jacob Viner), जे०ई०मीड(J.E. Meade), आर०जी० लिप्से(R.G.Lipse) आदि को जाता है. जैकब वाइनर ने व्यापार सृजन (Trade Creation) व व्यापार दिशा परिवर्तन (Trade Diversion) जैसी अवधारणाओं को प्रस्तुत किया. उनके अनुसार व्यापार सृजन तब होता है जब सीमा संघ के गठन के बाद किसी वस्तु का घरेलू उत्पादन करने की जगह उसे अधिक कुशल सदस्य देश से आयातित किया जाता है. जबकि, व्यापार दिशा-परिवर्तन तब होता है जब किसी वस्तु का आयात किसी गैर सदस्य किन्तु अधिक कुशल देश से हटाकर कम कुशल सदस्य-देश से किया जाता है. जैकब वाइनर ने अपना विश्लेषण स्थिर उपभोग अनुपात की मान्यता पर विकसित की, जिसे आगे चलाकर लिप्से ने चुनौती दी.

सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत हमने एक वस्तु का उदहारण लेकर सीमा संघ के गठन का देश के कल्याण पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन किया. किन्तु सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण में कई बातों की अनदेखी हो जाती है जो सीमा संघ के गठन से उत्पन्न होती है. सीमा संघ व्यापार सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन के अतिरिक्त कई अन्य प्रभाव भी उत्पन्न करते हैं, जैसे भुगतान संतुलन प्रभाव, व्यापार की शर्त पर प्रभाव आदि. सीमा संघ के सामान्य संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत हम इन बातों को भी सम्मिलित करते हैं. सीमा संघ के सामान्य संतुलन से सम्बंधित हमने दो मॉडलों की चर्चा की, एक लिप्से (R.G. Lipse) का मॉडल तथा दूसरा वानेक (Jaroslav Vanek) का मॉडल. लिप्से ने जहाँ वस्तु के सापेक्षिक मूल्य रेखा की मदद से अपने तर्क को प्रस्तुत किया वहीँ वानेक ने प्रस्ताव वक्र की मदद ली. वानेक ने अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र (excess offer curve) और व्यापार अनाधिमान वक्र (trade indifference curve) जैसे तकनीक का भी प्रयोग किया.

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

i) सीमा संघ: सीमा संघ दो या दो से अधिक राष्ट्रों का व्यापारिक संगठन है, जिसके सदस्य आपस में सीमा शुल्क (टैरिफ) को समाप्त कर देते हैं और संगठन के बाहर के देशों से आनेवाली वस्तुओं पर साझा शुल्क लगाते हैं.

ii) व्यापार सृजन(Trade Creation): व्यापार सृजन तब होता है जब सीमा संघ के गठन के बाद किसी वस्तु का घरेलू उत्पादन करने की जगह उसे कम लागत पर उत्पादित करने वाले सीमा संघ अन्य सदस्य देश से आयातित किया जाता है.

iii) व्यापार दिशा-परिवर्तन(Trade Diversion): व्यापार दिशा-परिवर्तन तब होता है जब किसी वस्तु का आयात कम लागत पर उत्पादित करने वाले सीमा संघ के बाहर के देश की जगह अधिक लागत पर उत्पादित करने वाले सीमा संघ के ही किसी सदस्य-देश से किया जाता है.

iv) आंशिक संतुलन: सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत हम किसी एक वस्तु का उदाहरण लेकर सीमा संघ के गठन के फलस्वरूप मूल्य, उत्पादन, उपभोग, कल्याण आदि पर पड़नेवाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं.

v) सामान्य संतुलन: सीमा संघ के सामान्य संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत हम एक से अधिक वस्तु का उदाहरण लेकर वस्तु के मूल्य, उत्पादन, उपभोग, कल्याण आदि के अतिरिक्त भुगतान संतुलन, व्यापार की शर्त आदि पर पड़नेवाले प्रभाव का भी अध्ययन करते हैं.

vi) अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र: अतिरिक्त प्रस्ताव वक्र किसी वस्तु (जैसे X) की वह मात्रा प्रदर्शित करता है जो सीमा संघ के देश किसी गैर-सदस्य देश के अन्य वस्तु (जैसे Y) की एक निश्चित मात्रा के बदले विनिमय का प्रस्ताव करते है.

vii) व्यापार अनाधिमान वक्र: किसी देश का व्यापार अनाधिमान वक्र उस देश के किसी वस्तु का दूसरे देश के किसी अन्य वस्तु से विनिमय के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करता है जिससे उस देश का कल्याण का स्तर अपरिवर्तित रहे.

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

2 अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

i) जैकब वाइनर ने

ii) लिप्से व लेंकास्टर ने

3 बहुविकल्पीय प्रश्न:

i) निम्नलिखित में किसमें आर्थिक एकीकरण सबसे अधिक होती हैं –

c) आर्थिक संगठन में.

ii) द्वितीय सर्वोत्तम का सिद्धांत किसने विकसित की –

c) लिप्से तथा लेंकास्टर ने

iii)सीमा संघ के सदस्य, संघ के बाहर के देशों पर लगाते है -

c) एक समान शुल्क लगाते हैं

iv) जैकब वाइनर के अनुसार सीमा संघ का प्रभाव पड़ता है –

c) उत्पादन पर

v) शुद्ध कल्याण में वृद्धि निर्भर करता है–

d) व्यापार सृजन तथा व्यापार दिशा-परिवर्तन दोनों की मात्रा पर

अभ्यास प्रश्न 2:

2. सत्य-असत्य का चुनाव करें:
   i) व्यापार सृजन से कल्याण घटता है – असत्य
   ii) व्यापार दिशा-परिवर्तन से कल्याण बढ़ता है – असत्य
   iii) लिप्से के अनुसार व्यापार दिशा-परिवर्तन से कल्याण अनिवार्यतः नहीं घटता – सत्य

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

- Bo Sodersten; International Economics (Macmillan, 1999)
- Charles P Kindleberger; International Economics, (Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968)
- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला: अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ,(अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र: (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

10.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

12. Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
13. D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
14. H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
15. Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and* Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
16. एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
17. एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
18. सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
19. एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
20. डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस,आगरा, 2010.

10.11 निबंधात्मक प्रश्न:

5. व्यापार सृजन व व्यापार दिशा-परिवर्तन की व्याख्या करें.
6. सीमा संघ के आंशिक संतुलन विश्लेषण की सचित्र व्याख्या करें
7. सीमा संघ के सामान्य संतुलन के लिप्से व वानेक मॉडल की सचित्र व्याख्या करें

इकाई- ११ भुगतान संतुलन: परिभाषा एवं अवधारणा

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 भुगतान संतुलन की परिभाषा

11.4 भुगतान संतुलन के घटक

11.5 भुगतान संतुलन का मापन तथा विभिन्न अवधारणाएं

11.6 भुगतान संतुलन का स्वायत्त तथा समायोजक लेनदेन

11.7 भुगतान संतुलन में असंतुलन

11.7.1 भुगतान संतुलन में निपटान तथा समायोजन

11.8 भुगतान संतुलन में असंतुलन के प्रकार

11.8.1 अस्थायी या अल्पकालीन असंतुलन

11.8.2 दीर्घकालीन या आधारभूत असंतुलन

11.8.3 चक्रीय असंतुलन

11.8.4 संरचनात्मक असंतुलन

11.9 भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारण

11.10 भुगतान संतुलन में समायोजन

11.11 सारांश

11.12 शब्दावली

11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

11.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

११.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के **खंड तीन "भुगतान संतुलन "** से सम्बंधित यह ११ वीं इकाई है. इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धान्तों, व्यापार शर्तों, स्वतन्त्र व्यापार और संरक्षण तथा संरक्षण के विभिन्न उपायों के बारे में बता सकते हैं. आप जान गए होंगे की व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने के कारण एक देश को भुगतान संतुलन के गंभीर संकट का भी सामना करना पड़ सकता है. भुगतान संतुलन के घाटे से निपटने के लिए प्राय: देश विभिन्न प्रकार के व्यापारिक प्रतिबंधों का सहारा लेते हैं जैसे प्रशुल्क, कोटा,विनिमय नियंत्रण इत्यादि.

प्रस्तुत इकाई में हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण संकल्पना भुगतान संतुलन के बारे में अध्ययन करेंगे. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन से सम्बंधित विभिन्न संकल्पनाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

११.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- भुगतान संतुलन के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन तथा व्यापर संतुलन में अंतर समझ सकेंगे.
- चालू खाता तथ पूंजी खाता में अंतर जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन के मापन की विधि जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन की विभिन्न अवधारणाएं समझ सकेंगे.
- भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारण को जान पाएंगे.
- भुगतान संतुलन में समायोजन के तरीकों को समझ सकेंगे.

११.३ भुगतान संतुलन की परिभाषा

प्रत्येक देश का विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार होता है। आप जानते हैं कि कोई देश यदि वस्तुओं या सेवाओं को दूसरे देशों को बेचता है तो उसे 'निर्यात' कहते है तथा यदि दूसरे देशों से खरीदता है तो उसको 'आयात' कहते हैं। एक देश का विश्व के अन्य सभी देशों के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन–देन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हो, सेवाओं के रूप में हो या फिर पूँजी के रूप में, का एक सुव्यवस्थित लेखा भुगतान–संतुलन है। भुगतान संतुलन एक दी हुई समयावधि में किसी देश द्वारा किए गए समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन–देन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हो।

भुगतान–संतुलन का लेन–देन एक दिए हुए वर्ष में सभी विदेशी प्राप्तियों तथा भुगतानों को सम्मिलित करता हैं। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि (Double entry) बहीखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है। प्राप्तियों में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के अर्जन (earnings) तथा उधार (borrowings)सम्मिलित

होते हैं जो कि क्रेडिट मद के रूप मे रिकार्ड किया जाता है। भुगतानो में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के व्यय तथा दिए गए उधार सम्मिलित किए जाते हैं और इसे डेबिट मद के रूप में रिकार्ड किया जाता है।

इस प्रकार सभी प्रकार की विदेशी प्राप्तियाँ एक वर्ष में हुए समस्त वित्तीय अंर्तप्रवाह को तथा समस्त भुगतान वित्तीय बर्हिप्रवाह को बताता है।

११.४ भुगतान संतुलन के घटक

भुगतान संतुलन के अंर्तगत मुख्यतः 6 प्रमुख खाते होते हैं—

1. वस्तु खाता
2. सेवा खाता
3. एकपक्षीय हस्तांतरण खाता
4. दीर्घकालिक पूँजी खाता
5. अल्पकालिक पूँजी खाता
6. अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता

११.४.१ वस्तु खाता (Goods Account)

इसके अंर्तगत 'दृश्य' वस्तुओं का लेन—देन आता हे। व्यापारिक वस्तु के निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा को प्राप्तियों तथा उनके आयात पर व्यय विदेशी मुद्रा को भुगतानों के अंर्तगत सम्मिलित किया जाता है। यदि वस्तु के निर्यातों का मूल्य, वस्तुओं के आयातों के मूल्य से अधिक होगा तो वस्तु—खाता धनात्मक होगा जो कि उस देश के 'पक्ष' में **या अनुकूल कहा** जाएगा, जबकि आयातों के मूल्य को निर्यातों के मूल्य से अधिक होने पर ऋणात्मक वस्तु—खाता उस देश के 'विपक्ष' में होगा।

११.४.२ सेवा खाता (Service Account)

वस्तुओं की तरह ही सेवाओं का भी व्यापार – निर्यात—आयात - होता है। सेवा खाते मे एक देश द्वारा एक वर्ष के किए गए सभी सेवाओं के निर्यातों तथा आयातों का ब्यौरा होता है। चूँकि सेवाएँ वस्तुओं की तरह 'दृश्य' नहीं होती है इसलिए सेवाओं के लेन—देन को भुगतान संतुलन की अदृश्य मदें कहा जाता है । व्यापारिक वस्तुओं की तरह बंदरगाहों पर इनकी आवाजाही रिकार्ड नहीं की जाती है। सेवा खातें में मुख्यतः निम्नलिखित सेवाएँ **सम्मिलित** है –

(क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा
(ख) पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, पर्यटनों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद
(ग) शिक्षा सेवाएँ
(घ) सरकरों द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर होने वाला व्यय
(ङ) डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक आदि विशेषज्ञों की सेवाएँ
(च) ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रॉयल्टी - इन मदों को 'निवेश आय' कहा जाता है।

निम्नलिखित सारणी से आप भुगतान– संतुलन के विभिन्न खातों तथा अवधारणाओं को समझ सकते हैं–

सारणी 11.1 : **भुगतान–संतुलन के विभिन्न खातें**

	क्रेडिट (लेनदरियाँ)– प्राप्तियाँ	डेबिट (देनदारियाँ) भुगतान
(1) वस्तु–खाता	दृश्य वस्तुओं का निर्यात	दृश्य वस्तुओं का आयात
(2) सेवा–खाता	अदृश्य मदों या सेवाओं का निर्यात (क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्तियाँ (ख) विदेशियों द्वारा देश में पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद से हुई प्राप्तियाँ (ग) देश में पढ़ रहे विदेशियों द्वारा हुई प्राप्तियाँ (घ) डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक इत्यादि विशेषज्ञों की सेवाओं से विदेश में हुई प्राप्तियाँ (ङ)विदेशी सरकार द्वारा दूतावासों और उनके स्टाफ पर व्यय (च) भारतीय कंपनियों द्वारा विदेशों में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी	अदृश्य मदों या सेवाओं का आयात (क) परिवहन, बैकिंग तथा बीमा सेवाओं के लिए विदेशी देश का भुगतान (ख) पर्यटन, यात्रा सेवा, वस्तुओं एवं सेवाओं की भारतीय पर्यअकों द्वारा विदेशों में खरीद पर व्यय (ग) विदेशों में पढ़ रहे छात्रों द्वारा किया गया व्यय (घ) विदेशी डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिकों द्वारा सेवाओं पर हुए भुगतान (ङ)घरेलू सरकार द्वारा दूतावास व स्टाफ पर व्यय (च) विदेशी कंपनियों द्वारा देश में किए गए दीर्घकालिक निवेशों से प्राप्त ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी का भुगतान।
(3) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता	विदेशी सरकारों या निजी व्यक्तियों से प्राप्त उपहार, दान, अनुदान, सहायता इत्यादि।	घरेलू देश की सरकार या निजी व्यक्तियों द्वारा विदेशी सरकारों या व्यक्तियों को दिए गए उपहार, दान, सहायता इत्यादि।
(4) दीर्घकालिक पूँजी खाता	(क) विदेश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) विदेशी नागरिकों तथा फर्मों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियाँ, बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया पोर्टफालियो निवेश (ग) घरेलू सरकार द्वारा विदेशी सरकारों या संस्थाओं से किया गया उधार	(क) घेरलू नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में किया गया प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (ख) घरेलू नागरिकों तथा फर्मों द्वारा विदेशों में प्रतिभूतियाँ, बांडों, शेयरों इत्यादि में किया गया निवेश (ग) विदेशी सरकारों द्वारा देश से लिया गया उधार
(5) भूल–चूक, जिसमें अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित हो	(क) एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशों से प्राप्त बैंक जमाएँ इत्यादि। (ख) अप्रमाणित व्यवसायों से प्राप्तियाँ	(क)एक वर्ष से कम की अवधि के लिए विदेशी देश को किए गए अल्पकालिक बैंक हस्तांतरण (ख) अप्रमाणित व्यवसायों में किया गया भुगतान
(6) अंर्तराष्ट्रीय तरलता अनुपात	(क) सोने का निर्यात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी (ग) मित्र देशों या अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से उधार	(क) सोने का अयात (ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि (ग) विदेशी देशों को उधार

एक देश द्वारा परिवहन, बैंकिंग तथा बीमा सेवाओं से प्राप्त आय; पर्यटन, यात्रा सेवाएँ, विदेशी पर्यटकों द्वारा किए गए व्यय, विदेशी छात्रों द्वारा देश में किए गए व्यय; विदेशी सरकारों द्वारा उनके दूतावासों इत्यादि पर हुए व्यय; देश के डॉक्टरों, इंजीनियरों आदि विशेषज्ञों की प्राप्तिया; विदेशी देश से ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रायल्टी के रूप में प्राप्त 'निवेश आय' सभी मिलाकर सेवा खाते पर या अदृश्य मदों से प्राप्त आय है। जबकि इन सभी अदृश्य मदों पर होने वाले व्यय एक देश के सेवाओं पर हुए भुगतानों को दर्शातां है। यदि सेवाओं के निर्यात (प्राप्तियों) तथा आयात (भुगतानों) का अंतर धनात्मक है तो यह उस देश के पक्ष में होगा और यदि भुगतान प्राप्तियों से अधिक है तो उस देश के सेवा–खाते पर घाटा होगा।

११.४.३ एक पक्षीय हस्तांरण खाता (Unilateral Transfer Account)

इस खातें में सभी प्रकार के उपहार, अनुदान, सहायता इत्यादि सम्मिलित है। यह दो प्रकार का हो सकता है; एक सरकारी और दूसरा निजी। विदेश आर्थिक सहायता और अनुदान, या विदेश सैनिक सहायता और अनुदान एक देश की प्राप्तियों में सम्मिलित होगा, जबकि इस देश द्वारा दूसरे देशों को दी गयी आर्थिक तथा सैनिक सहायता व अनुदान उसके भुगतानों में सम्मिलित होंगे। चूँकि इनके बदले किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है और यह सिर्फ एकपक्षीय प्रवाह को दर्शाता है, इसलिए इसे एकपक्षीय हस्तांतरण प्राप्तियाँ या भुगतान कहा जाता है।

११.४.४ दीर्घकालिक पूँजी खाता (Long term Capital Account)

इसके अंर्तगत उन विनियोगों को सम्मिलित किया जाता है जो एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए किए जाते है। इस खाते को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) निजी प्रत्यक्ष निवेश
(ख) निजी पोर्टफोलियो निवेश
(ग) सरकारी उधार या ऋण

यदि देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशों में प्रत्यक्ष निवेश किया जा रहा है तो यह डेबिट पक्ष (देनदारियों) में सम्मिलित होगा तथा यदि विदेशी नागरिक तथा कम्पनियाँ घरेलू देश में प्रत्यक्ष निवेश कर रही है तो यह भुगतान–संतुलन के क्रेडिट–पक्ष (लेनदारियों) में सम्मिलित होगा।

इसी प्रकार, देश के नागरिकों तथा कम्पनियों द्वारा विदेशी प्रतिभूतियों या स्टॉक या बॉन्ड या शेयर में किया गया निवेश डेबिट तथा विदेशियों द्वारा घरेलू प्रतिभूतियों, स्टॉक, बांड, शेयर इत्यादि में किया गया निवेश क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

प्रत्यक्ष निजी निवेश में पूँजी प्रवाह घरेलू देश और विश्व के अन्य देशों में लाभ दर के अंतर पर निर्भर करती है। यदि घेरलू पदेश में लाभ की दर (Profit rate) शेष विश्व से अधिक है तो देश के अंदर प्रत्यक्ष विदेश निवेश के रूप में पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा। इसी प्रकार, पोर्टफोलियो निवेश के अंर्तगत पूँजी का अंर्त या वाह्य प्रवाह घरेलू देश और

शेष–विश्व में ब्याज दर,, लाभांश या पूँजी पर प्रतिफल की दर के बीच अंतर पर निर्भर करेगा।

यदि घरेलू देश द्वारा विदेशी सरकार या देश को ऋण दिया जाता है तो वह भुगतान–संतुलन के डेबिट तथा यदि विदेशी देश द्वारा घरेलू देश को ऋण दिया जाता है तो क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दीर्घकालिक पूँजी खाता देश के अंदर या बाहर नए पूँजी प्रवाह को सम्मिलित करता है। पूर्व के कुल दीर्घकालिक पूँजी निवेश का प्रभाव सेवा खाते के पूँजी सेवाओं से प्राप्त आय (निवेश आय) पर पड़ता है। यदि एक देश ऋण देने वाला और विदेशों में अत्यधिक पूँजी निवेश करने वाला देश है उसका दीर्घकालिक पूँजी खाते में घाटा हो सकता है परन्तु इससे सेवा खते में उसकी निवेश आय का प्राप्तियाँ बढ़ती है और यदि एक देश उधार लेने वाला और अत्यधिक विदेशी निवेश प्राप्त करने वाला देश है तो इससे उसके पूँजी खाते में अतिरेक होगा, परन्तु इससे निवेश आय के रूप में उस देश के भुगतान में वृद्धि होगी और सेवा खाते में वह घाटे का सामना कर सकता है।

११.४.५ अल्पकालिक पूँजी खाता (Short term Capital Account)

इस खाते के अंर्तगत वे अल्पकालिक पूँजी मदें आती हैं जो कि एक वर्ष से कम की अवधि के लिए होती है। इसके अंर्तगत बैक जमाएं, सरकारों के अल्पकालीन बांड और अन्य अल्पकालिक भुगतान तथा प्राप्तियाँ आती हैं। अल्पकालिक पूँजी लेन–देन में ज्यादातर हिस्सा व्यापार तथा वाणिज्य के वित्तियन के लिए बैंक हस्तांतरण होते हैं।

कुछ देशों में, अल्पकालिक पूँजी खाते को ”भूल–चूक“ (Error and Qmissions) खाता भी कहा जाता है। कुल देशों में इसे ”गैर विवरणी लेन–देन खाता“ (Unrecorded transactions) कहते हैं।

इन खातों में अल्पकालिक पूँजी लेन–देन के अतिरिक्त निम्नलिखित मदें सम्मिलित होती हैं–

(क) सांख्यकीय और विवरणीय भूल (Statistical & Recording Errors)

(ख) स्मगलिंग

(ग) गैर–कानूनी तथा गोपनीय पूँजी प्रवाह

(घ) अपूर्ण अनुमान प्रक्रिया (Imperfect Estimation Procedures)

वास्तव में ‘भूल–चूक’ एक तरह से अप्रमाणित व्यवसायों से संबंधित लेन–देन को दर्शाते हैं।

११.४.६ अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता (International Liquidity Account)

यह खाता भुगतान–संतुलन के घाटे या अतिरेक के समायोजन से संबंधित है जो कि सीधे तौर पर विदेशी रिजर्वों में परिवर्तन को दर्शाता है। इसलिए यह एक तरह से आधिकारिक व्यवस्थापन खाता (Official Settlement Account) है। यह खाता अंर्तराष्ट्रीय दायित्वों के व्यवस्थापन के लिए अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य सभी साधनों को सम्मिलित करता है।

यदि एक देश के ऊपर से सभी 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके कुल भुगतानों से कम है तो इसका अर्थ यह है कि डेबिट भुगतान के क्रेडिट प्राप्तियों से अधिक देने के कारण इसे भुगतान–संतुलन में घाटे का सामना करना पड़ रहा है। इस घाटे को पूरा करने के लिए यह देश निम्नलिखित में से किसी एक उपाय या तीनों उपायों का सहारा ले सकता है–

(क) घाटे के बराबर सोने का निर्यात या बिक्री

(ख) घाटे के बराबर पहले से संचित विदेशी मुद्रा भण्डार में से निकासी

(ग) घाटे के बराबर, मित्र देशों या अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं से अल्पकालिक या दीर्घकालिक उधार।

इस प्रकार, ऊपर के 5 खातों पर हुए घाटे का वित्तियन किया जा सकता है। अंर्तराष्ट्रीय तरलता खाते में क्रेडिट पक्ष में प्राप्तियों को दर्शाना उसी मात्रा में उस वर्ष में भुगतान–शेष के घाटे को बताता है।

ठीक इसी प्रकार यदि एक देश में भुगतान–संतुलन के 5 खातों की प्राप्तियों का योग उसके भुगतानों से अधिक है तो यह उसके भुगतान–शेष के अतिरेक को दर्शाता है और उतनी मात्रा के बराबर अंर्तराष्ट्रीय तरलता खाते के डेबिड पक्ष में भुगतान को दर्शाया जाएगा। यह डेबिट या भुगतान निम्नलिखित रूप में हो सकता है–

(क) अतिरेक के बराबर सोने की खरीद या आयात

(ख) विदेशी मुद्रा भण्डार में अतिरेक के बराबर वृद्धि

(ग) दूसरे देशों को, अतिरेक के बराबर के ऋण।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

7. भुगतान सन्तुलन का अर्थ बताइए?
8. भुगतान संतुलन के अंर्तगत **कौन से** प्रमुख खाते होते हैं?
9. **अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता से आप क्या समझते हैं?**

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. एक देश का भुगतान सन्तुलन विवरण है–
   (क) एक वर्ष में आयात–निर्यात का लेखा–जोखा
   (ख) सेवाओं तथा वस्तुओं के आयात–निर्यात
   (ग) एक वर्ष पूँजी खाते में सभी प्राप्तियों तथा भुगतानों का
   (घ) एक वर्ष विशेष में संसार के अन्य देशों के कुल आर्थिक सौदों का लेखा–जोखा
2. भुगतान सन्तुलन में–
   (क) सरकारी एवं गैर–सरकारी दृश्य एवं अदुश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापर की मदें सम्मिलित होती है।
   (ख) सरकारी एवं गैर–सरकारी दृश्य व्यापार की मदें सम्मिलित होती हैं।
   (ग) केवल सरकारी दृश्य एवं अदृश्य व्यापार की मदें सम्मिलित होती हैं।
   (घ) केवल निजी दृश्य व्यापार एवं अदृश्य व्यापार की मदें सम्मिलित होती हैं।
3. निम्न में से कौन सी मद भुगतान सन्तुलन की डेबिट मद नही है?

(क) वस्तुओं का आयात (ख) सेवाओं का आयात
(ग) विदेशों से प्राप्त उपहार (घ) विदेशियों द्वारा खरीदी परिसम्पत्तियाँ

4. भुगतान संतुलन के अंर्तगत मुख्यतः खाते होते हैं
(क) 3 (ख) 4
(ग) 5 (घ) 6

5. अल्पकालिक पूँजी खाता में अल्पकालिक पूँजी लेन–देन के अतिरिक्त निम्नलिखित मद/मदें सम्मिलित होती हैं
(क) सांख्यकीय और विवरणीय भूल
(ख) स्मगलिंग
(ग) गैर–कानूनी तथा गोपनीय पूँजी प्रवाह
(घ) उपरोक्त सभी

6. आधिकारिक व्यवस्थापन खाता (Official Settlement Account) है
(क) वस्तु–खाता
(ख) अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता
(ग) सेवा–खाता
(घ) अल्पकालिक पूँजी खाता

सत्य व असत्य :

1. यदि घरेलू देश द्वारा विदेशी सरकार या देश को ऋण दिया जाता है तो वह भुगतान–संतुलन के क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगा।
2. यदि विदेशी देश द्वारा घरेलू देश को ऋण दिया जाता है तो डेबिट पक्ष में सम्मिलित होगा।
3. यदि घेरलू देश में लाभ की दर शेष विश्व से अधिक है तो देश के अंदर प्रत्यक्ष विदेश निवेश के रूप में पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा।
4. पोर्टफोलियो निवेश के अंर्तगत पूँजी का अंर्त या वाह्य प्रवाह घरेलू देश और शेष–विश्व में ब्याज दर,, लाभांश या पूँजी पर प्रतिफल की दर के बीच अंतर पर निर्भर करेगा।
5. भुगतान संतुलन के प्राप्तियों में विदेशी विनिमय के सभी प्रकार के अर्जन तथा उधार सम्मिलित होते हैं जो कि डेबिट मद के रूप मे रिकार्ड किया जाता है।
6. ब्याज, लाभ, लाभांश तथा रॉयल्टी को 'निवेश आय' कहा जाता है।

११.५ भुगतान संतुलन का मापन तथा विभिन्न अवधारणाएं

११.५.१ व्यापार संतुलन (Balance of Tarde)

जेम्स ई0 मीड तथा कुछ अन्य अर्थशस्त्रियों के अनुसार व्यापार संतुलन निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं तथा सेवाओं का अंतर होता है। यदि एक देश के वस्तुओं और सेवाओं के कुल निर्यात उसके वस्तुओं और सेवाओं के कुल आयात से अधिक है तो व्यापार–संतुलन अतिरेक में या उस देश के पक्ष में होगा, परन्तु यदि कम है तो व्यापार–संतुलन में घाटा होगा, और यह स्थिति उस देश के प्रतिकूल होगी। सारणी 11.2 में, व्यापार शेष का घाटा `250 करोड़ के बराबर है।

कुछ अर्थशास्त्री सिर्फ व्यापारिक या दृश्य वस्तुओं के निर्यात तथा आयात के अन्तर को अर्थात् सिर्फ 'वस्तु–खाता' के अंतर को ही व्यापार–संतुलन के रूप में परिभाषित करते है।

भारत में भी व्यापार–संतुलन का अर्थ वस्तु–खाते का अन्तर है अर्थात् सिर्फ वस्तुओं के निर्यातों और आयातों का अन्तर। सारणी 11.2 में वस्तु खाता में `300 करोड़ का घाटा है जो कि व्यापार–संतुलन के घाटे को दिखा रहा है। यदि वस्तुओं का निर्यात वस्तुओं के आयात से अधिक होगा तो व्यापार–संतुलन में अतिरेक होगा और यह स्थिति देश के लिए अनुकूल होगी। परन्तु मीड के अनुसार व्यापार शेष की इस परिभाषा का महत्व कम है और राष्ट्रीय आय की गणना की दृष्टि से यह व्यापार शेष को मापने का गलत तरीका है। राष्ट्रीय आय की गणना में शुद्ध निर्यात या वस्तुओं और सेवाओं के निर्यातों और आयातों का अंतर (X-M) सम्मिलित होता है, **गणितीय रूप में**

$$Y=C+I+G+(X-M)$$

(X-M) या व्यापार–संतुलन राष्ट्रीय में हुई शुद्ध वृद्धि को बताता है।

सारणी 11.2 : भुगतान संतुलन की सारणी (करोड़ रुपये में)

	मुख्य खाते	क्रेडिट (प्राप्तियाँ)	डेबिट (भुगतान)	शुद्ध अतिरेक या घाटा
1.	वस्तु खाता	500	800	-300
2.	सेवा खाता	350	300	+50
I.	व्यापार शेष (1+2)	(850)	(1100)	(-250)
3.	एक पक्षीय हस्तांतरण खाता	150	100	+50
II.	चालू खाते पर भुगतान संतुलन (1+2+3)	(1000)	(1200)	(-200)
4.	दीर्घकालिक पूँजी खाता	300	175	+125
III.	आधारभूत संतुलन (1+2+3+4)	(1300)	(1375)	(-75)
5.	अल्पकालिक पूँजी खाता	75	50	+25
IV.	पूँजी खाते पर भुगतान संतुलन (4+5)	(375)	(225)	(+150)
V. (II+IV)	कुल भुगतान संतुलन (1+2+3+4+5)	1375	1425	-50
6.	अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता (विदेशी मुद्रा भण्डार में शुद्ध परिवर्तन)	50	-	-
VI.	भुगतान संतुलन (लेखांकन संतुलन)	(1425)	(1425)	(00)

११.५.२ चालू खाते पर भुगतान संतुलन

वस्तु खाता, सेवा खाता तथा एकपक्षीय हस्तांतरण खाता को सम्मिलित रूप से चालू खाते पर भुगतान संतुलन कहा जाता है। चालू खाते पर भुगतान–संतुलन शुद्ध विदेशी प्राप्तियों को दर्शाता है क्योंकि यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद में विदेशी व्यापार के योगदान को बताता है। चालू खाता किसी भी देश के व्यापार से प्राप्त अर्जन (earning) तथा कुल व्ययों (spendings) को दर्शाता है। इस प्रकार चालू खाते का अतिरेक या घाटा किसी भी देश के भुगतान–संतुलन की स्थिति जानने का सबसे महत्वपूर्ण घटक होता है। सारणी 11.2 में चालू खाते पर `200 करोड़ का घाटा है जोकि देश के लिए प्रतिकूल स्थिति को बताता है।

११.५.३ पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन

दीर्घकालिक पूँजी खाता और अल्पकालिक पूँजी खाता का योग पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन होता है। इस प्रकार एक देश के पूँजी तथा निवेश से संबंधित सभी प्रकार के लेन–देन (चाहे वे निजी हों या सरकारी, दीर्घकालिक हो या अल्पकालिक, प्रत्यक्ष या पोर्टफोलियो, व्यक्तिगत या संस्थागत) भुगतान–संतुलन के पूँजी खाते के अंर्तगत आएंगे।

सारणी 11.2 में पूँजी खाते पर `150 करोड़ का अतिरेक है जो यह बताता है कि यह देश विश्व के शेष देशों में पूँजी निवेश या उधार लेने वाला देश है। जिससे भविष्य में इसके सेवा खाते में निवेश आय बढ़ेगी।

११.५.४ आधारभूत संतुलन

चालू खाते पर भुगतान–संतुलन तथा दीर्घकालिक पूँजी खाते का योग भुगतान–संतुलन का आधारभूत संतुलन कहा जाता है। इसमे अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित नहीं किया जाता है। सारणी 11.2 में आधारभूत संतुलन में `75 करोड़ का अतिरेक है।

११.५.५ कुल भुगतान संतुलन

चालू खाते तथा पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन का योग कुल भुगतान–संतुलन को बताता है। यह एक देश के शेष विश्व के साथ हुए सभी प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक लेन–देन को सम्मिलित करता है। यदि भुगतान–संतुलन की कुल प्राप्तियाँ उसके भुगतानों से अधिक है तो भुगतान–संतुलन घाटे में होगा। सारणी 11.2 में कुल भुगतान संतुलन में `50 करोड़ का घाटा है, जोकि चालू खाते के घाटे के कारण है, जोकि इस देश के लिए प्रतिकूल स्थिति को बताता है।

परन्तु कुल भुगतान–संतुलन का घाटा या अतिरेक उस देश के लिए बेहतर है या प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि चालू खाते और पूँजी–खाते पर भुगतान–संतुलन की स्थिति क्या है?

यदि भुगतान–संतुलन का अतिरेक चालू खाते के अतिरेक के कारण है, परन्तु पूँजी–खाते के अतिरेक के कारण नहीं है तो यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकता है।

इसी प्रकार, यदि भुगतान–संतुलन का कुल घाटा चालू–खाते के घाटे के कारण है न कि पूँजी खाते के कारण तो यह उस देश के लिए प्रतिकूल स्थिति हो सकती है।

११.५.६ लेखांकन भुगतान–संतुलन

जब कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन (अतिरेक या घाटा) को दूर करने के लिए इसमें अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता जोड़ दिया जाता है तो लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन की समस्त प्राप्तियाँ (क्रेडिट–लेनदारियाँ) तथा भुगतानों (डेबिट–देनदारियाँ) के बराबर जो जाती है और भुगतान संतुलन, संतुलन में हो जाता है।

उल्लेखनीय है कि लेखांकन या बही खाता (Book-Keeping) की दृष्टि से भुगतान–संतुलन सदैव संतुलित होना चाहिए अर्थात् क्रेडिट और डेबिट पक्ष सदैव संतुलन में होते हैं।

सारणी 11.2 में भुगतान–संतुलन के पाँच खातों में हुए समस्त लेन–देन में भुगतान (डेबिट), प्राप्तियों से `50 करोड़  अधिक है अर्थात् भुगतान–शेष में `50 करोड़ का घाटा है। `50

करोड़ के बराबर की राशि अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के क्रेडिट पक्ष में सम्मिलित होगी जिससे कि भुगतान–संतुलन लेखांकन की दृष्टि से संतुलन मे हो जाए। इसके लिए यह देश निम्नलिखित में से कोई भी उपाय कर सकता है, या तीनो के संयोग का सहारा ले सकता है –

(क) वह `50 करोड़ के बराबर सोने का निर्यात करे, या

(ख) देश के विदेशी मुद्रा भण्डार से `50 करोड़ का निकाले या

(ग) मित्र देशों या संस्थानों से `50 करोड़ के बराबर उधार ले।

यदि उस देश के भुगतान–संतुलन के पाँच खातों को मिलाकर `50 करोड़ का अतिरेक होता तो भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलित करने के लिए वह `50 करोड़ के बराबर अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के डेबिट पक्ष में सम्मिलित करेगा। वह देश इस अतिरेक को निम्नलिखित तरीके से खत्म कर सकता है–

(क) `50 करोड़ के बराबर सोने की खरीद या आयात, या

(ख) देश के विदेशी मुद्रा भण्डार में `50 करोड़ के बराबर वृद्धि,या

(ग) जरूरतमंद देशों को `50 करोड़ के बराबर उधार देकर या विदेशी आय अर्जन या अल्पाकालिक परिसम्पत्तियाँ खरीद सकती है।

इस प्रकार अंतराष्ट्रीय तरलता खाता भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलित करने के लिए भुगातन–संतुलन में उचित समायोजन करता है।

११.५.७ भुगतान–संतुलन तथा व्यापार–संतुलन में अन्तर

जैसा कि आपने देखा कि किसी देश का भुगतान शेष उसके किसी एक वर्ष में किए गए वस्तुओं सेवाओं तथा पूँजी के समस्त प्रकार के लेन–देन की प्राप्तियाँ और भुगतानों का व्यवस्थित रिकार्ड होता है। इस प्रकार भुगातन–संतुलन के अंतर्गत लेनदररियाँ तथा देनदारियों की समस्त मदें सम्मिलित होती हैं, जिनके कारण एक देश को भुगतान प्राप्त होते हैं या शेष विश्व को भुगातन करने पड़ते हैं।

जबकि एक देश का व्यापार–संतुलन का सम्बन्ध सिर्फ दृश्य वस्तुओं के निर्याातित तथा आयातित मूल्यों का अंतर होता है। इस अर्थ में व्यापार शेष का कोई विश्लेषणात्मक महत्व नहीं है। यदि व्यापार शेष को मीड के अर्थों में लिया जाय तो इसमें दृश्य और अदृश्य सेवाएँ वस्तुओं दोनों सम्मिलित होंगी। अर्थात् तब व्यापार शेष निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का अंतर होगा। और इस अर्थ में, व्यापार शेष का राष्ट्रीय आय के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

स्पष्ट है कि व्यापार शेष, अपने दोनों ही अर्थों में भुगतान–संतुलन का एक हिस्सा हैं। भुगतान संतुलन एक बड़ी संकल्पना है जबकि व्यापार शेष उससे छोटी संकल्पना है। वास्तव में व्यापार–संतुलन किसी देश के भुगतान–संतुलन का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। अनुकूल भुगतान–शेष की स्थिति में भी व्यापार शेष प्रतिकूल हो सकता है और यह स्थिति उस देश के विरुद्ध हो सकती है। जबकि प्रतिकूल भुगतान–शेष की स्थिति मे भी व्यापार–संतुलन अनुकूल हो सकता है और यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकती है।

११.६ भुगतान संतुलन का स्वायत्त तथा समायोजक लेनदेन (Autonomuous and Accommodating trransactions)

यदि कोई लेन–देन, भुगतान–संतुलन के अन्य मदों के आकार को ध्यान में रखे बिना होता है तो उसे स्वायत्त लेन–देन कहते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के किसी भी खाते में जो लेन–देन स्वायत्त ढंग से होता है। इसे 'रेखा के ऊपर का लेन–देन' भी कहते हैं। भुगतान–शेष के प्रारम्भिक 5 खातों - वस्तु खाता, सेवा खाता, एकपक्षीय हस्तांतरण खाता, दीर्घकालिक ओर अल्पकालिक पूँजी खाता- में हुए लेन–देन 'स्वायत्त' या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन कहे जाते हैं। ये लेन–देन स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप होते हैं ओर ये भुगतान संतुलन की स्थिति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को ध्यान में रखते हुए ये लेन–देन नहीं होते हैं बल्कि उससे पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

छठां खाता, जो कि अंतर्राष्ट्रिय तरलता खाता है, समायोजक लेन–देन खाता है। जो कि भुगतान–शेष की स्थिति पर निर्भर करता है। यह भुगतान–संतुलन की स्थिति का परिणाम है। जबकि 'स्वायत्त' लेन–देन भुगतान–संतुलन की स्थिति का कारण होता है। 'स्वायत्त' लेन–देन के कारण ही भुगतान संतुलन में असंतुलन (अतिरेक या घाटा) पैदा होता है और इसी असंतुलन को दूर करने के लिए समायोजक लेन–देन खाते का सहारा लिया जाता है। इस लेन–देन की मात्रा स्वायत्त लेन–देन के कारण भुगतान–संतुलन में हुए अतिरेक या घाटे की मात्रा पर निर्भर करती है। समायोजक लेन–देन को 'रेखा के नीचे' का लेन–देन भी कहते हैं।

यदि कोई सोना निर्यातक देश दूसरे देश को सोने का निर्यात करता है तो यह उसके वस्तु–खाते के अंतर्गत उसकी प्राप्तियों में जुड़ेगा। यहाँ सोने का निर्यात एक स्वायत्त गतिविधि के रूप में या चालू खाता लेन–देन के रूप में है। परन्तु यदि एक देश अपने देश के भुगतान–शेष के असंतुलन (घाटे) को दूर करने के लिए सोने का निर्यात करता है तो यह उसके अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के क्रेडिट पक्ष में अंकित होगा और यह समायोजक लेन–देन होगा। इसी प्रकार यदि एक देश अपने मित्र देश से या विश्व बैंक से अपने आधारिक संरचना (सड़क, सीवर, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि) के विकास के लिए उधार लेता है तो यह एक स्वायत्त लेन–देन है जो कि दीर्घकालिक पूँजी खाते के अंतर्गत क्रेडिट के रूप में सम्मिलित होगा। परन्तु यदि यह देश अपने स्वायत्त लेन–देन के फलस्वरूप उत्पन्न भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष, विश्व बैंक या किसी अन्य से उधार लेता है तो यह 'समायोजक' लेन–देन के अंतर्गत आएगा और उस देश के अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता में क्रेडिट के रूप में सम्मिलित होगा।

परन्तु 'स्वायत्त' तथ 'समायोजक' लेन–देन के मध्य स्पष्ट अन्तर करना आसान नहीं है। कोई भी देश अपने भुगतान–संतुलन की स्थिति को देखते हुए चालू खाते या पूँजी खाते पर इस प्रकार से लेन–देन कर सकता है कि भुगतान–संतुलन में असंतुलन उत्पन्न न हो। फिर भी, लेखांकन के उद्देश्य से चालू तथा पूँजी खाते पर होने वाले समस्त लेन–देनों को स्वायत्त तथा अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के लेन–देन को 'समायोजक'

लेन–देन कहना तर्कसंगत होगा। स्वायत्त लेन–देन के किसी भी असंतुलन के वित्तियन के लिए जान बूझकर किए जाने वाले लेन–देन समायोजक लेन–देन होता है।

भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटा स्वायत्त लेन–देनों का परिणाम है। यदि एक देश के स्वायत्त भुगतानों का मूल्य स्वायत्त प्राप्तियों के मूल्य से अधिक है, अर्थात भुगतान–संतुलन में घाटा है तो सामान्यतया इसे उस देश के लिए प्रतिकूल या ऋणात्मक स्थिति माना जाता है और यदि स्वायत्त प्राप्तियाँ, स्वायत्त भुगतानों से अधिक है, अर्थात भुगतान शेष में अतिरेक होता है तो उसे उस देश के लिए धनात्मक या अनुकूलतम स्थिति माना जाता है। परन्तु वास्तव में भुगतान–संतुलन का अतिरेक या घाटा उस देश के लिए अच्छा या बुरा यह उसकी 'स्थिति' (location) तथा 'अवधि' (duration) पर निर्भर करेगा।

यदि भुगतान–संतुलन के चालू खाते में अतिरेक है तो सामान्यतया यह अनुकूल स्थिति को दर्शाता है क्योंकि चालू खाते का अतिरेक एक देश को निर्यातों से कुल विदेशी मुद्रा की अर्जन–क्षमता (earning capacity) को दिखाता है। परन्तु यदि पूँजी खाते पर अतिरेक है तो यह उस देश के लिए अनुकूल स्थिति नहीं भी हो सकती है क्योंकि पूँजी खाते का अतिरेक उसके उधार लेने की क्षमता को बताती है जो कि उसके भविष्य की देनदारियों को बढ़ाती है। परन्तु यदि एक देश उधार या विदेशी निवेश से अपनी उत्पादक क्षमता में वृद्धि करने में सफल रहता है और ऋणात्मक ब्याज अदायगी की उसकी क्षमता बढ़ जाती है तो पूँजी खाते का घाटा भी उसके लिए अच्छा हो सकता है।

इसी प्रकार, चालू खातों का घाटा एक देश की प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है क्योंकि विदेशी मुद्रा की प्राप्तियों की अपेक्षा उसका भुगतान अधिक है जबकि प्रतिकूल चालू खाता घाटा उस देश के लिए अनुकूल भी हो सकता है क्योंकि पूँजी खाते का घाटे का तात्पर्य है कि देश ऋण–प्रदाता देश है या पूँजी–निवेशक है जो कि बाद में ब्याज, लाभ, लाभांश, रॉयल्टी आदि के रूप में पूँजी के अंतप्रवाह में वृद्धि करके चालू खाते पर प्राप्तियाँ में वृद्धि करेगा, जिसका कि भुगतान–संतुलन पर सकारात्मक प्रभाव होगा।

यदि भुगतान शेष का घाटा अस्थायी प्रकृति का है तो इससे इसका कोई गम्भीर नकारात्मक प्रभाव नहीं होगा। परन्तु यदि भुगतान–संतुलन का घाटा स्थायी प्रकृति का या मूलभूत प्रकृति का है तो यह अर्थव्यवस्था के लिए काफी खराब है। विशेष रूप से यदि यह चालू खाते के असंतुलन से उत्पन्न हुआ है। चालू खाते के अल्पकालिक असंतुलन को अल्पकालिक या दीर्घकालिक विदेशी उधारों के द्वारा दूर किया जा सकता है। परन्तु यदि चालू खाते का घाटा कई वर्षों तक लगातार बना रहता है तो इसे सिर्फ अल्पकालिक और दीर्घकालिक विदेशी उधारों से दूर नहीं किया जा सकता है और न ही करना चाहिए। भुगतान–शेष के इस प्रकार के आधारभूत घाटे को दूर करने के लिए अर्थव्यवस्था में 'संरचनात्मक समायोजन' की आवश्यकता होती है। जिससे की घाटा उत्पन्न करने वाले मूल कारकों को नियंत्रित या दूर किया जा सके।

यदि चालू खाते पर अतिरेक है तो सामान्यतया इसे अच्छा माना जाता है। यदि अतिरेक अस्थायी हो और इस अतिरेक का उपयोग पूँजी खाते के घाटे को समाप्त करने या निवेश आय के बर्हिगमन के प्रभाव को कम करने या पुराने ऋणों को चुकाने में होता है

तो इसका प्रभाव अच्छा होगा। परन्तु यदि चालू खाते का अतिरेक लगातार कई वर्षों से बना हुआ है और यह पूँजी–खाते के घाटे से अधिक है तो इससे अर्थव्यवस्था में विदेशी मुद्रा रिजर्व भण्डार मे वृद्धि होने से मुद्रा–आपूर्ति बढ़ सकती है और इससे अर्थव्यवस्था में स्फितिकारी दबाव उत्पन्न हो सकते है। साथ ही इससे घरेलू मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के मुकाबले बढ़ने से (विनिमय दर में मूल्य वृद्धि से) देश के निर्यातों की कीमत विश्व बाजार में बढ़ जाएगी और आयात सस्ते होगें जिससे निर्यात कम होगा और आयात बढ़ेगा। अर्थव्यवस्था पर चालू खाते के अतिरेक का ठीक–ठीक प्रभाव विनिमय दर नीति, मौद्रिक और राजकोषीय नीति तथा विनिमय नियंत्रण नीति पर निर्भर करेगा। इस प्रकार भुगतान शेष का लगातार और स्थायी अतिरेक अर्थव्यवस्था पर हमेशा अच्छे प्रभाव होगा यह आवश्यक नहीं है।

अभ्यास प्रश्न– २

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान–संतुलन तथा व्यापार–संतुलन में अन्तर स्पष्ट **कीजिये.**
2. 'स्वायत्त' तथ 'समायोजक' लेन–देन के मध्य अन्तर स्पष्ट **कीजिये.**
3. कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन **से आप क्या समझाते हैं?**
4. लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन सदैव संतुलित **होता है. विवेचना कीजिये.**

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. वस्तु खाता, सेवा खाता तथा एकपक्षीय हस्तांतरण खाता को सम्मिलित रूप से कहा जाता है
   (क) चालू खाते पर भुगतान संतुलन
   (ख) पूँजी खाते पर भुगतान संतुलन
   (ग) भुगतान–संतुलन का आधारभूत संतुलन
   (घ) व्यापार –संतुलन
2. इसमे अल्पकालिक पूँजी खाता सम्मिलित नहीं किया जाता है।
   (क) पूँजी खाते पर भुगतान संतुलन
   (ख) भुगतान–संतुलन का आधारभूत संतुलन
   (ग) कुल भुगतान संतुलन
   (घ) लेखांकन भुगतान–संतुलन
3. यदि भुगतान–संतुलन का कुल घाटा चालू–खाते के घाटे के कारण है न कि पूँजी खाते के कारण तो यह स्थिति उस देश के लिए हो सकती है
   (क) प्रतिकूल (ख) अनुकूल
   (ग) **कोई बदलाव नहीं होगा**
4. 'रेखा के ऊपर का लेन–देन' नहीं हैं
   (क) वस्तु खाता (ख) सेवा खाता
   (ग) अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता (घ) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता
5. चालू खाते पर भुगतान संतुलन में सम्मिलित नहीं किया जाता है
   (क) वस्तु खाता (ख) सेवा खाता

(ग) एकपक्षीय हस्तांतरण खाता (घ) अल्पकालिक पूँजी खाता

6. आधिकारिक व्यवस्थापन खाता (Official Settlement Account) है
   (क) वस्तु–खाता
   (ख) अर्न्तराष्ट्रीय तरलता खाता
   (ग) सेवा–खाता
   (घ) अल्पकालिक पूँजी खाता
7. **यदि किसी देश के** भुगतान–शेष में `100 करोड़ का अतिरेक है **तो वह**
   (क) मित्र देशों या संस्थानों से `100 करोड़ के बराबर उधार लेगा
   ख) देश के विदेशी मुद्रा भण्डार से `100 करोड़ निकालेगा
   (ग) वह `100 करोड़ के बराबर सोने का निर्यात करेगा
   (घ) वह `100 करोड़ के बराबर सोने का आयात करेगा

सत्य व असत्य :

1. जेम्स ई0 मीड के अनुसार व्यापार संतुलन निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं तथा सेवाओं का अंतर होता है।
2. यदि भुगतान–संतुलन का अतिरेक चालू खाते के अतिरेक के कारण है, परन्तु पूँजी–खाते के अतिरेक के कारण नहीं है तो यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकता है।
3. लेखांकन या बही खाता (Book-Keeping) की दृष्टि से भुगतान–संतुलन सदैव संतुलित होना चाहिए।
4. चालू खाता किसी भी देश के व्यापार से प्राप्त अर्जन (earning) तथा कुल व्ययों (spendings) को दर्शाता है।
5. चालू खाते पर भुगतान–संतुलन तथा दीर्घकालिक पूँजी खाते का योग भुगतान–संतुलन का आधारभूत संतुलन कहा जाता है।
6. यदि चालू खाते का अतिरेक लगातार कई वर्षों से बना हुआ है तो इसस मुद्रा–आपूर्ति बढ़ सकती है और अर्थव्यवस्था में स्फितिकारी दबाव उत्पन्न हो सकते है।
7. भुगतान–शेष के आधारभूत घाटे को दूर करने के लिए अर्थव्यवस्था में 'संरचनात्मक समायोजन' की आवश्यकता नहीं होती है।
8. भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटा स्वायत्त लेन–देनों का परिणाम नहीं है।
9. अंतर्राष्ट्रिय तरलता खाता समायोजक लेन–देन खाता है।
10. अंतर्राष्ट्रिय तरलता खाता भुगतान–संतुलन की स्थिति का परिणाम है।
11. भुगतान–संतुलन, व्यापार –संतुलन का एक हिस्सा हैं।

११.७ भुगतान–संतुलन का असंतुलन

लेखा के अर्थ में किसी देश का भुगतान–संतुलन एक दिए हुए समय में आर्थिक लेन–देन जो कि वह शेष विश्व से करता है, का क्रमबद्ध विवरण है। और लेखा के अर्थ में यह सदैव ही संतुलित रहता है। जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति (प्राप्तियाँ) एवं स्वायत्त माँग (भुगतान) बराबर हो तो भुगतान संतुलन में संतुलन होता है। परन्तु यदि भुगतान–संतुलन

में अतिरेक या घाटा है तो दोनो ही दशाएँ असंतुलन की स्थिति को व्यक्त करती है। जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति, स्वायत्त माँग से अधिक है तो अतिरेक तथा जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति, स्वायत्त माँग से कम है तो भुगतान–संतुलन में घाटा होगा।

भुगतान–संतुलन में असंतुलन किसी भी देश की आन्तरिक अर्थव्यवस्था की स्थिति के लिए और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के दृष्टिकोण से भी चिंताजनक माना जाता है। परन्तु अतिरेक की अपेक्षा घाटा अधिक चिंताजनक होता है क्योंकि भुगतान–संतुलन में असंतुलन का बोझ अतिरेक वाले देश की तुलना में घाटे वाले देश पर अधिक पड़ता है।

११.७.१ भुगतान–संतुलन का निपटान (Settelment) तथा समायोजन (Adjustment)

जब भुगतान–संतुलन के असंतुलन को अतंर्राष्ट्रीय तरलता खातों या समायोजित लेन–देन के द्वारा दूर किया जाता है तो यह भुगतान–संतुलन का निपटान (settlement) कहा जाता है। यह भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलन में लाने का एक अस्थायी उपाय है। वास्तव में इससे असंतुलन की मूलभूत समस्या का समाधान नहीं होता है।

यदि भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को दूर करने के लिए या नियंत्रित के लिए **उन कारकों को** नियंत्रित किया जाता है जो कि इस अतिरेक या घाटे के लिए जिम्मेदार है तो इसे भुगतान–संतुलन का समायोजन (adjustment) कहते हैं। अर्थात अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के बिना भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन में संतुलन ले आना भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाएगा। स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन का समायोजन, निपटान की अपेक्षा अधिक वांछनीय है। यह असंतुलन की समस्या का स्थायी और ठोस समाधान प्रस्तुत करता हैं परन्तु समायोजन का रास्ता अधिक कठिन और दीर्घकालिक उपाय है।

११.८ भुगतान–संतुलन में असंतुलन के प्रकार

भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटे के लिए अनेक कारक जिम्मेदार होते हैं, और इसी आधार पर असंतुलन की प्रकृति भी निर्भर करती है। भुगतान–संतुलन में असंतुलन के निम्नलिखित प्रकार है–

११.८.१ अस्थायी या अल्पकालीन असंतुलन– जब निर्यात मौसमी उतार–चढाव, व्यापार में आकस्मिक परिवर्तन, प्रतिकूल मौसम आदि से प्रभावित होता है तो भुगतान–संतलन में अल्पकालीन असंतुलन पैदा हो जाता है। प्राथमिक उत्पादनशील और निर्यात करने वाले देशों को ऐसे असंतुलन का सामना करना पड़ता है।

११.८.२ दीर्घकालीन या आधारभूत असंतुलन– जब किसी देश के भुगतान–संतुलन में असंतुलन लंबे समय तक बना रहता है और उसकी प्रवृत्ति संचयी हो जाती है उसे आधारभूत असंतुलन कहते है। इस असंतुलन का कारण मुद्रापूर्ति में तकनीकी परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में निवेश के लिए या फिर प्रदर्शन–प्रभाव से प्रेरित होकर विकासशील देश उद्योगों के स्थापना के लिए और आयातों

के लिए विदेशों से भारी मात्रा में ऋण लेना पड़ता है। जो आगे ब्याज अदायगी और आयात वृद्धि के रूप में भुगतान–संतुलन पर और अधिक नकारात्मक प्रभाव डालता है।

११.८.३ चक्रीय असंतुलन (Cyclical Disequilibrium)– व्यापार चक्र की अवस्थाओं के कारण, विभिन्न देशों में जब मंदी और तेजी की स्थिति में भिन्नता हो तो भुगतान–संतुलन में चक्रीय असंतुलन उत्पन्न होता है। यदि विभिन्न देशों में व्यापार चक्रों की प्रकृति भिन्न हो या आयातों की माँग की लोचें भिन्न हों तो चक्रीय असंतुलन उत्पन्न होता है।

११.८.४ संरचनात्मक असंतुलन (Structural Disequilibrium)– निर्यातों तथा आयातों की मांग तथा पूर्ति के ढांचे में परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न असंतुलन, भुगतान–संतुलन का संरचनात्मक असंतुलन कहा जाता है। माँग तथा पूर्ति की संरचना में परिवर्तन के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे–उपभाक्ताओं की रुचि या प्राथमिकता में परिवर्तन, विदेशी पूँजी के प्रवाह में कमी, संसाधनों की कमी इत्यादि।

११.९ भुगतान–संतुलन में असंतुलन के कारण

जैसा की आपने देखा कि असंतुलन की अलग–अलग प्रकृति होती है जो कि उसके कारणों पर निर्भर करती है। विभिन्न देशों में भुगतान–संतुलन में असंतुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं तथा एक ही देश में अलग–अलग समय में असंतुलन के अलग–अलग कारण हो सकते हैं। सामान्यतया निम्नलिखित कारणों से भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है:

(1) **विकासात्मक व्यय में वृद्धि** भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है। अपनी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में सभी देश भारी मात्रा में निवेश करते है। परन्तु पर्याप्त मात्रा में पूँजी तथा तकनीकी के अभाव के कारण ये देश बडी मात्रा में दूसरे देशों से उधार लेते हैं और मशीनों तथा तकनीकी आदि का आयाता करते है परन्तु प्राथमिक उत्पादनशील होने के कारण निर्यात में तेज वृद्धि नहीं होती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है जिसकी प्रकृति प्रायः संरचनात्मक या आधारभूत प्रकृति की स्थायी होती है।

(2) **चक्रीय उच्चावचन** से भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा होता है। व्यापार चक्र के उच्चावचन के कारण भी विभिन्न देश के भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा हो जाता है।

(3) विकासशील देशों में आय में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोग व्यय में हुई वृद्धि प्रायः प्रदर्शन प्रभाव के कारण आयातों में वृद्धि कर देती है।

(4) अर्थव्यवस्था के भीतर स्फीतिकारी दबाव रहने पर जब कीमतें बढ़ती हैं तो निर्यातों की विश्व बाजार में प्रतियोगी क्षमता कम हो जाती है जबकि आयात आकर्षक हो जाते हैं। दूसरे देशों द्वारा आयातों पर प्रतिबन्ध के कारण निर्यात में वृद्धि नहीं हो पाने से भी असंतुलन पैदा होता है।

(5) राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर आयातों के बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है।

(6) मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि के कारण जब घरेलू कीमत स्तर बढ़ता है तो आयातित वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है तथा निर्यात मंहगे हो जाते हैं जिससे भुगतान–संतुलन में घाटा होता है।

(7) तकनीकी परिवर्तन के कारण वस्तुओं की लागतों, कीमतों तथा गुणवत्ता में परिवर्तन होता है जिससे भुगतान–संतुलन प्रभावित होता है।

(8) विनिमय दर में परिवर्तन से भी भुगतान–संतुलन पर प्रभाव पड़ता है। घरेलू मुद्रा के विदेशी मुद्रा के मुकाबले अवमूल्यन से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे होंगे जिससे भुगतान–संतुलन मेंया घाटा कम या अतिरेक हो सकता है।

(9) यदि एक देश बड़े पैमाने पर दूसरे देश को उधार देता है या निवेश करता है उसके पूँजी खाते में घाटा होगा। परन्तु यदि एक देश दूसरे देशों से अधिक उधार लेता है और अधिक विदेशी मुद्रा के निवेश को प्रोत्साहित करता है तो दीर्घकाल में उसके चालू खाते में घाटा काफी बढ़ सकता है क्योंकि ब्याज, लाभ, लाभांश आदि के रूप में पूँजी का वाह्य प्रवाह बढ़ेगा।

(10) तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण विकासशील देशों में घरेलू उपभोग में वृद्धि होती है। इससे इन देशों में निर्यात की क्षमता कम हो जाती है और आयात बढ़ते हैं।

(11) राजनीतिक अस्थिरता या घरेलू अर्थव्यवस्था में विश्वास की कमी से विदेशी पूँजी का अंर्तप्रवाह कम हो सकता है/रुक सकता है और वाह्य प्रवाह बढ़ सकता है जो कि गम्भीर भुगतान–संतुलन के असंतुलन को जन्म देता है।

११.१० भुगतान–संतुलन में समायोजन

यदि भुगतान–संतुलन में असंतुलन की स्थिति दीर्घकाल तक बनी रहती है तो यह न सिर्फ उस देश के लिए वरन पूरे विश्व के लिए ठीक नहीं है। अतः एक सुदृढ़ अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए भुगतान–संतुलन में संतुलन आवश्यक है। असंतुलन को समायोजित करने के लिए एक देश किस प्रकार की आर्थिक नीतियाँ/उपायों को लागू करे, यह उसके भुगतान–संतुलन की स्थिति पर निर्भर करेगा। चूंकि भुगतान–संतुलन का अतिरेक समान्यतया कोई बड़ी समस्या पैदा नहीं करता है और प्रतिकूल या घाटे में भुगतान–संतुलन की अपेक्षा कम हानिकारक है इसलिए भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए क्या उपाय हो सकते हैं, इस पर विचार करना अधिक आवश्यक है।

भुगतान–संतुलन के घाटे के पूरा करने के लिए आवश्यक है कि स्वायत्त लेन–देन में भुगतानों की अपेक्षा प्राप्तियों में अधिक वृद्धि हो। स्पष्ट है कि असंतुलन को दूर करने के लिए उन मदों या कारकों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है जो कि भुगतान–संतुलन की प्राप्तियों तथा भुगतानों को प्रभावित करते हैं।

यदि घाटा दीर्घकालिक और स्थायी प्रकृति का है तो इसके लिए भुगतान–संतुलन को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रभावित करने के लिए स्थायी सुधारों की आवश्यकता होगी। स्थायी सुधारों की दृष्टिकोण से जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है– व्यय घटाने वाली (expendituture reducing) तथा व्यय बदलाव वाली (expenditure switchingswitching)। विस्फीति जैसे उपायों के द्वारा कुल व्यय में

कटौती की जाती है जबकि व्यय की दिशा में परिवर्तन के लिए अवमूल्यन प्रशुल्क, कोटा, निर्यात सब्सिडी, विनिमय नियंत्रण जैसे उपायों का सहारा लिया जाता है।

यदि एक देश पहले से कठोर राजकोषीय और मौद्रिक नीति और प्रशुल्क तथा आयात नियंत्रणो का सहारा ले रहा है और फिर भी भुगतान–संतुलन में घाटा है तो ऐसे में उस देश के लिए घाटे से निजात पाना काफी मुश्किल है, ऐसे में यह घाटा संभाव्य घाटा को दिखाता है। इन कठोर नीतियों या उपायों की अनुपस्थिति में घाटा और भी अधिक होगा। ऐसे ही यदि देश में बेरोजगारी का ऊँचा स्तर है तो भी उस देश के लिए सम्भव नहीं होगा कि वह संकुचनकारी मौद्रिक, राजकोषीय तथा अन्य नीतियों के द्वारा घाटे को दूर करने की कोशिश करें। इन स्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय पूँजी का अंर्तप्रवाह ही घाटे को दूर करने का एक बेहतर तरीका है परन्तु यहाँ अंतर्राष्ट्रीय पूँजी की प्रकृति काफी महत्वपूर्ण है। यदि एक देश दीर्घकालिक पूँजी खाते के अंर्तगत नियोजित ढंग से पूँजी का आयात करता है तो बिना घरेलू नीतियों में परविर्तन के लंबे समय तक (15 से 20 वर्ष) भुगतान–शेष के घाटे से निश्चिंत होकर अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार कर सकता है।

भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए कुछ उपायों का हम संक्षेप में वर्णन करेंगे–

११.१०.१ विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन– यदि विनिमय दरें परिवर्तनशील है तो विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति की शक्तियाँ स्वयं भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर कर देती हैं। घाटे की स्थिति में यदि घरेलू मुद्रा के मूल्य में अन्य विदेशी मुद्राओं के मुकाबले कमी आती है या मूल्यह्रास होता है तो निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे होंगे और यदि आयातों तथा निर्यातों की माँग लोचशील हैं तो इससे भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में सहायता मिलेगी।

११.१०.२ अवमूल्यन – प्रतिकूल भुगतान–संतुलन को ठीक करने के लिए यदि सरकार अपनी मुद्रा का मूल्य जानबूझकर विश्व की अन्य मुद्राओं के मुकाबले कम कर देती है तो इसे अवमूल्यन कहते हैं और इसका भी प्रभाव मुद्रा के मूल्यह्रास की ही तरह होगा। मूल्यह्रास और अवमूल्यन दोनों की ही सफलता आयातों और निर्यातों की माँग की लोच पर निर्भर करेगी।

११.१०.३ आय में परिवर्तन– भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन चूंकि देश की घरेलू आय से सम्बन्धित होता है इसलिए घरेलू आय में परिवर्तन के द्वारा भी भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर किया जा सकता है। घाटे को घरेलू आय में ह्रास या विदेशियों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके दूर किया जा सकता है क्योंकि घरेलू आय में वृद्धि से आयातों में वृद्धि होती है। घरेलू आय में कमी से आयात में कितनी कमी होगी यह सीमांत आय प्रवृत्ति पर निर्भर करती है, जो कि विदेशी व्यापार गुणक के मान को निर्धारित करती है।

११.१०.४ प्रत्यक्ष नियंत्रण– भुगतान–संतुलन के घाटे को प्रत्यक्ष नियंत्रण के द्वारा आयातों को नियंत्रित करके भी कम किया जा सकता है। प्रशुल्क,कोटा इत्यादि के द्वारा

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण करके घाटे को कम किया जा सकता है। परन्तु प्रत्यक्ष नियंत्रण बाज़ार की स्वतन्त्र कार्यप्रणाली में अवरोध उत्पन्न करते हैं।

११.१०.५ विनिमय नियंत्रण– विदेशी विनिमय के समस्त लेन–देन को नियंत्रित करके भी सरकार भुगतान–संतुलन के घाटे को ठीक कर सकती है। विनिमय नियंत्रण के तहत सरकार समस्त विदेशी विनिमय को अपने पास जमाकर, फिर उसे राष्ट्रीय प्रायथिकताओं के अनुरूप आवंटित करती है।

११.१०.६ आयात–प्रतिस्थापन– जिन वस्तुओं का एक देश आयात करता है उसे अपने देश में ही उत्पादित करने से आयात कम होते हैं और घाटा कम करने में मदद मिलती है।

११.१०.७ निर्यात को प्रात्साहन– निर्यातकों को अनेक प्रकार की रियायत देकर निर्यात को बढ़ाया जा सकता है। इससे घाटे में कमी होगी।

११.१०.८ विदेशी पर्यटकों को प्रोत्साहन– विदेशी पर्यटकों की संख्या देश में बढ़ाने के लिए पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन देकर सेवा खाते पर प्राप्तियों में वृद्धि की जा सकती है। जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा कम होगा।

अभ्यास प्रश्न–3

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान–संतुलन का निपटान तथा समायोजन अन्तर स्पष्ट **कीजिये.**
2. भुगतान–संतुलन में असंतुलन के कारण स्पष्ट **कीजिये.**
3. भुगतान–संतुलन में असंतुलन के प्रकार बताइए.
4. भुगतान–संतुलन में समायोजन के उपायों पर प्रकाश डालिए.

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. भुगतान–संतलन में अल्पकालीन असंतुलन पैदा हो जाता है
   (क) व्यापार में आकस्मिक परिवर्तन, प्रतिकूल मौसम आदि से
   (ख) जब किसी देश के भुगतान–संतुलन में असंतुलन लंबे समय तक बना रहता ह
   (ग) व्यापार चक्र की अवस्थाओं के कारण
   (घ) निर्यातों तथा आयातों की मांग तथा पूर्ति के ढांचे में परिवर्तन के फलस्वरूप
2. निम्नलिखित उपाय के द्वारा भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए कुल व्यय में कटौती की जाती है
   (क) विस्फीति
   (ख) अवमूल्यन
   (ग) प्रशुल्क
   (घ) विनिमय नियंत्रण
3. निम्नलिखित उपाय के द्वारा भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए कुल व्यय की दिशा में परिवर्तन किया जाता है
   (क) निर्यात सब्सिडी

(ख) अवमूल्यन
(ग) कोटा
(घ) **उपरोक्त सभी**

4- भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने **का** उपाय **नहीं है**
(क) अवमूल्यन
(ख) विदेशी विनिमय की मूल्य वृद्धि
(ग) घरेलू आय में कमी
घ) विदेशी विनिमय की मूल्यह्रास

5- भुगतान–संतुलन के घाटे **का कारण नहीं है**
(क) आय में वृद्धि
(ख) मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि
(ग) विकासात्मक व्यय में कमी
घ) चक्रीय उच्चावचन

सत्य व असत्य :

1. जब विदेशी विनिमय की स्वायत्त पूर्ति, स्वायत्त माँग से कम है तो भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा।
2. जब भुगतान–संतुलन के असंतुलन को अतंर्राष्ट्रीय तरलता खातों या समायोजित लेन–देन के द्वारा दूर किया जाता है तो यह भुगतान–संतुलन का समायोजन (adjustment) कहा जाता है।
3. भुगतान–संतुलन का निपटान भुगतान–संतुलन को लेखांकन की दृष्टि से संतुलन में लाने का एक अस्थायी उपाय है।
4. भुगतान–संतुलन का निपटान से असंतुलन की मूलभूत समस्या का समाधान नहीं होता है।
5. यदि भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को दूर करने के लिए या नियंत्रित के लिए **उन कारकों को** नियंत्रित किया जाता है जो कि इस अतिरेक या घाटे के लिए जिम्मेदार है तो इसे भुगतान–संतुलन का निपटान (settlement) कहते हैं।
6. अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के बिना भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन में संतुलन ले आना भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाएगा।
7. भुगतान–संतुलन का समायोजन, निपटान की अपेक्षा अधिक वांछनीय है।
8. मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि के कारण भुगतान–संतुलन में घाटा होता है।

11.11 सारांश

एक देश का विश्व के अन्य सभी देशों के साथ होने वाले समस्त प्रकार के लेन–देन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हो, सेवाओं के रूप में हो या फिर पूँजी के रूप में, का एक सुव्यवस्थित लेखा भुगतान–संतुलन है। भुगतान संतुलन एक दी हुई समयावधि में किसी

देश द्वारा किए गए समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन–देन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता हो। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि बहीखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है। भुगतान शेष लेखा की दोहरी–प्रविष्टि (क्वनइसम मदजतल) बहीखाता सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक सौदा, बैलेंस शीट में क्रेडिट (लेनदरियाँ या प्राप्तियाँ) तथा डेबिट (देनदारियाँ या भुगतान) पक्ष में दर्ज किया जाता है।

भुगतान–शेष के प्रारम्भिक 5 खातों– वस्तु खाता, सेवा खाता, एकपक्षीय हस्तांतरण खाता, दीर्घकालिक ओर अल्पकालिक पूँजी खाता– में हुए लेन–देन 'स्वायत्त' या 'रेखा के ऊपर' का लेन–देन कहे जाते हैं। ये लेन–देन स्वायत्त आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप होते हैं ओर ये भुगतान संतुलन की स्थिति से स्वतंत्र होते हैं अर्थात भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को ध्यान में रखते हुए ये लेन–देन नहीं होते हैं बल्कि उससे पूरी तरह स्वतंत्र होते हैं।

वस्तु खाता के अंर्तगत 'दृश्य' वस्तुओं का लेन–देन आता हे।सेवा खाते मे एक देश द्वारा एक वर्ष के किए गए सभी सेवाओं के निर्यातों तथा आयातों का ब्यौरा होता है। चूँकि सेवाएँ वस्तुओं की तरह 'दृश्य' नहीं होती है इसलिए सेवाओं के लेन–देन को भुगतान संतुलन की अदृश्य मदें कहा जाता है । एकपक्षीय हस्तांतरण खातें में सभी प्रकार के उपहार, अनुदान, सहायता इत्यादि सम्मिलित है। दीर्घकालिक पूँजी खाता के अंर्तगत उन विनियोगों को सम्मिलित किया जाता है जो एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए किए जाते है। इस खाते को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–निजी प्रत्यक्ष निवेश, निजी पोर्टफोलियो निवेश सरकारी उधार या ऋण। अल्पकालिक पूँजी खाते के अंर्तगत वे अल्पकालिक पूँजी मदें आती हैं जो कि एक वर्ष से कम की अवधि के लिए होती है।यह खाता भुगतान–संतुलन के घाटे या अतिरेक के समायोजन से संबंधित है जो कि सीधे तौर पर विदेशी रिजर्वों में परिवर्तन को दर्शाता है। इसलिए यह एक तरह से सरकारी व्यवस्थापन लेखा है। यह खाता अंर्तराष्ट्रीय दायित्वों के व्यवस्थापन के लिए अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य सभी साधनों को सम्मिलित करता है।

जेम्स ई0 मीड तथा कुछ अन्य अर्थशस्त्रियों के अनुसार व्यापार संतुलन निर्यातित तथा आयातित वस्तुओं तथा सेवाओं का अंतर होता है। कुछ अर्थशास्त्री सिर्फ व्यापारिक या दृश्य वस्तुओं के निर्यात तथा आयात के अन्तर को अर्थात् सिर्फ 'वस्तु–खाता' के अंतर को ही व्यापार–संतुलन के रूप में परिभाषित करते है। भारत में भी व्यापार–संतुलन का अर्थ वस्तु–खाते का अन्तर है अर्थात् सिर्फ वस्तुओं के निर्यातों और आयातों का अन्तर। व्यापार शेष, अपने दोनों ही अर्थों में भुगतान–संतुलन का एक हिस्सा हैं।

वस्तु खाता, सेवा खाता तथा एकपक्षीय हस्तांतरण खाता को सम्मिलित रूप से चालू खाते पर भुगतान संतुलन कहा जाता है। चालू खाते तथा पूँजी खाते पर भुगतान–संतुलन का योग कुल भुगतान–संतुलन को बताता है।कुल भुगतान–संतुलन का घाटा या अतिरेक उस देश के लिए बेहतर है या प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि चालू खाते और पूँजी–खाते पर भुगतान–संतुलन की स्थिति क्या है? यदि

भुगतान–संतुलन का अतिरेक चालू खाते के अतिरेक के कारण है, परन्तु पूँजी–खाते के अतिरेक के कारण नहीं है तो यह स्थिति उस देश के लिए अनुकूल हो सकता है।जब कुल भुगतान–संतुलन के असंतुलन (अतिरेक या घाटा) को दूर करने के लिए इसमें अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता जोड़ दिया जाता है तो लेखांकन की दृष्टि से भुगतान–संतुलन की समस्त प्राप्तियाँ (क्रेडिट–लेनदारियाँ) तथा भुगतानों (डेबिट–देनदारियाँ) के बराबर जो जाती है और भुगतान संतुलन, संतुलन में हो जाता है।

जब भुगतान–संतुलन के असंतुलन को अतंर्राष्ट्रीय तरलता खातों या समायोजित लेन–देन के द्वारा दूर किया जाता है तो यह भुगतान–संतुलन का निपटान (settlement) कहा जाता है।यदि भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे को दूर करने के लिए या नियंत्रित के लिए **उन कारकों को** नियंत्रित किया जाता है जो कि इस अतिरेक या घाटे के लिए जिम्मेदार है तो इसे भुगतान–संतुलन का समायोजन (adjustment) कहते हैं। अर्थात अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाते के बिना भुगतान–संतुलन के स्वायत्त लेन–देन में संतुलन ले आना भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाएगा।

असंतुलन की अलग–अलग प्रकृति होती है जो कि उसके कारणों पर निर्भर करती है। विभिन्न देशों में भुगतान–संतुलन में असंतुलन के विभिन्न कारण हो सकते हैं तथा एक ही देश में अलग–अलग समय में असंतुलन के अलग–अलग कारण हो सकते हैं। असंतुलन को समायोजित करने के लिए एक देश किस प्रकार की आर्थिक नीतियाँ/उपायों को लागू करे, यह उसके भुगतान–संतुलन की स्थिति पर निर्भर करेगा। भुगतान–संतुलन के घाटे के पूरा करने के लिए आवश्यक है कि स्वायत्त लेन–देन में भुगतानों की अपेक्षा प्राप्तियों में अधिक वृद्धि हो। स्पष्ट है कि असंतुलन को दूर करने के लिए उन मदों या कारकों में परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है जो कि भुगतान–संतुलन की प्राप्तियों तथा भुगतानों को प्रभावित करते हैं।

11.12 शब्दावली

भुगतान–शेष– किसी देश का भुगतान–शेष किसी दी हुई अवधि (जैसे एक वर्ष) में उस देश के नागरिकों द्वारा विश्व के अन्य देशों के नागरिकों के बीच हुए समस्त आर्थिक लेन–देन का व्यस्थित विवरण है।

व्यापार शेष– वस्तु खाते पर हुई प्राप्तियों तथा भुगतानों का अन्तर व्यापार–शेष कहलाता है। अर्थात सिर्फ दृश्य व्यापारिक वस्तुओं के निर्यात तथा आयात मूल्यों का अंतर व्यापार–शेष है। परन्तु व्यापक अर्थों में व्यापार–शेष वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात तथा आयात मूल्यों का अंतर है।

भुगतान–संतुलन निपटान (Settlement)– जब भुगतान–संतुलन में लेखांकन संतुलन समायोजक लेन–देन या अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता की सहायता से ले आया जाता है तो उसे भुगतान–संतुलन का निपटान कहते हैं।

भुगतान–संतुलन समायोजन (Adjustment)– जब भुगतान–संतुलन में लेखांकन संतुलन, समायोजक लेन–देन की सहायता के बिना होता है तो इसे भुगतान–संतुलन समायोजन कहा जाता है।

भुगतान–संतुलन का 'पूर्ण रोजगार' संतुलन– यदि भुगतान–संतुलन में बिना वाणिज्यिक नीति का सहारा लिए तथा देश के सकल राष्ट्रीय आय में स्फीतिकारी या अवस्फीतिकारी अंतराल उत्पन्न किए, संतुलन ले आया जाता है तो यह सही मायने में संतुलन या 'पूर्ण रोजगार' संतुलन कहा जाता है। परन्तु यदि यह संतुलन व्यापार पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों और इसके कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा–स्फीति या बेरोजगार उत्पन्न हुई है, तो यह 'पूर्ण रोजगार' संतुलन नहीं होगा।

11.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

4. घ 2.क 3.ग 4.घ 5.घ 6.ख

सत्य व असत्य :

6. असत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.सत्य 6.सत्य

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. घ 2.ख 3.क 4.ग 5.घ 6.ख 7.ग

सत्य व असत्य :

1. सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.सत्य 6.सत्य 7.असत्य 8.असत्य 9.असत्य 10. सत्य11.असत्य

अभ्यास प्रश्न–3

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. क 2.क 3.घ 4.ख 5.ग

सत्य व असत्य :

1. असत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.सत्य

11.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

11.15 उपयोगी / सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- *डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 2010*

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. "भुगतान संतुलन सदैव सन्तुलित रहता है" यदि ऐसा है तो फिर हम किसी देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक या घाटे की चर्चा क्यों करते हैं?
2. किसी देश के प्रतिकूल भुगतान–संतुलन से आप क्या समझते हैं? भुगतान शेष के असन्तुलन को दूर करने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का उल्लेख कीजिए।
3. भुगतान–संतुलन के असंतुलन का क्या अर्थ है? भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए विभिन्न उपायों की चर्चा कीजिए।
4. भुगतान–संतुलन के 'अतिरेक' तथा 'घाटे' से आप क्या समझते हैं? भुगतान–संतुलन का किस प्रकार का 'घाटा' अधिक खतरनाक है। क्या भुगतान–संतुलन का 'अतिरेक' किसी देश के लिए हमेशा अनुकूल होता है?

****

इकाई- १२ विदेशी व्यापार गुणक

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 विदेशी व्यापार गुणक – भूमिका

12.3.1. घरेलु अर्थव्यवस्था तथा विदेशी व्यापार में सम्बन्ध

12.3.2. निवेश गुणक

12.4 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक या शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक

12.4.1. विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति

12.4.2. विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव

12.5 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक

12.5.1. निर्यातों का फिडबैक विदेशी व्यापार गुणक

12.5.2. निवेश का फिडबैक विदेशी व्यापार गुणक

12.6 विदेशी व्यापार गुणक का चित्र द्वारा निरूपण

12.6.1 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक या शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक

12.6.2 विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक

12.7 विदेशी व्यापार गुणक का महत्त्व

12.8 विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनाएं

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

12.13 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

१२.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के **खंड तीन "भुगतान संतुलन "** से सम्बंधित यह १२ वीं इकाई है.इससे पहले इससे पहले की इकाई में आपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण संकल्पना भुगतान संतुलन के बारे में अध्ययन किया . अध्ययन के पश्चात् आप भुगतान संतुलन का अर्थ एवं प्रकृति को समझ समझ गए होंगे. आप जान गए होंगे कि भुगतान संतुलन तथा व्यापर संतुलन में क्या अंतर होता है. साथ ही भुगतान संतुलन की विभिन्न अवधारणाएं, भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारण, भुगतान संतुलन में समायोजन के तरीकों को समझ गए होंगे.

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय और भुगतान–संतुलन में काफी गहन सम्बन्ध होता है। किसी भी एक चर में परिवर्तन से दूसरे चर में परिवर्तन हो जाता है। जैसा कि आपने विछले अध्याय में देखा कि भुगतान–शेष के घाटे को दूर करने के लिए राष्ट्रीय आय में कमी करके घाटे को कम किया जा सकता है। आय में कमी से आयातों में कमी होगी। यह सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करेगा कि आयात में कितनी कमी होगी। वास्तव में, यह विदेशी व्यापार गुणक पर निर्भर करेगा कि आय में परिवर्तन से प्रेरित आयातों या निर्यातों में कितना परिवर्तन होगा या फिर निर्यातों में वृद्धि या कमी से विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि या कमी होगी। विदेशी व्यापार गुणक निर्यात में परिवर्तन द्वारा उत्पन्न आय–परिवर्तन को व्यक्त करता है। विदेशी व्यापार गुणक का मान आयात की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

आर्थिक नीति निर्धारण में गुणक का विशेष महत्व है। जिसके अनुसार, स्वायत्त विनियोग में थोड़ी सी वृद्धि के फलस्वरूप आय में काफी अधिक वृद्धि हो जाती है। राष्ट्रीय आय में समायोजन के माध्यम से भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में हम विदेशी व्यापार गुणक की विस्तार से चर्चा करेंगे और राष्ट्रीय आय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परस्पर संबंध को भी देखेंगे। भुगतान–संतुलन के असंतुलन को कम करने या बढ़ाने में विदेशी व्यापार गुणक की भूमिका पर भी हम चर्चा करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप विदेशी व्यापार गुणक, विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण तथा प्रभावों सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

१२.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- राष्ट्रीय आय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परस्पर संबंध जान पाएंगे.
- विदेशी व्यापार गुणक को समझ सकेंगे.
- विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण तथा प्रभावों को समझ सकेंगे.
- विदेशी व्यापार गुणक के महत्त्व को जान पाएंगे.

१२.३ विदेशी व्यापार गुणक – भूमिका

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय तथा विदेशी व्यापार में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का समीकरण होता है–

$$Y = C+I+G+(X-M) \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (1)$$

जहाँ, Y = राष्ट्रीय आय

C = उपभोग

I = निवेश

G = सरकारी व्यय

X = निर्यात

M = आयात

(X-M) व्यापार–संतुलन है जो कि शुद्ध निर्यात आय को दर्शाता है। (X-M) का मूल्य ही राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार के योगदान को बताता है।

जब किसी देश के निर्यात में वृद्धि होती है तो निर्यात उद्योगों से संबंधित सभी व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय से अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए मांग उत्पन्न होती है, उन उद्योगों का विस्तार होता है, रोजगार में वृद्धि होती है और आगे आय में और वृद्धि होती है। इस प्रकार, अंतिम रूप में आय में हुई वृद्धि निर्यात–वृद्धि की अपेक्षा काफी अधिक होती है, जो कि गुणक प्रभाव का परिणाम है। निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है। इसे हम सूत्र के रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं–

$$\Delta y = k_{-}\Delta x$$

जहाँ, Δy - आय में परिवर्तन

Δx - निर्यात में परिवर्तन

k_{+} - निर्यात गुणक या विदेशी व्यापार गुणक

वास्तव में, निर्यात गुणक का मूल्य सीमांत उपभोग प्रवृत्ति या बचत प्रवृत्ति तथा सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। इस प्रकार हम आयातों को भी लेते हुए विस्तृत रूप में, विदेशी व्यापर गुणक पर विचार करेंगे।

१२.३.१ घरेलू अर्थव्यवस्था तथा विदेशी व्यापार में संबंध

एक खुली अर्थव्यवस्था में घरेलू उपभोक्ताओं, निवेशकों और सरकार का व्यय तथा साथ ही देश के निर्यातों पर विदेशियो द्वारा व्यय देश में उत्पादित समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं के सृजन को व्यक्त करता है। यह अर्थव्यवस्था में सृजित कुल आय को बताता है।

संकेत रूप में–

C+I+G+X= सृजित आय ....(2)

जहाँ, C = उपभोग

I = निवेश

G = सरकारी व्यय

X = निर्यात

उल्लेखनीय है कि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न यह कुल आय, राष्ट्रीय आय नहीं है। यह सृजित आय वस्तुओं और सेवाओं की खरीद, बचत, करों के भुगतान तथा विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात में व्यय हो जाती है।

संकेत रूप में–

C+S+T+M = व्यय की **गयी** आय.....................................(3)

जहाँ, C = उपभोग

S = बचत

T = कर अदायगी

M = आयात व्यय

चूंकि कुल सृजित आय, कुल व्यय के बराबर होगी, अर्थात्–

C+I+G+X = C+S+T+M .... (4)

अथवा I+G+X = S+T+M (दोनों पक्षों में से C घटाने पर)...... (5)

यदि मान लें कि सरकारी व्यय (G) सरकार के कुल कर (T) के बराबर है, अर्थात् सरकार का बजट संतुलित है तो समीकरण (5) को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है–

I+X = S+M .... (6)

जैसा कि आप जानते हैं कि निवेश और निर्यात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में वृद्धि करते हैं जबकि बचत तथा आयात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में रिसाव है, आय को कम करते हैं। घरेलू अर्थव्यवस्था के संतुलन की शर्त यह है कि बचत और निवेश हमेशा बराबर हों। अर्थात् संतुलन की स्थिति में निर्यात और आयात भी बराबर होंगे और घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र दोनों एक साथ संतुलन में होंगे। समीकरण (6) से

I-S = M-X .... (7)

स्पष्ट है कि यदि घरेलू क्षेत्र में बचत–निवेश का अतंर शून्य है तो व्यापार–संतुलन मे ंसंतुलन शून्य होगा। यदि निवेश बचत से अधिक है तो व्यापार–संतुलन में घाटा और यदि निवेश बचत से कम है तो अतिरेक होगा।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध है। स्वायत्त विनियोग (I) में यदि वृद्धि होती है तो यह प्रारम्भिक संतुलन की स्थिति (I = S) को विगाड़ती है और साथ ही आयात तथा निर्यात की समानता को समाप्त कर व्यापार–संतुलन में अतिरेक या घाटे की स्थिति पैदा कराती है. व्यापार–संतुलन में उत्पन्न असंतुलन उपभोग बचत और आयातों की सीमान्त–प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, निर्यातों या आयातों में स्वायत्त परिवर्तन से घरेलू बचत निवेश का संतुलन बिगड़ता है जो कि पूरी अर्थव्यवस्था का प्रभावित करता है।

१२.३.२ निवेश गुणक

आपने पहले की कक्षाओं में पढ़ा होगा कि निवेश गुणक क्या है। आप जानते होंगे कि गुणक की धारणा कीन्सीय रोजगार सिद्धान्त की एक अति–महत्वपूर्ण संकल्पना है। स्वायत्त निवेश में वृद्धि (या कमी) से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि (या कमी) होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है। गुणक यह बताता है कि अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में वृद्धि निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि और गुणक के गुणनफल के बराबर होगी। अर्थात्–

$$\Delta y = k\,\Delta I$$

जहाँ Δy –आय में परिवर्तन,

k-गुणक तथा

I-निवेश में परिवर्तन।

k, जो कि निवेश गुणक है, सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b या MPC) सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s या MPS) पर निर्भर करता है। ($k = \frac{1}{1-MPC}$), MPC जितनी ही अधिक होगी, निवेश गुणक उतना ही अधिक होगा।

एक बन्द अर्थव्यस्था में, सरकारी व्यय तथा करों की अनुपस्थिति में, आप साधारण कीन्सीय निवेश गुणक व्युत्पन्न कर सकते हैं।

आप जानते हैं कि – Y=C+I

जहाँ, Y–आय

C–उपभोग तथा

I–निवेश है

$\therefore\ \Delta y = \Delta C + \Delta I$

(जहाँ Δ वृद्धि का सूचक है ; जैसे Δy –आय में वृद्धि, ΔC–उपभोग वृद्धि तथा ΔI–निवेश में वृद्धि)

अथवा $\frac{\Delta Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta C}{\Delta Y} + \frac{\Delta I}{\Delta Y}$ दोनों पक्षों में ΔY से भाग देने पर

अथवा $1 = b + \frac{\Delta I}{\Delta Y}$ ($\frac{\Delta C}{\Delta Y}$= MPC = b सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति है)

अथवा $\frac{\Delta I}{\Delta Y} = 1-b$

अथवा $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{1-b}$

यदि $\frac{1}{1-b} = k$

तो $\frac{\Delta Y}{\Delta I} = k$

या $\Delta Y = k\,\Delta I$

अर्थात् आय में परिवर्तन प्रारम्भिक स्वायत्त निवेश में परिवर्तन से अधिक होगा। k गुणक है जो कि s या (1-b) का व्युत्क्रमानुपाती है।

अर्थात् $k = \frac{1}{1-b}$

या $k = \frac{1}{s}$ (s =1-b) जहाँ s = सीमान्त बचत प्रवृत्ति है।

वास्तव में जैसा कि आप जानते हैं निवेश दो प्रकार का होता है, स्वायत्त तथा प्रेरित। प्रेरित विनियोग आय के बढ़ने पर बढ़ता है। ऐसी स्थिति में यदि सीमान्त निवेश प्रवृत्ति g हो तो गुणक का मान होगा–

$k=\frac{1}{1-b-g}$ या $k=\frac{1}{s-g}$

उपरोक्त सूत्र से स्पष्ट है कि गुणक तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त निवेश प्रवृत्ति का सीधा संबंध है जबकि गुणक का सीमान्त बचत प्रवृत्ति से उल्टा या व्युत्क्रमानुपाती संबंध है। यदि स्वायत्त निवेश में वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि गुणक के मान पर निर्भर करेगी।

१२.४ विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव (Foreign Repercussions) की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक या शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक

एक बन्द अर्थव्यवस्था में निवेश गुणक की व्युत्पत्ति कैसे की जाती है, आपने ऊपर देखा। एक बंद अर्थव्यवस्था में गुणक का मान होगा–

$$k = \frac{1}{1-b-g}$$

एक खुली अर्थव्यवस्था में, राष्ट्रीय आय की गणना में उपभोग और बचत के अतिरिक्त निर्यात (X) और आयात (M) को भी सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् समस्त उत्पादित वस्तुओं (Y) और आयातित वस्तुओं (M) का योग, समस्त खरीदी गयी वस्तुओं (C+I+G) और निर्यातित वस्तुओं (X) के योग के बराबर होगा। गणितीय रूप में–

$$Y+M= C+I+G+X$$

यदि हम मान लें कि सरकारी व्यय और कर शून्य है और बचत और निवेश भी नहीं हो रहा है, उपभोग के अतिरिक्त सिर्फ आयात और निर्यात हो रहा है तो संतुलन में–

$$Y+M=C+X$$

या

$$Y= C+X-M$$

ऐसी स्थिति में, विदेशी व्यापार गुणक (k_f) का मान होगा–

$$k_f = \frac{1}{m}$$

जहाँ, m सीमान्त आयात प्रवृत्ति है। स्पष्ट है कि विदेशी व्यापार गुणक का मान सीमान्त आयात प्रवृत्ति का व्युत्क्रमानुपाती है। यहाँ k_f शुद्ध विदेशी व्यापार गुणक है। जहाँ केवल विदेशी क्षेत्र की उपस्थिति है जबकि घरेलू क्षेत्र इस अर्थ में अनुपस्थित है कि घरेलू बचत व निवेश शून्य है। **चूँकि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में घरेलु और विदेशी क्षेत्र दोनों मौजूद रहता है इसलिये** यदि घरेलू क्षेत्र के साथ विदेशी क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो विदेशी व्यापार गुणक को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

$k_f = \frac{1}{1-b-g+m}$ या $\frac{1}{s-g+m}$

जहाँ k_f विदेशी व्यापार गुणक है।

निर्यातों (X) को सामान्यतया बर्हिजात रूप से निर्धारित माना जाता है क्योंकि निर्यातों की मांग, विदेशों में होने वाले परिवर्तन पर निर्भर करती है, जो कि घरेलू अर्थव्यवस्था से बाहर के कारक है। दूसरी तरफ, आयातों (M) की मांग घरेलू अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय मे परिवर्तनों पर निर्भर करती है। इस प्रकार आयात एक सीमा तक अंर्तजात चर है। आयात का एक हिस्सा तो स्वायत्त होता है जो कि राष्ट्रीय आय से प्रभावित नहीं होता है जबकि एक हिस्सा आय प्रेरित होता है। आयात फलन को निम्नलिखित प्रकार से लिखा जा सकता है–

$M=M_0+mY$

जहाँ M–आयात, M_o–स्वायत्त आयात

m–सीमान्त आयात प्रवृत्ति ($\Delta M/\Delta Y$)

विदेशी व्यापार गुणक (k_f) का मान केन्सीय निवेश गुणक से कम होगा क्योंकि इसके अंश में सीमान्त आयात प्रवृत्ति जुड़ गयी है। इस प्रकार सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) घरेलू तथा विदेशी क्षेत्र को जोड़ती है।

१२.४.१ विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति

अब हम विदेशी क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र तथा घरेलु क्षेत्र की उपस्थिति में स्वायत निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय तथा अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों की स्पष्ट व्याख्या करेगे. निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है।

आप जानते हैं एक खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का समीकरण निम्नलिखित होगा–

$Y=C+I=G+(X-M)$

जैसा कि आप जानते हैं

$C=C_0+bYd$

(जहाँ C_0 - स्वायत्त उपभोग,

Y_d - व्यय योग्य आय

$Yd=Y-T$

(जहाँ T - कर)

$I=I_0+gY$

(जहाँ I_0 -स्वायत्त निवेश)

तथा $M=M_0+mY$

(जहाँ M–आयात, M_o–स्वायत्त आयात

m–सीमान्त आयात प्रवृत्ति)

$\therefore$ Y=(Co+bYd)+(Io+gY)+G+[X-(Mo+mY)]

अथवा Y=Co+b(Y-T)+Io+gY+G+X-Mo-mY

अथवा Y=Co+bY-bT+Io+gY+G+X-Mo-mY

अथवा Y-bY-gy+mY=Co+Io+G+X-Mo-bT

अथवा Y(1-b-g+m)= Co+Io +G+X-Mo-bT

अथवा $Y = \frac{1}{1-b-g+m}$ (Co+Io+G+X-Mo-bT)

जहाँ $\frac{1}{1-b-g+m} = k_f$

k_f विदेशी व्यापार गुणक है।

यदि निर्यातों में वृद्धि होती है राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी यह विदेशी व्यापार गुणक के मान पर निर्भर करेगा।

१२.४.२ विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव

मान लिजिए – b=0.75, g=0.2 तथा m=0.2 तथा निर्यात में वृद्धि (ΔX)= `200 करोड़ है।

तो $k_f = \frac{1}{1-b-g+m} = \frac{1}{1-0.75-0.2+0.2}$

$= \frac{1}{1.2-0.95} = \frac{1}{0.25} = 4$

अर्थात् विदेशी व्यापार गुणक का मान 4 हैं

इसलिए आय में वृद्धि $\Delta y = k_+ \Delta x$

अथवा $\Delta y = 4.200$

= `800 Cr

निर्यात में वृद्धि से निर्यातकों के आय अर्जन में वृद्धि होती है। बढ़ी हुई आय को घरेलू तथा आयातित वस्तुओं के उपभोग पर व्यय किया जाता है। यह व्यय की मात्रा क्रमशः सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b) तथा सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) निर्भर करती है। घरेलू वस्तु के उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति जितनी ही अधिक होगी और सीमान्त आयात प्रवृत्ति जितनी ही कम होगी, विदेशी व्यापार गुणक का मान उतना ही अधिक होगा और राष्ट्रीय आय में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी। स्पष्ट है कि बढ़ी हुई आय को आयात पर व्यय करना एक प्रकार से आय मे ंरिसाव है।

निर्यात में वृद्धि से व्यापार–घाटा (X-M) कम होगा–यदि आयात की सीमान्त प्रवृत्ति कम है तो निर्यातों में वृद्धि की अपेक्षा आयातों की वृद्धि कम होगी। साथ ही, निवेश बचत अन्तराल मे ंभी कमी होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि घरेलू क्षेत्र तथा विदेशी क्षेत्र का घनिष्ठ संबंध है। निर्यातों में परिवर्तन से राष्ट्रीय आय प्रभावित होगी और राष्ट्रीय आय आगे

आयातों को प्रभावित करेगी। यहाँ व्यापार शेष के घाटे को दूर करने में विदेशी व्यापार गुणक का महत्व स्पष्ट है।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

10. विदेशी व्यापार गुणक की व्याख्या कीजिए।
11. विदेशी व्यापार गुणक की व्युत्पत्ति **कैसे की जाती है**?
12. **निवेश गुणक से आप क्या समझते हैं?**

अति लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. **निवेश गुणक का सूत्र लिखिये .**

२. **साधारण** विदेशी व्यापार गुणक **का सूत्र लिखिये .**

बहुविकल्पीय प्रश्नः

7. विदेशी व्यापार गुणक **का सूत्र** है–

(क) $\Delta y = k_{-}\Delta x$

(ख) $\frac{1}{1-b-g+m} = k_f$

(ग) $\frac{1}{s-g+m} = k_f$

(घ) उपरोक्त सभी

8. **यदि निर्यात में वृद्धि १०० करोड़ रूपया तथा आय में वृद्धि १५० करोड़ रुपये हो तो गुणक का मान होगा...–**

(क) ०.६७

(ख) १.५

(ग) १

(घ) ०.५

9. यदि स्वायत्त निवेश में वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि निर्भर करेगी

(क) गुणक के मान पर (ख) MPC पर

(ग) MPS पर (घ) उपरोक्त सभी

10. खुली अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का समीकरण होता है–

(क) Y = C+I+G (ख) Y = C+I+G+(X+M)

(ग) Y = C+I+G+(X-M) (घ) Y = C+I+G+X

11. यदि bका मान 0.8, g का मान 0.2 तथा m का मान 0.4 हो तो k_f का मान होगा

(क) 0.8

(ख) 2.5

(ग) 1

(घ) 0.6

12. निम्नलिखित में से कौन सा समीकरण अर्थव्यवस्था के संतुलन को व्यक्त नहीं करता है?

(क) C+I+G-X = C+S+T-M

(ख) I+G+X = S+T+M

(ग) C+I+G+X = C+S+T+M

(घ) I+X = S+M

सत्य व असत्य :

7. निर्यात में वृद्धि से व्यापार–घाटा (X-M) कम होगा।
8. विदेशी व्यापार गुणक (k_f) का मान केन्सीय निवेश गुणक से अधिक होगा।
9. आयात एक सीमा तक अंर्तजात चर है। निर्यातों (X) को सामान्यतया बर्हिजात रूप से निर्धारित माना जाता है।
10. गुणक तथा सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति और सीमान्त निवेश प्रवृत्ति का सीधा संबंध है जबकि गुणक का सीमान्त बचत प्रवृत्ति से उल्टा या व्युत्क्रमानुपाती संबंध है।
11. यदि निवेश बचत से अधिक है तो व्यापार–संतुलन में अतिरेक और यदि निवेश बचत से कम है तो घाटा होगा।
12. निवेश और निर्यात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में वृद्धि करते हैं जबकि बचत तथा आयात राष्ट्रीय आय के प्रवाह में रिसाव है।
13. विदेशी व्यापार गुणक सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) और सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) के योग का व्युत्क्रमानुपाती होता है।

१२.५ विदेशी प्रति–प्रभाव (Foreign Repercussions effect) और विदेशी व्यापार गुणक

अब तक के विदेशी व्यापार गुणक की चर्चा से आप जान गए होंगे कि यह सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) और सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) के योग का व्युत्क्रमानुपाती होता है। जिस प्रकार उपभोग, निवेश या सरकारी व्यय में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार निर्यात वृद्धि का भी (या आयात में कमी का) राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है। स्वायत्त निर्यातों में वृद्धि (या आयातों में कमी से) विदेशी व्यापार मुक्त गुणक द्वारा राष्ट्रीय में वृद्धि होती है और इससे शुद्ध विदेशी निवेश अर्थात् (X-M) में वृद्धि होती है।

स्पष्ट है कि निर्यात वृद्धि के कारण हुई आय वृद्धि का आयात बिल के भुगतान के रूप में रिसाव होता है जिसके कारण विदेशी व्यापार गुणक का मान निवेश गुणक की तुलना में कम हो जाता है। परन्तु अब तक हमने मान लिया था कि आयात तो राष्ट्रीय आय का फलन है परन्तु निर्यातों का निर्धारण स्वतः ही होता है क्योंकि वह वाह्य कारकों से प्रभावित होता है।

वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार दो तरफा यातायात की तरह है। एक देश का निर्यात, दूसरे देश का आयात है तथा दूसरे देश का निर्यात घरेलू देश का आयात है। इस प्रकार घरेलू देश का निर्यात विदेशी देश में होने वाले राष्ट्रीय आय के परिवर्तनों से प्रभावित होते हैं या विदेशी देश की सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर होते हैं। इसी प्रकार घरेलू देश में

आयात देश की आय में परिवर्तनों या सीमान्त आय प्रवृत्ति पर निर्भर करते हैं जो कि इस तरह विदेशी देश के निर्यातों को निर्धारित करते हैं। इसे ″विदेशी प्रतिप्रभाव″ या ″फीड बैंक प्रभाव″ कहते हैं।

विदेशी प्रति प्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक केवल घरेलू सीमान्त बचत (या उपभोग) तथा आयात प्रवृत्तियों (विश्लेषण की सरलता के लिए सीमान्त निवेश प्रवृत्ति को छोड़ा जा सकता है) पर निर्भर करता है।

अर्थात् $k_f = \frac{1}{s+m} = \frac{1}{1-b+m}$.

विदेशी प्रति प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक न सिर्फ घरेलू सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है बल्कि यह विदेशी सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है। जिस प्रकार घरेलू विनियोग का राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन पर विस्तारकारी प्रभाव होता है उसी प्रकार अतिरिक्त निर्यात और विदेशी विनियोग का भी देश के उत्पादन, रोजगार और आय पर विस्तारकारी प्रभाव होता है। एक देश दूसरे देश की अपेक्षा जितना छोटा होगा, विदेशी प्रति–प्रभाव उतना ही कम होगा।

विदेशी प्रति–प्रभाव की अनुपस्थिति में, निवेश में वृद्धि या निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर एक तरह का प्रभाव पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर,

यदि $k_+=4$, तथा निर्यात वृद्धि $\Delta X =$ `200Cr

तो $\Delta y = 4 \times$ `200= `800

यदि निवेश में `200Cr की वृद्धि होती है तो भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि `800Cr की होगी, क्योंकि तब भी सूत्र वही होगा

$\Delta y = k\,\Delta I = 4\times 200 =$ `800 Cr

परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निर्यात में वृद्धि और उसी मात्रा में निवेश में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव अलग–अलग होगा।

१२.५.१ निर्यातों का फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक

(Feedback Foreign Trade Multiplier Model of Exports)

यदि एक देश के निर्यात में स्वायत्त रूप से वृद्धि हो रही है तो विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में हम विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। यह निर्यात में वृद्धि विदेशी देश में अधिक सीमान्त आय प्रवृत्ति या निवेश वृद्धि के कारण हुए आर्थिक विस्तार के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि द्वारा प्रेरित हो सकती है।

मान लिया दो देश हैं, घरेलू देश A तथा विदेशी देश B। घरेलू देश A में निर्यात वृद्धि का विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव या फीडबैक प्रभाव की उपस्थिति में उसकी राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव पडेगा आप यह निम्नलिखित चित्र के माध्यम से देख सकते हैं।

घरेलू देश A में निर्यात में प्रारम्भिक वृद्धि से आय में वृद्धि होती है जो कि इस देश के आयातों में भी वृद्धि लाती है। देश A के आयातों में वृद्धि से देश B के निर्यातों में वृद्धि होगी। देश B में निर्यातों की वृद्धि उसकी राष्ट्रीय आय और आयातों में वृद्धि आती है। देश

B में आयातों में वृद्धि से देश A में निर्यातों में 'प्रेरित' वृद्धि होती है। जिससे देश A में राष्ट्रीय आय तथा आयातों में वृद्धि होती है। यह प्रक्रिया दोनों देशों के बीच चलती रहती है और दोनों देशों में व्यापार तथा आय में लगातार विस्तारकारी प्रभाव होता है। इसे चित्र 12.1 में श्रृंखला–1 के माध्यम से दर्शाया गया है।

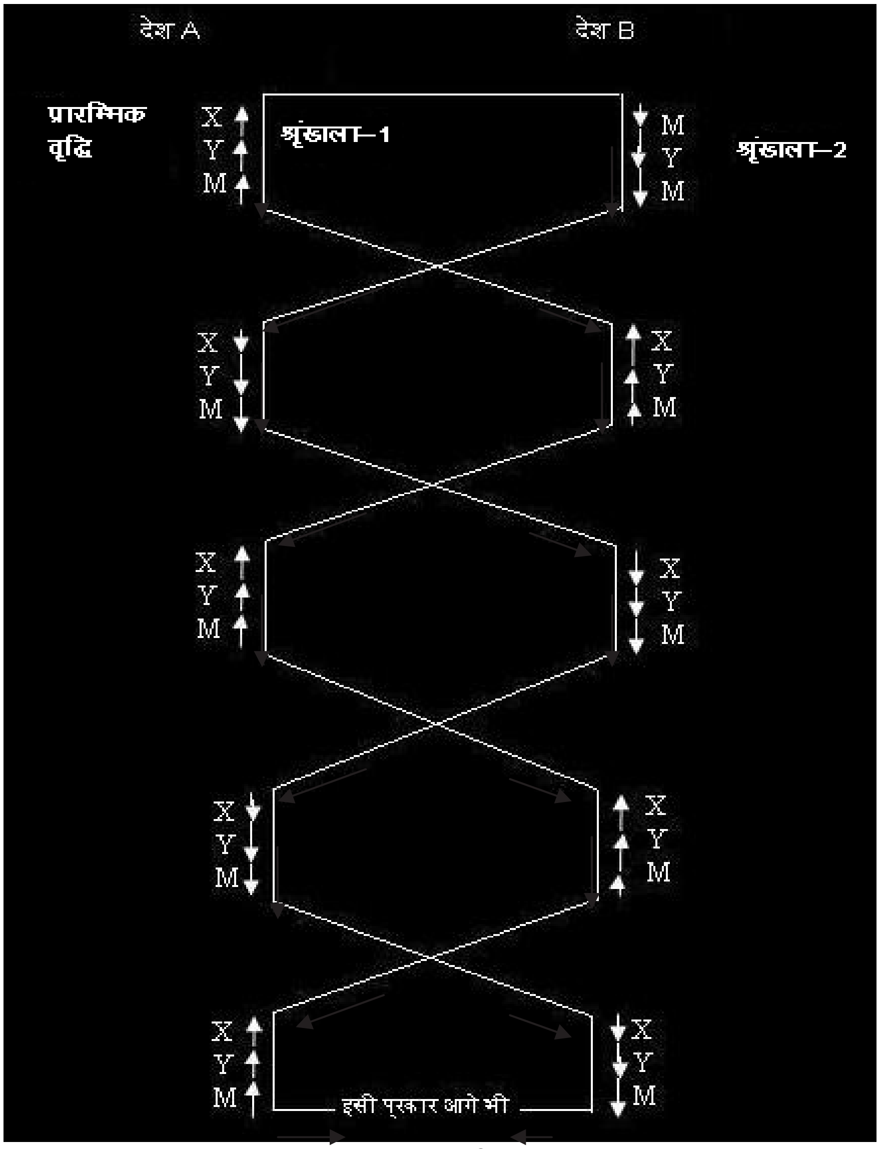

चित्र 12.1

परन्तु देश A में निर्यात वृद्धि का एक दूसरा प्रभाव भी होगा जो कि अर्थव्यवस्था पर संकुचनकारी प्रभाव डालेगा। इसे चित्र 12.1 में श्रृंखला–2 के माध्यम से दर्शाया गया है। देश A के निर्यात में प्रारम्भिक वृद्धि से सीधे विदेशी देश B में आयात में वृद्धि होगी जिससे देश B में राष्ट्रीय आय और आयातों में कमी होती है। जब देश B के आयातों में कमी होती है तो इससे सीधे देश A में निर्यातों में कमी होगी, जो देश A के

राष्ट्रीय आय तथा आयातों को कम करती है। परिणामस्वरूप, फिर से सीधे देश B में निर्यातों में कमी होगी जोकि देश B में आय और आयातों में कमी लाएगी और यह प्रक्रिया चलती रहेगी।

जब निर्यात में वृद्धि के उपरोक्त दोनों धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रभाव पूरी तरह से एक साथ काम करते हैं तो घरेलू देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि दो बातों पर निर्भर करती है– (i) देश A में निर्यातों की प्रारम्भिक वृद्धि कितनी है, और (ii) देश A में फीडबैंक विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) का मान कितना है।

फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र होगा–

$$K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$$

जहाँ, S_1= घरेलू देश A में सीमान्त बचत प्रवृत्ति

M_1= घरेलू देश A में सीमान्त आयात प्रवृत्ति

M2= विदेशी देश B में सीमान्त आयात प्रवृत्ति

S2= विदेशी देश B में सीमान्त बचत प्रवृत्ति

विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) का मान साधारण विदेशी व्यापार गुणक (K_f) की अपेक्षा कम होगा। क्योंकि श्रृंखला–2 का प्रभाव आय को घटाने वाला होगा।

यदि S_1=0.3, M_1=0.2

तो साधारण विदेशी व्यापार गुणक $K_f = \frac{1}{S1+M1}$

या $K_f = \frac{1}{0.30+0.20)} = \frac{1}{0.5} = 2$

यदि S_2=0.30, M_2=0.30

तो $K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

$$= \frac{1}{0.30+0.20+0.30(\frac{0.30}{0.30})}$$

$$= \frac{1}{0.50+0.30}$$

$$= \frac{1}{0.80}$$

$$=1.25$$

स्पष्ट है कि K_f^* का मान (1.25), K_f के मान (2) से कम है। क्योंकि देश B के आयातों में वृद्धि से उसकी आय क्रमशः कम होगी, जिसका देश A की राष्ट्रीय आय पर भी ऋणात्मक प्रभाव होगा। यदि निर्यात में `200 की वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि होगी–

$$\Delta Y = K_f^* \Delta X$$

$$= 1.25 \times 200$$

= `250Cr

१२.५.१ निवेश का फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडलः

निर्यात वृद्धि की जगह यदि देश A में निवेश में वृद्धि होती है तो देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होगी।

देश A में निवेश में प्रारम्भिक वृद्धि का विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में राष्ट्रीय आय पर क्या प्रभाव पडेगा यह निम्नलिखित चित्र 12.2 में व्यक्त किया गया है। उल्लेखनीय है कि इसमें सिर्फ एक ही श्रृंखला बनेगी जो कि प्रति–प्रभाव को दर्शाती है।

निवेश में (I) प्रारम्भिक वृद्धि से देश A में आय तथा आयात में वृद्धि होगीं; देश A में आयात वृद्धि से देश B के निर्यातों में वृद्धि होगी जिससे आय तथा आयातों में भी वृद्धि होगी।

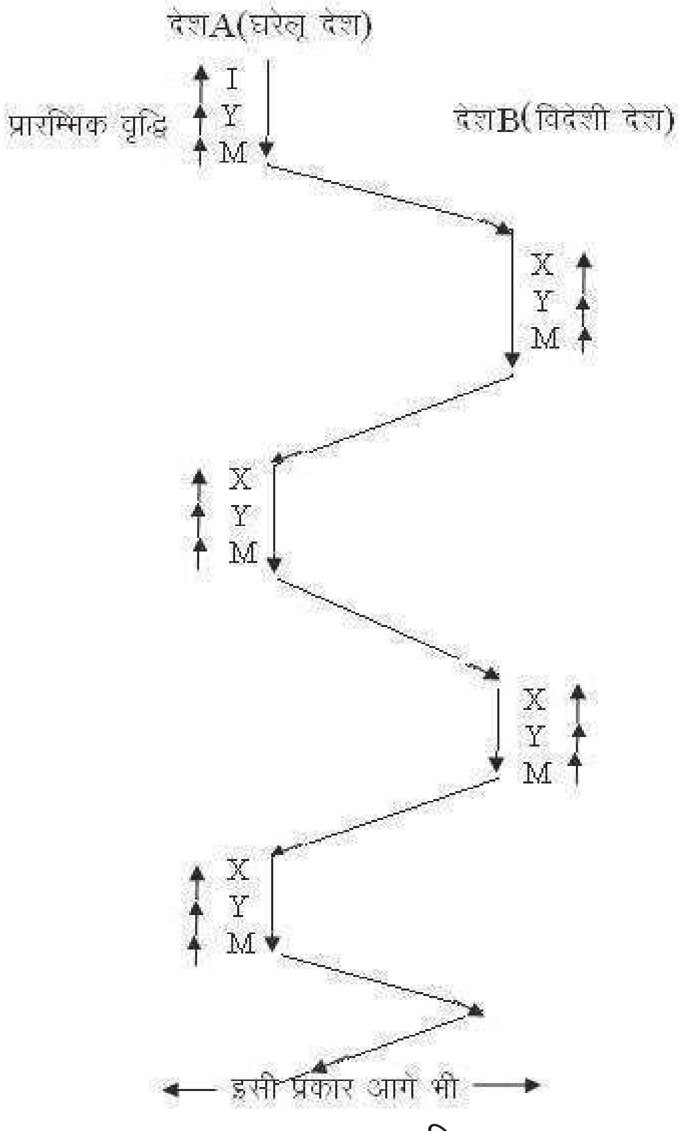

चित्र 12.2

देश B के आयातों में वृद्धि की प्रतिक्रिया आगे देश A पर होगी और देश A के निर्यातों में वृद्धि होगी, जिससे उसके आय तथा आयात भी बढ़ेंगे। इसके परिणामस्वरूप देश B में भी निर्यात–आय तथा आयातों में वृद्धि होगी। यह प्रक्रिया संचयी रूप से चलती रहेगी और देश A तथा B दोनों ही देशों में आय, आयातों तथा निर्यातों को बढ़ाएगी। निवेश में वृद्धि पर देश A में वृद्धि निवेश वृद्धि की प्रारम्भिक मात्रा तथा फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक के मान पर निर्भर करेगी। इस स्थिति में फीडबैक विदेश व्यापार गुणक का सूत्र होगा –

या $$K_f^* = \frac{1+(\frac{M2}{S2})}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$$

यदि, हम ऊपर दिए गए मानों को सूत्र में रखें तो,

$$K_f^* = \frac{1+(\frac{0.30}{0.30})}{0.30+0.20+0.30(\frac{0.30}{0.30})}$$

$$= \frac{1+1}{0.50+0.30} = \frac{2}{0.80}$$

$$= 2.50$$

स्पष्ट है कि यहाँ फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का मान (2.50) साधारण विदेशी व्यापार गुणक के मान (2)से अधिक है। इसलिए यदि देश A में प्रारम्भिक निवेश में `200 की वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि होगी।

$$\Delta Y = K_f^* \ \Delta I$$

$$= 2.50 \times 200 = \text{`}500Cr$$

साधारण विदेशी व्यापार गुणक (K_f) की स्थितियाँ

$$\Delta Y = K_f \ \Delta I = 2 \times 200 = \text{`}400$$

उल्लेखनीय है कि विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (`500Cr), निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि (`250Cr) की अपेक्षा अधिक है। साथ ही यह साधारण विदेशी व्यापार गुणक की स्थिति में राष्ट्रीय आय में वृद्धि (`400Cr) से भी अधिक है।

विदेशी प्रति–प्रभाव या अति निर्यात–प्रभाव का नीतिगत निहितार्थ यह है कि यदि एक देश द्वारा निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपनायी जाती है तो इससे उस देश तथा उससे व्यापारिक संबंध रखने वाले देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि धीमी गति से होगी। परन्तु यदि निवेश में वृद्धि की नीति अपनायी जाती है तो इससे इस देश सहित सभी देशों की राष्ट्रीय आय में तीव्र गति से वृद्धि होगी। निवेश विस्तार कार्यक्रमों से वस्तुओं और सेवाओं के विश्व व्यापार के आकार में बढोत्तरी होगी, विश्व आय तथा रहन–सहन के स्तर में सुधार तो होगा ही।

विकसित देशों में अपने निर्यात वृद्धि के साथ–साथ विकासशील तथा अर्द्धविकसित देशों की राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभावों को भी ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा इन देशों की राष्ट्रीय आय पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव विकसित देशों की राष्ट्रीय आय से भी प्रभावित करेंगे।

वास्तव में निर्यात प्रोत्साहन नीतियाँ घरेलू निवेश की तुलना में व्यापार कर रहे सभी देश मे ंराष्ट्रीय आय को कम दर से बढ़ाती है। घरेलू निवेश में वृद्धि की नीतियाँ या कार्यक्रम प्रति–प्रभावों द्वारा विदेशी व्यापार गुणक के मान को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय को कई गुणा बढ़ा देती है जिससे व्यापार–संतुलन का घाटा कम हो जाता है।

विकसित या बड़े देशों का प्रति–प्रभाव या अति–निर्यात प्रभाव (Backwash effect) अधिक होगां जैसे यदि निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप अमेरिका की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो इससे उसके आयातों में वृद्धि से अन्य कई देशों के निर्यात में और फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। जिससे इन देशों की आयातों में वृद्धि होगी जो आगे अमेरिका के निर्यात और आय को बढ़ाएगी।

१२.६ विदेशी व्यापार गुणक का चित्र द्वारा निरूपण

घरेलू क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक $\frac{1}{MPM}$ के बराबर होगा और राष्ट्रीय आय में वृद्धि निर्यात वृद्धि की अपेक्षा अधिक होगी। चित्र 12.3 में X अक्ष पर आय तथा Y अक्ष पर व्यय है। वक्र–X निर्यात तथा वक्र–M आयातों को प्रदर्शित कर रहा है। आय स्तर Y_0 पर आयात M तथा निर्यात X आपस में बराबर हैं।

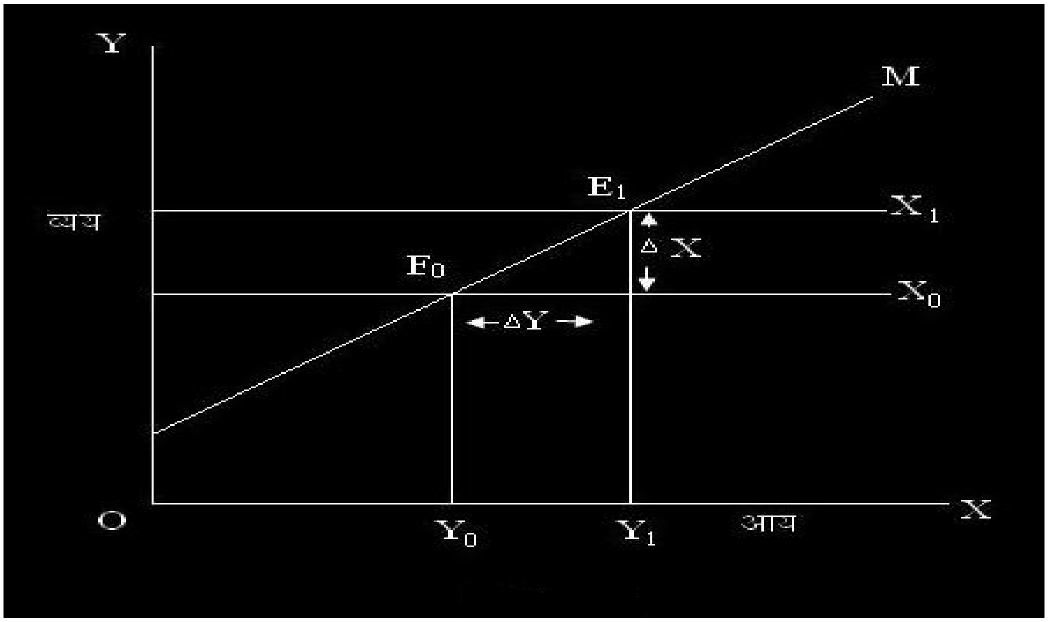

चित्र 12.3

जब निर्यात X से बढ़कर X_1 हो जाता है तो संतुलन राष्ट्रीय आय Y से बढ़कर Y_1 हो जाती है। बिन्दु E_1 पर, Y_1 आय स्तर पर भी निर्यात और आयात बराबर है। निर्यात में परिवर्तन (OX) के फलस्वरूप आय में परिवर्तन (OY) निर्यात वृद्धि से अधिक है। आय में वृद्धि विदेशी व्यापार गुणक (K_f) के मान पर निर्भर करता हैं और विदेशी व्यापार गुणक (K_f) का मान सीमान्त आय प्रवृत्ति (MPM) पर निर्भर करता हैं । आयात वक्र M की ढाल सीमान्त आय प्रवृत्ति को बताती है। यह ढाल जितना ही कम होगा अर्थात आय प्रवृत्ति को बताती है। यह ढाल जितना ही कम होगा अर्थात सीमान्त आय प्रवृत्ति (MPM)

का मान जितना ही कम होगा गुणक का मान उतना ही अधिक होगा और निर्यात वृद्धि से आय में वृद्धि उतनी ही अधिक होगी।यदि आयात फलन के साथ निवेश और बचत फलन को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो अर्थव्यवस्था के संतुलन को चित्र 12.4 में दिखाया गया है।

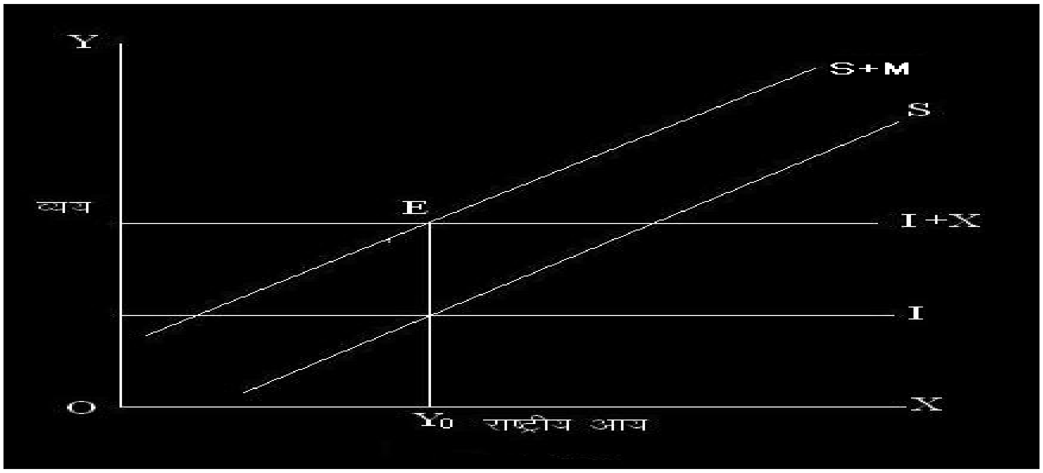

चित्र 12.4

चित्र 12.4 में Y_0 आय स्तर पर बचत और निवेश तथा आयात और निर्यात आपस में बराबर है। S वक्र बचत और (S+M) वक्र बचत तथा आयात के योग को दर्शाता है। I घरेलू निवेश को व्यक्त करता है तथा (I+X) वक्र घरेलू निवेश तथा निर्यात के योग को व्यक्त करता है। बिन्दु E पर बचत तथा आयातों का योग, निवेश तथा निर्यातों के योग के बराबर है (I+M=I+X)।

१२.६.१ विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की अनुपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक

यदि निर्यात में वृद्धि के कारण (I+X) वक्र ऊपर की ओर सरक कर ($I+X+X_1$) हो जाता है तो नया संतुलन E_1 बिन्दु पर होता है। जहाँ ($I+X+X_1$) तथा (SPM) आपस में बराबर हैं और राष्ट्रीय आय OY_0 से बढ़कर OY_1 हो जाती है जैसा कि चित्र 12.5 में दिखया गया है।

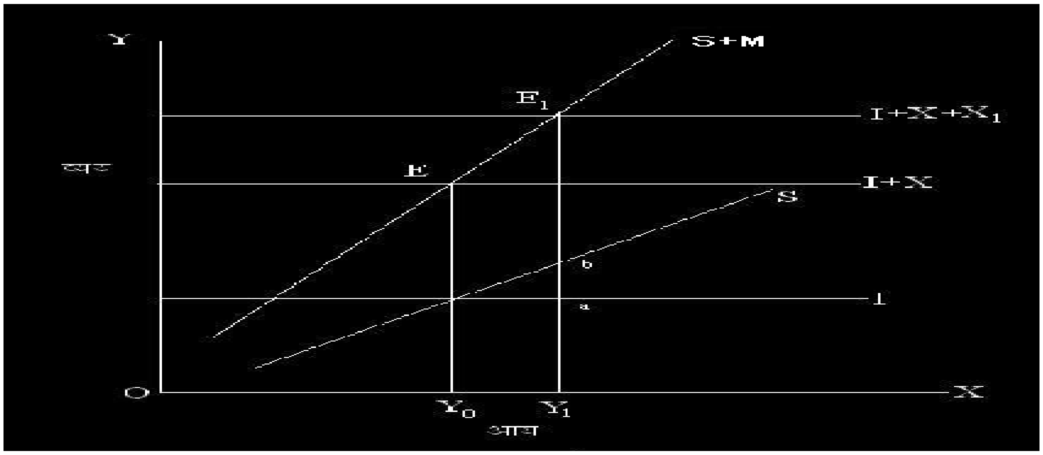

चित्र 12.5

आय में वृद्धि गुणक प्रभाव के कारण होती है। आय में वृद्धि कितनी होगी यह विदेशी व्यापार गुणक (K_f) पर निर्भर करेगी क्योकि $\Delta Y = K_f \Delta X$,

यहाँ, $K_f = \frac{1}{MPS+MPM} = \frac{1}{S+M}$

अर्थात विदेशी व्यापार गुणक K_f का मूल्य सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्ति या (S+M) वक्र के ढाल पर निर्भर करेगा। Y_1 आय स्तर पर बचत निवेश से ab अधिक है। अतः Y_1 आय स्तर पर निर्यात भी आयात से ab मात्रा में अधिक है। अतः Y आय स्तर पर भुगतान संतुलन का चालू खाता संतुलन में नहीं है और देश पूँजी का निर्यात करता है जिससे A बिन्दु पर निर्यात और निवेश का योग बचत तथा आयात के योग के बराबर है।

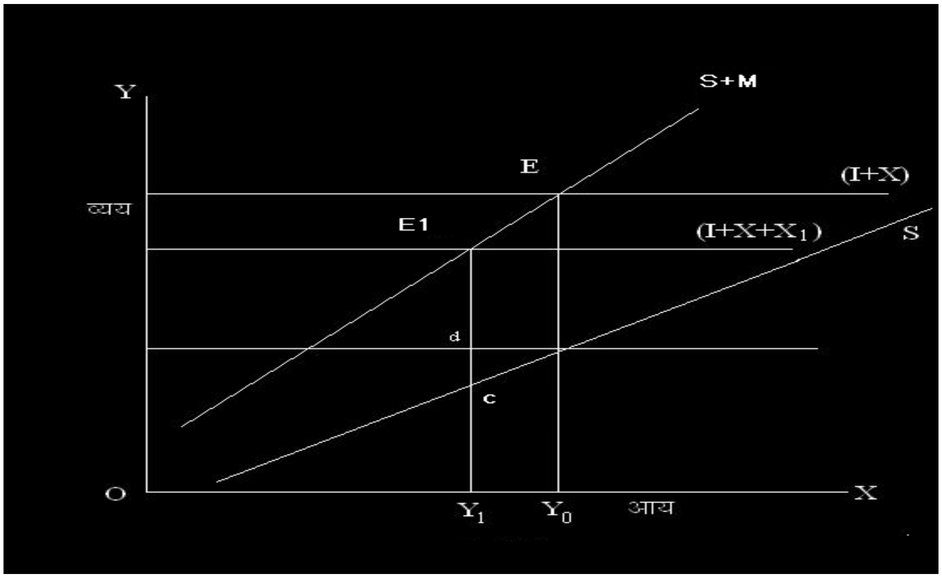

चित्र 12.6

चित्र 12.6 में इसके विपरीत यदि निर्यात में कमी हो जाती है तो (I+X) वक्र नीचे की ओर विर्वतित होकर ($I+X+X_1$) हो जाता है और संतुलन Yo से से घटकर Y आय स्तर पर आ जाता है। यहाँ विदेशी व्यापार गुणक विपरीत दिशा में कार्य कर रहा है। Y_1 आय स्तर घरेलू विनियोग (I), घरेलू बचत (S) से cd अधिक है। अर्थात आयात भी निर्यात से cd मात्रा में अधिाक है और चालू खाता में घाटा है और देश को निवेश की पूर्ति के लिए पूँजी का आयात करना पड़ेगा।

१२.६.२ विदेशी प्रतिक्रियाओं या प्रतिप्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक

निवेश के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक के प्रभाव को चित्र 12.7 में दर्शाया गया है। चित्र 12.7(A) में घरेलू देश A के निवेश में I_1 मात्रा में वृद्धि होती है जिससे(I+X) वक्र ऊपर की ओर सरक कर ($I+I_1+X$) हो जाता है। परिणामस्वरूप बचत और आयात तथा निवेश और निर्यात के योग का नया संतुलन E_1 बिन्दु पर होता है जहाँ राष्ट्रीय आय OY से बढ़कर OY_1 हो जाती है।

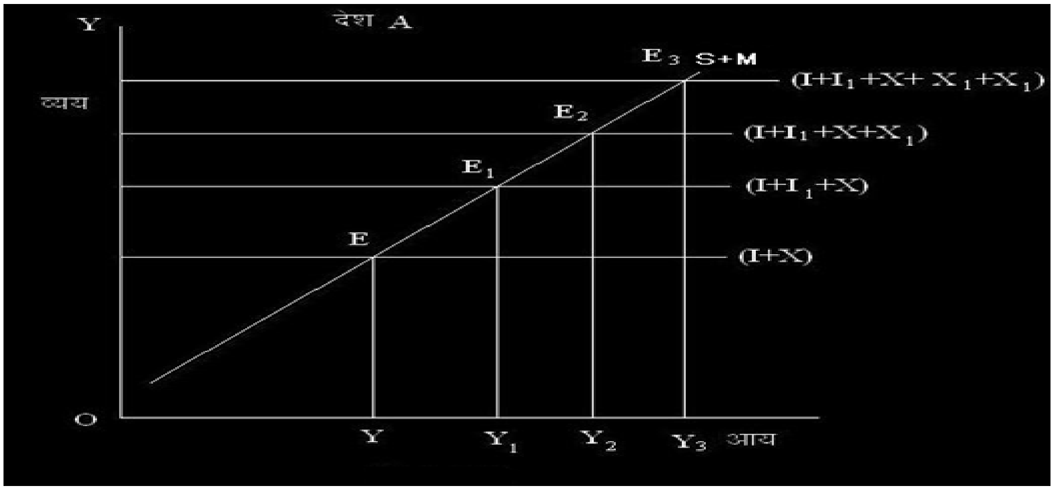

चित्र 12.7 A

जब देश A में राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो उसके आयातों में वृद्धि होने से देश के निर्यातों में वृद्धि होती है जिससे देश B का I+X वक्र ऊपर की ओर विर्वतित होकर $I+X+X_1$ हो जाता है और देश B की राष्ट्रीय आय OY_0 से बढ़कर OY_1 हो जाती है जैसा चित्र 12.7 (B) में दिखाया गया है। जब देश B की आय में वृद्धि हाती है तो इसके आयात बढ़ते हैं जो कि देश के निर्यातों को सीधे बढ़ा देते हैं। जो कि अति निर्यात–प्रभाव या फीडबैक प्रभाव है।

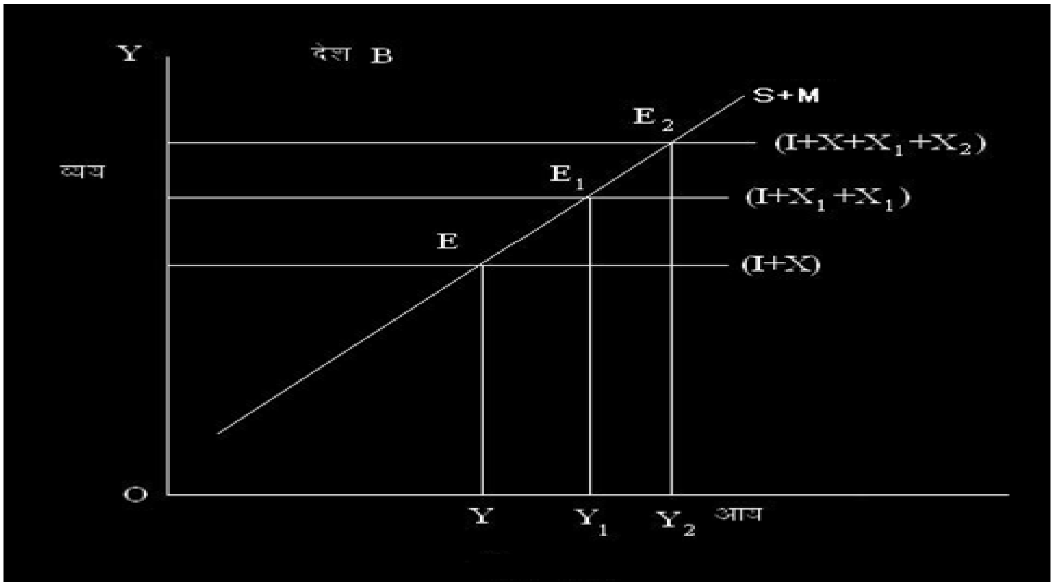

चित्र 12.7 B

चित्र 12.7(A) में, देश A के निर्यात में वृद्धि होने पर $(I+I_1+X)$ वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होकर $(I+I_1+X+X_1)$ हो जाता है और नए संतुलन बिन्दु E_2 पर राष्ट्रीय आय

बढ़कर OY_2 हो जाती है। और यह पुनः आगे देश B के निर्यातों और राष्ट्रीय आय में वृद्धि लाती है और यह क्रम दोनों ही देशों में संचयी रूप से चलता रहता है।

१२.७ विदेशी व्यापार गुणक का महत्व

विदेशी व्यापार गुणक से हमें यह ज्ञात होता है कि विदेशी क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का या घरेलू क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय या अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है । साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि घरेलू अर्थव्यवस्था और विदेशी व्यापार का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है, बचत और निवेश अन्तराल का विदेशी आयात तथा निर्यात अन्तराल से घनिष्ठ संबंध है। इसलिए विभिन्न नीतियों के निर्माण में विदेशी व्यापार गुणक का विशेष महत्व है विशेषकर एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय में योगदान अधिक है।

विदेशी व्यापार गुणक यह बताता है कि आयात प्रवृत्तियों को कम करके गुणक के मान को बढ़ाया जा सकता है और तब निर्यात संर्वधन–कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है, इससे व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लायी जा सकती है।

घरेलू निवेश बढ़ाकर घरेलू उद्योगों को विकसित कर राष्ट्रीय आय तथा निर्यातों में तेजी से वृद्धि की जा सकती है क्योंकि तब गुणक का मान अधिक होगा।

१२.८ विदेशी व्यापार गुणक की आलोचनाएँ

(1) विदेशी व्यापार गुणक के विश्लेषण में यह मान लिया गया है कि निर्यात और निवेश स्वायत्त है अर्थात राष्ट्रीय आय में परिवर्तनों से स्वतंत्र है तथा आयात आय का फलन है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। निर्यात में वृद्धि से आय में हमेशा वृद्धि नहीं होती है, और फिर आयात भी सिर्फ आय से ही प्रभावित नहीं होता है। प्रो. मीड ने आयात को व्यय का फलन माना है. कुछ आयात, जैसे पूँजीगत वस्तुओं इत्यादि का आयात राष्ट्रीय आय में वृद्धि लाते हैं।

(2) यहाँ आयात क्षमता और आय में धनात्मक संबंध माना गया है। अर्थात आय बढ़ने पर आयात बढ़ेगा और भुगतान–संतुलन प्रतिकूल हो जाएगा, परन्तु यह जरूरी नहीं है। क्योंकि राष्ट्रीय आय बढ़ने पर आन्तरिक तथा वाह्य मितव्ययिताओं में वृद्धि आती है जिससे निर्यात बढ़ते हैं।

(3) विश्लेषण में उपभोग प्रवृत्ति, बचत प्रवृत्ति तथा आयात प्रवृत्ति को स्थिर मान लिया गया है, जो कि अवास्तविक मान्यता है।

(4) यदि कोई देश छोटा हो तो विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव नगण्य होता है।

(5) विश्लेषण में राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के प्रभाव की उपेक्षा की गयी है; जबकि सरकारें सदैव अपनी इन नीतियों के द्वारा आयातों तथा निर्यातों को प्रभावित करने में लगी रहती है।

(6) यह इस मान्यता पर आधारित है कि स्वतंत्र व्यापार हो रहा है और व्यापार प्रतिबंध तथा विनिमय नियंत्रण नहीं है। वस्तुतः राज्य विभिन्न प्रतिबंधात्मक उपायों द्वारा व्यापार में अवरोध उत्पन्न करते हैं और विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण को रोकते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

5. विदेशी व्यापार गुणक की कमियों पर प्रकाश डालिए.
6. निवेश के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल **की विवेचना कीजिये.**
7. विदेशी व्यापार गुणक का महत्व बताइए.
8. निर्यात के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल **की विवेचना कीजिये.**

अति लघु उत्तरीय प्रश्नः

१. **निवेश** फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र **लिखिये ।**

२. फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र **लिखिये ।**

बहुविकल्पीय प्रश्नः

6. विदेशी व्यापार गुणक का मान निवेश गुणक की तुलना में कम हो जाता है
   (क आयात बिल के भुगतान के रूप राष्ट्रीय आय में रिसाव होता है
   (ख) निर्यात वृद्धि के कारण हुई आय वृद्धि **से निवेश बढता है**
   (ग) निर्यात वृद्धि के कारण **आयातों में कमी होती है.**
   (घ) निर्यात वृद्धि के कारण हुई आय वृद्धि **से निवेश घटता है**
7. विदेशी प्रति प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक निर्भर करता है।
   (क) घरेलू सीमान्त बचत
   (ख) घरेलू सीमान्त आयात प्रवृत्ति
   (ग) विदेशी सीमान्त आयात प्रवृत्ति
   (घ) **उपरोक्त सभी**
8. विदेशी प्रति–प्रभाव की अनुपस्थिति में, निवेश में वृद्धि या निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर प्रभाव पड़ेगा
   (क) दोनों का एक तरह का **प्रभाव होगा**
   (ख) निवेश में वृद्धि **का प्रभाव** निर्यात में वृद्धि **के प्रभाव से कम होगा**
   (ग) निवेश में वृद्धि **का प्रभाव** निर्यात में वृद्धि **के प्रभाव से अधिक होगा**
   (घ) दोनों का **प्रभाव अनिश्नित होगा**
9. विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में, निवेश में वृद्धि तथा निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर प्रभाव पड़ेगा
   (क) दोनों का एक तरह का **प्रभाव होगा**
   (ख) निवेश में वृद्धि **का प्रभाव** निर्यात में वृद्धि **के प्रभाव से कम होगा**
   (ग) निवेश में वृद्धि **का प्रभाव** निर्यात में वृद्धि **के प्रभाव से अधिक होगा**

(घ) दोनों का **प्रभाव अनिश्नित होगा**

10. निर्यात में वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि निर्भर करती है

(क) देश A में निर्यातों की प्रारम्भिक वृद्धि कितनी है,

(ख) देश A में फीडबैंक विदेशी व्यापार गुणक (K_f^*) का मान कितना है

(ग) **उपरोक्त दोनों पर**

घ) **उपरोक्त में से किसी पर नहीं**

11. फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक का सूत्र होगा–

(क) $K_f^* = \frac{1}{S2+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

(ख) $K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

(ग) $K_f^* = \frac{1}{S1+M2+M2(\frac{S1}{S2})}$

घ) $K_f^* = \frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S2}{S1})}$

12. निवेश फीडबैक विदेश व्यापार गुणक का सूत्र होगा –

(क) $\frac{1+(\frac{M2}{S2})}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

(ख) $\frac{1}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

(ग) $\frac{1+(\frac{M2}{M1})}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

घ) $\frac{1+(\frac{S1}{S2})}{S1+M1+M2(\frac{S1}{S2})}$

13- यदि कोई देश छोटा हो तो विदेशी व्यापार गुणक का प्रभाव होगा –

(क) **शून्य होगा**

(ख) **अधिक होगा**

(ग) नगण्य

घ) **अनिश्नित होगा**

सत्य व असत्य :

1. घरेलू देश का निर्यात विदेशी देश की सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर होता हैं।
2. अतिरिक्त निर्यात और विदेशी विनियोग का देश के उत्पादन, रोजगार और आय पर विस्तारकारी प्रभाव होता है।

3. निर्यात वृद्धि की जगह यदि देश A में निवेश में वृद्धि होती है तो देश A में राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपेक्षाकृत कम होगी।
4. एक देश दूसरे देश की अपेक्षा जितना छोटा होगा, विदेशी प्रति–प्रभाव उतना ही अधिक होगा।
5. यदि एक देश द्वारा निर्यात प्रोत्साहन की नीति अपनायी जाती है तो इससे उस देश तथा उससे व्यापारिक संबंध रखने वाले देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि धीमी गति से होगी।
6. यदि निवेश में वृद्धि की नीति अपनायी जाती है तो इससे इस देश सहित सभी देशों की राष्ट्रीय आय में तीव्र गति से वृद्धि होगी।
7. घरेलू निवेश में वृद्धि की नीतियाँ या कार्यक्रम प्रति–प्रभावों द्वारा विदेशी व्यापार गुणक के मान को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय को कई गुणा बढ़ा देती है जिससे व्यापार–संतुलन का घाटा कम हो जाता है।
8. बड़े देशों का अति–निर्यात प्रभाव कम होगा।
9. आयात प्रवृत्तियों को कम करके गुणक के मान को बढ़ाया जा सकता है और तब निर्यात संर्वधन–कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाकर व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लायी जा सकती है।
10. प्रतिबंधात्मक उपाय विदेशी व्यापार गुणक के कार्यकरण को रोकते हैं।

१२.९ सारांश

भुगतान–शेष के घाटे को दूर करने के लिए राष्ट्रीय आय में कमी करके घाटे को कम किया जा सकता है। जब किसी देश के निर्यात में वृद्धि होती है तो निर्यात उद्योगों से संबंधित सभी व्यक्तियों की आय में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई आय से अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के लिए मांग उत्पन्न होती है, उन उद्योगों का विस्तार होता है, रोजगार में वृद्धि होती है और आगे आय में और वृद्धि होती है। इस प्रकार, अंतिम रूप में आय में हुई वृद्धि निर्यात–वृद्धि की अपेक्षा काफी अधिक होती है, जो कि गुणक प्रभाव का परिणाम है। निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय मे कितनी वृद्धि हुई यह विदेशी व्यापार गुणक या निर्यात गुणक पर निर्भर करता है।निर्यात गुणक का मूल्य सीमांत उपभोग प्रवृत्ति या बचत प्रवृत्ति तथा सीमांत आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। विदेशी व्यापार गुणक k_f को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है– $k_f = \frac{1}{1-b-g+m}$ या $\frac{1}{s-g+m}$ ।

विदेशी प्रति प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक न सिर्फ घरेलू सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर निर्भर करता है बल्कि यह विदेशी सीमान्त बचत तथा आयात प्रवृत्तियों पर भी निर्भर करता है। विदेशी प्रति–प्रभाव की अनुपस्थिति में निवेश में वृद्धि या निर्यात में वृद्धि दोनों का ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि पर एक तरह का प्रभाव पड़ेगा। परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निर्यात में वृद्धि और उसी मात्रा में निवेश में वृद्धि का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव अलग–अलग होगा।

विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक का मान साधारण विदेशी व्यापार गुणक की अपेक्षा कम होगा। परन्तु विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में निवेश में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि निर्यात में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि की अपेक्षा अधिक होगी। साथ ही यह साधारण विदेशी व्यापार गुणक की स्थिति में राष्ट्रीय आय में वृद्धि से भी अधिक होगी।

विदेशी क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का या घरेलू क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का राष्ट्रीय आय या अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है यह हमें विदेशी व्यापार गुणक से ज्ञात होता है । विशेषकर एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय में योगदान अधिक है विभिन्न नीतियों के निर्माण में विदेशी व्यापार गुणक का विशेष महत्व है। यह बताता है कि आयात प्रवृत्तियों को कम करके गुणक के मान को बढ़ाया जा सकता है और तब निर्यात संर्वधन–कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है, इससे व्यापार संतुलन के घाटे में कमी लायी जा सकती है। घरेलू निवेश बढ़ाकर घरेलू उद्योगों को विकसित कर राष्ट्रीय आय तथा निर्यातों में तेजी से वृद्धि की जा सकती है ।

१२.१० शब्दावली

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (MPC or b) – आय में वृद्धि के फलस्वरूप हुई उपभोग वृद्धि का आय वृद्धि से अनुपात है सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति । गणितीय रूप में–

$$\text{MPC या } b = \frac{\Delta C}{\Delta Y}$$

सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS or s**)**– आय में वृद्धि के फलस्वरूप हुई बचत वृद्धि तथा आय वृद्धि का अनुपात सीमान्त बचत प्रवृत्ति (s) कहलाता है। गणितीय रूप में–

$$\text{MPS या } s = \frac{\Delta S}{\Delta Y}$$

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति तथा सीमान्त बचत प्रवृत्ति का योग इकाई के बराबर होता हे।

अर्थात् MPC +MPS =1 (b+s=1)

या MPC =1-MPS

या MPS =1-MPC

सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (g)– यदि आय में वृद्धि के फलस्वरूप प्रेरित निवेश बढ़ता है तो निवेश वृद्धि का आय वृद्धि से अनुपात सीमान्त निवेश प्रवृत्ति कहलाता है।

$$\text{MPI या } g = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$$

विदेशी प्रति–प्रभाव या अतिनिर्यात प्रभाव – एक देश के निर्यात और आयात में परिवर्तन न सिर्फ उस देश की राष्ट्रीय आय को प्रभावित करते हैं और उससे प्रभावित होते हैं बल्कि इसका प्रभाव उन देशों की राष्ट्रीय आय पर भी पड़ता है जिनसे उसका व्यापारिक संबंध है। बदले में दूसरे देंशों की राष्ट्रीय आय में परिवर्तनों के भी उस देश के आयातों और राष्ट्रीय आय पर प्रभाव पड़ता है, इसे विदेश प्रति–प्रभाव या अतिनिर्यात प्रभाव कहते हैं।

१२.११ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

5. घ 2.ख 3.घ 4.ग 5.ख 6.क

सत्य व असत्य :

7. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6.सत्य

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

2. क 2.घ 3. क 4. ग 5.ग 6. ख 7.क 8.ग

सत्य व असत्य :

2. सत्य 2.सत्य 3. असत्य 4.असत्य 5.सत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.सत्य 10.सत्य

१२.१२ संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

१२.१३ उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999

- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

१२.१४ निबंधात्मक प्रश्न

1. विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए। यह किस प्रकार निवेश गुणक से भिन्न है। विदेशी व्यापार गुणक का महत्व भी बताइए।
2. विदेशी प्रति–प्रभाव के बिना तथा विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
3. विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार से राष्ट्रीय आय को प्रभावित करता है, विस्तृत विवेचना कीजिए।
4. यह बताइए कि विदेश व्यापर गुणक क माध्यम से किस प्रकार भुगतान–संतुलन सिद्धान्त को गत्यात्मकता प्रदान की जा सकती है?
5. विदेशी प्रति–प्रभाव की उपस्थिति में विदेशी व्यापार गुणक की संकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए। निर्यात के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल तथा निवेश के फीडबैक विदेशी व्यापार गुणक मॉडल **में अंतर स्पष्ट कीजिये.**

****

इकाई- 13 भुगतान संतुलन में समायोजन के परंपरागत अवशोषण

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 भुगतान संतुलन में समायोजन
13.3.1 व्यय-परिवर्तनकारी नीतियाँ
13.3.2 व्यय-बदलावकारी नीतियाँ
13.4 अवमूल्यन
13.4.1 भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में अवमूल्यन का प्रभाव
13.5 अवमूल्यन का लोच दृष्टिकोण
13.5.1 मार्शल लर्नर शर्तें या दशाएं
13.5.2 लोच दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन
13.6 अवमूल्यन का अवशोषण दृष्टिकोण
13.6.1 अवशोषण दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची
13.11 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ
13.12 निबंधात्मक प्रश्न

१३.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के **खंड तीन "भुगतान संतुलन "** से सम्बंधित यह १३ वीं इकाई है. इससे पहले की इकाई में आपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बंधित एक महत्वपूर्ण संकल्पना भुगतान संतुलन असंतुलन को कम करने या बढ़ाने में विदेशी व्यापार गुणक की भूमिका के बारे में अध्ययन किया . अध्ययन के पश्चात् आप विदेशी व्यापार गुणक की भूमिका तथा महत्व को समझ गए होंगे. आप जान गए होंगे कि राष्ट्रीय आय में समायोजन के माध्यम से भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर किया जा सकता है।

पिछले अध्याय में आपने देखा कि निर्यात या घरेलू निवेश में परिवर्तन के द्वारा विदेशी व्यापार गुणक किस प्रकार से कार्य करता है और आय परिवर्तनों के द्वारा भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में सहायक हो सकता है। इस अध्याय में हम उन नीतियों की चर्चा करेंगे जो घरेलू व्यय में अर्थात् अवशोषण में कमी लाती है और इस संदर्भ में हम विशेष रूप से अवमूल्यन की चर्चा करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में परम्परागत उपायों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें. विशेष रूप से अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में आप विस्तार से जान सकेंगे.

१३.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- अवमूल्यन के बारे में जान पाएंगे.
- अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों को विस्तार से समझ सकेंगे.
- अवमूल्यन के लोच दृष्टिकोण के बारे में जान पाएंगे.
- अवमूल्यन के अवशोषण दृष्टिकोण को जान पाएंगे.
- आप समझ सकेंगे की अवमूल्यन भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में किन स्थितियों में सहायक हो सकता है.

१३.३ भुगतान संतुलन में समायोजन

पिछले अध्यायों के अध्ययन से आप समझ गए होंगे कि भुगतान–संतुलन का अंसतुलन एक देश के लिए हानिकारक है, इसका अर्थव्यवस्था पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से भुगतान–संतुलन का घाटा अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसलिए भुगतान–संतुलन के घाटे के समायोजन के लिए अनेक उपाय किए जाते हैं।

एक देश के भुगतान–संतुलन के घाटे को खत्म या अवशोषित करने की क्षमता उसके अधिकृत अंतर्राष्ट्रीय रिर्जवों की मात्रा द्वारा सीमित होती है। अल्पकालिक पूँजी उधारों द्वारा भुगतान–संतुलन घाटे को कुछ समय तक समायोजित किया जा सकता है। परन्तु इस पर लगातार वर्षों तक निर्भर नहीं रहा जा सकता है।

यदि कीमतों, व्याज दरों, आय स्तरों और विनिमय दरों में परिवर्तनीयता हो तो भुगतान–संतुलन में समायोजन स्वतः ही हो जाएगा और यदि ऐसा नहीं है तो फिर समायोजन के लिए सरकार को विभिन्न नीतियों/उपयों का सहारा लेना पड़ता है जैसे संकुचनकारी मौद्रिक और राजकोषीय नीति, अवमूल्यन, विनिमय नियंत्रण इत्यादि।

वास्तव में घाटे को दूर करने के लिए, यह आवश्यक है कि समायोजन के द्वारा या तो स्वायत्त प्राप्तियों में वृद्धि हो या फिर स्वायत्त भुगतानों में कमी हो। यदि सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो तो भुगतान–संतुलन का स्वतः समायोजन बाजार की शक्तियों द्वारा हो जाता है। परन्तु स्वतंत्र बाजारों की अनुपास्थिति में भुगतान –संतुलन के समायोजन से संबंधित सरकारी नीति या उपाय अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वास्तवितक जगत में आर्थिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप तथा नियंत्रण एक वास्तविकता है। सरकारें आज कीमतों, ब्याज दरों, आय स्तरों और विनिमय दरों सभी को नियंत्रित करती है। इसलिए भुगतान संतुलन का समायोजन मुख्यतः नीतिगत मुद्दा है।

एक देश द्वारा भुगतान–असंतुलन के घाटे को दूर करने के लिए जिन नीतिगत यंत्रों या विधियों का प्रयोग किया जाता है उसे **मुख्यतः** तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है–

(i) राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति

(ii) अवमूल्यन

(iii) विनिमय नियंत्रण

मौदिक और राजकोषीय नीतियाँ व्यय परिवर्तनकारी नीति (Expenditure Changing Policy) है जबकि अवमूल्यन व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure SwitchSwitching Policy) है। विनिमय नियंत्रणों का अध्ययन आप अगली इकाई में विस्तार से करेंगे।

13.3.1 व्यय परिवर्तनशील नीतियाँ (Expenditure Changing Policies)

राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के माध्यम से घरेलू व्यय (उपभोग+निवेश+सरकारी व्यय या C+I+G) में परिवर्तन किया जाता है। राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों के माध्यम से और मौद्रिक नीति मुद्रा पूर्ति (Ms) तथा ब्याज दर (i) के माध्यम से अर्थव्यवस्था के कुल व्यय को परिवर्तित करके भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करती है।

अनेक अर्थशास्त्रियों (जैसे जानसन) के अनुसार अवस्फिति (deflation) के द्वारा अर्थव्यस्था में व्यय में कटौती और तदनुरूप आयातों पर व्यय में कटौती के द्वारा असंतुलन को दूर किया जा सकता है। आयातों पर व्यय में कटौती के लिए एक देश को संकुचनकारी राजकोषीय और मौद्रिक नीतियाँ लागू करना होगा। राजकोषीय नीति के तहत सरकार, सरकारी व्ययों में कमी तथा करों में वृद्धि करेगी; जबकि मौद्रिक नीति के तहत मुदा–पूर्ति में कमी तथा ब्याज दरों में वृद्धि करेगी। इस प्रकार की संकुचनकारी नीति से राष्ट्रीय आय में कमी आएगी। जिससे आयात भी कम होंगे। यदि सीमान्त आयात प्रवृत्ति (MPM - m) अधिक होगी तो राष्ट्रीय आय की अपेक्षा आयात व्यय में कमी और भी अधिक होगी। और यदि यह मान लिया जाए कि निर्यात पर इस नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो आयात–व्यय में कमी से भुगतान संतुलन घाटा कम होगा।

आगे हम, अवमूल्यन के अवशोषण दृष्टिकोण में भी देखेंगे कि यदि घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में कमी होती है तो भुगतान संतुलन का घाटा कम होता है। जैसा कि आप जानते हैं–

$$Y= (C+I+G) + (X-M)$$

जहाँ, Y–राष्ट्रीय आय,

C – उपभोग

I –निवेश,

G – सरकारी व्यय

X–निर्यात तथा

M – आयात है

यदि C+I+G=a तथा X-M=b

तो Y=a+b या b=Y-a

इस प्रकार व्यापार–संतुलन (b), राष्ट्रीय आय तथा घरेलू व्यय या अवशोषण (a) का अंतर है और अवशोषण या घरेलू व्यय के कम होने पर कम होगा। इस प्रकार, सरकार राजकोषीय और मौद्रिक नीति के द्वारा अवशोषण और व्यय में कमी करके घाटे को कम कर सकती है।

13.3.2 व्यय बदलावकारी नीतियाँ

व्यय बदलावकारी नीतियों में वे उपाय आते हैं जो व्यय की दिशा को परिवर्तित कर देते हैं, जिससे घरेलू व्यय आयात–वस्तुओं से हटकर आयात–प्रतिस्थापित वस्तुओं की ओर चला जाए. आयात प्रतिस्थापन को उच्च प्रशुल्क दरे, कोटा, प्रत्यय नियंत्रण इत्यादि के द्वारा बढ़ावा दिया जा सकता है। दूसरी ओर यह नीति निर्यातों को आर्थिक सहायता देकर या निर्यात कीमतों में कमी करके निर्यात प्रोत्साहन भी करती है। अवमूल्यन व्यय की दिशा बदलने का एक यंत्र है।

13.4 अवमूल्यन

अवमूल्यन भुगतान–संतुलन के घाटे को समायोजित करने का एक यंत्र है जो घरेलू तथा विदेशी व्यय की दिशा को परिवर्तित कर देता है। अवमूल्यन घरेलू तथा विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर मोड़ देता है। इसीलिए इसे व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure Switching Policy) कहते हैं।

अवमूल्यन का अर्थ है सरकार द्वारा जानबूझकर घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को अन्य प्रमुख विदेशी मुद्राओं, सोना तथा SDRs के मुकाबले कम करना। इस प्रकार घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को कम करना अवमूल्यन है। स्पष्ट है कि अवमूल्यन के बाद अन्य प्रमुख विदेशी मुद्राओं का मूल्य घरेलू मुद्रा की अपेक्षा बढ़ जाता है।

अवमूल्यन मुद्रा के मूल्य ह्रास से भिन्न हे। घरेलू मुद्रा के मूल्य में, विदेशी विनिमय बाजार में लगातार गिरावट मूल्यह्रास (Depreciation) है, जो कि बाजार की शक्तियों के कार्यकरण का परिणाम है। जब विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा की मांग विदेशी मुद्रा की पूर्ति से अधिक हो जाती है तो घरेलू मुद्रा का मूल्य गिरता है यह मूल्यह्रास है। जैसा चित्र 13.1 में दिखाया गया है। चित्र में D_f तथा S_f विदेशी मुद्रा की मांग तथा पूर्ति वक्र हैं। विदेशी विनिमय बाजार में प्रारम्भिक संतुलन e बिन्दु पर जहाँ विदेशी मुद्रा की मांग और पूर्ति बराबर है।

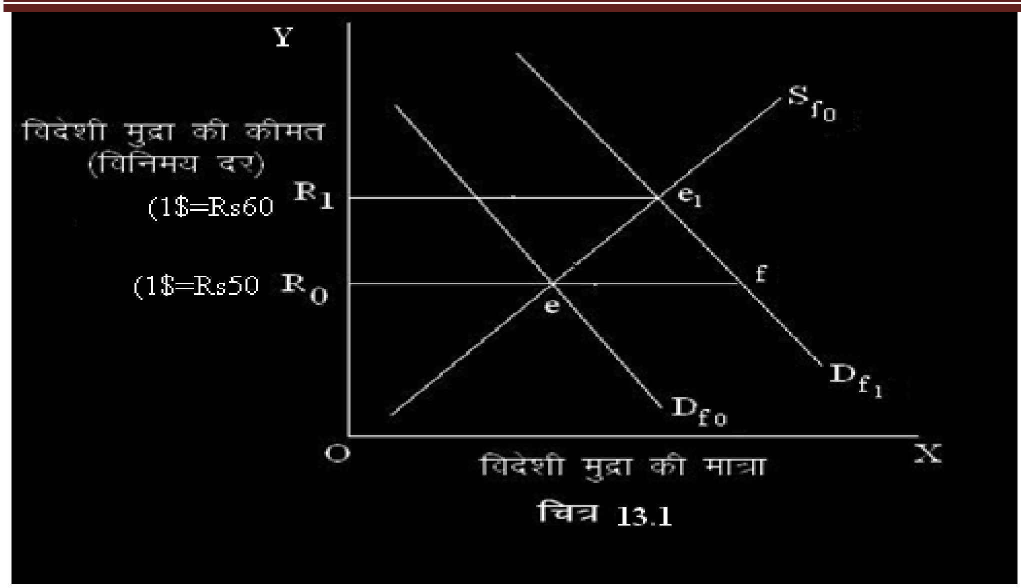

चित्र 13.1

जब मांग बढ़ती है और मांग वक्र Df_1 हो जाता है तो R_0 विनिमय दर पर (मान लिया 1$=`50), विदेशी विनिमयकी मांग उसकी पूर्ति से ef अधिक हो जाती है, जिसके फलस्वरूप विदेशी विनिमय के मूल्य मे वृद्धि या घरेलू मुद्रा के मूल्य में ह्रास होता है और नए संतुलन $e_1$ पर विनिमय दर $R_1$(1$=`60) हो जाती है। इस प्रकार, मूल्य ह्रास विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के बीच असंतुलन का प्राकृतिक परिणाम है और यह भुगतान शेष के घाटे को दूर करने का एक तरीका है जबकि विदेशी विनिमय दर पूर्णतया परिवर्तनशील हो।

इसके विपरीत अवमूल्यन जानबूझकर और कानूनी ढंग से लिया गया अधिकृत सरकारी निर्णय है जिसके तहत घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी की जाती है। वस्तुतः अवमूलयन का प्रभाव, मूल्यह्रास के समान ही होता है।

13.4.1 भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर में अवमूल्यन का प्रभाव

अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं। निर्यातों की सापेक्षिक कीमतो के कम होने तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतो के बढ़ने से निर्यात अर्जन में हुई वृद्धि या आयात व्यय मे हुई कमी वस्तु और सेवाओं की मांग तथा पूर्ति लोचों पर निर्भर करेगी और इसी पर भुगतान–संतुलन के घाटे में कमी की सफलता निर्भर करेगी। यह अवमूल्यन के प्रभाव का **'लोच दृष्टिकोण'** है।

परन्तु अवमूल्यन न सिर्फ निर्यातों तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतों को प्रभावित करता है बल्कि यह अर्थव्यवस्था में आय परिवर्तनों को भी जन्म देता है। भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन की सफलता आय में परिवर्तनों के कारण घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में होने वाले परिवर्तनो पर निर्भर करती है। इस दृष्टिकोण को **'अवशोषण दृष्टिकोंण'** कहते हैं।

इस प्रकार भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए व्यय बदलावकारी नीति के रूप में अवमूल्यन के प्रभाव को लोच दृष्टिकोण और अवशोषण दृष्टिकोण दोनों ही विधियों से देखेंगे। पहले हम लोच दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे।

13.5 लोच दृष्टिकोण (Elasticity Approach)

आप अब जान गए होंगे कि कोई देश जब अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो अन्य प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले घरेलू मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है और इस प्रकार उसके निर्यात विदेशों में सस्ते हो जाते हैं, जबकि घरेलू कीमते स्थिर रहती हैं तथा आयात मंहगे हो जाते हैं। स्पष्ट है कि यदि निर्यातों तथा आयातों का मांग–वक्र सामान्य हो तो;

(i) निर्यात मांग बढ़ेगी और परिणामस्वरूप निर्यात आय भी, तथा

(ii) आयातों की मांग कम होगी और परिणामस्वरूप आयात व्यय भी कम होगा।

उदाहरण के लिए, मान लिजिए प्रारम्भ में 1$=`50 था तथा अवमूल्यन (20%) के पश्चात 1$=`60 हो जाता है। अब अवमूल्यन के पश्चात 1$ की आयातित वस्तु के लिए घरेलू उत्पादकों को `60 देने पड़ेंगे जबकि पहले वे मात्र `50 देते थे। इस प्रकार, विदेशों में पहले `50 की वस्तु के लिए 1$ खर्च करने पड़तें थे परन्तु अवमूल्यन के बाद अब 1$ में विदेशों में `60 की वस्तु मिल जाएगी। इस प्रकार घरेलू देश में लागत कीमत संरचना अवमूल्यन के बाद भी अपरिवर्तित है परन्तु अवमूल्यन के कारण विदेशों में उसकी वस्तु सस्ती हो जाती है। इसी प्रकार विदेशी देश में भी लागत–कीमत संरचना अपरिवर्तित है परन्तु घरेलू देश में अवमूल्यन के कारण आयातित वस्तु की कीमत बढ़ जाती है।

परन्तु अवमूल्यन के कारण निर्यात–आय में वृद्धि और आयात–व्यय में कमी निर्यात तथा आयात मांग–वक्रों की लोचों पर निर्भर करेगा। इस प्रकार, भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करने में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात की मांग लोचों पर निर्भर करेगी। आयात तथा निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचशील होगी भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में (या अधिक्य सृजन में) अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा। और यदि आयात तथा निर्यात की मांग कम लोचदार या बेलोचदार हैं तो अवमूल्यन देश के घाटे को कम करने में असफल रहेगा, वास्तव में तब यह भुगतान–संतुलन के घाटे के आकार को और बढ़ा देगा। इसे हम चित्र की सहायता से समझ सकते हैं।

सबसे पहले निर्यात कीमतों को लेते हैं। जैसा कि आपने देखा अवमूल्यन से निर्यातित वस्तुओं की कीमत कम हो जाएगी और इससे निर्यातों की मांग बढ़ेगी। परन्तु इसका निर्यात आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह निर्यातों की विदेशी देश में मांग की लोच पर निर्भर करेगा। चित्र 13.2 में निर्यातों की मांग लोच की तीन विभिन्न स्थितियों में निर्यात अर्जन पर पड़ने वाले प्रभावों का दिखाया गया हे। चित्र 13.2 में X-अक्ष पर निर्यातों की मात्रा तथा Y-अक्ष पर निर्यातों की कीमतें है। निर्यात वक्र Dx ऋणात्मक ढाल वाला है जो यह बताता है कि मांग और निर्यात कीमत में विपरीत संबंध है।

चित्र 13.2 (A) में निर्यात मांग वक्र D_x बेलोचदार है। अवमूल्यन के कारण निर्यात कीमत जब OP_0 से OP_1 हो जाती है तो निर्यातों की मांग OX_0 से OX_1 हो जाती है। निर्यात अर्जन जो कि पहले $P_0OX_0e_0$ था, अवमूल्यन के पश्चात $P_1OX_1e_1$ हो जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि आयत $P_1OX_1e_1$ का क्षेत्रफल $P_0OX_0e_0$ से कम है अर्थात अवमूल्यन के पश्चात निर्यात आय में कमी हो जताी है।

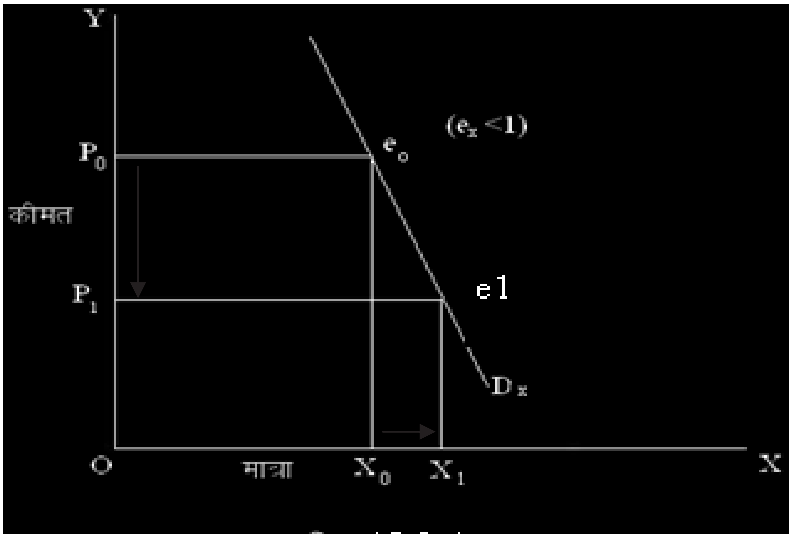

चित्र 13.2 A

चित्र 13.2(B) में निर्यात मांग वक्र की लोच इकाई है (e_x=1) तो निर्यात कीमत में कमी के फलस्परूप निर्यात अर्जन $P_1OX_1e_1$ हो जा रहा है जो अवमूल्यन से पहले के निर्यात अर्जन $P_0OX_0e_0$ के ही बराबर है।

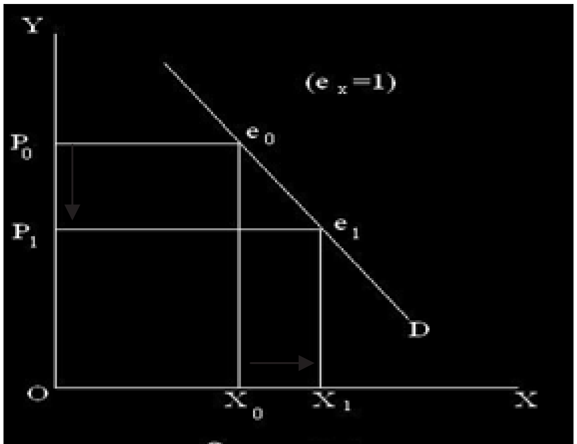

चित्र 13.2 B

चित्र 13.2(C) में निर्यात मांग वक्र लोचदार है (e_x>1) अर्थात इसकी लोच इकाई से अधिक है। अवमूल्यन के पश्चात् जब निर्यात कीमत घटकर OP_1 हो जाती है तो निर्यात मांग बढ़कर OX_1 हो जाती है और परिणामस्परूप निर्यात अर्जन $P_0OX_0e_0$ से बढ़कर $P_1OX_1e_1$ हो जाता है। स्पष्ट है कि आयत $P_1OX_1e_1$ का क्षेत्रफल ,आयत $P_0OX_0e_0$ के क्षेत्रफल से अधिक है।

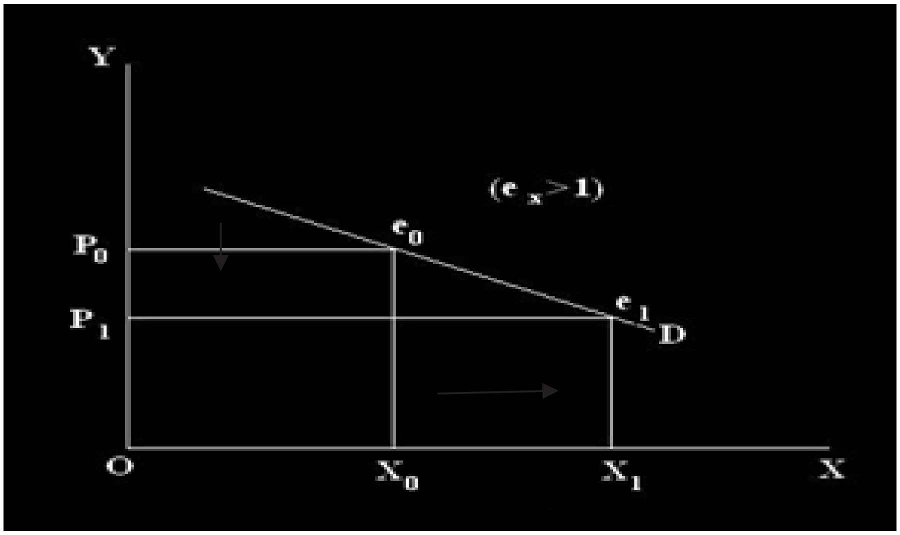

चित्र 13.2(C)

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि निर्यातों की मांग–लोच इकाई से अधिक है अर्थात लोचदार है तो अवमूल्यन निर्यात अर्जन में वृद्धि के द्वारा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में सफल होगा। यदि इकाई से कम है या बेलोचदार है तो घाटे को बढ़ाएगा और यदि इकाई के बराबर है तो न तो घाटा बढ़ेगा और न ही उसमें कोई सुधार होगा।

इसी प्रकार, आयात–कीमतों में परिवर्तन आयातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगा कि आयात–व्यय में कितनी कमी होगी और उसका व्यापार–संतुलन के घाटे पर क्या प्रभाव पड़ेगा। चित्र 13.3 में आयातों की मांग लोच – लोचदार, इकाई लोच तथा बेलोचदार – का आयात व्यय पर पड़ने वाले प्रभावों को दिखाया गया है। चित्र 13.3 में X-अक्ष पर आयातों की मात्रा तथा Y-अक्ष पर आयातों की कीमतें हैं।

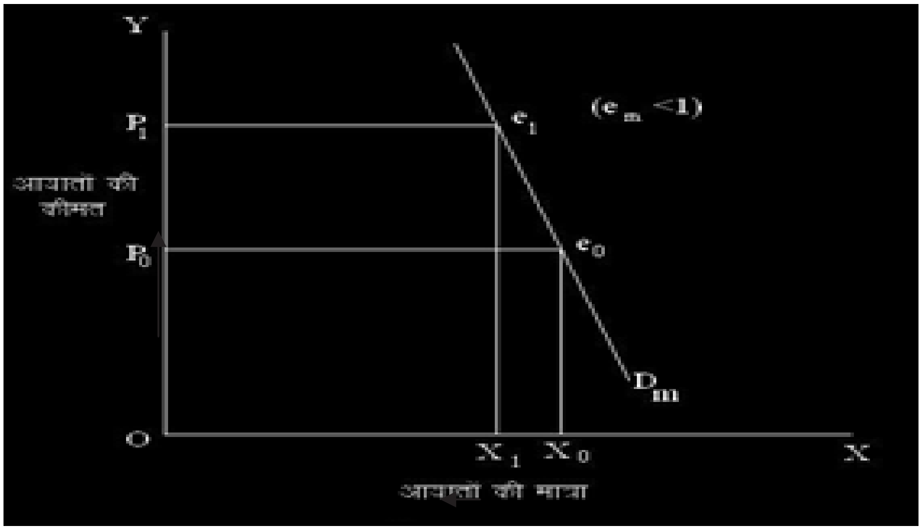

चित्र 13.3(A)

चित्र 13.3(A) में आयात मांग वक्र बेलोचदार ($e_m<1$) है। अवमूल्यन के कारण जब आयातित वस्तुओं और सेवाओं की कीमत OP_0 से बढ़कर OP_1 हो जाती है तो आयात OX_0 से कम होकर OX_1 हो जाता है। स्पष्ट है कि कीमतों में वृद्धि की अपेक्षा व्यय में हुई कमी काफी कम है क्योंकि अवमूल्यन के बाद आयातों पर व्यय $P_1OX_1e_1$, अवमूल्यन के पहले आयातों पर होने वाले व्यय $P_0OX_0e_0$ से काफी अधिक है।

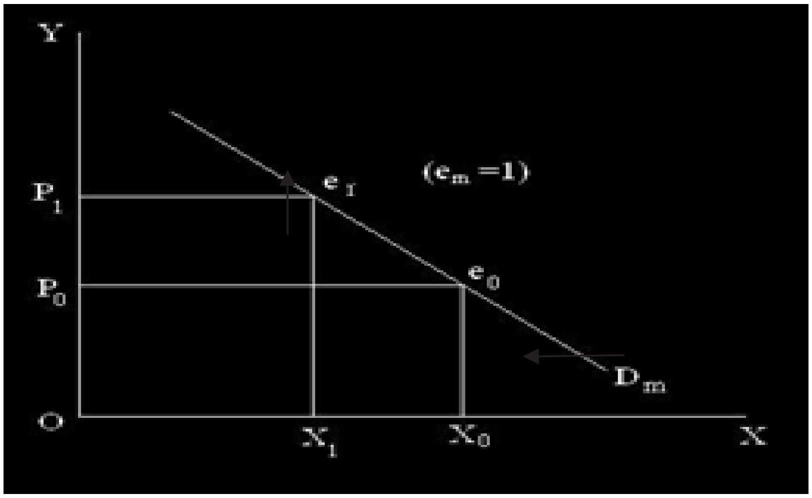

चित्र 13.3(B)

चित्र 13.3(B) में आयात मांग–वक्र की लोच इकाई के बराबर है ($e_m=1$)। आयात कीमतों में, अवमूल्यन के कारण, वृद्धि के फलस्परूप आयात में कमी कीमत मे वृद्धि के बराबर है और अवमूल्यन से पहले तथा बाद दोनों ही आयात व्यय बराबर है अर्थात– $P_1OX_1e_1=P_0OX_0e_0$।

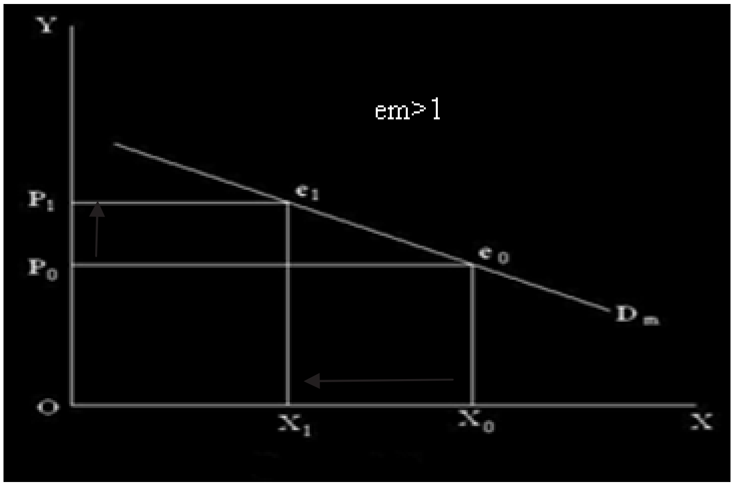

चित्र 13.3(C)

चित्र 13.3(C) में आयात माग–वक्र लोचदार है अर्थात इसकी लोच इकाई से अधिक है ($e_m>1$)। अवमूल्यन के कारण जब आयात कीमत बढ़कर OP_0 से OP_1 हो जाती है तो मांग से OX_0 घटकर OX_1 हो जाती है और आयात व्यय $P_0OX_0e_0$ से

$P_1OX_1e_1$ हो जाता है। परन्तु $P_1OX_1e_1<P_0OX_0e_0$। अवमूल्यन के बाद आयातों पर व्यय अवमूल्यन के पहले आयातों पर होने वाले व्यय से काफी कम है।

यदि आयातों की मांग–लोच इकाई से अधिक है या लोचदार है तो अवमूल्यन आयात कीमतों में वृद्धि के द्वारा आयात–व्यय में कमी लाएगा और भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करेगा; यदि आयातों की मांग–लोच इकाई है तो अयात–व्यय अवमूल्यन के बाद भी अपरिवर्तित रहेगा और यदि मांग लोच इकाई से कम या बेलोचदार है तो अवमूल्यन के बाद आयात व्यय में वृद्धि हो जाएगी और अवमूल्यन भुगतान–शेष के घाटे को बढ़ा देगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अवमूल्यन की भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने की सफलता आयातों तथा निर्यातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगी।

इस प्रकार अब आप समझ गए होंगे कि आयात और निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचदार होंगी, भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा और यदि आयात और निर्यात मांग लोचें इकाई से कम है या बेलोचदार है तो अवमूल्यन घाटे को कम करने में सफल नही होगा बल्कि यह घाटे को और बढ़ा देगा।

13.5.1 मार्शल और लर्नर शर्तें या दशाएं

उपरोक्त व्याख्या एक अति सामान्यीकृत व्याख्या है जो कि अवमूल्यन के प्रभावों का भुगतान–शेष पर प्रभावों का संकेत मात्र करती है। मार्शल–लर्नर दशाएं या शर्तें (Conditions) अवमूल्यन के भुगतान–संतुलन पर प्रभावों की अधिक विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत करता है। मार्शत–लर्नर शर्तों के अनुसार व्यापार–संतुलन को सुधारने (अर्थात घाटा कम करने) में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात मांग लोचों के योग पर निर्भर करती है। यदि आयात तथा निर्यात की पूर्ति लोचें अनन्त दी हुई हो तो मार्शल–लर्नर के अनुसार, यदि निर्यातों तथा आयातों की मांग लोचों का योग (e_x+e_m)

(i) इकाई से अधिक हो अर्थात $(e_x+e_m) > 1$;तो अवमूल्यन व्यापार संतुलन के घाटे को कम करेगा और उसमें सुधार होगा,

(ii) इकाई के बराबर है अर्थात $(e_x+e_m) = 1$ तो अवमूल्यन से व्यापार–संतुलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(iii) यदि इकाई से कम हो अर्थात $(e_x+e_m)<1$ तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन की स्थिति को और खराब कर देगा अर्थात यह घाटे को और बढ़ा देगा।

13.5.2 लोच दृष्टिकोण का मूल्यांकन

1. मार्शल–लर्नर दशाएं पूँजीगतियों पर अवमूल्यन के प्रभावों की अवहेलना करती है। मार्शल–लर्नर दशाएं सिर्फ वस्तु व्यापार या चालू खाता भुगतान–संतुलन पर ही लागू होती है। सामान्यतया अवमूल्यन से पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि होती है क्योंकि अवमूल्यन के पश्चात् विदेशी मुद्रा की एक इकाई से अधिक घरेलू मुद्रा खरीदी जा सकती है। अतः अवमूल्यन से अवमूल्यन करने वाले देश में दीर्घकालिक तथा अल्पकालिक पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि हो सकती है। साथ ही अवमूल्यन व्यक्तियों व फर्मों को देश के बाहर पूँजी ले जाने के लिए हतोत्साहित करता है। इस प्रकार भुगतान–संतुलन में सुधार लाने के लिए अवमूल्यन के पड़ने वाले प्रभाव को पूरी तरह से तभी जाना जा सकता है जबकि पूँजी खाते पर भी इसके प्रभाव को जान लिया जाय।

   इस प्रकार अवमूल्यन से एक देश के भुगतान–संतुलन के घाटे में सामान्यतया कमी आएगी क्योंकि अवमूल्यन वस्तु एवं सेवाओं के निर्यातों को

बढ़ाएगा तथा आयातों को कम करेगा और इस प्रकार चालू खाता संतुलन में सुधार लाएगा। साथ ही पूँजी के अंर्तप्रवाह में वृद्धि तथा बर्हिप्रवाह में कमी के द्वारा पूँजी खाता में सुधार लाएगा। अवमूल्यन से एक पक्षीय हस्तांतरण भुगतानों के अंर्तप्रवाह में भी वृद्धि होती है।

यदि अवमूल्यन देश में पर्याप्त मात्रा में पूँजी के अंर्तप्रवाह को बढ़ाने में सफल रहा तो निर्यात और आयात मांग लोचों के इकाई से कम होने पर भी भुगतान–संतुलन के घाटे को सुधारने में सफल होगा और यदि यह पर्याप्त मात्रा में पूँजी के अंर्तप्रवाह को बढ़ाने में सफल नहीं रहा तो निर्यात और आयात मांग लोचों के इकाई से कम होने पर भी घाटे को सुधारने में सफल नहीं होगा।

2. वास्तव में मार्शल–लर्नर दशाएँ सिर्फ वस्तु और सेवा घाटे पर लागू होती है। अवमूल्यन से निर्यात कीमतों मे कमी और आयात कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप व्यापार–शर्तें (वस्तु व्यापार–शर्तें) उस देश के विरुद्ध हो जाती है। परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि आय व्यापार शर्तों में सुधार के लिए एक देश जानबूझकर वस्तु व्यापार शर्तों में बिगड़ाव लाता है।
3. अवमूल्यन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि घरेलू देश में राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों की प्रकृति कैसी है और वह घरेलू लागातों और कीमतों को नियंत्रित करने में कितना सफल रहता है।

   यदि अवमूल्यन के बाद घरेलू तथा विदेशी देश में कीमतों में परिवर्तन होता है तो अवमूल्यन के प्रभाव कम या समाप्त हो सकते हैं।
4. यदि एक देश पर अत्यधिक मात्रा में विदेशी ऋण हो तो अवमूल्यन के बाद विदेशी ऋण का भार और बढ़ जाएगा। इसलिए ऐसे देश के लिए अवमूल्यन उसके वित्तीय संकट को और बढ़ा सकता है।
5. एक ऐसे देश को, जहाँ के आयात बेलोचदार हों, जहाँ आवश्यक मध्यवर्ती तथा पूँजीगत वस्तुओं और सेवाओं का आयात में हिस्सा अधिक हो, अवमूल्यन नहीं करना चहिए। क्यांकि ऐसे देश में अवमूल्यन के कारण आयात–व्यय और वढ़ जाएगा और भुगातन–संतुलन का घाटा भी।
6. मार्शल–लर्नर दशाएँ यह मान लेती है कि पूर्ति लोच अनन्त है। परन्तु सामान्यतया ऐसी स्थिति व्यवहार में नहीं पायी जाती है। विशेषकर अल्प विकसित देशों में निर्यातों के लिए उत्पादन बढ़ाने में पूर्ति पक्ष की ओर से अनेक प्रकार के अवरोध और कठोरताएँ पायी जाती है, जिससे वे अवमूल्यन से निर्यात कीमतों से कमी के कारण निर्यात मांग में वृद्धि के बावजूद उत्पादन पूरी तरह बढा पाने में सक्षम नहीं होने के कारण अवमूल्यन के फायदों को पूरी तरह प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते हैं। इस प्रकार पूर्ति लोचें अवमूल्यन की सफलता को काफी सीमित कर देती है।
7. अवमूल्यन एक अकेले देश के भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में जो सहायक हो सकता है परन्तु यदि विश्व के अधिकतर देश भुगतान–संतुलन के घाटे से ग्रस्त हो और सभी अवमूल्यन का सहारा ले तो अवमूल्यन की इस प्रकार की होड़ से यह अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकता। चूंकि अवमूल्यन अन्य देशों के व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव डालता है इसलिए अवमूल्यन की होड़ से विश्व–व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।
8. लोच दृष्टिकोण सिर्फ अवमूल्यन का सापेक्ष कीमतों और आयात–निर्यात की मात्राओं के आधार पर भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों को देखता है। इन

परिवर्तनों का घरेलू अर्थव्यवस्था की आय पर प्रभाव पड़ेगा, और इस आय–वृद्धि का अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव होगा इसका अध्ययन यह दृष्टिकोण नहीं करता है।

9. अवमूल्यन का देश के अंदर संसाधनों के पुर्नवितरण की भी यह दृष्टिकोण उपेक्षा करता है।
10. यह दृष्टिकोण पूर्ण–प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो कि वास्तविक नहीं है।

वास्तव में, अवमूल्यन का प्रभाव स्थायी नहीं होता है। इसका लाभ सिर्फ सीमित समय तक ही रहता है जब तक कि नई विनिमय दर समता के अनुरूप लागत–कीमता संरचना, घरेलू तथा विदेशी देश में समायोजित नहीं हो जाती है। सामान्यतया अवमल्यन का प्रभाव 2–3 वर्षों में समाप्त हो जाता है। अवमूल्यन इस दौरान अवमूल्यन करने वाले देश को समय प्रदान करता है कि वह अपने लागत–कीमत संरचना में उपयुक्त सुधार कर ले।

इस प्रकार, अवमूल्यन भुगतान–संतुलन में केवल अस्थायी समायोजन ही कर सकता है। स्थायी प्रकृति का दीर्घकालिक समायोजन तभी हो सकता है जबकि असंतुलन लाने वाले मूल कारकों को नियंत्रित किया जाए। अवमूल्यन अधिक मूलभूत प्रकृति के उपायों का पूरक ही हो सकता है उनका स्थानापन्न नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को दूर करने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का उल्लेख कीजिए।
2. मार्शल–लर्नर शर्ते क्या है?
3. व्यय बदलावकारी नीति क्या है?
4. व्यय परिवर्तनकारी नीति क्या है?
5- अवमूल्यन तथा घरेलु मुद्रा के मूल्य ह्रास में क्या अंतर है?

अति लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. व्यय बदलावकारी नीतियों का उल्लेख कीजिए।
2. व्यय परिवर्तनकारी नीतियों का उल्लेख कीजिए।
3- मुद्रा के मूल्य ह्रास का क्या अर्थ है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

13. निम्न में से कौन–सा उपाय भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को दूर कर सकता है?
(क) विनिमय नियन्त्रण (ख) मुद्रा का अवमूल्यन
(ग) मुद्रा–संकुचन (घ) उपर्युक्त सभी
14. अवमूल्यन को व्यय की दिशा बदलने का एक यंत्र कहा जाता है क्यूंकि अवमूल्यन
(क) घरेलू तथा विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर मोड़ देता है।
(ख) विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं की ओर मोड़ देता है।
(ग) विदेशी व्यय को घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर विदेशी वस्तुओं की ओर मोड़ देता है।

(घ) घरेलू व्यय को घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर विदेशी वस्तुओं की ओर मोड़ देता है।

15. अवमूल्यन का अर्थ है
(क) घरेलू मुद्रा के मूल्य में, विदेशी विनिमय बाजार में लगातार गिरावट
(ख) घरेलू मुद्रा के मूल्य में, विदेशी विनिमय बाजार में लगातार वृद्धि
(ग) घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को सरकार द्वारा जानबूझकर कम करना
(घ) घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य को सरकार द्वारा जानबूझकर वडाना

16- अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि
(क) निर्यात मंहगे तथा आयात सस्ते हो जाते हैं।
(ख) निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं।
(ग) आयात तथा निर्यात सस्ते हो जाते हैं।
(घ) आयात तथा निर्यात मंहगे हो जाते हैं।

17- भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन अधिक सफल होगा यदि
(क) आयात मांग लोच इकाई से कम है
(ख) निर्यात मांग लोच इकाई से कम है
(ग) निर्यात मांग लोच इकाई से अधिक है
(घ) आयात मांग लोच इकाई के बराबर है

18. मार्शल–लर्नर के अनुसार, यदि निर्यातों तथा आयातों की मांग लोचों का योग
(क) इकाई से कम है तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन घाटे को और बढ़ा देगा।
(ख) इकाई से कम है तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन घाटे को और कम कर देगा।
(ग) इकाई से अधिक है तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन घाटे को और बढ़ा देगा।
(घ) इकाई के बराबर है तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन घाटे को और बढ़ा देगा।

सत्य व असत्य :

9. भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभावों का लोच दृष्टिकोण सामान्य संतुलन विश्लेषण है।
10. अवमूल्यन का प्रभाव स्थायी नहीं होता है।
11. अवमूल्यन का प्रभाव, मूल्यह्रास के समान ही होता है।
12. अवमूल्यन व्यय परिवर्तनकारी नीति है।
13. आयात तथा निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचशील होगी भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा।
14. मार्शत–लर्नर शर्तों के अनुसार व्यापार–संतुलन को सुधारने में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात पूर्ति लोचों के योग पर निर्भर करती है।
15. मार्शल–लर्नर दशाएं सिर्फ वस्तु व्यापार या चालू खाता भुगतान–संतुलन पर ही लागू होती है।
16. मार्शल–लर्नर दशाएं पूँजीगतियों पर अवमूल्यन के प्रभावों की अवहेलना करती है।
17. मार्शल–लर्नर दशाएँ यह मान लेती है कि पूर्ति लोच अनन्त है।

13.6 अवशोषण दृष्टिकोण

भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभावों का लोच दृष्टिकोण आंशिक संतुलन विश्लेषण है। यह सिर्फ आयातों और निर्यातों की सापेक्षिक कीमतो में परिवर्तन का

भुगतान–संतुलन के घाटे पर पड़ने वाले प्रभावों की ही चर्चा करता है। इस परिवर्तन का अर्थव्यवस्था में समष्टि चरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी व्याख्या यह दृष्टिकोण नहीं करता है। इसलिए कई अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि लोच दृष्टिकाण अवास्तविक और अपर्याप्त है।

वस्तुतः अवमूल्यन सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आय–परिवर्तनों को भी जन्म देता है। कीन्सीयन अर्थशास्त्र से प्रभावित होकर बाद में, अवमूल्यन के प्रभावों के विश्लेषण में आय–प्रभावाों को भी सम्मिलित किया गया। सिडनी एलेक्जेंडर ने केन्सीय विचारघारा के आधार पर अवमूल्यन के आय–प्रभावों का विश्लेषण किया और एक समष्टिभावी दृष्टिकोण से अवमूल्यन की प्रभाविता के संदर्भ में विचार किया। इस दृष्टिकोण को 'अवशोषण दृष्टिकोण' कहा जाता है जो कि सामान्य संतुलन प्रकृति का है।

केन्स के राष्ट्रीय आय संबंधों पर आधारित होने के बावजूद यह केन्सीय मॉडल से भिन्न है। केन्स का मॉडल अवमूल्यन से निर्यातों के बढ़ने तथा आयातो के कम होने से आय में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करता है जबकि अवशोषण सिद्धान्त घरेलू व्यय (यानि अवशोषण) में परिवर्तन के द्वारा अवमूल्यन के प्रभावों का विश्लेषण करता है।

आप समझ गए होंगे कि लोच दृष्टिकोण के अनुसार अवमूल्यन 'कीमत–प्रभाव' के माध्यम से भुगतान–संतुलन की स्थिति में सुधार लाता है। जबकि घरेलू अर्थव्यवस्था में लागत–कीमत संरचना में कोई परिवर्तन नहीं होता है। संकेतात्मक रूप में, इस परम्परागत समष्टिभावी दृष्टिकोण को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$B=X-M$$

जहाँ, B-व्यापार–संतुलन,
X-निर्यातों का मूल्य,
M-आयातों का मूल्य है।

लोच दृष्टिकोण में अवमूल्यन सीधे इन वाह्य चरों को प्रभावित कर भुगतान–संतुलन में सुधार लाता है। यह व्यष्टिभावी दृष्टिकोण है।

अवशोषण दृष्टिकोण अवमूल्यन के प्रभाव का समष्टिभावी दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार अवमूल्यन का प्रभाव सिर्फ 'कीमत प्रभाव' तक ही सीमित नहीं है बल्कि अवमूल्यन घरेलू अर्थव्यवस्था में अन्य आर्थिक चरों जैसे उपभोग, निवेश तथा राष्ट्रीय आय पर भी प्रभाव डालता है। अतः भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभाव को जानने के लिए इन सभी प्रभावों को भी ध्यान में रखना होगा।

सिडनी अलेक्जेण्डर ने अवशोषण दृष्टिकोण में कीन्स द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय आय समीकरण का प्रयोग किया, जिसके अनुसार,एक खुली अर्थव्यवस्था में, राष्ट्रीय आय होगी–

$$Y=C+I+G+(X-M) \quad \text{(I)}$$

जहाँ, Y=राष्ट्रीय आय,
C=उपभोग,
I=घरेलू निवेश,
G=सरकारी व्यय,
X=निर्यात,
M=आयात

उपरोक्त समीकरण (I) में (C+I+G) कुल घरेलू व्यय को बताता है तथा (X-M) शुद्ध निर्यातों को। इस प्रकार राष्ट्रीय आय कुल घरेलू व्यय तथा शुद्ध निर्यातों का योग है।

समीकरण (I) से $(X - M)=Y - (C+I+G)$ ----------------------- (II)

$$(X-M) = B \qquad \text{-(III)}$$

जहाँ, B व्यापार संतुलन है।

$$(C+I+G)=A \qquad \text{(IV)}$$

A 'अवशोषण' या घरेलू व्यय है जो कि यह बताता है कि राष्ट्रीय का कितना हिस्सा उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय के रूप में अर्थव्यवस्था में अवशोषित हुआ। कुल अवशोषण में अर्थव्यवस्था में सभी उद्देश्यों के लिए की गयी माँगें – उपभोग तथा निवेश उद्देश्यों – सम्मिलित है।

समीकरण (II) को हम निम्न प्रकार से लिख सकते हैं–

$$B=Y-A \qquad \text{-(V)}$$

इससे स्पष्ट है कि व्यापार संतुलन राष्ट्रीय आय तथा अवशोषण का अन्तर है। अवमूल्यन से यदि राष्ट्रीय आय में अवशोषण की अपेक्षा तेज वृद्धि होती है तो यह व्यापार–संतुलन के घाटे को कम कर सकता है।

अवमूल्यन निर्यातों को सस्ता करके निर्यात अर्जन बढ़ा देते हैं। निर्यात में वृद्धि घरेलू आर्थिक चरों पर आय प्रभाव तथा अन्य प्रभाव उत्पन्न करेगी। यही अवशोषण दृष्टिकोण का निचोड़ है। अवमूल्यन के परिणामस्परूप उसका समष्टि प्रभाव निम्नलिखित हो सकता है–

(i) निर्यातों (X) में वृद्धि

(ii) निर्यातों में वृद्धि से आय (Y) में वृद्धि

(iii) आय में वृद्धि से उपभोग (C) में वृद्धि – उपभोग में वृद्धि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b) पर निर्भर करती है।

(iv) आय में वृद्धि से निवेश (I) में वृद्धि– निवेश में वृद्धि निवेश की सीमान्त प्रवृत्ति (g) पर निर्भर करती है।

(v) आय में वृद्धि से आयात (M) में वृद्धि –आयात की सीमान्त प्रवृत्ति (M) पर निर्भर करती है।

निर्यात में वृद्धि (OX) से राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि (OY) होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है। गुणक का मान जितना ही अधिक होता है राष्ट्रीय आय में वृद्धि उतनी ही अधिक होती है। और भुगतान–संतुलन पर उसका प्रभाव भी उतना ही अनुकूल होता है।

क्योंकि

$$X-M = Y- (C+I+G)$$

समीकरण में Y का मान बढ़ने पर व्यापार घाटा (X-M) कम होगा। इस प्रकार अवमूल्यन के परिणामस्वरूप यदि निर्यात या राष्ट्रीय में वृद्धि होती है तो यह भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अनुकूल होता है। परन्तु अवमूल्यन का यह प्रभाव यही समाप्त नहीं होता है बल्कि गुणक प्रभाव के द्वारा आय में वृद्धि आगे अर्थव्यवस्था में उपभोग, निवेश तथा आयातों को बढ़ाती है जो कि भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अनुकूल नही है।

आय में वृद्धि आयातों में कितनी वृद्धि लाएगी यह आयातों की सीमान्त आयात प्रवृत्ति (m) पर निर्भर करती है। m का मान जितना ही अधिक होगा, घाटा कम करने में अवमूल्यन का प्रभाव उतना ही कम होगा।

इसी प्रकार, आय में वृद्धि से उपभोग तथा निवेश में कितनी वृद्धि होगी यह b तथा g पर निर्भर करती है। b तथा g का मान जितना ही अधिक होगा घाटा कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा।

वस्तुतः अवशोषण जितना अधिक होगा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। जैसा कि आय समीकरण (v) से समझ गए होंगे–

$$B = Y - A \quad \text{--} \quad (v)$$

उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय मिलकर अवशोषण (B) को निर्धारित करते हैं। समीकरण से स्पष्ट है कि B का मान बढ़ने पर व्यापार–संतुलन का घाटा बढ़ेगा– b और g के अधिक होने पर अवशोषण (B) में वृद्धि होगी।

सिडनी अलेक्जेण्डर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति (b) तथा सीमान्त निवेश प्रवृत्ति (g) के योग को अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (e) कहते हैं। अर्थात $e = b+g$, e का मान जितना ही अधिक होगा व्यापार–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। यदि m का मान दिया हुआ हो तो यदि–

(i) e का मान इकाई से कम है ($e<1$) तो अवमूल्यन व्यापार–संतुलन की स्थिति में सुधार लाएगा।

(ii) e का मान इकाई के बराबर हो ($e=1$) तो अवमूल्यन के कारण व्यापार–संतुलन में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

(iii) e का मान इकाई से अधिक है ($e>1$) तो अवमूल्यन के कारण व्यापार–संतुलन की स्थिति और खराब हो जाएगी।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि अवमूल्यन के कारण आय में वृद्धि होती है तो आय प्रेरित अवशोषण या घरेलू व्यय में भी वृद्धि होगी और आयातों में भी। अवमूल्यन घाटा कम करने में सफल तभी होगा जब आय में हुई वृद्धि अवशोषण में हुई वृद्धि से अधिक हो।

अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (e) के अतिरिक्त अन्य कारक भी अवमूल्यन की सफलता को प्रभावित करते हैं।

एलेक्जेण्डर के अनुसार अवमूल्यन के बाद व्यय या अवशोषण पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ेगा–प्रत्यक्ष प्रभाव तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव। आय–प्रभाव के कारण अवशोषण मे परिवर्तन अवमूल्यन का अप्रत्यक्ष प्रभाव जबकि अवमूल्यन से प्ररित अवशोषण या व्यय में परिवर्तन प्रत्यक्ष प्रभाव है। अवमूल्यन के फलस्परूप जब मुद्रा आय और मुद्रा कीमतें बढ़ती है तो कोई प्रभाव जो कि वास्तविक आय को कम कर देता है, वह अवशोषण पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। इस प्रकार का अध्ययन नकदी शेष प्रभाव, आय पुर्नवितरण प्रभाव, मुद्रा–विभ्रम इत्यादि के अंर्तगत किया जा सकता है।

1. अवमूल्यन के कारण व्यापार–शर्तें देश के प्रतिकूल हो जाती है। जिससे देश की वास्तविक आय कम हो जाती है, निवासियों की क्रय शक्ति में कमी से अवशोषण भी कम होगा। यदि अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति इकाई से अधिक है ($e>1$) तो

अवशोषण वास्तविक आय की अपेक्षा अधिक तेजी से कम होता है और देश के व्यापर–संतुलन में सुधार होता है।

2. अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से भी कार्य करता है जैसे नकदी–शेष प्रभाव। जब एक देश अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता है तो इसकी घरेलू कीमतों में वृद्धि होती है– आयात कीमतों में वृद्धि तथा निर्यातों में वृद्धि के कारण। यदि मुद्रा–पूर्ति (M) स्थिर हो तो कीमतों के बढ़ने से मुद्रा–पूर्ति का वास्तविक मूल्य (M_0) कम हो जाएगा और इससे वास्तविक ब्याज दरें (i_0) बढ़ जाएगी। यदि कोई व्यक्ति अपने वास्तविक नकदी शेष की मात्रा अपरिवर्तित रखना चाहता है , तो कीमत वृद्धि की स्थिति में, उसे अपने बचत में वृद्धि या व्यय में कटौती करनी होगी। इस प्रकार अवशोषण मे कमी होगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा। बचत बढ़ने तथा व्यय में कमी होने से वास्तविक आय में कमी होगी और यदि e का मान 1 से अधिक है तो अवशोषण आय से अधिक तेज गिरेगा और व्यापार–संतुलन में और सुधार होगा।
3. यदि अवमूल्यन विकसशील देशों में आय के वितरण को प्रभावित करता है तो यह अवशोषण के माध्यम से व्यापार–संतुलन को प्रभावित करेगा। यदि अवमूल्यन से आय–वितरण ऊँची सीमान्त अवशोषण प्रवृत्ति से नीची सीमान्त अवशोषण प्रवृत्ति की ओर होता है अर्थात् यदि अवमूल्यन आय का पुर्नवितरण ऊँची बचत प्रवृत्ति वाले लोगों के पक्ष में कर देता है तो उस सीमा तक अवशोषण में कमी होगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा। आय पुर्नवितरण प्रभाव भी अवमूल्यन का गैर–आय प्रभाव है।
4. मुद्रा–विभ्रम भी एक प्रकार का गैर–आय प्रभाव है। प्रायः लोग अपनी मौद्रिक आय या मौद्रिक मूल्यों से अधिक प्रभावित होती है। यदि अवमूल्यन से कीमतों में वृद्धि हो जाती है और लोगों के व्यय में कमी हो जाती है तो अवशोषण में कमी आएगी और व्यापार–संतुलन में सुधार होगा।

   यदि मौद्रिक आय में वृद्धि होती है और कीमतों में वृद्धि उससे अधिक तेजी से होती है जिससे उनकी वास्तविक आय कम हो जाती है, तब भी लोग मुद्रा–विभ्रम के कारण अपने को ज्यादा धनी महसूस करते हैं और अपने व्यय को बढ़ा देते है। जिससे अवशेष में वृद्धि हो जाती है और व्यापार–संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

13.6.1 अवशोषण दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन

1. व्यापार–संतुलन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्वों– आय तथा गैर आय तत्वों के होने से अवमूल्यन के प्रभावों की भविष्यवाणी काफी कठिन हो जाती है। इसमें से अनेक तत्वों का मात्रात्मक रूप से मापन संभव नहीं है। जैसे, आय वितरण प्रभाव, मुद्रा–विभ्रम इत्यादि। और भुगतान–संतुलन पर अवमूल्यन के प्रभावों को जानने के लिए पूँजी प्रवाहों में परिवर्तन पर अवमूल्यन के पड़ने वाले प्रभावों को सम्मिलित करना आवश्यक है।
2. मैक्लप के अनुसार, अवशोषण दृष्टिकोण में कैन्सीय सर्वसमिकाओं का ही पुर्नप्रस्तुतीकरण है। इसमें कुछ भी नया नही है। यह दृष्टिकोण $B = Y - A$ समीकरण पर आधारित है जिसके अनुसार यदि समग्र पूर्ति Y समग्र मांग A से

अधिक तेजी से बढ़ती है या फिर समग्र मांग A में गिरावट समग्र पूर्ति Y की अपेक्षा अधिक तेज होती है तो व्यापार संतुलन B में सुधार होगा।

3. मैक्लप ने एलेक्जेण्डर की सापेक्षिक कीमत प्रभावों की उपेक्षा के लिए भी आलोचना की। मैक्लन के अनुसार अवमूल्यन के प्रभाव जानने मे व्यय प्रवृत्तियाँ कम विश्वसनीय है जबकि मौद्रिक और राजस्व नीतियों का अवमूल्यन पर प्रभाव अधिक व्यापक होता है जिनकी अवशोषण विधि उपेक्षा करती है।
4. जोनसन के अनुसार अवशोषण विधि वास्तविक आय और वास्तविक व्यय द्वारा भुगतान संतुलन पर प्रभावों का अध्ययन करती है और कीमत स्तर में परिवर्तन की उपेक्षा करती है।
5. यह धारणा अवमूल्यन के कीमत प्रभाव की उपेक्षा करती है जो अति महत्वपूर्ण है। अवशोषण विधि सापेक्षिक कीमतों की अपेक्षा घरेलू उपभोग के स्तर पर अधिक बल देती है। अवशोषण कम करने के लिए केवल घरेलू उपभोग के स्तर को कम करने का यह तात्पर्य नहीं है कि अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग भुगतान–संतुलन को सुधारने में लगाए जाएगे।
6. यह विधि अन्य देशों के अवशोषण पर अवमूल्यन के प्रभावों का अध्ययन नहीं करती है। अवमूल्यन के बाद यदि अवमूल्यन करने वाले देश में निर्यात वस्तुओं की कीमत में वृद्धि होती है तो अवमूल्यन का लाभ समाप्त हो जाएगा। इसलिए उचित नीतियों और सरकारी नियंत्रणों द्वारा घरेलू कीमतों को स्थिर रखना आवश्यक है।
7. अवशोषण की धारणा, स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत भुगतान शेष घाटे को ठीक करने के उपाय के रूप में बिल्कुल असफल है। जब अवमूल्यन के साथ कीमतें बढ़ती है तो लोग अपने उपभोग व्यय को घटाते हैं। मुद्रा पूर्ति स्थिर रहने पर ब्याज दर बढ़ती है जिससे अवशोषण के साथ–साथ उत्पादन में कमी होती है। इस प्रकार, अवमूल्यन का भुगतान शेष घाटे से बहुत कम प्रभाव पड़ेगा।
8. अवमूल्यन की सफलता के लिए दूसरे देशों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होना आवश्यक है। यदि अवमूल्यन के बाद दूसरे देश भी अवमूल्यन करते है या अपने आयातों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रतिबन्ध लागते हैं तो अवमूल्यन करने वाले देश को लाभ नहीं होगा। साथ ही दूसरे देशों द्वारा निर्यात–सब्सिडी देने पर भी अवमूल्यन का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार मुद्रा अवमूल्यन की होड़ देशों में न लगे, इसके लिए अवमूल्यन करने के पूर्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सलाह और समझौता जरूरी है।

अवशोषण दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि व्यापार–संतुलन की स्थिति में परिवर्तनों को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से जोड़कर देखा जाना चाहिए। यह सिद्धान्त एक स्पष्ट संदेश देता है कि यदि भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करना है तो एक देश को उपभोग और निवेश के रूप में अत्यधिक अवशोषण करने या व्यय करने की अपेक्षा वस्तुओं व सेवाओं का अधिक उत्पादन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

6. अवशोषण दृष्टिकोण क्या है?

7. अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से किस प्रकार कार्य करता है ?

8- अवशोषण दृष्टिकोण की कमियों का उल्लेख कीजिये.

अति लघु उत्तरीय प्रश्नः

4. अवशोषण की सीमान्त प्रवृत्ति (e) से आप क्या समझते हैं?
5. मुद्रा–विभ्रम का क्या अर्थ है?
6- अवशोषण दृष्टिकोण' किस अर्थशास्त्री ने दिया?
7- अवशोषण दृष्टिकोण' किस विचारघारा पर आधारित है?

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. अवमूल्यन कुल अवशोषण को निम्न प्रकार से प्रभावित करता है–
   (क) आय से अनुप्रेरित परिवर्तन
   (ख) प्रत्यक्ष परिवर्तन
   (ग) नकदी–शेष प्रभाव
   (घ) उपर्युक्त सभी
2. अवमूल्यन के परिणामस्वरूप उसका समष्टि प्रभाव होगा
   (क) आय (Y) में कमी होगी
   (ख) उपभोग (C) में कमी होगी
   (ग) निवेश (I) में कमी होगी
   (घ) आय में वृद्धि से आयात (M) में वृद्धि होगी
3- अवशोषण दृष्टिकोण' किस अर्थशास्त्री के विचारघारा के आधार पर अवमूल्यन के आय–प्रभावों का विश्लेषण करता है
   (क) सिडनी एलेक्जेंडर
   (ख) केन्स
   (ग) जोनसन
   (घ) मार्शल–लर्नर
4. अवशोषण दृष्टिकोण' किस अर्थशास्त्री ने दिया
   (क) सिडनी एलेक्जेंडर
   (ख) केन्स
   (ग) जोनसन
   (घ) मार्शल–लर्नर
5. अवमूल्यन से यदि राष्ट्रीय आय में अवशोषण की अपेक्षा तेज वृद्धि होती है तो यह व्यापार–संतुलन के घाटे को
   (क) बड़ा कर देगा
   (ख) कम कर देगा
   (ग) अपरिवर्तित रहेगा
   (घ) कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता
6. अवशोषण है
   (क) C+I+G+(X-M)
   (ख) X-M
   (ग) C+I+G
   (घ) Y-A

7. गैर–आय प्रभाव **नहीं** है
   (क) नकदी–शेष प्रभाव
   (ख) आय पुर्नवितरण प्रभाव
   (ग) मुद्रा–विभ्रम
   (घ) व्यापार–शर्तों पर प्रभाव

सत्य व असत्य :

18. अवमूल्यन सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन के माध्यम से अर्थव्यवस्था में आय–परिवर्तनों को भी जन्म देता है।
19. अवमूल्यन घाटा कम करने में सफल तभी होगा जब आय में हुई वृद्धि अवशोषण में हुई वृद्धि से कम हो।
20. व्यापार संतुलन राष्ट्रीय आय तथा अवशोषण का अन्तर है।
21. कुल अवशोषण में अर्थव्यवस्था में सभी उद्देश्यों के लिए की गयी माँगें सम्मिलित होती है।
22. आय में वृद्धिउपभोग, निवेश तथा आयातों को बढ़ाती है जो कि भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अनुकूल है।
23. b तथा g का मान जितना ही अधिक होगा घाटा कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा।
24. अवमूल्यन के कारण व्यापार–शर्तें देश के प्रतिकूल हो तो देश के व्यापर–संतुलन में सुधार होता है।
25. यदि अवमूल्यन आय का पुर्नवितरण ऊँची बचत प्रवृत्ति वाले लोगों के पक्ष में कर देता है तो व्यापार–संतुलन में घाटा होगा।
26. यदि अवमूल्यन से कीमतों में वृद्धि हो जाती है और लोगों के व्यय में कमी हो जाती है तो व्यापार–संतुलन में सुधार होगा।

13.7 सारांश

व्यापार–संतुलन राष्ट्रीय आय तथा घरेलू व्यय या अवशोषण का अंतर होता हैं। इस प्रकार, व्यापार–संतुलन अवशोषण या घरेलू व्यय के कम होने पर कम होगा। सरकार राजकोषीय और मौद्रिक नीति के द्वारा अवशोषण और व्यय में कमी करके व्यापार–संतुलन घाटे को कम कर सकती है।

अवमूल्यन घरेलू तथा विदेशी व्यय को विदेशी वस्तुओं तथा सेवाओं से हटाकर घरेलू वस्तुओं तथा सेवाओं की ओर मोड़ देता है। इसीलिए इसे व्यय बदलावकारी नीति (Expenditure Switching Policy) कहते हैं। अवमूल्यन का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि घरेलू मुद्रा के मूल्य में कमी से निर्यात सस्ते तथा आयात मंहगे हो जाते हैं।

अवमूल्यन की भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने की सफलता आयातों तथा निर्यातों की मांग–लोच पर निर्भर करेगी। आयात और निर्यात मांगे जितनी ही अधिक लोचदार होंगी, भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही अधिक सफल होगा और यदि आयात और निर्यात मांग लोचें इकाई से कम है या बेलोचदार है तो अवमूल्यन घाटे को कम करने में सफल नही होगा बल्कि यह घाटे को और बढ़ा देगा। मार्शल–लर्नर शर्तों के अनुसार व्यापार–संतुलन को सुधारने में अवमूल्यन की सफलता आयात तथा निर्यात मांग लोचों के योग पर निर्भर करती है। यदि निर्यातों तथा आयातों की मांग लोचों का योग इकाई से अधिक हो तो अवमूल्यन व्यापार संतुलन के घाटे को कम करेगा।

परन्तु अवमूल्यन न सिर्फ निर्यातों तथा आयातों की सापेक्षिक कीमतों को प्रभावित करता है बल्कि यह अर्थव्यवस्था में आय परिवर्तनों को भी जन्म देता है। भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन की सफलता आय में परिवर्तनों के कारण घरेलू व्यय या अवशोषण (C+I+G) में होने वाले परिवर्तनो पर निर्भर करती है। अवमूल्यन निर्यातों को सस्ता करके निर्यात अर्जन बढ़ा देते हैं। निर्यात में वृद्धि घरेलू आर्थिक चरों पर आय प्रभाव तथा अन्य प्रभाव उत्पन्न करेगी। यदि अवमूल्यन के कारण आय में वृद्धि होती है तो आय प्रेरित अवशोषण या घरेलू व्यय में भी वृद्धि होगी और आयातों में भी। अवमूल्यन घाटा कम करने में सफल तभी होगा जब आय में हुई वृद्धि अवशोषण में हुई वृद्धि से अधिक हो। अवशोषण जितना अधिक होगा भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने में अवमूल्यन उतना ही कम सफल होगा। अवमूल्यन गैर–आय प्रभावों के माध्यम से भी कार्य करता है

अवमूल्यन भुगतान–संतुलन में केवल अस्थायी समायोजन ही कर सकता है। स्थायी प्रकृति का दीर्घकालिक समायोजन तभी हो सकता है जबकि असंतुलन लाने वाले मूल कारकों को नियंत्रित किया जाए।

13.8 शब्दावली

अवशोषण (Observation) – राष्ट्रीय आय के कुल अवशोषण का अर्थ है कुल घरेलू व्यय। संकेतात्मक रूप में,

$$\text{अवशोषण } A=C+I+G$$

स्पष्ट है कि कुल अवशोषण में अर्थव्यवस्था में उपभोग तथा कुल निवेश उद्देश्यों के लिए की गयी मांग सम्मिलित होती है। अवशोषण का अर्थ यह है कि राष्ट्रीय आय का जिस भाग उपयोग उपभोग तथा कुल निवेश के रूप में अवशोषण नहीं हुआ, उसका संचय (Hoarding) होगा। अवशोषण में जितनी ही कमी होगी संचय में उतनी ही वृद्धि होगी।

मुद्रा–विभ्रम (Money Ilusion)– यदि लोगों की मौद्रिक आय में वृद्धि हो परन्तु कीमतों में उससे तेज वृद्धि के कारण वास्तविक आय मं कमी हो जाए, परन्तु मौद्रिक आय के बढ़ने के कारण लोग अपने को पहले से अधिक धनी समझकर अपने व्यय को बढ़ा दें या पहले ही इतना बरकरार रखें तो इसे 'मुद्रा–विभ्रम' की संज्ञा दी जाती है। मुद्रा–विभ्रम के संदभ में मुख्य बात यह है कि लोग अपनी वास्तविक आय की अपक्षा मौद्रिक आय से प्रभावित होकर अपने आर्थिक निर्णय लेते हैं और कीमत के आय पर पड़ने वाले प्रभावों को नहीं समझ पाते हैं।

निर्यातों तथा आयातों की मांग लोच– निर्यात की कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरूप निर्यात की मांग में हुआ परिवर्तन निर्यातों की मांग लोच है। अर्थात्–

$$\text{निर्यातों की मांग लोच} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{निर्यात कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

इसी प्रकार,

$$\text{आयातों की मांग–लोच} = \frac{\text{आयात मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आयात कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

विनिमय–दर – किसी देश की घरेलू मुद्रा का अन्य देशों की मुद्रा से जिस दर पर विनिमय किया जाता है उसे विदेशी विनिमय–दर पर कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, विदेशी

मुद्रा की घरेलू मुद्रा के रूप में कीमत विनिमय दर है। **जैसे** यदि 1$ में `50 मिलते हैं तो, भारत में **डालर** के रूप में विदेशी विनिमय दर होगी–1$=`50।

अवमूल्यन– प्रमुख विदेशी मुद्राओं के मुकाबले घरेलू–मुद्रा के मूल्य में जानबूझकर कानूनी ढंग से की गयी कमी अवमूल्यन है।

मुद्रा–मूल्य ह्रास – विदेशी विनिमय बाजार में, विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन के कारण घरेलू मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी, मुद्रा–मूल्य ह्रास कहा जाता है। अवमूल्यन तथा मूल्य–ह्रास दोनों का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर एक समान होता है।

व्यय बदलाव की नीतियाँ– वे उपाय जो व्यय की दिशा को परिवर्तित करके विदेशी वस्तु और सेवाओं से घरेलू वस्तुओं और सेवाओं की ओर कर देते हैं।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

6. घ,2.क,3.ग,4.ख,5.ग,6.क

सत्य व असत्य :

8. असत्य 2.सत्य 3.सत्य 4.असत्य 5.असत्य 6.असत्य 7.सत्य 8.सत्य 9.सत्य

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

3. घ 2.घ 3.ख 4.क 5.ख 6.ग 7.घ

सत्य व असत्य :

3. सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.सत्य

13.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- ज्ञानेंद्र सिंह कुशवाहा, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली,1979.

13.11 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एस० एन०लाल, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को ठीक करने हेतु अवशोषण विधि पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. मार्शल–लर्नर शर्त की व्याख्या कीजिए। इसकी क्या–क्या आलोचनाएँ हैं? आप इसे किस सीमा तक व्यावहारिक मानते हैं?
3. भुगतान सन्तुलन के असन्तुलन को ठीक करने हेतुअवमूल्यन के लोच दृष्टिकोण का मूल्याङ्कन कीजिये.

****

इकाई- 14 मौद्रिक उपागम तथा भुगतान संतुलन में समायोजन

इकाई संरचना

13 प्रस्तावना

14 उद्देश्य

15 परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन

14.3.1. परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन

14.3.2. स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन

16 मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ तथा भुगतान संतुलन

14.4.1. राजकोषीय नीति तथा भुगतान संतुलन

14.4.2. मौद्रिक नीति तथा भुगतान संतुलन

17 भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मौद्रिवादियों का दृष्टिकोण – सामान्य विवेचना

18 भुगतान संतुलन समायोजन और मौद्रिक उपागम

14.6.1. मान्यताएं

14.6.2. स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन समायोजन

14.6.3. परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन समायोजन

14.6.4. आलोचना

19 सारांश

20 शब्दावली

21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

22 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

23 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

24 निबंधात्मक प्रश्न

१४.१ प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के **खंड तीन "भुगतान संतुलन "** से सम्बंधित यह १४ वीं इकाई है. इससे पहले की इकाई में आपने भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में परम्परागत उपायों की भूमिका विशेष रूप से अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में के बारे में अध्ययन किया . अध्ययन के पश्चात् भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में अवमूल्यन की भूमिका तथा महत्व को समझ गए होंगे. आप जान गए होंगे कि अवमूल्यन किस प्रकार से और किन स्थितियों भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर कर सकता है।

आपने देखा कि लोच दृष्टिकोण के अनुसार निर्यातों और आयातों की मांग और पूर्ति लोचों की सापेक्षिक प्रभाविता का अवमूल्यन या विनिमय दर के मूल्यह्रास द्वारा भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में के लिए विशेष महत्व है। दूसरी ओर मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार विनिमय दर देश के वास्तविक उत्पादन की सापेक्षिक कीमत न होकर देश की करेन्सी की सापेक्षिक कीमत है। इसलिए मौद्रिकवादी वनिस्पत परिसम्पत्तियों के स्टॉक के बाजार के कोषों के प्रवाह के बाजारों के महत्व पर अधिक जोर देते हैं।

भुगतान संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए मौद्रिक उपायों की चर्चा ने 1970 के दशक में विशेष रूप से जोर पकड़ा। परम्परागत दुष्टिकोण से भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने के लिए समष्टिगत स्तर पर अल्पकालिक विश्लेषण किया गया है, जबकि मौद्रिकवादियों ने भुगतान–संतुलन के समष्टि आर्थिक विश्लेषण में दीर्घकालिक समस्या पर अधिक ध्यान दिया। मुद्रावादियों के अनुसार भुगतान–संतुलन की संकल्पना में मुद्रा के अंर्तप्रवाह तथा बर्हिप्रवाह का विशेष महतव है।

हाल के वर्षों में, आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपायों पर अधिक जोर दिया है। भुगतान–संतुलन के समायोजन में मुद्रा और अन्य वित्तीय परिसम्पत्तियों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। जैसा कि आप जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने स्थिर तथा परिवर्तनशील दरों की स्थति में भुगतान–संतुलन के समायोजन में मौद्रिक–नीति की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल दिया। उनके अनुसार अर्थव्यवस्था में मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से आन्तरिक कीमत बढ़ता है जिससे आयातों में वृद्धि तथा निर्यातों में कमी आती हैं इससे सोने का बर्हिप्रवाह बढ़ता है। इससे मौद्रिक आधार कमजोर होता है और मुद्रा–पूर्ति में कमी आती है, जिससे कीमतें गिरती है और आयात हतोत्साहित तथा निर्यात प्रोत्साहित होते हैं और इस प्रकार भुगतान–संतुलन का घाटा स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

आधुनिक अर्थशास्त्री, प्रतिष्ठित दृष्टिकोण को ही पुर्नस्थापित करने का प्रयास करते है। मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार भुगतान–संतुलन स्वतः एक मौद्रिक परिघटना है। क्योंकि भुगतान–संतुलन का घाटा और अतिरेक मूलतः अर्थव्यवस्था में मुद्रा के वास्तविक ऐच्छिक स्टॉक (actual desired stocks) के समायोजन की प्रक्रिया है। मुद्रावादीयों के अनुसार भुगतान–संतुलन का घाटा मुद्रा–पूर्ति के आधिक्य के बराबर होगा।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपायों के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

१४.२ उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- स्थिर तथा परिवर्तनशील दरों की स्थिति में भुगतान शेष में समायोजन कैसे होता है,जान पाएंगे.
- भुगतान शेष के अशंतुलन को दूर करने में मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों की प्रभावित को जन सकेंगे.
- भुगतान शेष के सम्बन्ध में मुद्रवादियों के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे.
- भुगतान शेष में समायोजन के मौद्रिक उपागम के बारे में जान सकेंगे.

14.3 परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन

मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। दीर्घकाल में यह स्वतः ही समाप्त हो जाता है। एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य और भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम हैं। स्थिर विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह का परिणाम है जबकि परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह के उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। भुगतान–संतुलन **के** असंतुलन **के समायोजन के मौदिक उपगाम के अध्ययन से पहले आप यह जानेगें की** स्थिर **तथा** परिवर्तनशील विनिमय दरों **की प्रणाली के अंतरगत** भुगतान–संतुलन **के** असंतुलन **का समायोजन किस प्रकार से होता है.**

14.3.1 परिवर्तनशील विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन – परिवर्तनशील विनिमय दरें विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है तथा इसमें मौद्रिक प्राधिकरण का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंतर्गत समायोजन प्रक्रिया किसी व्यक्तिगत देश के किसी आन्तरिक समायोजन पर निभर नहीं करती है। बल्कि यह विनिमय दर में परिवर्तनों पर आधारित है। विनिमय दरों में परिवर्तन देश की भुगतान–संतुलन की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन के फलस्परूप स्वतः ही उत्पन्न होता है। यहाँ सरकारी या राज्य हस्तक्षेप के लिए कोई स्थान नहीं है और न ही संतुलन उत्पन्न करने के लिए समायोजक पूँजी लेन–देन (अंतर्राष्ट्रीय तरलता खाता) की आवश्यकता है।

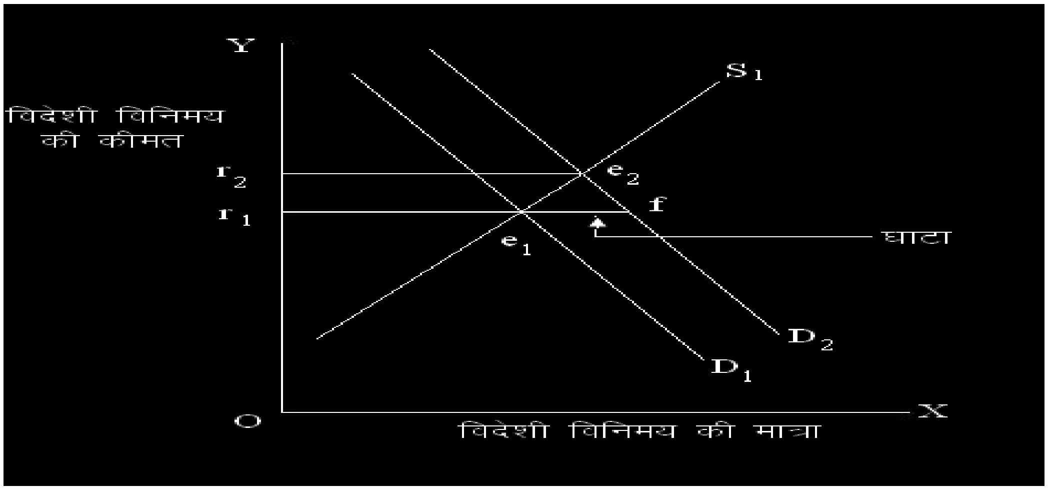

चित्र 14.1

चित्र 14.1 में भुगतान–संतुलन का प्रारम्भिक संतुलन e बिन्दु पर है। जहाँ विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति आपस में बराबर है। बिन्दु e_1 पर विदेशी विनिमय की मांग वक्र D_1 पूर्ति वक्र S_1 को काटता है। यदि किन्हीं कारणों से (आयात प्रवृत्ति बढ जाने, आयात बढ़ने इत्यादि) मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है या फिर निर्यातों के कम होने से निर्यात–अर्जन में कमी आने से विदेशी विनिमय पूर्ति वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है तो भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न हो जाता है।

चित्र 14.1 में मांग वक्र के ऊपर विवर्तित हो जाने से संतुलन बिन्दु e_1 से e_2 पर आ जा रहा है। विदेशी विनिमय की मांग बढ़ जाने से विदेशी विनिमय बाजार में e_1f के बराबर घाटा हो जाता है। परन्तु परिवर्तनशील विनिमय दरों के कारण नया संतुलन e_2 पर हो जा रहा है तथा विनिमय दर R_1 से R_2 हो जा रही है। अर्थात् विदेशी विनिमय दर के मूल्य में वृद्धि या घरेलू मुद्रा के मूल्य में मूल्य ह्रास के द्वारा भुगतान–संतुलन का घाटा स्वतः ही दूर हो जाता है। इसी प्रकार भुगतान–संतुलन का अतिरेक विदेशी विनिमय दर में मूल्य ह्रास या घरेलू मुद्रा के अधिमूल्यन के द्वारा स्वतः ही दूर हो जाएगा।

14.3.2 स्थिर विनिमय दरें तथा भुगतान संतुलन – इस व्यवस्था के अंतर्गत विदेशी विनिमय बाजार में सरकार या राज्य का पूरा हस्तक्षेप रहता है। बाजार विनिमय दर एक दी हुई संतुलन स्तर पर स्थिर रहती है यदि मांग और पूर्ति की शक्तियाँ इस संतुलन को बिगाडती हैं या सट्टेबाजी की गतिविधियाँ इस संतुलन को बिगाडती है तो सरकार इसमे हस्तक्षेप करती है और इस संतुलित विनिमय दर को बनाए रखती है। सरकार विदेशी विनिमय के क्रय या विक्रय के माध्यम से ऐसा करती है।

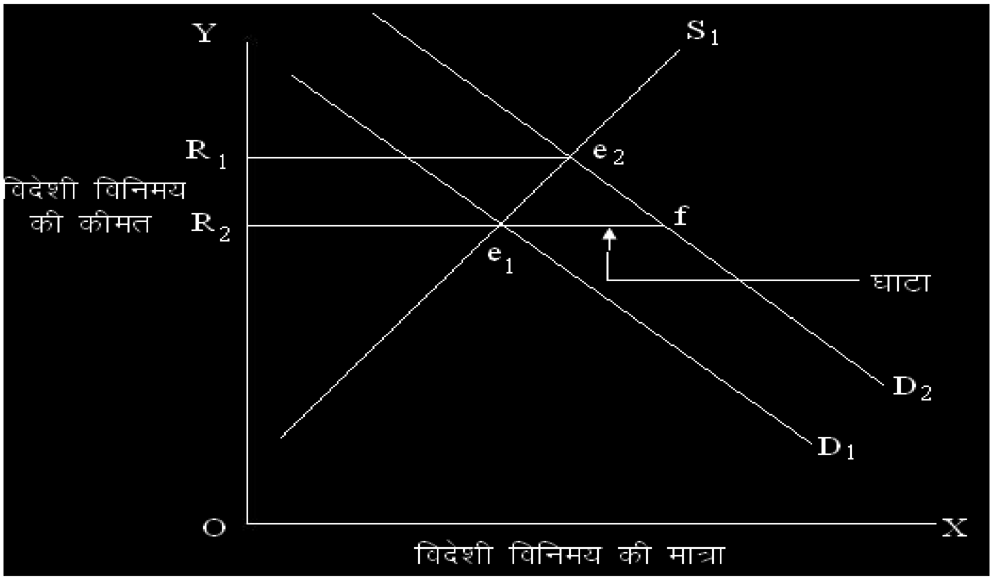

चित्र 14.2

चित्र 14.2 में R_0 विनिमय दर संतुलित विदेशी विनिमय बाजार को बताती है। जहाँ विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति बराबर है। यदि आयातों में वृद्धि के कारण मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है या निर्यातों में कमी के कारण पूर्ति–वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है तो विदेशी विनिमय बाजार में घाटा होगा।

चित्र में 14.2 मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित होकर D_1 से D_2 हो जाता है। परिवर्तनशील विनिमय दरों की **स्थिति में** यह घाटा घरेलू मुद्रा में मूल्यह्रास के द्वारा स्वतः ही समाप्त हो जाएगा और नयी विनिमय दर R_0 से R_1 हो जाएगी। परन्तु यदि सरकार विनिमय दर को R_0 पर स्थिर रखना चाहती है तो उतनी ही मात्रा में विदेशी विनिमय (e_1f के बराबर) विदेशी मुद्रा बाजार में बेचेगी। इस घाटे को समाप्त करने के लिए सरकार भुगतान–संतुलन के समायोजन खाते का सहारा लेती है। सरकार निम्नलिखित तीन संभव उपायों द्वार इस घाटे या अन्तराल को पूरा करेगी–

(i) अपने पहले के विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी करेगी,
(ii) दूसरे देशों या संस्थानों से उधार लेगी,
(iii) सोने का निर्यात करेगी।

इन उपायों में से किसी एक या तीनों के संयोग के द्वारा सरकार घाटे को समाप्त कर विनिमय दर R_0 पर बनाए रख सकती है। यह वास्तव में भुगतान–संतुलन के घाटे को व्यवस्थित (settlement) करना है।

इसी प्रकार भुगतान–संतुलन में अतिरेक होने पर विदेशी विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने के लिए सरकार विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा को खरीदेगी और इसके लिए वह समायोजन लेन–देन के अंतर्गत सोने का आयात, अपने विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि या वाह्य उधार देने जैसे उपायों का सहारा ले सकती है।

14.4 मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ तथा भुगतान संतुलन

भुगतान शेष के असंतुलन विशेष रूप से घाटे का समयोजन किसी भी देश के विदेशी मुद्रा रिजर्वों के उसके भंडार पर निर्भर करती है. और फिर बाह्य संतुलन के साथ साथ आतंरिक संतुलन के लिए भी देश हमेशा प्रयासरत रहते है. इसलिए सरकारे नीतिगत यंत्रों के माध्यम से भुगतान शेष के असंतुलन समयोजन का प्रयास करतें हैं. बाह्य आतंरिक संतुलन प्राप्त करने के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों की भूमिका काफी प्रभावी होती है. ये व्ययकारी नीतियाँ होती हैं जो की अर्थव्यवस्था में कुल में परिवर्तन लाकर भुगतान शेष को प्रभावित करती हैं. यहाँ यह महत्वपूर्ण है की भुगतान शेष के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक निति अधिक प्रभावी और निश्चित परिणाम वाली होती है. राजकोषीय नीति के ठीक विपरीत मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक विस्तारक मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि भुगतान–संतुलन में घाटा लाएगी तथा संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी भुगतान–संतुलन में अतिरेक लाएगी। इसलिए मौद्रिक उपागम से पहले आपको मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाओं तथा उसकी सापेक्षिक प्रभावित को जानना जरूरी है.

मौद्रिक नीति, मुद्रा–पूर्ति (M_s) तथा ब्याज दर (i) में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है। जबकि राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों (T) के द्वारा अर्थव्यवस्था में प्रभावित करती है। इन नीतियों के माध्यम से व्यय में परिवर्तन के द्वारा भुगतान–शेष के घाटे को दूर किया जा सकता है। हम मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के भुगतान–शेष पर प्रभाव जानने के लिए IS (निवेश–बचत) वक्र, LM (मुद्रा की मांग तथा पूर्ति) वक्र तथा BB (भुगतान–शेष) वक्र का प्रयोग करेंगे। IS वक्र राष्ट्रीय आय (Y) तथा ब्याज दर (i) के उन संयोगो को बताता है जो कि निवेश (I) तथा बचत (S) की समानता को प्रस्तुत करते हैं।

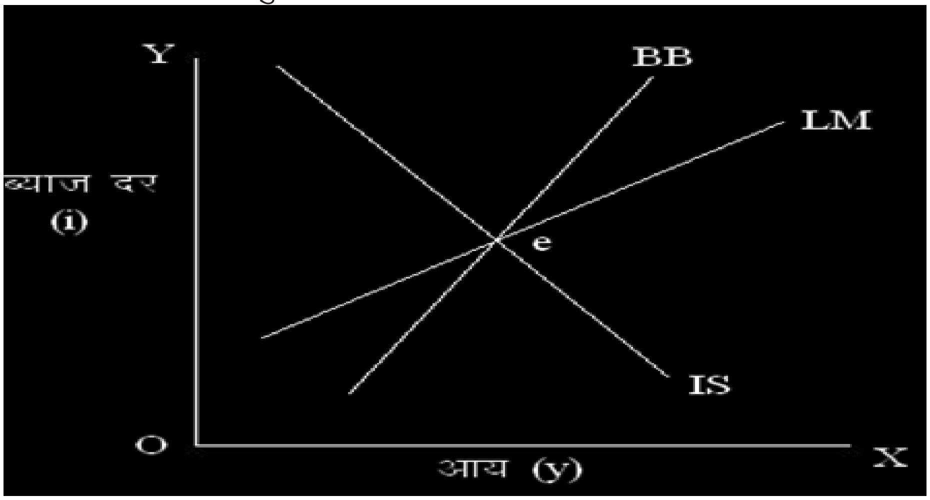

चित्र 14.3

LM वक्र मुद्रा की मांग तथा पूर्ति की समानता को दर्शाने वाले राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दर के विभिन्न संयोग को बताते हैं; जबकि BB वक्र राष्ट्रीय आय तथा ब्याज दर के उन संयोगों को बताता है जो कि भुगतान शेष में सतुलन को दर्शाते हैं।राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आयात में वृद्धि होती है जिससे भुगतान–संतुलन का घाटा बढ़ता है। जबकि ब्याज में वृद्धि से विदेशी निवेश आकर्षित होता है और देश में पूँजी के अंर्तप्रवाह बढ़ने से भुगातन–शेष का घाटा कम होता है।

चित्र 14.3 में BB वक्र के बायीं ओर कोई भी बिन्दु भुगतान–संतुलन में अतिरेक को दर्शाता है जबकि BB वक्र के को दायीं ओर नीचे की तरफ कोई बिन्दु भुगतान–संतुलन में घाटा को प्रदर्शित करता है। सरकारी ब्याज (G) में वृद्धि होने या कर (T) में कमी होने से IS वक्र दायीं ओर ऊपर सरक जाता है जबकि सरकारी ब्यय में कमी या करों में वृद्धि से IS वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि होने पर LM वक्र नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है जबकि मुद्रा–पूर्ति मे कमी होने पर LM वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है।

अब हम भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने में राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों की प्रभाविता की विवेचना करेंगे।

14.4.1 राजकोषीय नीति तथा भुगतान–संतुलन

मान लिया अर्थव्यवस्था में प्रारम्भिक संतुलन की स्थिति है। चित्र 14.4 में बिन्दु e पर IS-LM-BB वक्र एक दूसरे को काटते हैं। अर्थात् e बिन्दु पर अर्थव्यवस्था में आन्तरिक तथा वाह्य दोनों संतुलन विद्यमान है।

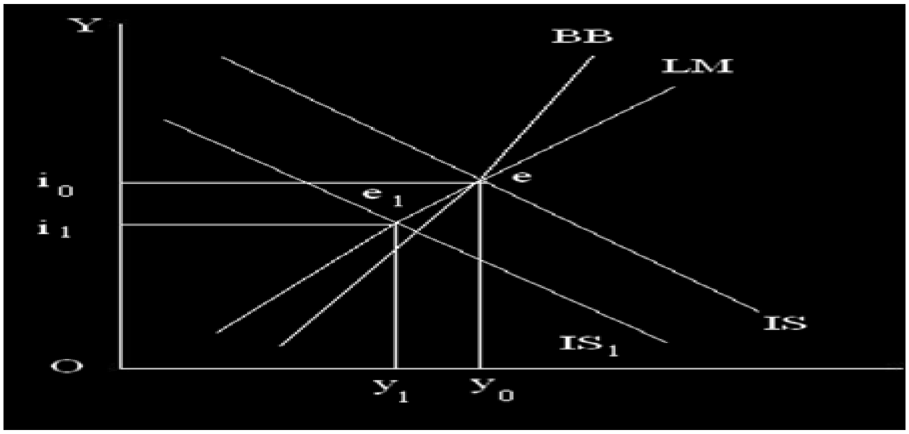

चित्र 14.4 A

माना कि सरकार संकुचनकारी राजकोषीय निति अपनाती है ओर सरकारी व्यय में कमी करती है। सरकारी व्यय (G) में कमी से IS वक्र नीचे की ओर सरक कर IS_1 हो जाता (चित्र 14.4) है और LM वक्र को e_1 बिन्दु पर काटता है। नए संतुलन बिन्दु पर आय कम होकर y_1 तथा ब्याज दर कम होकर i_1 हो जाती है। सरकारी व्यय में कमी से

राष्ट्रीय आय (y) में कमी होगी तथा आय में कितनी कमी होगी यह गुणक के मान पर निर्भर करता है।
व्यय में वृद्धि होने पर ब्याज दर (i) में भी वृद्धि होगी क्योंकि सरकारी व्यय में वृद्धि से निजी निवेश के लिए फण्ड (कोष) की उपलब्धता कम हो जाएगी, जिससे फण्ड या पूंजी की कीमत अर्थात् ब्याज दर मे वृद्धि हो जाएगी।

सरकारी ब्यय में परिवर्तन का भुगतान–संतुलन पर क्या प्रभाव पडेगा यह भुगतान–संतुलन वक्र (BB) की लोच पर निर्भर करेगा। यदि BB वक्र LM वक्र की अपेक्षा अधिक बेलोचदार या तिरछा है तो सरकारी व्यय में कमी होने पर भुगातन शेष में अतिरेक उत्पन्न होगा (चित्र 14.4A) जबकि यदि LM वक्र BB वक्र की अपेक्षा अधिक तिरछा है अर्थात् BB वक्र, LM वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार है (चित्र 14.4B) तो सरकारी व्यय में कमी से भुगतान–संतुलन का घाटा होगा। इस प्रकार व्यय परिवर्तन का भुगातन–संतुलन पर प्रभाव LM वक्र के सापेक्षा BB वक्र के ढाल पर निर्भर करेगा।

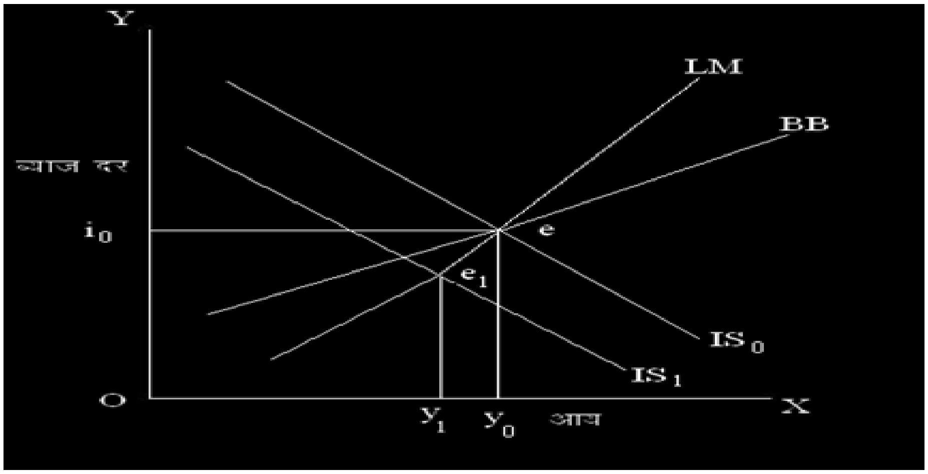

चित्र 14.4 B

सरकारी व्यय में कमी से आय मे कमी आएगी और फलस्वरूप आयातों में भी कमी आएगी। आयातों में कितनी कमी होगी यह सीमान्त आयात प्रवृत्ति पर निर्भर करेगी। स्पष्ट है कि आयातों में कमी से भुगतान–संतुलन की स्थिति में सुधार होगा अर्थात् चालू खाते में घाटे में कमी आएगी। परन्तु सरकारी व्यय में कमी का दूसरा प्रभाव यह होगा कि ब्याज–दर (i) में भी कमी आएगी जिससे देश में शृद्ध पूँजी प्रवाह में कमी आएगी, यह कमी कितनी होगी यह पूँजी प्रवाह के ब्याज–लोच पर निर्भर करेगा। किसी भी स्थिति में ब्याज–दर में कमी से पूँजी के अंर्तप्रवाह में हुई कमी, भुगतान–संतुलन के पूँजी खाते पर नकारात्मक प्रभाव डालेगी।
इस प्रकार व्यय में कमी से भुगतान संतुलन पर अंतिम प्रभाव क्या होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आय में कमी से आयात में कमी का प्रभाव अधिक सशक्त है या ब्याज–दर में कमी से पूँजी के अंर्तप्रवाह मे कमी का प्रभाव अधिक सशक्त है। यदि आयात में कमी से चालू खाते का अतिरेक पूँजी खाते के घाटे से अधिक सशक्त है तो भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा (चित्र 14.5A) और यदि पूँजी खाते का घाटा, चालू खाते

के अतिरेक से अधिक है तो भुगतान–संतुलन में घाटा होगा (चित्र 14.5)। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि चित्र 14.5A में, बिन्दु e_1 वक्र BB में बायीं तरफ है जबकि चित्र 14.5B में बिन्दु e_1 वक्र के दायीं तरफ है।

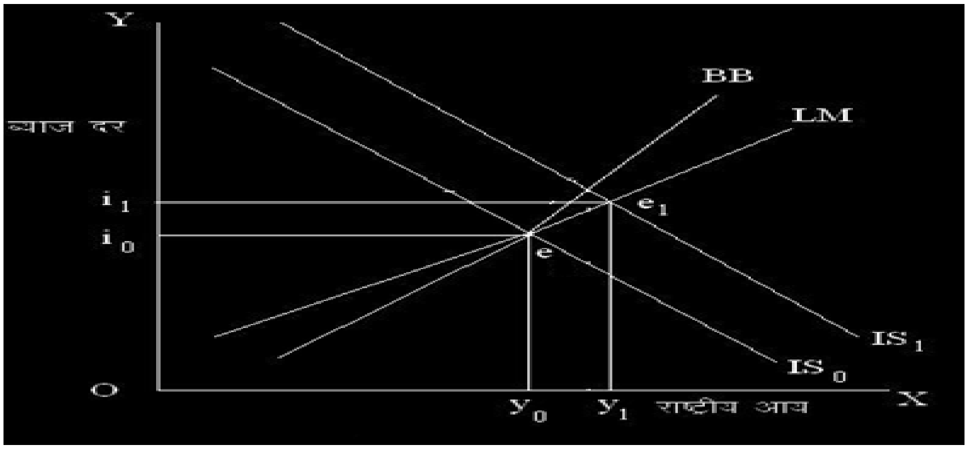

चित्र 14.5A

इसी प्रकार, सरकारी व्यय में वृद्धि से IS वक्र ऊपर दायीं ओर विवर्तित हो जाएगा जिससे नया संतुलन e से e_1 पर हो जाएगा और आय तथा ब्याज दर दोनों बढ़ जाएगी (चित्र 14. 6)। आय के बढ़ने पर आयातों में वृद्धि होगी जिससे चालू खाते का घाटा बढ़ेगा जबकि ब्याज दर (i) बढ़ने से पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा जिससे पूँजी खाता में अतिरेक उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होगी। यदि धनात्मक चालू खाते का घाटा, पूँजी खाते के अतिरेक से अधिक है तो भुगतान–संतुलन में घाटा (चित्र 14.6A) होगा और यदि पूँजी खाते का अतिरेक चालू खाते के घाटा से अधिक हो जाता है तो भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा (चित्र 14.6B)।

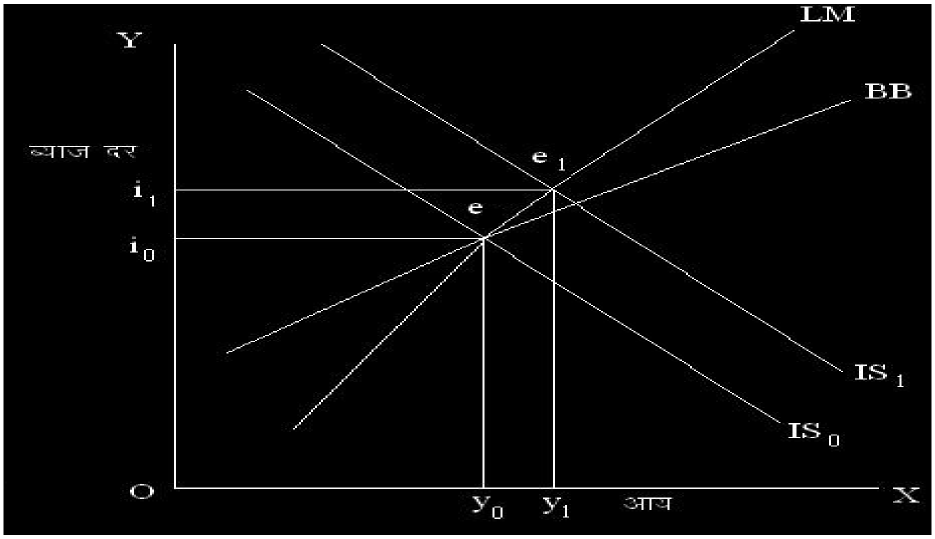

चित्र 14.5 B

इस प्रकार, आपने देखा कि यह स्पष्ट है कि राजकोषीय उपायों का भुगतान संतुलन पर क्या प्रभाव होगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि LM वक्र के सापेक्ष भुगतान–संतुलन का ढाल क्या होगा। दूसरे शब्दों में, यदि आय गुणक, आयात की सीमान्त प्रवृत्ति और पूँजी प्रवाहों की ब्याज–लोच ज्ञात हो तो सरकार ब्यय में परिवर्तन के भुगतान संतुलन पर प्रभावों को जाना जा सकता है।

14.4.2 मौद्रिक नीति तथा भुगतान–संतुलन

राजकोषीय नीति के ठीक विपरीत मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक विस्तारक मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि भुगतान–संतुलन में घाटा लाएगी तथा संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी भुगतान–संतुलन में अतिरेक लाएगी, चाहे LM वक्र तथा BB वक्र का ढाल कुछ भी हो।

चित्र 14.6 में IS और LM वक्र के कटान बिन्दु e_0 पर संतुलन है जबकि ब्याज दर i_0 तथा राष्ट्रीय आय y_0 है। मुद्रा पूर्ति में कमी से LM वक्र ऊपर बायीं ओर विवर्तित हो जाएगा जिससे नया संतुलन e_2 पर हो जाता है। जहाँ ब्याज दर बढ़कर i_1 तथा राष्ट्रीय आय घटकर y_1 हो जाती है। e_1 बिन्दु BB वक्र के बायीं ओर स्थित है इसलिए भुगतान–संतुलन में अतिरेक है। स्पष्ट है कि BB वक्र तिरछा है या चपटा, LM वक्र के मुकाबले, e_2 बिन्दु BB वक्र में बायीं ओर ही होगा। अर्थात् मुद्रा–पूर्ति में कमी से स्पष्ट भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा।

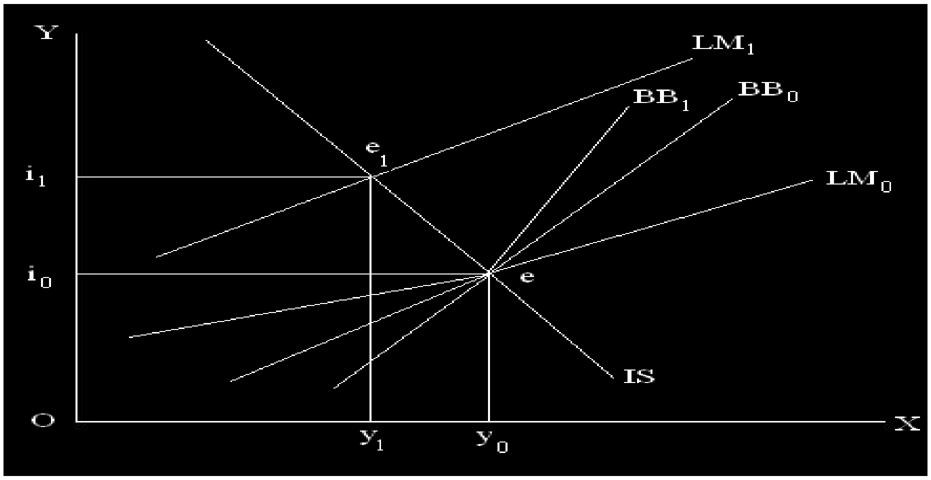

चित्र 14.6 A

मुद्रा–पूर्ति में कमी से आय में कमी होगी जिससे आयात में कमी होगी और चालू खाते के घाटे में आधिक्य या अतिरेक आएगा। दूसरी तरफ मुद्रा–पूर्ति में कमी से ब्याज–दर में वृद्धि हागी जिससे पूँजी का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा और पूँजी खाते का अतिरेक बढ़ेगा। इस प्रकार, मुद्रा–पूर्ति में कमी से राष्ट्रीय आय में कमी और ब्याज–दर में वृद्धि दोनों का ही प्रभाव भुगतान–संतुलन का अतिरेक उत्पन्न करने वाला होगा।

परन्तु भुगतान–संतुलन अतिरेक से अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है और संतुलन e_1 बिन्दु पर नहीं बना रहता है। मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से LM_1 वक्र दायीं ओर खिसक कर पुनः LM_0 की स्थिति में आ जाएगा और इस स्थिति में भुगतान–संतुलन का अतिरेक समाप्त हो जाएगा।

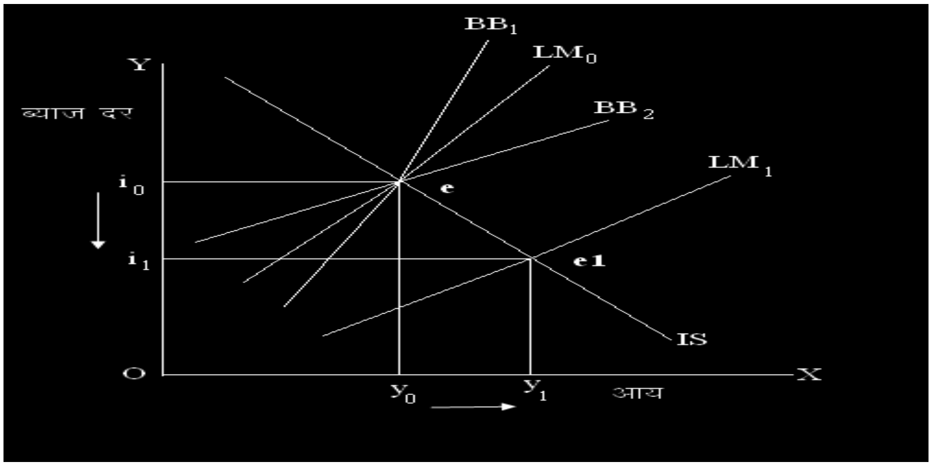

चित्र 14.6 B

चित्र 14.6 B मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि से LM_0 वक्र दायीं तरफ नीचे की ओर खिसक आता है जिससे संतुलन e से e_1 पर आ जाता है जिससे आय बढ़कर y_1 तथा ब्याज दर घटकर i_1 हो जाती है। e_1 बिन्दु BB वक्र के दायीं ओर स्थित है अर्थात् भुगतान शेष में घाटा होगा। वास्तव में, मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि के कारण आय में हुई वृद्धि से आयातों में वृद्धि होगी जिससे चालू खाते का घाटा बढ़ेगा जबकि ब्याज दर में कमी से पूँजी का बर्हिप्रवाह होगा जिसके कारण पूँजी खाते में घाटा होगा। इस प्रकार, कुल भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होगी।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने मे राजकोषीय उपायों की प्रभाविता अनिश्चित है जबकि मौद्रिक उपायों की प्रभाविता बिल्कुल स्पष्ट है। एक संकुचनकारी मौद्रिक नीति या मुद्रा–पूर्ति में कमी निश्चित ही भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में प्रभावी होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में मौद्रिक नीति का प्रयोग करना उचित होगा। ऐसी स्थिति में राजकोषीय नीति का प्रयोग आन्तरिक संतुलन लाने अर्थात् पूर्ण रोजगार तथा कीमतों मे स्थिरता लाने के लिए किया जा सकता है। जिससे कि भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में मौद्रिक नीति अधिक प्रभावी हो सके।

14.5 भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रावादियों का दृष्टिकोण – सामान्य विवेचना

मौद्रिक दृष्टिकोण के अनुसार, भुगतान संतुलन के अंसतुलन को दूर करने के लिए वित्तीय बाजार पर ध्यान देना आवश्यक है। वित्तीय बाजार में मुद्रा की मांग तथा मुद्रा की पूर्ति में असंतुलन के परिणामस्वरूप भुगतान–संतुलन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका परीक्षण

आवश्यक है। मुद्रावादी भुगतान–संतुलन तथा अर्थव्यवस्था मे मुद्रा की पूर्ति की कड़ी का परीक्षण करके भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने का सुझाव देते हैं।

एक सरलीकृत मौद्रिक व्यवस्था में मुद्रा–पूर्ति का समीकरण निम्नलिखित होता है–

$$M=C+D+F$$

जहाँ, M= मुद्रा पूर्ति

C= अर्थव्यवस्था में प्रचलन में वह मुद्रा जो कि लोगों के पॉकेट में हो

D= बैंकों की मांग जमाएं या साख मुद्रा

F= विदेशी मुद्रा भण्डार

यदि भुगातन–संतुलन में लगातार घाटा होता है तो विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी। परन्तु साख–मुद्रा (D) में विस्तार के द्वारा M में कमी को रोक दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट है होता है कि भुगतान–संतुलन में लगातार घाटा तभी बना रह सकता है जबकि घरेलू साख मुद्रा (D) में विस्तार के द्वारा मुद्रा–पूर्ति को बढ़ने दिया जाए।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) का मानना है कि कोई भी देश लगातार बहुत लम्बे समय तक अपने विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी के द्वारा अपने भुगतान–संतुलन के घाटे का वित्तियन नहीं कर सकता है। इसलिए उसे एक सीमा के बाद साख का विस्तार आवश्यक रूप से रोकना पड़ेगा।

इस प्रकार मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। दीर्घकाल में यह स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

भुगतान–संतुलन सिद्धान्त के परम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार जब बैंक साख में विस्तार होता है तो ब्याज–दरों में गिरावट आती है जो कि निवेश में विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी लाती है। इसके विपरीत मुद्रावादियों का यह मानना है कि जब मुद्रा–पूर्ति में वृद्धि होती है तो लोग इसे अपने पास नकदी के रूप में रखने की अपेक्षा खर्च करना पसंद करते हैं। इससे वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है और उत्पादन स्थिर रहने की स्थिति में कीमतों में वृद्धि होती है। मुद्रा–पूर्ति बढ़ने से वस्तुओं और सेवाओं की बढ़ी घरेलू मांग निर्यातों की आपूर्ति को प्रभावित करती है। घरेलू उपभोग में वृद्धि के कारण, संभाव्य निर्धारित वस्तुओं व सेवाओं की खपत घरेलू अर्थव्यवस्था मे ही हो जाती है और फलस्वरूप निर्यात में कमी आती है इससे भुगतान–संतुलन में घाटा उत्पन्न होता है या फिर बढ़ जाता है।

इस प्रकार मुद्रावादियों के अनुसार अल्पविकसित देशों में अवमूल्यन उसी मात्रा में मुद्रा–स्फीति को बढ़ावा देती है। इसलिए यह आवश्यक है कि बैंक साख में नियंत्रण/संकुचन के द्वारा मुद्रा–पूर्ति को नियंत्रित किया जाए। यदि अवमूल्यन के साथ

बैंक साख का अत्यधिक विस्तार होता है तो भुगतान–संतुलन का घाटा कम होने के बजाए और बढ़ भी सकता है।

14.6 भुगतान संतुलन समायोजन और मौद्रिक उपागम

भुगतान–संतुलन के मौद्रिक दृष्टिकोण की शुरुआत 1960 के दशक में राबर्ट मण्डल और हैरी जानसन द्वारा की गयी थी और 1970 के दशक में यह पूरी तरह विकसित हुआ। भुगतान–संतुलन को पूर्णतया एक मौद्रिक परिघटना मानते हुए यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन में असंतुलन पैदा करने और उसके समायोजन दोनों में मुद्रा की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। यह मुद्रा की मांग और पूर्ति के रूप में भुगतान शेष के परिवर्तनों का विवेचन करता है। भुगतान–संतुलन में अतिरेक का कारण मुद्रा–पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की मांग का अधिक होना है। जबकि घाटे का कारण मुद्रा–पूर्ति का मुद्रा की मांग से अधिक होना है।

14.6.1 मान्यताएँ

1. यह माना लिया गया है कि परिवहन लागतों को जोड़ने पर, विभिन्न देशों में बेची गई एक समान वस्तुओं की कीमत एक समान रहती है। इसलिए स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत करेंसी प्रवाहों को रोकना संभव नहीं हैं।

2. यह मान लिया गया है कि दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार है या पूर्ण रोजगार की प्रवृत्ति है और राष्ट्रीय आय या उत्पादन पूर्ण रोजगार की स्थिति में उत्पादन को दर्शाता है।

3. सभी देशों में पूर्ण रोजगार पाया जाता है, इसलिए एक देश में बढ़ी हुई मांग को घरेलू उत्पाद में वृद्धि से पूरा नहीं किया जा सकता।

4. एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मांग आय, धन और ब्याज दर का स्थिर फलन है । जब आय बढ़ती है तो मुद्रा की मांग (नकद शेष) बढती है और ब्याज दरें बढ़ती हैं तो मुद्रा की मांग गिरती है।

5. वस्तु और पूंजी दोनों बाजारों में उपभोग में पूर्ण स्थानापन्नता होती है जो प्रत्येंक वस्तु के लिए एक कीमत और संपूर्ण देश के लिए एक ब्याज दर सुनिश्चित करती है।

6. सभी देशों में मजदूरी–कीमत लोचशीलता पूर्ण रोजगार स्तर पर उत्पादन को निश्चित करती है।

14.6.2 मौद्रिक उपागम

मौद्रिक दृष्टिकोण में मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषो को मुद्रा–रूप (nominal) राष्ट्रीय आय का फलन माना गया है। मुद्रा–शेषों का राष्ट्रीय आय से धनात्मक संबंध है जो कि दीर्घकाल में स्थिर रहता है। इस प्रकार, मुद्रा की मांग के समीकरण को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है–

M_d=kPyy …………………………………………….. (1)

जहाँ, M_d = मुद्रा–रूप मुद्रा शेषों की मांगी गयी मात्रा है।

k= मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषों का मुद्रा–रूप राष्ट्रीय आय से अनुपात या राष्ट्रीय आय का वह हिस्सा जिसे लोग नकदी–शेष के रूप में रखना चाहते हैं।

P= घरेलू कीमत स्तर

y= वास्तविक उत्पादन

समीकरण (1) में Py= मौद्रिक राष्ट्रीय आय या उत्पादन(Y)

k राष्ट्रीय आय के उस अनुपात को बताता है जिसे लोग नकदी–शेष के रूप में रखते हैं और यह मुद्रा के चलन–वेग(v) का व्युत्क्रमानुपाती (k=1/v) है। चूंकि v अनेक संस्थागत कारकों पर निर्भर करता है, इसलिए k भी। k मनोवैज्ञानिक कारकों तथा अन्य आर्थिक चरों पर भी निर्भर करता है जिसे कि स्थिर मान लिया गया है। ऐसी स्थिति में, मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषों की मांग (M_d) घरेलू कीमत स्तर और वास्तविक राष्ट्रीय आय का स्थिर और धनात्मक फलन है।

मौद्रिक उपागम के अनुसार, मुद्रा की मांग ब्याज दर (i) का भी फलन है।

M_d =f(Y.P.i) .... (2)

परन्तु इनमें ऋणात्मक संबंध है। इस प्रकार, M_d का Py से सीधा तथा i से व्युत्क्रम संबंध होता है।

विश्लेषण की सरलता के लिए हम M_d को सिर्फ Py या मुद्रा–रूप राष्ट्रीय आय या उत्पादन का ही फलन मानेंगे।

दूसरी ओर, मुद्रा की पूर्ति दी हुई है–

Ms=m (D+F)... (3)

जहाँ, Ms= राष्ट्र की कुल मुद्रा–पूर्ति

m= मुद्रा–गुणक

D= राष्ट्र के मौद्रिक आधार का घरेलू घटक

F= राष्ट्र के मौद्रिक आधार का अंतरराष्ट्रीय या विदेशी घटक

देश के मौद्रिक आधार का घरेलू घटक (D) देश के मौद्रिक प्राधिकरणों द्वारा सृजित घरेलू साख या घरेलू परिसम्पत्तियाँ है जो कि राष्ट्र की मुद्रा–पूर्ति का हिस्सा है। मुद्रा–पूर्ति का विदेशी घटक (F), राष्ट्र के अंतर्राष्ट्रीय रिजर्वों (मुद्रा भंडार) को बताता है जो

कि भुगतान–संतुलन के अतिरेक में होने पर बढ़ जाता है जबकि घाटे में होने पर कम हो जाता है।

(D + F) देश का मौद्रिक आधार या उच्च शक्ति मुद्रा (high powered money) कहा जाता है। इस प्रकार, देश में मुद्रा–पूर्ति उच्च शक्ति मुद्रा और मुद्रा गुणक के मान पर निर्भर करती है. मुद्रा गुणक का मान स्थिर है।

संतुलन की स्थिति में, मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर होगी।

$M_d = Ms$ ....(4)

या $M_d = m (D+F)$ ……………………………….(5)

सरलता के लिए m, जो एक स्थिरांक है, की उपेक्षा करने पर

या $M_d =(D+F)$ ……… …………………….(6)

या $F = M_d - D$ ……………………………(7)

या $\Delta F = \Delta M_d - \Delta D$ ………………………(8)

अर्थात विदेशी मुद्रा रिजर्वों (मुद्रा भंडार) में परिवर्तन मुद्रा की मांग में परिवर्तन और मौद्रिक आधार के घरेलू घटक का अंतर है.

भुगतान शेष घाटा या अतिरेक देश के विदेशी मुद्रा रिजर्व में परिवर्तनों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार,

$\Delta F = B$…………………………… (9)

या $B = \Delta M_d - \Delta D$ ………………………(8)

जहाँ B भुगतान शेष को व्यक्त करता है जो मुद्रा की मांग में परिवर्तन (ΔM_d) और घरेलू साख में परिवर्तन (ΔD) के बीच अंतर के बराबर होता है।

समीकरण 8 से स्पष्ट है की यदि भुगतान शेष **में** घाटा है **तो** B ऋणात्मक **होगा** जो विदेशी मुद्रा रिजर्व (मुद्रा भंडार) F एवं **इसलिए** मुद्रा पूर्ति (Ms) को कम करता है। दूसरी ओर, **यदि** भुगतान शेष **में** अतिरेक **है तो** B धनात्मक **होगा** जो विदेशी मुद्रा रिजर्व (मुद्रा भंडार)R और **इसलिए** मुद्रा पूर्ति (Ms) को बढ़ाता है। जब B=0 हो तो इसका अर्थ है, भुगतान शेष संतुलन **में है** या भुगतान शेष में असंतुलन नहीं **है**।

मौद्रिक धारणाओं में स्वतः समायोजन तंत्र की विवेचना स्थिर और लोचशील दोनों विनिमय दर प्रणालियों के अन्तर्गत की जाती है।

14.6.3 स्थिर विनिमय दरों के के अंर्तगत मौद्रिक दृष्टिकोणः

स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत मान लें कि मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर ($M_D=M_S$) है जिससे भुगतान शेष (या B) शून्य होता है। मान लें कि यदि GDP में वृद्धि के कारण मुद्रा की मांग में वृद्धि होती है तो संतुलन बनाने के लिए या तो देश के घरेलू मौद्रिक आधार में वृद्धि होगी या अंतर्राष्ट्रीय रिजर्वों का अंर्तप्रवाह बढ़ेगा या फिर भुगतान–संतुलन में अतिरेक होगा। यदि देश के मौद्रिक प्राधिकरण

मुद्रा–पूर्ति (D) में वृद्धि नहीं करते हैं तो मुद्रा की अतिरिक्त मांग, विदेशी मुद्रा पूर्ति (f) या भुगतान–संतुलन के अतिरेक द्वारा संतुष्ट की जाएगी या होगी। अर्थात यदि दी हुई विनिमय दर पर $M_S<M_D$ हो तो भुगतान शेष अतिरेक होगा। परिणामस्परूप, लोग विदेशियों को वस्तुएँ और प्रतिभूतियाँ बेचकर घरेलू मुद्रा प्राप्त करते हैं। वे अपनी आय की तुलना में व्यय को सीमित कर अतिरिक्त मुद्रा शेषों (money balances) को प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। इस संदर्भ में मौद्रिक अधिकारी घरेलू करेंसी के बदले **अतिरिक्त** विदेशी मुद्रा खरीदेंगे। इससे विदेशी मुद्रा रिजर्व(मुद्रा भंडार) का अन्तःप्रवाह (inflow) होगा और घरेलू मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होगी। इस प्रकार, विदेशी मुद्रा रिजर्व के अन्तःप्रवाह का अर्थ है मुद्रा–पूर्ति के विदेशी घटक (F) और **इसलिए** घरेलू मुद्रा पूर्ति (Ms) में वृद्धि । यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर (M_D=M_S) नहीं हो जाता तथा भुगतान शेष(B= 0) में पुनः संतुलन स्थापित नहीं हो जाता। दूसरी ओर, यदि मुद्रा की मांग अपरिवर्तित हो तो देश के मौद्रिक आधार के घरेलू घटक (D) में वृद्धि होने पर और इस कारण मुद्रा–पूर्ति (Ms) में वृद्धि होने पर अंतर्राष्ट्रीय पूँजी का बर्हिगमन होगा या भुगतान–संतुलन में घाटा होगा। अर्थात यदि $M_S>M_D$ तो वे लोग जिनके पास अत्यधिक नकदी शेष हैं वे अधिक विदेशी वस्तुओं और प्रतिभूतियों की अपनी खरीदारियां बढ़ाते हैं। **इसलिए** उनकी कीमतें बढ़ती हैं और वस्तुओं एवं विदेशी परिसंपत्तियों के आयात में वृद्धि **होती** हैं। इससे भुगतान शेष में चालू और पूंजी दोनों **खतों** में व्यय में वृद्धि होती है जिससे भुगतान शेष में घाटा उत्पन्न होता है। स्थिर विनिमय दर कायम रखने के लिए मौद्रिक अधिकारी विदेशी विनिमय रिजर्व (मुद्रा भंडार) को बेचेगा एवं **घरेलु मुद्रा** को खरीदेगा। इस प्रकार, विदेशी मुद्रा रिजर्व के वाह्य प्रवाह का अर्थ है मुद्रा–पूर्ति के विदेशी घटक (F) और **इसलिए** घरेलू मुद्रा पूर्ति (Ms) में कमी। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) के बराबर (M_d=M_S) नहीं हो जाता तथा भुगतान शेष(B= 0) में पुनः संतुलन स्थापित नहीं हो जाता। इस प्रकार, भुगतान शेष घाटा या अतिरेक एक अस्थायी धारणा है जो दीर्घकाल में स्वतः ठीक हो जाता है।

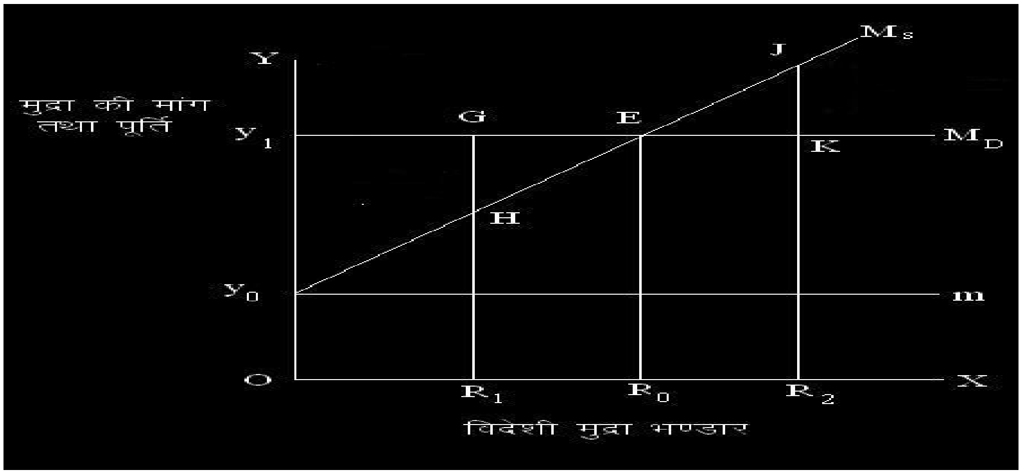

चित्र 14.7A

चित्र 14.7A में, M_D स्थिर मुद्रा मांग वक्र है और M_S मुद्रा पूर्ति वक्र है। क्षैतिज रेखा m मौद्रिक आधार को व्यक्त करती है जो घरेलू साख D का गुणज है एवं स्थिरांक है। यह मुद्रा पूर्ति का घरेलू अवयव है। यही कारण है कि M_S वक्र y_0 बिन्दु से प्रारम्भ होता है।

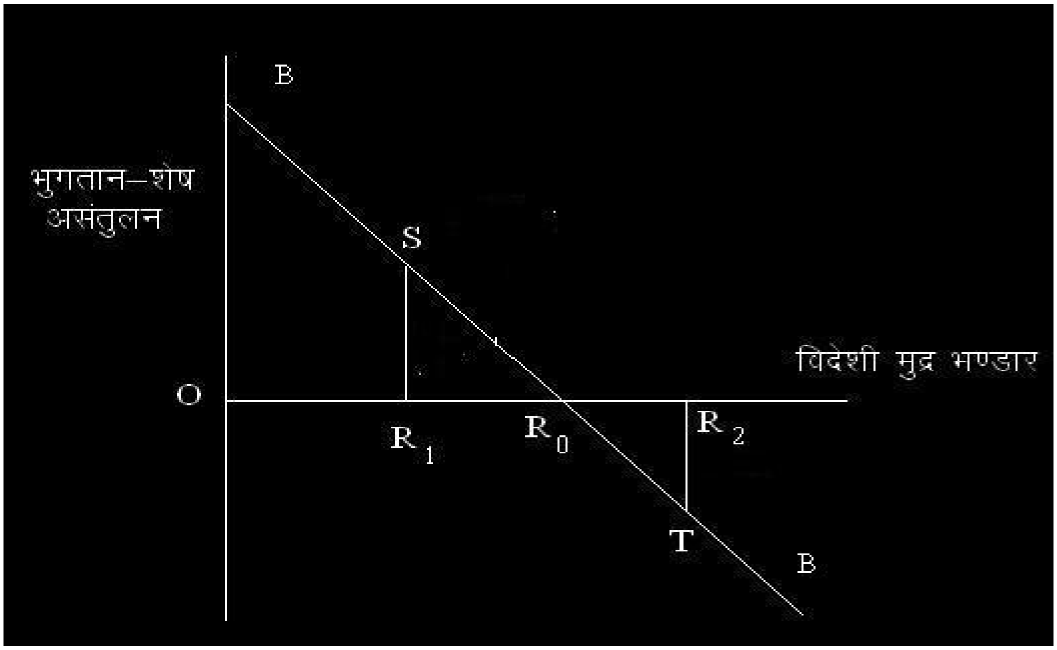

चित्र 14.7B

M_S और M_D वक्र E बिन्दु पर एक दूसरे को काटते हैं जहाँ देश का भुगतान शेष संतुलन में होता है और उसका विदेशी मुद्रा रिजर्व OR_0 होता है। चित्र 14.7B में वक्र BB भुगतान असंतुलन वक्र है जो भाग 14.7A के M_S और M_D वक्र के बीच अनुलंब अंतर के रूप में खींचा गया है। चित्र 14.7B में R_o, 14.7A में E बिन्दु **से संगत** है, जहाँ भुगतान शेष में कोई असंतुलन नहीं है।

यदि $M_S<M_D$ हो तो GHभुगतान शेष अतिरेक होता है। चित्र 14.7A में संतुलन बिन्दु E **के बायीं ओर** मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) **से अधिक है. जब** मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) **से** GH **के बराबर अधिक है** इससे विदेशी मुद्रा रिजर्वों का अंतर्वाह (inflow) होता है **जिससे** विदेशी विनिमय रिजर्व (मुद्रा भंडार) बढ़कर OR_1 से OR_0 **हो जाता** हैं **इससे** मुद्रा पूर्ति बढ़ती हैं और **अंततः** E बिन्दु पर भुगतान शेष संतुलन में होता है। दूसरी ओर, यदि $M_S>M_D$ हो तो JKJK के बराबर भुगतान शेष में घाटा होता है। **जिससे** विदेशी मुद्रा रिजर्व का वाह्य प्रवाह होता है **और वह कम होकर** OR_2 से OR हो **जाती** है **इससे** मुद्रा पूर्ति में कमी होती है और E बिन्दु पर भुगतान शेष पुनः संतुलन **में आ जाता** है। 14.7A में **परिवर्तन के अनुरूप** चित्र 14.7B में इसी प्रक्रिया की विवेचना की

गई है जहाँ भुगतान शेष असंतुलन स्वतः ठीक हो जाता है। चित्र 14.7B में भुगतान शेष अतिरेक R_1S_1= GH **तथा** घाटा R_1T= JK बराबर होते हैं।

इस प्रकार, एक देश के भुगतान संतुलन में अतिरेक का कारण है–देश के अंदर मुद्रा की मांग की अपेक्षा राष्ट्र के मौद्रिक आधार के घेरलू घटक (D) में धीमी वृद्धि है। जबकि भुगतान–संतुलन में घाटा का कारण है मुद्रा की मांग की अपेक्षा मुद्रा–पूर्ति के घरेलू घटक की पूर्ति में तेज वृद्धि या अधिक होना जिससे मौद्रिक रिजर्व का देश से बर्हिप्रवाह होने लगता है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत, इस प्रकार, दीर्घकाल में एक देश को अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है। दीर्घकाल में, देश के मुद्रा–पूर्ति का आकार भुगतान–संतुलन के संतुलन के साथ संगत होगा।

इस प्रकार, एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा मांग के आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण मुद्रा–पूर्ति **द्वारा** संतुष्ट नहीं कर पाते हैं। जबकि भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा–पूर्ति के इस आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण खत्म या सुधार नहीं करते हैं। दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे के स्वतः ही ठीक हो जाने की प्रवृत्ति होती है। यह विदेशी मुद्रा के अंर्तप्रवाह या बर्हिप्रवाह के द्वारा स्वतः ही अतिरेक या घाटे को ठीक कर देगा। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत दीर्घकाल में एक देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है।

14.6.4 परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम

परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत भुगतान–शेष का असंतुलन तुरंत ही बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा या रिजर्वों के प्रवाह के विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तनों के द्वारा ठीक हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत एक राष्ट्र का अपनी मुद्रा–पूर्ति तथा मौद्रिक नीति पर पूरा नियंत्रण होता है। घरेलू कीमतों में परिवर्तन होने पर विनिमय दरों में भी परिवर्तन होता है और परिणाम स्वरूप भुगतान–संतुलन के अंसतुलन में स्वतः समायोजन की प्रक्रिया शुरु होती है।

मान लें कि मौद्रिक अधिकारी मुद्रा पूर्ति बढ़ाता है **और** मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की मांग (M_S>M_D) **से अधिक है** और भुगतान शेष में घाटा होता है। वे लोग जिनके पास अतिरिक्त नकद शेष है, अधिक वस्तुएँ खरीदते हैं जिससे घरेलू और आयातित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती है। इससे घरेलू करेंसी **में** मूल्यह्रास (Depreciation) और विनिमय दर में वृद्धि होती है। **फलस्वरूप** मुद्रा की मांग बढ़ती है **जब तक की** मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की मांग **के बराबर न हो जाय और** भुगतान शेष **संतुलन इ=में न ही जाय**। इसके विपरीत स्थिति तब उत्पन्न होगी जब M_D>M_S हो तो कीमतों में कमी और घरेलू करेंसी में मूल्यवृद्धि (Appreciatiion) होता है जो स्वतः मुद्रा की आधिक्य मांग को समाप्त कर देता है। विनिमय दर तब तक गिरती है जब तक M_D=M_S एवं विदेशी मुद्रा रिजर्वों में किसी अन्तर्प्रवाह के बिना भुगतान शेष संतुलन में न हो जाए।

इस प्रकार, यदि अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति के कारण भुगतान–संतुलन में घाटा होता है तो यह स्वतः देश की मुद्रा में मूल्य ह्रास लाएगा। जिसके कारण कीमतों और इसलिए मुद्रा

की मांग में वृद्धि होती है जिससे कि अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति खप जाती है और भुगतान–संतुलन का घाटा समाप्त हो जाता है। दूसरी ओर यदि मुद्रा की अतिरिक्त मांग के कारण भुगतान–संतुलन में अतिरेक हो तो यह ही देश की करेन्सी में अधिमूल्यन लाएगा। इससे घरेलू कीमतों में कमी आएगी और भुगतान संतुलन का अतिरेक भी समाप्त हो आएगा।

स्पष्ट है कि स्थिर विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन मुद्रा या रिजर्वों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह का परिणाम है जबकि परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह के उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। यह विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तन के द्वारा तुरंत स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसलिए राष्ट्र का अपनी मुद्रा पूर्ति पर नियंत्रण रहता है जबकि स्थिर विनिमय दरों की स्थिति में देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।

14.6.5 आलोचना

1. जॉनसन **के अनुसार** "बेची गई समान वस्तुओं के लिए एक कीमत नियम" मान्य **नहीं** है। **क्यूंकि** जब उत्पादन के साधनों को गैर–व्यापाररत वस्तुओं को उत्पादित करने वाले क्षेत्रों में लगाया जाता है तो गैर–व्यापाररत वस्तुओं की अधिक मांग, व्यापाररत वस्तुओं की घटी हुई पूर्ति में **समायोजित हो** जाएगी। इससे आयात बढ़ेंगे और सभी व्यापाररत वस्तुओं के लिए एक कीमत के नियम में बाधा पड़ेगी।

   बाज़ार अपूर्णताओं के कारण भी अनेक **बाज़ारों** में एक कीमत के नियम को सही ढंग से कार्य करने में विध्न पड़ता है। फिर व्यापारियों द्वारा विदेशी कीमतों और व्यापार नियमों के बारे में सूचनाओं के अभाव के कारण कीमत पिभेदक हो सकते हैं।

2. मुद्रा की मांग दीर्घकाल में स्थिर हो **सकती** है **परन्तु** अल्पकाल में नहीं**। इसलिए** आलोचक मुद्रा की स्थिर मांग की मान्यता से सहमत नहीं
3. आलोचकों **के अनुसार** स्थिर विनिमय दरों के अंतर्गत मुद्रा प्रवाहों को निष्फल करना संभव नहीं है। वे तर्क देते हैं कि करेंसी प्रवाहों का निष्फल करना पूरी तरह से संभव है यदि मुद्रा शेषों और बांडो के सापेक्ष महत्व के बारे में निजी क्षेत्र अपने सम्पत्ति पोर्टफोलियों की संरचना को समायोजित करने के लिए इच्छुक है, अथवा यदि सार्वजनिक क्षेत्र ऊँचा बजट घाटा करने को तैयार है, जब भी उसे भुगतान शेष घाटे का सामना करना पड़ता है।
4. मौद्रिक धारणा किसी देश के भुगतान शेष और उसकी मुद्रा पूर्ति के बीच प्रत्यक्ष संबंध पर आधारित है। कई अर्थशास्त्रियों को इसमें संदेह है। इन दोनों के बीच संबंध भुगतान शेष में घाटा या अरितेक होने पर मौद्रिक अधिकारी द्वारा विदेशी मुद्रा रिजर्वों के अन्तर्प्रवाहो एवं वाह्यप्रवाहों को निष्प्रभाव करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके लिए बाहरी प्रवाहों के निष्फलन की कुछ आवश्यकता होती है। परन्तु यह वित्तीय बाजारों के वैश्वीकरण (globalisation) के कारण संभव नहीं होता है।

5. यह धारणा भुगतान शेष संतुलन लाने में घरेलू साख की भुमिका पर जोर देती है और आर्थिक नीति उपायों की उपेक्षा करती है। प्रो0 क्यूरी (Currie) के अनुसार, भुगतान शेष संतुलन व्यय बदलावकारी (expediture-switch) से कार्य करती है।
6. मौद्रिक धारणा भुगतान शेय में स्वतः ठीक होने वाले दीर्घकालीन संतुलन से संबंधित होती है। यह धारणा अवास्तविक है क्योंकि यह अल्पकाल की व्याख्या करने में असफल है जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था नए संतुलन पर पहुंचने के लिए गुजरती है।
7. पूर्ण रोजगार की मान्यता **वास्तविक** नहीं **है** ।

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

9- स्थिर विनिमय दरों के अंतर्गत भुगतान संतुलन **के समयोजन की संक्षिप्त** विवेचना कीजिए।

10- मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों **की संक्षिप्त** विवेचना कीजिए।

11-भुगतान संतुलन के सन्दर्भ में मुद्रावादियों के दृष्टिकोण का वर्णन कीजिये .

12-भुगतान संतुलन **के समयोजन** के सन्दर्भ में मौदिक उपागम का संक्षिप्त वर्णन कीजिये.

13-परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम की समीक्षा कीजिये.

14-स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत मौद्रिक उपागम की समीक्षा कीजिये.

.

बहुविकल्पीय प्रश्नः

19. परिवर्तनशील विनिमय दरें विदेशी विनिमय बाजार में भुगतान–संतुलन का घाटा स्वतः ही दूर हो जाता है
(क) विदेशी विनिमय दर के मूल्य में वृद्धि तया घरेलू मुद्रा के मूल्य में मूल्य ह्रास के द्वारा
(ख) विदेशी विनिमय दर के मूल्य में मूल्य ह्रास तया घरेलू मुद्रा के मूल्य में वृद्धि के द्वारा
(ग) विदेशी विनिमय दर तया घरेलू मुद्रा के मूल्य में मूल्य ह्रास के द्वारा

(घ) विदेशी विनिमय दर तया घरेलू मुद्रा के मूल्य में मूल्य में वृद्धि के द्वारा

20. विदेशी विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने के लिए सरकार भुगतान–संतुलन का घाटा को समाप्त करने के लिए
क) अपने पहले के विदेशी मुद्रा भण्डार में कमी करेगी,
(ख) दूसरे देशों या संस्थानों से उधार लेगी,
(ग) सोने का निर्यात करेगी।

(घ) **उपरोक्त सभी**

21- भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट ळे
(क) राजकोषीय नीति के
(ख) मौद्रिक नीति के
(ग) **उपरोक्त दोनों** के
(घ) **उपरोक्त में से कोई नही**

22. भुगातन–संतुलन में लगातार घाटा होता है तो
क) विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी
(ख) विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में वृद्धि आएगी
(ग) विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में वृद्धि आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी
(घ) विदेशी मुद्रा भण्डार (F) में कमी आएगी, और इससे मुद्रा पूर्ति M में भी कमी आएगी

23. मुद्रा–रूप मुद्रा–शेषो को फलन माना गया है
क) **बचत का**
(ख) **वास्तविक** राष्ट्रीय आय का
(ग) मुद्रा–रूप राष्ट्रीय आय का
(घ) **निवेश** का

24. यदि मुद्रा की मांग (Md) मुद्रा की पूर्ति (Ms) **से अधिक है तो**
क) भुगतान शेष अतिरेक होगा।
(ख) विदेशी मुद्रा रिजर्व(मुद्रा भंडार) का अन्तःप्रवाह (inflow) होगा
(ग) घरेलू मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होगा
(घ) **उपरोक्त सभी**

सत्य व असत्य :

27. मौद्रिक नीति के भुगतान–संतुलन पर पड़ने वाले प्रभाव बिल्कुल सीधे–सीधे और स्पष्ट नहीं है।

28. परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंतर्गत मौद्रिक प्राधिकरण का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

29. भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने मे राजकोषीय उपायों की प्रभाविता निश्चित है ।

30. भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर करने में मौद्रिक नीति का प्रयोग करना उचित होगा।

31. मुद्रावादियों के अनुसार भुगतान शेष घाटा या अतिरेक एक अस्थायी धारणा है जो दीर्घकाल में स्वतः ठीक हो जाता है।

32. एक देश के भुगतान संतुलन में अतिरेक का कारण है–देश के अंदर मुद्रा की मांग की अपेक्षा राष्ट्र के मौद्रिक आधार के घेरलू घटक (D) में **तेज** वृद्धि है।
33. स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत, दीर्घकाल में एक देश को अपनी मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण होता है।
34. भुगतान–संतुलन में घाटा के कारण है मौद्रिक रिजर्व का देश से बर्हिप्रवाह होने लगता है।
35. स्थिर विनिमय दरों के अंर्तगत भुगतान–संतुलन का असंतुलन मुद्रा या रिजर्वों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह का परिणाम है
36. यदि अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति के कारण भुगतान–संतुलन में घाटा होता है तो यह स्वतः देश की मुद्रा में मूल्य वृद्धि लाएगा।

१४.९ सारांश

आधुनिक मुद्रावादी दृष्टिकोण परम्परागत प्रतिष्ठित सिद्धान्त का ही विस्तार है। मुद्रावादी आधुनिक अर्थशास्त्री स्टॉक–प्रवाह समायोजन की एक आधुनिक संकल्पना के माध्यम से मौद्रिक संतुलन की प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार, मुद्रा–पूर्ति की अधिक मांग का अर्थव्यवस्था के समग्र मांग और व्यय पर सीधा प्रभाव पड़ता है और फलस्वरूप भुगतान–संतुलन प्रभावित होता है।

भुगतान शेष का मौद्रिक सिद्धान्त समग्र भुगतान शेष की व्याख्या है। इस सिद्धान्त के अनुसार, भुगतान शेष घाटा सदैव और सभी स्थानों पर एक मौद्रिक तत्व है। इसलिए यह केवल मौद्रिक उपायों से ही ठीक किया जा सकता है। भुगतान–संतुलन का घाटा और अतिरेक मूलतः अर्थव्यवस्था में मुद्रा के वास्तविक ऐच्छिक स्टॉक (actual desired stocks) के समायोजन की प्रक्रिया है। **स्थिर विनिमय दर प्रणाली** के अंतर्गत, जब अतिरिक्त मुद्रा–पूर्ति, भुगातन–संतुलन में घाटे का मुख्य कारण हो तब यह आवश्यक हो कि उचित मौद्रिक नीति के माध्यम से मुद्रा–पूर्ति को नियंत्रित किया जाए या फिर आय या ब्याज दर में परिवर्तन की नीति से मुद्रा की मांग को बढ़ाया जाए जिससे कि मुद्रा की अतिरिक्त पूर्ति को खपाया जा सके और भुगतान–संतुलन के घाटे को खत्म किया जा सके। एक **परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली** के अंतर्गत मुद्रा के वास्तविक स्टॉक में कमी जो कि विनिमय दर के ह्रास के कारण होती है, से भुगतान–संतुलन का असंतुलन (घाटा) के स्वतः ही दूर होने की प्रवृत्ति होगी।

इस प्रकार मौद्रिकवादियों का यह मानना है कि भुगतान–संतुलन का असंतुलन **एक अस्थायी परिघटना है जो की मुद्रा बाज़ार में** असंतुलन के कारण बनी रहती है। एक देश के भुगतान–संतुलन में अतिरेक मुद्रा मांग में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा मांग के आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण मुद्रा–पूर्ति **से** संतुष्ट नहीं कर पाते हैं। जबकि भुगतान संतुलन का घाटा मुद्रा–स्टॉक की पूर्ति में आधिक्य का परिणाम है क्योंकि मुद्रा–पूर्ति के इस आधिक्य को घरेलू मौद्रिक प्राधिकरण खत्म या सुधार नहीं करते हैं। दीर्घकाल में भुगतान–संतुलन के अतिरेक या घाटे के स्वतः ही ठीक हो जाने की प्रवृत्ति होती है। यह विदेशी मुद्रा के अंर्तप्रवाह या बर्हिप्रवाह के द्वारा स्वतः ही अतिरेक या घाटे को ठीक कर देगा। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत दीर्घकाल में एक देश का अपनी

मुद्रा–पूर्ति पर नियंत्रण नहीं होता है। परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत भुगतान–शेष का असंतुलन तुरंत ही बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा या रिजर्वों के प्रवाह के विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तनों के द्वारा ठीक हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली के अंर्तगत एक राष्ट्र का अपनी मुद्रा–पूर्ति तथा मौद्रिक नीति पर पूरा नियंत्रण होता है। घरेलू कीमतों में परिवर्तन होने पर विनिमय दरों में भी परिवर्तन होता है और परिणाम स्वरूप भुगतान–संतुलन के अंसतुलन में स्वतः समायोजन की प्रक्रिया शुरु होती है।

१४.१० शब्दावली

विनिमय दर– विनिमय दर का तात्पर्य है, वह विदेशी मुद्रा जो कि विश्व के सभी व्यापार करने वाले देशों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकार्य हो। विदेशी विनिमय की कीमत या विदेशी विनिमय दर घरेलू मुद्रा की वह मात्रा है जो कि विदेशी विनिमय की प्रति इकाई के बदले दी जाती है। विदेशी विनिमय दर, विदेशी मुद्रा की घरेलू मुद्रा के रूप में कीमत है। किसी भी वस्तु की कीमत की तरह विदेशी मुद्रा की कीमत या विनिमय दर, विदेशी विनिमय की मांग तथा विदेशी विनिमय की पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है।

परिवर्तनशील विनिमय दर – परिवर्तनशील विनिमय दर विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है तथा इसमें मौद्रिक प्राधिकरण का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

स्थिर विनिमय दर – जब विदेशी विनिमय बाजार में सरकार या राज्य का पूरा हस्तक्षेप रहता है बाजार विनिमय दर एक दी हुई संतुलन स्तर पर स्थिर रहती है। यदि मांग और पूर्ति की शक्तियाँ इस संतुलन को बिगाडती हैं या सट्टेबाजी की गतिविधियाँ इस संतुलन को बिगाडती है तो सरकार इसमे हस्तक्षेप करती है और इस संतुलित विनिमय दर को बनाए रखती है। सरकार विदेशी विनिमय के क्रय या विक्रय के माध्यम से ऐसा करती है। **इसे स्थिर विनिमय दर प्रणाली कहते हैं ।**

मौद्रिक नीति- मौद्रिक नीति, मुद्रा–पूर्ति (M_s) तथा ब्याज दर (i) में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है।

राजकोषीय नीति - राजकोषीय नीति सरकारी व्यय (G) तथा करों (T) के द्वारा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालती है।

ब्याज दर – ब्याज–धारीत प्रतिभूतियों की जगह निष्क्रिय मुद्रा–शेषों के रूप में नकदी रखने की लागत है।

१४.११ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

7. क 2.घ 3.ख 4.क 5.ग 6.घ

सत्य व असत्य :

9. असत्य 2.सत्य 3.असत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.असत्य 7.असत्य 8.सत्य 9.सत्य 10. असत्य

१४.१२ संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

१४.१३ उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

१४.१४ निबंधात्मक प्रश्न

1. भुगतान–शेष के असंतुलन को दूर करने में राजकोषीय उपायों की अपेक्षा मौद्रिक उपाय अधिक प्रभावी और निश्चित है, विवेचना कीजिए।
2. भुगतान–संतुलन की समस्या को हल करने हेतु मौद्रिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. भुगतान–शेष के घाटे को समाप्त या कम करने में व्यय परिवर्तनकारी उपायों की विवेचना कीजिए।
4. भुगतान–संतुलन **के सन्दर्भ में मुद्रवादियों के दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिये.**

****

इकाई- 15 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र सिद्धांत

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र

15.4 मण्डल का साधन गतिशीलता सिद्धान्त

15.5 मैककिनन का खुली अर्थव्यवस्था सिद्धान्त

15.6 केनन का वस्तु विविधीकरण सिद्धान्त

15.7 मैगनीफिको का स्फीति की प्रवृत्ति सिद्धान्त

15.8 बुड का लागत–लाभ सिद्धान्त

15.9 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का सामान्य सिद्धान्त

15.10 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र **के लाभ**

15.11 सारांश

15.12 शब्दावली

15.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सुची

15.15 उपयोगी / सहायक ग्रन्थ

15.16 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के **खंड तीन "भुगतान संतुलन "** से सम्बंधित यह १५ वीं इकाई है. इससे पहले की इकाईयों में आपने भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में परम्परागत उपायों की भूमिका विशेष रूप से अवमूल्यन के भुगतान संतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों और मौद्रिक उपायों के बारे में अध्ययन किया. अध्ययन के पश्चात् भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में व्यय परिवर्तनकारी तथा व्यय बदलावकारी नीति के महत्व और उनके कार्यकरण को समझ गए होंगे. आप जान गए होंगे कि भुगतान संतुलन के असंतुलन को दूर करने में मौद्रिक उपागम की क्या भूमिका है ।

पहले की इकाई में आपने देखा कि स्थिर विनिमय दरों के अंतर्गत भुगतान–संतुलन का असंतुलन मुद्रा या रिजर्वों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह का परिणाम है **इसलिए स्थिर** विनिमय दरों की स्थिति में देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। जबकि परिवर्तनशील विनिमय दरों के अंतर्गत भुगतान–संतुलन का असंतुलन बिना अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रवाह के उत्पन्न होता है और समाप्त होता है। यह विनिमय दरों में स्वतः परिवर्तन के द्वारा तुरंत स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसलिए राष्ट्र का अपनी **मुद्रा पूर्ति पर नियंत्रण रहता है.** इस इकाई में भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने के लिए इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के सिद्धान्त **का अध्ययन करेंगे.** इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त "परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दर" बहस का ही एक विस्तार है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र, इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के विभिन्न सिद्धान्त और उसके महत्व के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेगें.

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के संबंध में जान पाएंगे.
- इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के सिद्धान्तो को समझ सकेंगे.
- इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के अंतरिक और बाह्य असंतुलन को दूर करने में उसके महत्त्व तथा कार्यकरण को समझ सकेंगे.

15.3 इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र (Optimum Currency Area)

भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने के लिए इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त कई अर्थशास्त्रियों द्वारा दिया गया। मीड के अनुसार इष्टतम मुद्रा क्षेत्र विश्व के देशों के भुगतान–संतुलन के संतुलन की समस्या के लिए सबसे बेहतर दीर्घकालिक

समाधान प्रस्तुत करता है। सबसे पहले मण्डल ने इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त दिया। बाद में मेकिनन, पीटर केनेन, मैगनीफिको और वुड ने भी अपने सिद्धान्त दिए।

इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त "परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दर" बहस का ही एक विस्तार है। इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का अर्थ है एक सांझा मुद्रा क्षेत्र या एक क्षेत्र जिसमे स्थिर विनिमय दरें क्रियाशील हों। दूसरे शब्दों में देशों का एक समूह एक सांझा मुद्रा –क्षेत्र (Common Currency Area) बना सकते हैं

i. या तो सांझा मुद्रा के चलन के द्वारा , जो कि सभी सदस्य देशों के राष्ट्रीय मुद्राओं का स्थान लेगी या फिर

ii. सदस्य देशों के बीच स्थिर विनिमय दर प्रणाली लागू करके तथा विश्व के शेष देशों, जो कि उस सांझा मुद्रा क्षेत्र से बाहर हों, में परिवर्तनशील विनिमय दर लागू करके।

'इष्टतम' का अर्थ यहाँ अस्पष्ट है। मण्डल के अनुसार 'इष्टतम' का अर्थ है पूरे सांझा मुद्रा–क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार और कीमत को स्थिर करने की क्षमता। इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बरोजगारी तथा भुगतान–संतुलन का असंतुलन पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। और यह सब बिना सरकारी नीतियों के हस्तक्षेप के स्वतः होता है। केनन और मैकिनन भी मुद्रा–क्षेत्र के इष्टतम होने की यही परिभाषा देते है। ये अर्थशास्त्री एक क्षेत्र के अंतर्गत सांझा (कॉमन) मुद्रा लाने के लाभ या निहितार्थों पर विचार नही करते हैं, बल्कि वे सिर्फ उन स्थितियों या दशाओं की चर्चा करते हैं जिसके अंतर्गत एक मुद्रा क्षेत्र इष्टतम दशाओं को प्राप्त कर सके अर्थात स्वतः ही बेरोजगारी तथा भुगतान–संतुलन के घाटे को दूर कर सके। इस अर्थ में सांझा क्षेत्र, सांझा मुद्रा क्षेत्र की बजाए एक विनिमय दर संघ बन जाता है। बाद में मैगनीफिको, वुड और फ्लेमिंग आदि अर्थशास्त्रियों ने इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का दूसरे अर्थ में प्रयोग किया। इन अर्थशास्त्रियों के सांझा मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्त मुद्रा क्षेत्र में आन्तरिक और वाह्य संतुलन लाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप पर निर्भर करते हैं। ये सिद्धान्त एक ऐसे वातावरण उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं जिसमें राजकोषीय और मौद्रिक नीतियाँ विनिमय दर में परिवर्तन न होने की दशा में आन्तरिक तथा वाह्य संतुलन ला सके।

इस प्रकार इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र ऐसे देशों का समूह है जिन्होंने अपनी मुद्राओं को एक स्थिर विनिमय प्रणाली से स्थायी रूप से जोड़ दिया है। परन्तु सदस्य देशों के अतिरिक्त शेष विश्व से, इन देशों की मुद्राओं की दर परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली से जुड़ी होती है। एक साझा मुद्रा क्षेत्र एक सांझा मुद्रा द्वारा जुड़ा हुआ होता है। जैसे यूरोपीय देशों का समूह (EC) 'यूरो' (EURO) से जुड़ा है।

15.4 मण्डल का साधन गतिशीलता सिद्धान्त

सबसे पहले मंडल ने साँझा मुद्रा क्षेत्र के सम्बन्ध में चर्चा शुरू की और इष्टतम साँझा मुद्रा क्षेत्र के लिए नियमों का निर्धारण किया.१९६१ में मंडल ने साधन गतिशीलता

सिद्धान्त **देते हुए** साधन गतिशीलता **के रूप में मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता** (optimality) **को परिभाषित करते हैं.**

माना दो देश हैं, A और B। दोनों ही देशों में प्रारम्भ में संतुलन हैः आन्तरिक और बाहरी संतुलन दोनों। यानि दोनों ही देशों में पूर्ण रोजगार है और भुगतान–सतुलन भी साम्य में है।

यदि देश A के निर्यातों के लिए देश B में कमी हो जाती है और देश B आयात प्रतिस्थाापन की नीति अपनाता है तो देश A में निर्यात उद्योंगों में मंदी से बेरोजगारी उत्पन्न होगी और भुगतान संतुलन का **घाटा होगा** जबकि देश B में अधिशेष होगा और श्रम की कमी होगी, अति–पूर्णरोजगार की स्थिति होगी। इस प्रकार दोनों ही देशों में आन्तरिक और वाह्य असंतुलन उत्पन्न हो जाएगा।

इस असंतुलन को दूर करने का **दो तरीका हो सकता है -**

i. एक तरीका परिवर्तनशीलन विनिमय दरों का है। परिवर्तनशील दरों की स्थिति में देश A में मुद्रा का मूल्यह्रास होगा तथा देश B में मुद्रा का अधिमूल्यन होगा। जब तक कि देश A का भुगतान शेष का घाटा तथा देश B का अतिरेक समाप्त नहीं हो जाता है और साथ ही आन्तरिक संतुलन नहीं स्थापित हो जाता है। परन्तु इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के अंर्तगत विनिमय दर में परिवर्तनों के माध्यम से संतुलन ले आने के तरीके को मण्डल नकार देते हैं।

ii. इस असंतुलन को दूर करने का दूसरा तरीका है उचित राजकोषीय और मौद्रिक नीति का प्रयोग। परन्तु इस तरीके में भुगतान–संतुलन के समायोजन **का भार** घरेलू कारकों पर होता है। देश A, भुगतान–संतुलन के घाटे को कम करने के लिए संकुचनकारी मौद्रिक और राजकोषीय नीति का सहारा लेगा जिससे घरेलू बरोजगारी बढ़ेगी। जबकि देश B अपने अतिरेक को खत्म करने के लिए विस्तारकारी राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों का सहारा लेगा जिससे घरेलू स्फीति बढ़ेगी। इस प्रकार अन्तरिक असंतुलन दोनों ही देशों में बढता है। इसलिए यह रास्ता भी स्वीकार्य नहीं है।

इसलिए मण्डल इन नीतियों के माध्यम से सरकारी हस्तक्षेप को अपने माडल में बिल्कुल स्थान नहीं देते है।

मण्डल के मुद्रा–क्षेत्र सिद्धान्त में न तो विनिमय दर की स्थिरता और न ही सरकारी हस्तक्षेप के लिए कोई जगह है। मण्डल के अनुसार दोनों देशों को एक मुद्रा–क्षेत्र बनाना चाहिए। और इस प्रकार दोनों ही देशों के उत्पादन के संसाधनों की स्वतन्त्र गतिशीलता सुनिश्चित कर देनी चाहिए, अर्थात् श्रम और पूँजी की स्वतंत्र गतिशीलता दोनों देशों के मध्य होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में दोनों ही देशों में आन्तरिक और वाह्य संतुलन स्वतः स्थापित हो जाता है।

पूर्ण संसाधन गतिशीलता की स्थिति में देश A में निर्यातों की कमी के कारण निर्यात–उद्योग से बेरोजगार हुए संसाधन रोजगार की तलाश में देश B में जायेंगे जहाँ आयात प्रतिस्थापन उद्योग में उन्हें काम मिलेगा और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि देश A की बेरोजगारी और देश B की श्रम की कमी **समाप्त नहीं हो जाती है. इस प्रकार, दोनों ही** देशों में सिर्फ स्वतंत्र साधन गतिशीलता के कारण आन्तरिक संतुलन स्वतः ही स्थापित हो जाता है।

इसी प्रकार, दोनों देशों में वाह्य संतुलन भी स्वतः ही स्थापित हो जाएगा। जब देश B में देश A के संसाधनों की मात्रा बढ़ेगी तो देश B में देश A के उत्पादों की मांग भी बढ़ेगी अर्थात् देश A के निर्यात तथा देश B के आयात बढ़ेगे, जिससे देश A का भुगतान–संतुलन का घाटा तथा देश B का आधिक्य घटेगा और अंततः भुगतान–संतुलन साम्य में होगा।

इस प्रकार मण्डल के अनुसार इष्टतम मुद्रा क्षेत्र पूर्ण रोजगार और भुगतान–संतुलन में संतुलन के साथ स्वतः ही आन्तरिक और वाह्य संतुलन स्थापित कर देता हैं, इसके लिए न तो मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के माध्यम से सरकारी हस्तक्षेप की जरूरत होती है ओर न ही परिवर्तनशील विनिमय दरों के नीति की। यह संतुलन सिर्फ सदस्य देशों के बीच संसाधनों की पूर्ण गतिशीलता के कारण स्वतः ही आता है।

मण्डल ने अपने सिद्धान्त का निर्माण इस मान्यता पर किया है कि प्रारम्भिक भुगतान–संतुलन का असंतुलन विभिन्न देशों के बीच इकाई साधन लागतों की भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। यदि अधिक लागत वाले देशों से कम लागत वाले देशों की ओर सिर्फ साधनों की ही गतिशीलता हो तो लागत का यह अंतर और संतुलन समाप्त हो जाएगा। मण्डल इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के अन्तर्गत साधन गतिशीलता को विनिमय दर समायोजन के स्थानापन्न के रूप में देखते हैं। साथ ही यह मुद्रा–क्षेत्र के सभी देशों में आन्तरिक तथा वाह्य संतुलन की गारण्टी देता है।

आलोचनाः

परन्तु यदि वाह्य असंतुलन का कारण साधन कीमतों का अंतर न हो, तो मण्डल का सिद्धान्त बेकार साबित होता है। और यदि मान भी लिया जाय कि एक देश के निर्यातों की आधिक लागत और कीमत के कारण भुगतान–संतुलन में असंतुलन उत्पन्न होता है तो भी समस्या बनी रह सकती है क्योंकि श्रम और पूँजी देशों के बीच पूरी तरह से गतिशील नहीं होते हैं।

मण्डल के मॉडल में भुगतान–संतुलन समायोजन की प्रक्रिया में एक बड़ी बाधा मजदूरी और कीमतों की नीचे की तरफ बेलोचशीलता है। विशेष रूप से श्रम–संघों के दबाव के कारण मजदूरी में कमी ले आ पाना संभव नहीं होता। इसलिए कीमतों में भी कमी संभव नहीं होता। इसलिए देश A से देश B में में श्रमिकों के पलायपन के बावजूद देश A में मजदूरी में कमी नहीं हो सकती है और इसलिए दोनों देशों के बीच लागत अन्तर बराबर रह सकता है। वास्तव में मण्डल ने मजदूरी तथा कीमतों के निर्धारण में

स्वतंत्र बाजार के कार्यकरण की मान्यता ली है जो कि व्यवहार में पूरी तरह लागू नहीं हो पाता है।

मण्डल के सिद्धान्त के पूरी तरह से प्रभावशील होने के लिए यह भी आवश्यक है कि संसाधन गतिशीलता के साथ–साथ सभी उद्योगों में पूँजी–श्रम अनुपात भी समान हो जो कि व्यवहार में पाया जाना सम्भव नहीं है। देश B में आयात–प्रतिस्थापन उद्योगों में श्रमिकों की मांग देश A में बेरोजगार श्रमिकों की संख्या से कम हो सकती है, क्योंकि दोनों देशों में दोनों उद्योगों में उत्पादन–फलन भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

आर फिर सभी श्रम इकाईयाँ योग्यता और क्षमता में समान नहीं होती है। इसलिए संसाधन गतिशीलता से भी लागत अन्तर समान नहीं हो सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि पूँजी का दो देशों के मध्य चलन मुख्यतः पूँजी के प्रतिफल के ऊपर निर्भर करता है न कि सिर्फ पूँजी का मांग पर। साथ ही निवेश के पूरे वातावरण तथा दूसरों देश में निवेश करने के जोखिम पर भी निर्भर करता है। इसलिए पूँजी का दो देशों के बीच चलन बहुत सुगम और अवरोध रहित नहीं है।

मण्डल का सिद्धान्त स्थैतिक सिद्धान्त है और समय–तत्व को अपने विश्लेषण में सम्मिलित नहीं करता है। वास्तव में एक देश से दूसरे देश में संसाधनों के चलन में काफी समय लगता है।

मण्डल मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि प्रारम्भ में दोनों ही देशों में पूर्ण रोजगार है और भुगतान–संतुलन में भी संतुलन है। परन्तु यदि दोनों ही देशों में श्रम और/या पूँजी बेरोजगार हो तो मण्डल का सिद्धान्त लागू नहीं हो पाता है।

अन्त में, यह भी कहा जा सकता है कि संसाधनों की गतिशीलता क्षेत्रीय आयोजन तथा नीति निर्माण का आधार होती है। इसलिए इसे बढ़ावा नहीं देना चाहिए। वस्तुतः संसाधनों की गत्यात्मक गतिशीलता में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए मण्डल का भी मानना था कि करेन्सी क्षेत्र अपने सदस्य देशों के मध्य बेरोजगार और स्फीति दोनों को नहीं रोक सकता है।

इस प्रकार, संसाधन गतिशीलता मुद्रा–क्षेत्र में आन्तरिक तथा वाह्य असंतुलनों के सभी–प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम नहीं है। मण्डल के सिद्धान्त के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिन देशों के मध्य संसाधन गतिशीलता आसान और सम्भव हो वे देश मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में सबसे उचित स्थिति में होंगे। इस प्रकार मण्डल एक मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता के लिए संसाधन गतिशीलता को एक मापदण्ड के रूप में स्थापित करते हैं। बाद के लेखकों ने मुद्रा–क्षेत्र की अनुकूलता के लिए अलग मापदण्ड निर्धारित किए।

15.5 मैककिनन का खुली अर्थव्यवस्था सिद्धान्त

मैककिनन इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में अत्यधिक खुली अर्थव्यवस्थाओं और आंतरिक कीमत स्थिरता को अधिक महत्व देते हैं। मैककिनन की मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता की दशाएँ मण्डल के समान हीं है, जो कि इस क्षेत्र के आन्तरिक और वाह्य संतुलन प्राप्त कर लेने

की इसकी क्षमता पर निर्भर करती है। मण्डल के विपरीत, मैककिनन मुद्रा–क्षेत्र के उद्देश्य के रूप में भुगतान–संतुलन के साम्य के स्थान पर आन्तरिक कीमत स्थिरता पर अधिक बल देते हैं।मैककिनन के अनुसार बंद अर्थव्यवस्थाओं की जगह खुली अर्थव्यवस्थाएँ मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त है। मैककिनन के सिद्धान्त में व्यापाररत वस्तुओं का गैर–व्यापाररत वस्तुओं से अनुपात जितना ही अधिक होगा अथवा विदेशी व्यापार से सकल राष्ट्रीय उत्पाद का अनुपात जितना ही अधिक होगा, मुद्रा–क्षेत्र का निर्माण उतना ही अधिक लाभकारी होगा।

मैककिनन के सिद्धान्त के मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं–

1. विदेशी व्यापार से सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात जितना ही अधिक होगा, घरेलू कीमत स्तर पर विनिमय दर परिवर्तन का प्रभाव उतना ही अधिक होगा।
2. घरेलू कीमत स्थिरता ले आना मुख्य उद्देश्य है क्योंकि कीमत उच्चावचन से राष्ट्रिय आय, व्यापार तथा विशिष्टीकरण पर गम्भीर नकरात्क प्रभाव पड़ सकते हैं।
3. एक खुली अर्थव्यवस्था को आन्तरिक तथा वाह्य संतुलन हासिल करने के लिए, मौद्रिक और राजकोषीय नीति परिवर्तनों पर निर्भर रहना चाहिए, न कि विनिमय दरों में परिवर्तनों पर। जबकि एक बंद अर्थव्यवस्था में आन्तरिक तथा वाह्य संतुलन के लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों की अपेक्षा विनिमय दर परिवर्तनों पर निर्भर करना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि मुद्रा–क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसके सदस्य देशों के मध्य विनिमय दर की स्थिरता है। इसलिए एक खुली अर्थव्यवस्था जो कि वाह्य संतुलन को हासिल करने के लिए विनिमय दर समायोजन पर निर्भर नहीं करती है वह मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में सर्वाधिक अर्ह और तार्किक सदस्य होती है। एक बंद अर्थव्यवस्था में वाह्य संतुलन प्राप्त करने के लिए विनिमय दरों में परिवर्तनों की आवश्यकता होती है। इसलिए वह मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में उचित उम्मीद्वार नहीं होती है। वास्तव में मैककिनन का इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त इस विश्वास पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था जितनी ही खुली होगी, वाह्य अंसतुलनों को दूर करने में मौद्रिक और राजकोषीय नीति की प्रभाविता उतनी ही अधिक होगी और वाह्य संतुलन बनाए रखने के लिए विनिमय दरों में परिवर्तन, कम वांछनीय या उपयोगी होगा।

आलोचना

यदि गैर सदस्य देशों में स्फीति है तो ऐसी स्थति में उँची आयात कीमतों के कारण मुद्रा–क्षेत्र में आन्तरिक कीमत स्थिरता को बनाए रखना काफी मुश्किल भरा होगा। आयातित मुद्रा–स्फीति से इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र में कीमत स्थिरता भंग हो सकती है। परन्तु ऐसी स्थिति में मुद्रा–क्षेत्र के सदस्य देश परिवर्तनशील विनिमय दरों की नीति अपना सकते हैं और इस प्रकार विश्व कीमतों में परविर्तनों से अपनी आंतरिक स्थिरता की रक्षा कर सकने में सफल हो सकते हैं।

15.6 केनन का वस्तु विविधीकरण सिद्धान्तः

केनन के अनुसार, इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के लिए सर्वाधिक उपयुक्त उम्मीद्वार वे अर्थव्यवस्थाएँ हैं जो कि कम खुली हैं और सामान्यतया अधिक विविधीकृत अर्थव्यवस्थाएँ है। इस प्रकार केनन का इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के लिए मापदण्ड मैककिनन के ठीक विपरीत है, जो कि यह मानता है कि जो अर्थव्यवस्थाएँ अधिक खुली और कम विविधीकृत हैं वे मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में अधिक उपयुक्त हैं ।

केनन कहते हैं कि बंद या कम खुली अर्थव्यवस्था सामान्यतया अत्यधिक विविधीकृत अर्थव्यवस्था होती है और वाह्य उथल–पुथल से भी अधिक स्वतंत्र होती है। बाहरी परिवर्तनो या उथल–पुथल का इसके घरेलू कीमत और आय स्तर पर कम प्रभाव पड़ता है। इस तर्क का आधार यह है कि यदि अर्थव्यवस्था विविधीकृत है तो एक उत्पाद की निर्यात मांग में कमी किसी दूसरे उत्पाद के निर्यात मांग की वृद्धि से समायोजित हो सकती है और इस प्रकार निर्यात आय में या घरेलू रोजगार में कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं आएगी। ऐसा देश बेरोजगारी और भुगतान–संतुलन के घाटे की गम्भीर समस्याओं से प्रभावित नहीं होगा और इस प्रकार यह देश स्थिर विनिमय दरों की नीति लागू कर सकने की स्थिति में होगा, जो कि मुद्रा–क्षेत्र निर्माण के लिए आवश्यक है।

यदि अर्थव्यवस्थाएँ अधिक खुली हैं तो वे सामान्यतया कम विविधीकृत होंगी और उपेक्षाकृत कम वस्तुओं के उत्पादन और निर्यात में अधिक दक्ष होंगी। ऐसी अर्थव्यवस्थाएँ वाह्य उथल–पुथल के प्रति अत्यधिक संवदेनशील होंगी। इसके निर्यात उत्पाद की मांग में कमी से घरेलू रोजगार तथा आय में महत्वपूर्ण कमी आ सकती है और भुगतान–संतुलन का घाटा भी **बढ़ सकता है**। अधिकांश अल्पविकसित देशो की यही स्थिति है। इस प्रकार कम विविधीकृत अथव्यवस्थाओं में और अधिक खुलेपन की प्रवृत्ति पायी जाती है और वे विश्व बाजार में अपने उत्पादों की मांग और कीमतों में परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। उनके पास स्वतः समायोजन वाला तंत्र विकसित नहीं हो पाता है जैसा कि अधिक विविधीकृत और कम खुली अर्थव्यवस्थाओं के पास होता है। इसलिए कम विविधीकृत और अधिक खुली अर्थव्यवस्थाओं को विनिमय दर परिवर्तनशीलता की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार केनन के अनुसार, चूँकि कम खुली और अधिक विविधीकृत अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी उथल–पुथल का सामना करने के लिए एक स्वतः समायोजन वाला तंत्र विकसित हो जाता है। इसलिए ये अर्थव्यवस्थाएँ एक सांझा मुद्रा क्षेत्र **की स्थापना के लिए अनुकूलता के** मापदण्ड को पूरा करती हैं।

आलोचनाः

आलोचकों का कहना है कि विदेशी उथल–पुथल हमेशा स्वतः ही समायोजित नहीं हो जाते हैं। प्रायः निर्यात माँग में परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं। इसलिए यदि विदेशी उथल–पुथला हो तो एक विविधीकृत अर्थव्यवस्था भी बेरोजगारी तथा भुगतान–संतुलन के घाटे से नहीं बच सकती है,

अभ्यास प्रश्न–1

लघु उत्तरीय प्रश्नः

15. मण्डल के इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।

16-मैककिनन का खुली अर्थव्यवस्था सिद्धान्त क्या है?

17-केनन का वस्तु विविधीकरण सिद्धान्त क्या है?

18. मुद्रा क्षेत्र **के** इष्टतम **होने की दशाओं का वर्णन कीजिये.**

बहुविकल्पीय प्रश्नः

25. सबसे पहले **किसने** इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त दिया ?

(क) मण्डल
(ख) मेकिनन,,
(ग) वुड
(घ) पीटर केनेन

26. **किस अर्थशास्त्री का नाम** इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र सिद्धान्त **से नहीं जुडा है ?**

(क) मैगनीफिको
(ख) मेकिनन,,
(ग) **मीड**
(घ) **केन्स**

27- देशों का एक समूह एक सांझा मुद्रा –क्षेत्र (Common Currency Area) बना सकते हैं

(क) सांझा मुद्रा के चलन के द्वारा
(ख) सदस्य देशों के बीच स्थिर विनिमय दर प्रणाली लागू करके
(ग) **उपरोक्त दोनों**
(घ) **उपरोक्त में से कोई नही**

28. मण्डल के अनुसार 'इष्टतम' का अर्थ है

(क) जिसमें बरोजगारी तथा भुगतान–संतुलन का असंतुलन पूरी तरह से समाप्त हो जाता है।
(ख) सांझा मुद्रा–क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार और कीमत को स्थिर करने की क्षमता।
(ग) एक क्षेत्र जिसमे स्थिर विनिमय दरें क्रियाशील हों।
(घ) **उपरोक्त सभी**

29. **किन** अर्थशास्त्रियों के सांझा मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्त मुद्रा क्षेत्र में आन्तरिक और वाह्य संतुलन लाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप पर निर्भर करते हैं

क) मैगनीफिको – मैककिनन

(ख) मैगनीफिको – वुड
(ग) मण्डल– वुड
(घ) मण्डल– केनेन

30- किस अर्थशास्त्री का सिद्धान्त ऐसा वातावरण उत्पन्न करने की कोशिश करता हैं जिसमें राजकोषीय और मौद्रिक नीतियाँ विनिमय दर में परिवर्तन न होने की दशा में आन्तरिक तथा वाह्य संतुलन ला सके
क) मैककिनन
(ख) मैगनीफिको
(ग) मण्डल
(घ) केनेन

31. किस अर्थशास्त्री **ने** साधन गतिशीलता **के रूप में मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता को परिभाषित किया.**
क) मैककिनन
(ख) मैगनीफिको
(ग) मण्डल
(घ) केनेन

32. प्रारम्भिक भुगतान–संतुलन का असंतुलन विभिन्न देशों के बीच इकाई साधन लागतों की भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। **किस** अर्थशास्त्री **ने** अपने सिद्धान्त का निर्माण इस मान्यता पर किया ळे
क) मण्डल
(ख) मैगनीफिको
(ग) मैककिनन
(घ) केनेन

33. किस अर्थशास्त्री के अनुसार बंद अर्थव्यवस्थाओं की जगह खुली अर्थव्यवस्थाएँ मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त है।
क) मण्डल
(ख) मैगनीफिको
(ग) मैककिनन
(घ) केनेन

34. किस अर्थशास्त्री के अनुसार वे अर्थव्यवस्थाएँ हैं जो कि कम खुली हैं और सामान्यतया अधिक विविधीकृत अर्थव्यवस्थाएँ है मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त है।
क) मण्डल
(ख) मैगनीफिको

(ग) मैककिनन

(घ) केनेन

सत्य व असत्य :

37. इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त "परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दर" बहस का ही एक विस्तार है।
38. इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का अर्थ है एक सांझा क्षेत्र जिसमे "परिवर्तनशील विनिमय दरें क्रियाशील हों।
39. इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बरोजगारी तथा भुगतान–संतुलन का असंतुलन पूरी तरह से समाप्त हो जाता है।
40. केनन और मैकिनन उन स्थितियों या दशाओं की चर्चा करते हैं जिसके अंतर्गत एक मुद्रा क्षेत्र इष्टतम दशाओं को प्राप्त कर सके।
41. साझा मुद्रा क्षेत्र के सदस्य देशों की मुद्राऐं शेष विश्व की मुद्राओं से स्थिर विनिमय प्रणाली से जुड़ी होती है।
42. **मंडल** साधन गतिशीलता **के रूप में मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता को परिभाषित करते हैं.**
43. मण्डल सरकारी हस्तक्षेप को अपने माडल में **महत्वपूर्ण** स्थान देते है।
44. मैककिनन इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण में अत्यधिक बंद अर्थव्यवस्थाओं और आंतरिक कीमत स्थिरता को अधिक महत्व देते हैं।
45. एक बंद अर्थव्यवस्था में वाह्य संतुलन प्राप्त करने के लिए विनिमय दरों में परिवर्तनों की आवश्यकता होती है।
46. यदि अर्थव्यवस्थाएँ अधिक खुली हैं तो वे सामान्यतया कम विविधीकृत होंगी।

15.7 मैगनीफिकों का स्फीति की प्रवृत्ति सिद्धान्त

मैगनीफिको का कहना है कि मुद्रा–क्षेत्र का निर्माण उन देशों को करना चाहिए जहाँ स्फीति की प्रवृत्तियाँ समान हों। मैगनीफिको का सिद्धान्त फिलिप्स वक्र पर आधारित है जो कि स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय (trade-off) को प्रदर्शित करता है। विभिन्न देशों में रोजगार के एक निश्चित स्तर पर स्फीति की दरें भी भिन्न होंगी। क्योंकि फिलिप्स वक्र पर विनिमय बिन्दु अलग–अलग देशों में अलग–अलग होगा। फिलिप्स वक्र यह इंगित करता है कि पूर्ण–रोजगार और कीमत स्थिरता एक साथ संभव नहीं है। इस प्रकार यह आन्तरिक स्थिरता की अवधारणा की वैधता को ही चुनौती देता है।

चित्र 15.1 में X-अक्ष पर बेरोजगारी की दर तथा Y-अक्ष पर स्फीति की दर है। फिलिप्स वक्र बेरोजगारी की दर तथा स्फीति की दर के बीच विनिमय को दर्शाता है। जब स्फीति दर OP_1 है तो बेरोजगारी ON_2 है और यदि स्फीति OP_2 है तो बेरोजगारी दर ON_2 हो जा रही है। स्फीति और बेरोजगारी में विनिमय प्रत्येक देश के लिए अपनी नीति निर्धारित करने का मौका देता है।

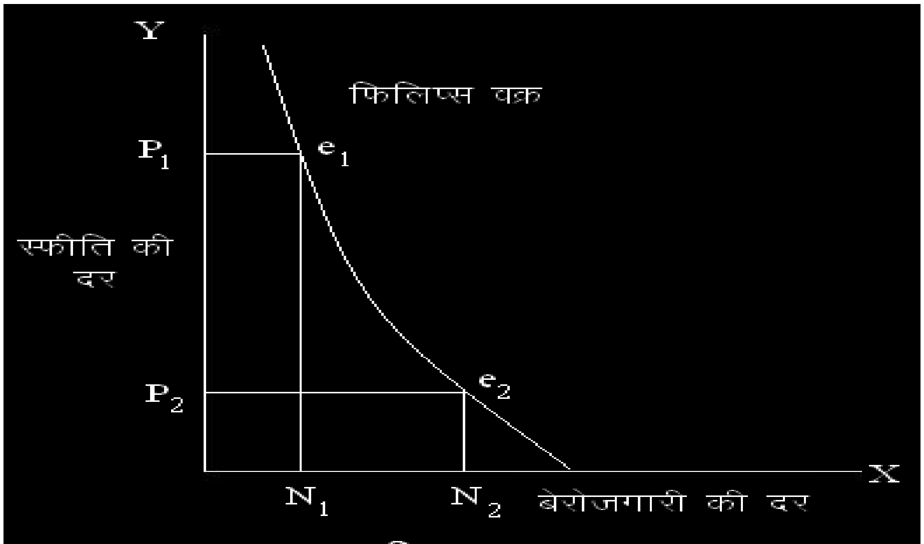

चित्र 15.1

इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का निर्माण इसके सदस्य द्वारा स्फीति और बेरोजगारी के बीच समान दरों पर समझौते पर निर्भर करता है। मैगनीफिको का कहना है कि यदि विभिन्न देशों के मध्य स्फीति की राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ (अथवा वांछित विनिमय बिन्दु) भिन्न होने पर, ऐसे देशों के बीच मुद्रा–क्षेत्र का निर्माण व्यावहारिक नहीं होगा। स्फीति दरों की भिन्नता की स्थिति में भुगतान–संतुलन की समस्याएँ उत्पन्न होंगी जिसके लिए विनिमय दरों में समायोजन की आवश्यकता **होगी जो की मुद्रा क्षेत्र के सिधांत के विपरीत है** क्योंकि मुद्रा–क्षेत्र के अन्तर्गत विनिमय दरें स्थिर होनी चाहिए।

माना दो देश A और B हैं, जिनके स्फीति बेरोजगारी विनिमय दर वक्र एक समान हैं। चित्र 15.2 में इसे IU वक्र से दर्शाया गया है। बिन्दु e_1 देश A तथा बिन्दु e_3 देश B की स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय की स्थिति को दर्शाता है। **यदि देश A और देश B मुद्रा क्षेत्र का निर्माण करते हैं** तो देश A में भुगतान–संतुलन का घाटा होगा। देश A को इस घाटे को समाप्त करने के लिए विनिमय दर के समायोजन की आवश्यकता पडेगी।

i. देश A के लिए एक विकल्प यह है कि वह मुद्रा–क्षेत्र के गठन के बाद देश B के विनिमय बिन्दू e_3 को स्वीकार कर ले। इसके लिए देश A को देश के अन्दर संकुचनकारी मौद्रिक और राजकोषीय नीति लागू करनी होंगी जिससे स्फीति दर OP_3 से कम होकर OP_1 स्तर पर आ सके और बेरोजगारी बढ़कर ON_1 से ON_3 स्तर पर पहुंच जाए।

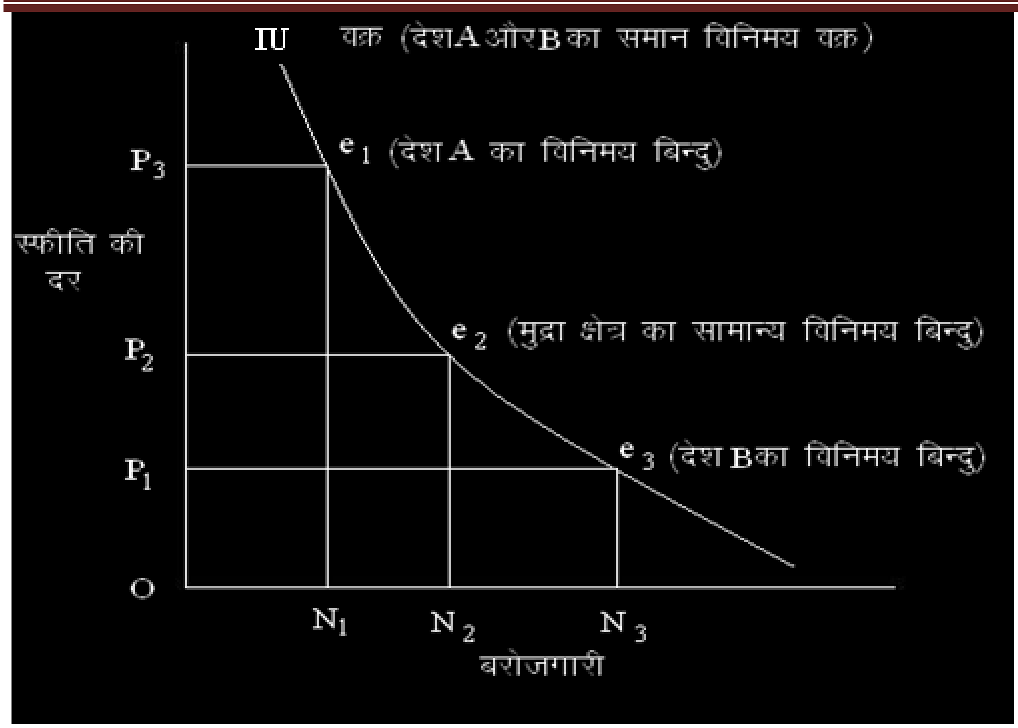

चित्र 15.2

ii. एक दूसरा विकल्प यह भी है कि देश B, देश A के विनिमय बिन्दु e_1 को को स्वीकार कर लें और स्फीतिकारी मौद्रिक और राजकोषीय कीमतों के माध्यम से **स्फीति दर को** बढ़ाकर OP_1 से OP_3 तथा बेरोजगारी दर को कम करके ON_3 से ON_1 कर दे।

iii. एक अन्य विकल्प यह है कि दोनों देश आपस में समझौता करके एक स्वीकार्य स्फीति दर को मान लें। चित्र 15.2 में यदि दोनों देश मुद्रा–क्षेत्र के गठन के पश्चात् OP_2 स्फीति दर और ON_2 बेरोजगारी स्तर को मुद्रा–क्षेत्र के लिए स्वीकार कर लेते हैं। इस स्थिति में देश A के रोजगार में N_1N_2 की कमी आती है। जबकि देश B में बेरोजगारी N_2N_3 मात्रा में कम हो जाती है। परन्तु मुद्रा–क्षेत्र में सम्पूर्ण रोजगार समान बना रहता है, क्योंकि–

$$ON_1+ON_3=2ON_2$$

जबकि परन्तु मुद्रा–क्षेत्र में स्फीति की औसत दर पहले की अपेक्षा कम हो गयी। क्योंकि

$$(OP_1+OP_3)>2OP_2$$

इस प्रकार, चित्र से स्पष्ट है कि मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण के पश्चात् विनिमय में सुधार हेुआ है। यह अभी भी सम्भव है कि देश A स्फीति में कमी करे जिससे कि रोजगार में आयी कमी की क्षतिपूर्ति कर सके या देश B रोजगार में वृद्धि करें जिससे कि वह कीमत वृद्धि के कारण हुए कल्याण में कमी की क्षतिपूर्ति कर सके। परन्तु मूद्रा–क्षेत्र के निर्माण के

लिए जो सबसे आवश्यक बात है वह यह कि देशों की बीच विनिमय की समानता के साथ–साथ दिए हुए विनिमय वक्र पर एक समान अधिमान बिन्दु भी हो।

अतः जिन देशों में स्फीति की राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ एक समान हों वे देश मुद्रा–क्षेत्र के गठन के लिए उपयुक्त होंगे क्योंकि वे आसानी से एक सांझी स्फीति की दर और रोजगार स्तर के लिए आपस में समझौता कर सकते हैं। इसीलिए मैगनीफिको मुद्रा–क्षेत्र में अनुकूलता के लिए समान स्फीति प्रवृत्ति पर बल देते हैं।

परन्तु आलाचकों का कहना है कि इस प्रकार का विचार अति–सरलीकृत है और ठीक नहीं है और यह इस बात को सुनिश्चित नहीं करता है कि भुगतान–संतुलन की **समस्याएं हल** हो जाएगी। वास्तव में सांझा क्षेत्र **के भी देशों के बीच स्फीति तथा बेरोजगारी की एक** समान (सांझा) दरों का समझौता संभव नहीं हो पाता है। मण्डल का भी मानना है कि एक मुद्रा–क्षेत्र अपने सदस्यों के बीच स्फीति तथा बेरोजगारी दोनों की रक्षा नहीं कर सकता है। और फिर मैगनिफिको का सिद्धान्त फिलिप्स वक्र पर आधारित है जो कि स्वयं ही आजकल बहुत स्वीकार्य नहीं है। **वर्त्तमान में अधिकांश देशों में अपस्फिती की स्थिति है** अर्थात् स्फीति और बेरोजगारी दोनों एक साथ है और बढ़ रहे हैं और फिलिप्स वक्र द्वारा सुझाए गए स्फीति और बेरोजगारी में उस प्रकार का संबंध नहीं पाया जाता है।

15.8 बुड का लागत–लाभ सिद्धान्तः

इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र के उपरोक्त सिद्धान्तों की एक कमी यह है कि वे मुद्रा–क्षेत्र के लाभों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं। बुड का सिद्धान्त इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र की व्यवहारिकता या उपादेयता का विचार उसके लाभों के आधार पर करता है और इस अर्थ में इसे अन्य सिद्धान्तों पर एक सुधार माना जा सकता है।

बुड मुद्रा–क्षेत्र के उपादेयता के प्रश्न को एक अनुकूलता समस्या के रूप में नहीं देखते हैं बल्कि लागत–लाभ के आधार पर उस पर विचार करते हैं। उनके अनुसार एक मुद्रा–क्षेत्र का गठन तभी किया जाना चाहिए यदि उसके लाभ उसकी लागतों की अपेक्षा अधिक हों। मुद्रा–क्षेत्र के अनेक संभावित लाभ हैं। जैसे– बैंकिंग तथा विदेशी विनिमय लेन–देन या फिर अन्य लेन–देनों में संसाधनों की बचत से होने वाला लाभ; मुद्रा–क्षेत्र में सांझे संसाधनों के पुर्नआवंटन से होने वाला लाभ; व्यापार में वृद्धि तथा अनिश्चितता में कमी के कारण होने वाला लाभ और मौद्रिक प्रणाली के बेहतर कार्यकरण के कारण होने वाला लाभ। जबकि मुद्रा–क्षेत्र की संभाव्य लागत है– भुगतान संतुलनों के असंतुलन को ठीक करने के लिए विनिमय दरों में परिवर्तन की अयोग्यता।

बुड मुद्रा–क्षेत्र का कोई ठोस सिद्धान्त नहीं देते हैं बल्कि मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण से पहले लागतों और लाभों के अध्ययन का सुझाव देते हैं

15.9 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का सामान्य सिद्धान्त

इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का सामान्य सिद्धान्त मुण्डेल के साधन गतिशीलता सिद्धान्त तथा वुड के लागत–लाभ सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार इष्टतम मुद्रा क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें **सदस्य देशों की मुद्राएँ एक दुसरे के साथ स्थिर दर जुडी रहती हैं तथ संसाधन मुद्रा क्षेत्र के भीतर पूरी तरह से गतिशील होते हैं.** सदस्य देशों की मुद्राएं **शेष विश्व** के साथ लचीली विनिमय दर प्रणाली द्वारा **जुडी रह** सकती है। इष्टतम मुद्रा क्षेत्र की सदस्यता लागत–लाभ के आधार पर हो सकती है। इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित होने वाला देश गैर सदस्यीय देशों के साथ लचीली विनिमय दर **और सदस्य देशों के साथ** स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत अधिक मौद्रिक कुशलता का लाभ प्राप्त करता है। श्रम तथा पूजी जैसे साधनों की सदस्य देशों की बीच मुक्त गति से मौद्रिक कुशलता का लाभ स्वतः ही अधिक हो जाता है।

इष्टतम मुद्रा क्षेत्र **के भीतर श्रम** तथा पूँजी की मुक्त गतिशीलता के कारण कम घरेलू स्फीति तथा आर्थिक कीमत स्थिरता की संभावनाएं अधिक होती है। **परन्तु** इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित होने वाले देश को इसकी सदस्यता की लागतें **भी वहन करनी पड़ती** है। लागतों के उत्पन्न होने का कारण यह है कि देश उत्पादन तथा रोजगार स्थिरता के लिए अपनी मौद्रिक नीति तथा विनिमय दर में परिवर्तन की क्षमता को खो देता है। स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत देश का अपनी मुद्रा–पूर्ति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है; घरेलू तथा विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता। **ऐसे में** यदि निर्यात योग्य वस्तुओं की मांग में गिरावट आएगी तो यह उत्पादन तथा रोजगार के सन्दर्भ में आर्थिक अस्थिरता को जन्म देगी। यह देश की आर्थिक स्थिरता में हानि है जो वस्तु की कीमत तथा मजदूरी में कमी के साथ मन्दी की ओर ले जाती है। यदि देश की आर्थिक संघ के साथ इष्टतम मुद्रा क्षेत्र मजबूत है तो मन्दी का काल छोटा होगा तथा अर्थव्यवस्थाओं में समायोजन की कीमत कम चुकानी पडेगी, आर्थिक स्थिरता में हानि होगी । इसका कारण यह है कि

i. यदि देश मुद्रा क्षेत्र के साथ मजबूती से जुड़ा है तो इसकी निर्यात योग्य वस्तुओं की कीमतों में मामूली गिरावट से आर्थिक संघ में उसके वस्तुओं की मांग बढ़ जाएगी। इससे देश में उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होगी,
ii. यदि संघ क्षेत्र के बीच श्रम तथा पूंजी मुक्त गतिशील रहते हैं तो बेरोजगार श्रमिक काम की तलाश में दूसरे देशों में जा सकते है तथा पूंजी अन्य देशों में आर्थिक लाभदायक योजनाओं में लगाई जा सकती है।

अतः इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित देशों के बीच मजबूत आर्थिक एकता विनिमय दर के कारण आर्थिक स्थिरता की हानि कम कर देती है,जो कि मांग, उत्पादन तथा रोजगार में गिरावट के कारण उत्पन्न होती है।

चित्र 15.3 में X- अक्ष मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित होने वाले देश तथा इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के बीच आर्थिक संघ **या** एकता की कोटि (degree of economic unoion between the joining country and optimum currency area) को मापता है। Y- अक्ष मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित होने वाले देश के मौद्रिक कुशलता के लाभ तथा आर्थिक स्थिरता की हानि को मापता है। **मान लिया की** एक **देश** स्थिर विनिमय दर के **साथ** इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित **होता है. इस** देश के मौद्रिक कुशलता लाभ तथा आर्थिक संघ की कोटि के बीच संबंध **की स्थिति** को वक्र G द्वारा **दिखाया** गया है। वक्र की धनात्मक ढलान यह प्रदर्शित करती है कि जैसे–जैसे आर्थिक संघ की कोटि बढ़ती जाती है **अर्थात** देश का क्षेत्र के साथ आर्थिक एकीकरण मजबूत होता है देश का मौद्रिक कुशलता लाभ बढ़ता है। वक्र L इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित देश के आर्थिक स्थिरता की हानि को प्रदर्शित करता है। वक्र की नीचे की ओर ढलान यह प्रदर्शित करती है कि जैसे–जैसे आर्थिक संघ की कोटि बढ़ती जाती है, देश की आर्थिक स्थिरता की हानि बढ़ती है।

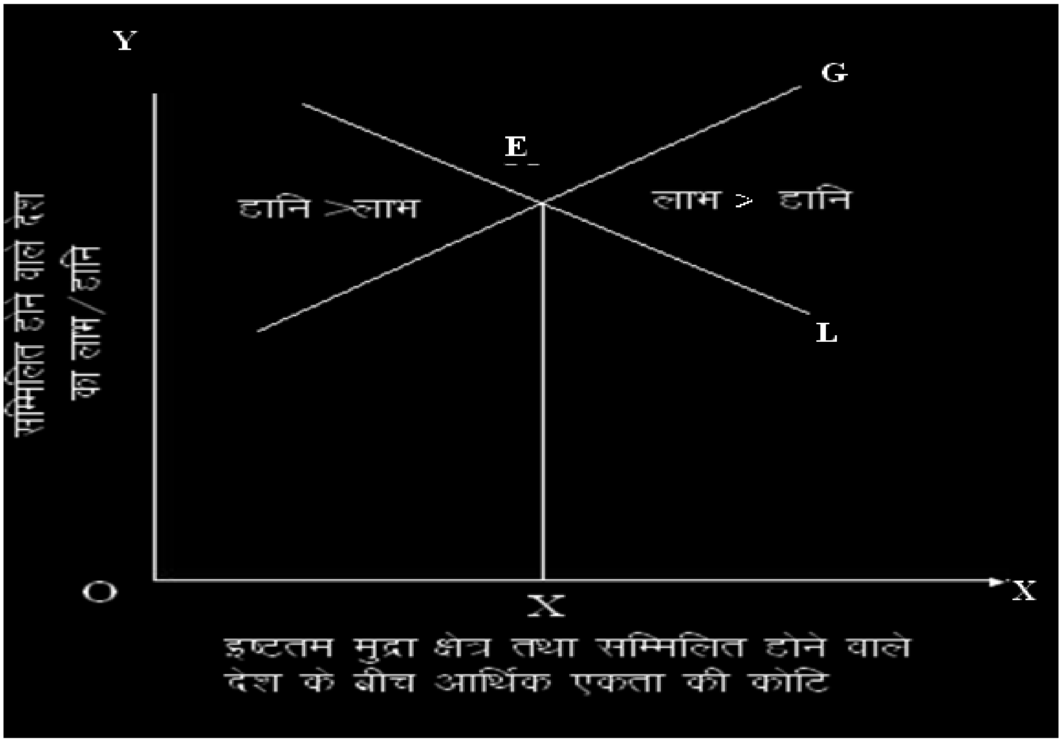

चित्र 15.3

चित्र में वक्र G तथा L एक दुसरे को E बिंदु पर काटते हैं. बिन्दु E के अनुरूप आर्थिक संघ की कोटि X है **अर्थात इस स्थिति में** मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित देश का मौद्रिक कुशलता लाभ आर्थिक स्थिरता की हानि **के बराबर** है। यदि आर्थिक संघ की कोटि का स्तर X के बाई ओर है तो देश संघ में शामिल होने के बाद कीमत, उत्पादन तथा रोजगार अस्थिरता से पीडित होगा। अन्य शब्दों में, आर्थिक स्थिरता हानि मौद्रिक कुशलता लाभ से अधिक होगी। इसके विपरीत, X के दाईं ओर आर्थिक संघ में शामिल होना लाभकारी होगा, अर्थात् मौद्रिक कुशलता लाभ आर्थिक स्थिरता हानि से अधिक है। अन्य शब्दों में, यदि देश व्यापार तथा साधन गतिशीलता द्वारा संघ से मजबूती से जुड़ा है तो कीमत स्थिरता तथा उत्पादन व रोजगार के उच्च स्तर के साथ आर्थिक संघ में सम्मिलित होने का मौद्रिक लाभ इसकी लागत से अधिक होगा।

15.10 इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के लाभ

साझा मुद्रा क्षेत्र **एक** विस्तृत बाजार **का निर्माण करता** है **जिससे सदस्य देशों में आर्थिक गतिविधियों जैसे निवेश, रोजगार आदि में वृद्धि होती है। यह** पैमाने की बचतों से लाभ को सुनिश्चित करता है। इष्टतम मुद्रा क्षेत्र लचीली विनिमय दरों के कारण उत्पन्न होने वाली अनिश्चितता को समाप्त करता है।

इष्टतम मुद्रा क्षेत्र से वस्तु विशिष्टीकरण होता है। व्यापार से लाभ में वृद्धि तथा निवेश को प्रोत्साहन मिलता है। मुद्रा क्षेत्र के निर्माण से सदस्य देशों के बीच कीमत स्थिरता उत्पन्न होती है। इसमें कुशल मौद्रिक प्रबन्धन प्राप्त होता है जिससे सदस्य देशों के बीच स्फीति एवं मन्दी की दशा समाप्त होने में मदद मिलती है।

परन्तु इष्टतम मुद्रा क्षेत्र **में** यदि संघ द्वारा अपने सदस्यों के आर्थिक हितों का समान रूप से ध्यान नहीं रखा जाता है तो मुद्रा क्षेत्र के असफल रहने अथवा इसके टूटने की पूरी सम्भावना रहती है।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का एक सफल उदाहरण है। यूरोपीय आर्थिक समुदाय की एक साझी मुद्रा 1 जनवरी, 1990 को अस्तित्व में आई। यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों द्वारा स्थापित साझा बाजार व्यवस्था को यूरोपीय साझा बाजार (ECM) कहा जाता है। वर्तमान में ECM के कुल सदस्यों की संख्या 15 है। यद्यपि खाते की मुद्रा में यूरो का प्रयोग 1 जनवरी, 1990 से आरम्भ हो चुका था, परन्तु सौदों में नकद यूरो का प्रयोग 1 जनवरी, 2002 से किया हा रहा है।

अभ्यास प्रश्न–2

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. मैगनीफिको के इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
2. वुड का लागत–लाभ सिद्धान्त क्या है?
3. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के लाभ बताइए.

बहुविकल्पीय प्रश्नः

1. **किस अर्थशास्त्री ने** मुद्रा–क्षेत्र के निर्माण से पहले लागतों और लाभों के अध्ययन का सुझाव **दिया**
   (क) मण्डल
   (ख) मेकिनन,,
   (ग) वुड
   (घ) पीटर केनेन
2. **किस** अर्थशास्त्री का सिद्धान्त का सिद्धान्त फिलिप्स वक्र पर आधारित है।
   क) मैककिनन
   (ख) मैगनीफिको
   (ग) मण्डल
   (घ) केनेन
3. मैगनीफिको के अनुसार मूद्रा–क्षेत्र के निर्माण के लिए जो सबसे आवश्यक बात है वह यह कि
   (क) स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय विनिमय की समानता
   (ख) विनिमय वक्र पर एक समान अधिमान बिन्दु
   (ग) **उपरोक्त दोनों**
   (घ) **उपरोक्त में से कोई नही**
4. **किस** अर्थशास्त्री के अनुसार जिन देशों में स्फीति की राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ एक समान हों वे देश मुद्रा–क्षेत्र के गठन के लिए उपयुक्त होंग
   क) मैगनीफिको
   (ख) मण्डल
   (ग) मैककिनन
   (घ) केनेन
5. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र मजबूत है तो
   क) आर्थिक कीमत स्थिरता की संभावनाएं अधिक होती है।
   (ख) मन्दी का काल छोटा होगा
   (ग) मौद्रिक कुशलता लाभ आर्थिक स्थिरता हानि से अधिक होगा
   (घ) **उपरोक्त सभी**

सत्य व असत्य :

1. साझा मुद्रा क्षेत्र पैमाने की बचतों से लाभ को सुनिश्चित करता है।
2. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र लचीली विनिमय दरों के कारण उत्पन्न होने वाली अनिश्चितता को **बढ़ा देता** है।
3. मैगनीफिको का सिद्धान्त फिलिप्स वक्र पर आधारित है।

4. फिलिप्स वक्र स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय को प्रदर्शित करता है।
5. मैगनीफिको मुद्रा–क्षेत्र में अनुकूलता के लिए असमान स्फीति प्रवृत्ति पर बल देते हैं।
6. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित देशों के बीच मजबूत आर्थिक एकता विनिमय दर के कारण आर्थिक स्थिरता की हानि कम कर देती है।
7. यदि देश की आर्थिक संघ के साथ इष्टतम मुद्रा क्षेत्र मजबूत है तो मन्दी का काल छोटा होगा।
8. स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत घरेलू तथा विदेशी वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन करना सम्भव होता।
9. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र में सम्मिलित देश मौद्रिक नीति तथा विनिमय दर में परिवर्तन की क्षमता को खो देता है।

15.11 सारांश

इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का सिद्धान्त "परिवर्तनशील तथा स्थिर विनिमय दर" बहस का ही एक विस्तार है। इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र का अर्थ है एक सांझा मुद्रा क्षेत्र या एक क्षेत्र जिसमे स्थिर विनिमय दरें क्रियाशील हों। भुगतान–संतुलन के असंतुलन को दूर करने के लिए इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का सिद्धान्त कई अर्थशास्त्रियों द्वारा दिया गया। सबसे पहले मण्डल ने इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का सिद्धान्त दिया। बाद में मेकिनन, केनेन, मैवकीफिको और वुड ने भी अपने सिद्धान्त दिए।

इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्तो को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है.पहले समूह के अर्थशास्त्रियों ने बिना सरकारी हस्तक्षेप के स्वतः समायोजन के सिद्धांत दिए जबकि दुसरे समूह के अर्थशास्त्रियों ने सरकारी हस्तक्षेप को समायोजन के लिए महत्वपूर्ण माना. स्वतः समायोजन के सिद्धांत साँझा मुद्रा क्षेत्र की उन विशेषताओं को निर्धारित करते हैं जी की स्वतः ही आतंरिक तथा बाह्य संतुलन लाती हैं. सरकारी हस्तक्षेप को समायोजन के लिए महत्वपूर्ण मानने वाले सिद्धांत नीति – उन्मुख हैं और उन दशाओं को स्थापित करने की कोशिश करते हैं जिनमे मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ आतंरिक तथा बाह्य संतुलन ला सकें. सबसे पहले मंडल ने साँझा मुद्रा क्षेत्र के सम्बन्ध में चर्चा शुरू की और इष्टतम साँझा मुद्रा क्षेत्र के लिए नियमों का निर्धारण किया.१९६१ में मंडल ने साधन गतिशीलता सिद्धान्त देते हुए साधन गतिशीलता के रूप में मुद्रा क्षेत्र की अनुकूलता (optimality) को परिभाषित करते हैं. मैककिनन इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के निर्माण में अत्यधिक खुली अर्थव्यवस्थाओं और आंतरिक कीमत स्थिरता को अधिक महत्व देते हैं। केनन के अनुसार, इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के लिए सर्वाधिक उपयुक्त उम्मीद्वार वे अर्थव्यवस्थाएँ हैं जो कि कम खुली हैं और सामान्यतया अधिक विविधीकृत अर्थव्यवस्थाएँ है। मैगनीफिको का कहना है कि मुद्रा क्षेत्र का निर्माण उन देशों को करना चाहिए जहाँ स्फीति की प्रवृत्तियाँ समान हों। वुड का सिद्धान्त इष्टतम मुद्रा क्षेत्र की व्यवहारिकता या उपादेयता का विचार उसके लाभों के आधार पर करता है ।

इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्तो के आधार पर यह कहा जा सकता है की इष्टतम मुद्रा क्षेत्र की स्थापना और व्यवहारिकता के सन्दर्भ में निम्न लिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैं:सदस्य देशों के बिच संसाधनों की व्यक्पक गतिशीलता होनी चाहिए; मुद्रा क्षेत्र की लागतों की अपेक्षा इसके लाभ अधिक होने चाहिए; सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ आपसी आर्थिक संबंधों के लिए खुली होनी चाहिए;गैर–सदस्य देशों के साथ व्यापार से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए सदस्य देशों के बीच वस्तु विविधीकरण होना चाहिए; आन्तरिक एवं वाह्य संतुलन बनाए रखने के लिए सदस्य देशों में मौद्रिक राजकोषीय तथा अन्य नीतियों से सम्बन्धित नीति होनी चाहिए और एक इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र की स्थापना के लिए सदस्य देशों की बीच आर्थिक विचारों में समानता के साथ – साथ सामाजिक एवं राजनीतिक सौहार्द भी होना आवश्यक ळें

15.12 शब्दावली

इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र – इष्टतम मुद्रा–क्षेत्र ऐसे देशों का समूह है जिन्होंने अपनी मुद्राओं को एक स्थिर विनिमय प्रणाली से स्थायी रूप से जोड़ दिया है। परन्तु सदस्य देशों के अतिरिक्त शेष विश्व से, इन देशों की मुद्राओं की दर परिवर्तनशील विनिमय दर प्रणाली से जुड़ी होती है। एक साझा मुद्रा क्षेत्र एक सांझा मुद्रा द्वारा जुड़ा हुआ होता है।

परिवर्तनशील विनिमय दरें– परिवर्तनशील विनिमय दरें विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय की मांग तथा पूर्ति के शक्ति के द्वारा निर्धारित होती है तथा इसमें मौद्रिक प्राधिकरण को कोई हस्तक्षेप नहीं होता है। विनिमय दरों में परिवर्तन देश की भुगतान–संतुलन की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन के फलस्परूप स्वतः ही उत्पन्न होता है।

स्थिर विनिमय दरें– इस व्यवस्था के अंतर्गत विदेशी विनिमय बाजार में सरकार या राज्य का पूरा हस्तक्षेप रहता है। बाजार विनिमय दर एक दी हुई संतुलन स्तर पर स्थिर रहती है । यदि मांग और पूर्ति की शक्तियाँ इस संतुलन को बिगाडती हैं या सट्टेबाजी की गतिविधियाँ इस संतुलन को बिगाडती है तो सरकार इसमे हस्तक्षेप करती है और इस संतुलित विनिमय दर को बचाए रखती है। सरकार विदेशी विनिमय के क्रय या विक्रय के माध्यम से ऐसा करती है।

अंतरिक और बाह्य संतुलन – देश के अन्दर कीमत स्थिरता तथा संसाधनों के पूर्ण रोजगार की स्थिति आन्तरिक संतुलन है ; इस स्थिति से विचलन अर्थव्यवस्था में असंतुलन करता है जो की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए घातक होता है.बाह्य असतुलन का अर्थ है भुगतान संतुलन में असतुलन, अर्थात अतिरेक या घाटा.

15.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1

बहुविकल्पीय प्रश्नः

8. क 2.घ 3.ग 4.घ 5.ख 6.ख 7.ग 8.क 9.ग 10.घ

सत्य व असत्य :

10. सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.सत्य 7.असत्य 8.असत्य 9.सत्य 10.सत्य

अभ्यास प्रश्न–2

बहुविकल्पीय प्रश्नः

4. ग 2.ख 3.ग 4.क 5.घ

सत्य व असत्य :

4. सत्य 2.असत्य 3.सत्य 4.सत्य 5.असत्य 6.सत्य 7.सत्य 8.असत्य 9.सत्य

15.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968
- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

15.15 उपयोगी/सहायक ग्रंथ

- HH. G. Mannur, *International Economics* ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001
- Bo Sodersten, International Economics ,Macmillan, 1999
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: *International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.*
- Charles P Kindleberger, International Economics, Richard D. Irwin Inc., Illinois, 1968

- Dominik Salvatore, International Economics, John Willy & Sons, Inc., 2008
- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, *अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र* ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.

15.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र से क्या तात्पर्य है। इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के सामान्य सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
2. इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के प्रमुख सिद्धान्तों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।
3. विभिन्न सिद्धान्तों के सन्दर्भ में इष्टतम मौद्रिक क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
4. मुद्रा क्षेत्र **के** इष्टतम **होने की दशाओं का वर्णन कीजिये.** मण्डल का इष्टतम मुद्रा क्षेत्र का साधन गतिशीलता सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
5. मैककिनन तथा केनन के इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
6. मैगनीफिको का स्फीति की प्रवृत्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा इष्टतम मुद्रा क्षेत्र के लाभ बताइए.

****

इकाई-16 **विदेशी विनिमय**

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 मुख्य भाग

- 16.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय
- 16.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके
- 16.3.3 विदेशी विनिमय की समस्या के कारण

16.4 विदेशी विनिमय दर

- 16.4.1 विदेशी विनिमय दर का अर्थ
- 16.4.2 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के कारण

16.5 विदेशी विनिमय दर निर्धारण हेतु सिद्धान्त

- 16.5.1 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण
- 16.5.2 टंकण मूल्य समता सिद्धान्त
- 16.5.3 क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त
- 16.5.4 भुगतान सन्तुलन सिद्धान्त

16.6 सारांश

16.7 शब्दावली

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में विदेशी विनिमय को स्पष्ट किया जाएगा। साथ ही विदेशी विनिमय के तरीके और विदेशी विनिमय की समस्या पर प्रकाश डाला जाएगा। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय दर की अवाधारणा तथा विदेशी विनिमय दर निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों की विस्तृत चर्चा की जाएगी और विदेशी विनिमय दर में परिवर्तनों के कारणों को भी रेखांकित किया जाएगा।

प्रस्तुत इकाई विभिन्न देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में विदेशी विनिमय और विदेशी विनिमय दर निर्धारण को समझने में अत्यन्त सहायक है।

16.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

1. विदेशी विनिमय का अर्थ और इसके विभिन्न तरीके क्या हैं।
2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय की समस्या क्यों उत्पन्न होती है।
3. विदेशी विनिमय दर की अवधारणा क्या है।
4. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विदेशी विनिमय दर निर्धारण हेतु विभिन्न सिद्धान्त और इनकी सीमायें क्या हैं।
5. विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के क्या कारण होते हैं।

16.3. मुख्य भाग

16.3.1 विदेशी विनिमय का अभिप्राय

साधारणतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी वविनिमय के अर्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में निम्नवत दो अर्थों में किया जाता हैः-

(अ) **संकुचित अर्थ मे**ः इसका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में किया जाता है –

1. विदेशी मुद्राओं के रूप में – कुछ अर्थशास्त्री विदेशी विनिमय से अभिप्राय विदेशी मुद्राओं से लगाते हैं अर्थात् जब यह कहा जाता है कि बैंक विदेशी मुद्रा का क्रय-विक्रय कर रहे हैं तब इसका सन्दर्भ विदेशी मुद्राओं से ही होता है। सामान्यतया विदेशी विनिमय का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारत के लिए अन्य देशों की मुद्रायें – यूरो, डॉलर, व पौण्ड, यूआन आदि विदेशी विनिमय है।
2. विदेशी विनिमय दर के रूप मेः विदेशी विनिमय का अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से भी लिया जाता है अर्थात् जिस दर पर एक देश की मुद्रा किसी दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित की जाती है। सेयर्स के शब्दों में, "चलन मुद्राओं के परस्पर मूल्यों को ही विदेशी विनिमय दर कहा जाता है।" इसलिए जब यह कहा जाता है कि विनिमय दर किसी देश के अनुकूल अथवा प्रतिकूल है, तब इसका अभिप्राय विदेशी विनिमय दर से होता है।

3. इसके अतिरिक्त, विदेशी विनिमय का प्रयोग कभी-कभी उन सुविधाओं के लिए भी किया जाता है जो विदेशी भुगतानों से सम्बन्धित होती हैं।

(ब) **विस्तृत अर्थ मे:** विदेशी विनिमय का प्रयोग उन सभी क्रियाओं एवं विधियों से लिया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। इस प्रकार विदेशी विनिमय के अन्तर्गत वे सभी संस्थायें जो विदेशी भुगतान करती हैं और वह दर जिस पर विदेशी भुगतान किए जाते हैं, सम्मिलित होती हैं। विदेशी विनिमय को विस्तृत अर्थों में स्पष्ट करते हुए एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है कि "विदेशी विनिमय वह प्रणाली है जिसके द्वारा व्यापारिक राष्ट्र पारस्परिक ऋणों का भुगतान करते हैं।" इस प्रकार ऐसे साधन जिनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय भुगतान में किया जाता है, विदेशी विनिमय कहलाता है।

16.3.2 विदेशी विनिमय के तरीके

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में आयातो एवं निर्यातों के भुगतान हेतु देशों को विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु देशों द्वारा निम्नलिखित तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है –

1. विदेशी विनिमय बिलः यह एक लिखित आदेश अथवा प्रार्थना है जिसके अन्तर्गत वस्तु बेचने वाला क्रय करने वाले को विनिमय पत्र लिखता है, जिसमें यह आदेश होता है कि वह एक निश्चित अवधि के अन्दर उसमें अंकित राशि का भुगतान लेनदार को अथवा उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति को करा देगा। इस बिल के स्वीकार हो जाने पर यह विनिमय पत्र अपने ही देश में उन व्यक्तियों को बेच दिया जाता है जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है तथा यह विनिमय पत्र विदेशों में उन व्यक्तियों को भेज दिए जाते हैं जिन्हें ववे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा विनिमय पत्र की यह राशि उस व्यक्ति से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने शुरू में इस वस्तु का आयात करने के कारण स्वीकार किया था।
2. तार द्वारा स्थानान्तरणः इसके अन्तर्गत एक देश के बैंक के द्वारा विदेश में स्थित अपनी शाखा को तार द्वारा सूचना दी जाती है कि एक निश्चित राशि का भुगतान व्यक्ति विशेष को कर दिया जाये। इस प्रकार यह एक देश से दूसरे देश को विदेशी विनिमय स्थानान्तरण का महत्त्वपूर्ण एवं द्रुत तरीका है।
3. बैंक ड्राफ्टः बैंक ड्राफ्ट एवं बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक जिन के साथ इनका लेन-देन रहता है, को लिखा गया आदेश है जिसमें ड्राफ्ट में लिखित राशि का भुगतान जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक ने पहले ही प्राप्त कर ली है, वाहक द्वारा मांगे जाने पर कर दिया जाएगा। इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में भी अंतर्राष्ट्रीय बैंकों अथवा विदेशी विनिमय बैंकों द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है जिसमें ऋणी अर्था आयातकर्ता स्वयं अपने बैंकों

से बैंक ड्राफ्ट बना सकता है जो ऋणदाता को स्थानान्तरित कर दिया जाता है और वह अपने देश के बैंक अथवा शाखा से अंकित राशि प्राप्त कर लेगा।

4. साख-पत्रः इसमें साख पत्र जारी करने वाला बैंक किसी व्यक्ति को एक निश्चित राशि चेक अथवा बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में निकालने का अधिकार देता है। इस पत्र के आधार पर जो राशि आयातकर्ता बैंक से प्राप्त करता है, निर्यातकर्ता उतनी ही राशि का निर्यात कर देता है। इसमें भुगतानकी गारण्टी साख पत्र जारी करने वाले बैंक की होती है। साख पत्र आयातकर्ता की दृष्टि से खण्डन करने योग्य तथा खण्डन न करने योग्य हो सकता है। यद्यपि निर्यातकर्ता खण्डन न करने योग्य साख पत्र को प्राथमिकता देता है।

उपर्युक्त तरीकों के अतिरिक्त विदेशी विनिमय का भुगतान घरेलू करेन्सी, स्वर्ण, यात्री चेक तथा अंतर्राष्ट्रीय मनी आर्डर आदि के द्वारा भी किया जा सकता है।

16.3.3. विदेशी विनिमय की समस्या के कारण

अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों में विदेशी विनिमय की समस्या के उत्पन्न होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं –

1. विभिन्न मुद्रायेः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न देशों की मुद्राये नाम, आकार, मूल्य आदि में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त इन मुद्राओं की निर्गमन व्यवस्था भी अलग-अलग सिद्धान्तों एवं विधियों पर आधारित होती है। मुद्राओं की इन विभिन्नताओं के कारण एक देश की मुद्रा अन्य देशों में विनिमय के माध्यम और मूल्य मापक के रूप में मान्य नहीं होती है। अतः एक देश की मुद्रा अन्य देशों में मान्य नहीं होती अथवा अंतर्राष्ट्रीय अस्वीकृत के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
2. भुगतानों में प्रयुक्त साधन की समस्याः सामान्यतया एक देश दूसरे देश की 'सुलभ मुद्रा' को अंतर्राष्ट्रीय भुगतान हेतु स्वीकार नहीं करता। ऐसी स्थिति में भुगतान वस्तु अथवा स्वर्ण के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। इन दोनों स्थितियों में वस्तु विनिमय प्रणाली का प्रचलन और स्वर्ण का अभाव वा उसके प्रति आकर्षण अंतर्राष्ट्रीय भुगतान प्रणाली को बहुपक्षीय और दीर्घकालिक बनाये रखने में बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु सर्वस्वीकृत साधन के अभाव में विदेशी मुद्राओं का ही प्रयोग करना पड़ता है जिससे विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।
3. स्थायी विनिमय दरों का अभावः विभिन्न देशों की मुद्राओं की विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती है जिसके कारण अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए विदेशी विनिमय के सौदे स्वतन्त्र व निर्बाध रूप से नहीं हो पाते हैं तथा आयात-निर्यात व्यवहार जोखिमपूर्ण हो जाता है। अतः विनिमय दरों में स्थायित्व के अभाव के कारण विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होती है।
4. मुद्राओं की मांग और पूर्ति में असन्तुलनः अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कुछ मुद्राओं (दुर्लभ मुद्रायें) की मांग उनकी पूर्ति से कहीं अधिक होती है जबकि अल्पविकसित देशों की मुद्राओं

(सुलभ मुद्रा) की पूर्ति उनकी मांग से अधिक होती है। इससे न केवल विदेशी समस्या उत्पन्न होती है बल्कि दुर्लभ मुद्राओं का मांग आधिक्य इसे अधिक दुष्कर बना देता है।

5. भुगतान हस्तान्तरण की समस्याः विदेशी विनिमय अंतर्राष्ट्रीय भुगतान के साधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण सरकारी नियंत्रण के अधीन होता है। अतः इसमें अनेक औपचारिकतायें एवं जटिलतायें होती हैं। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों का हस्तान्तरण बैंकों के माध्यम से किया जाता है तथापि इसमें अनेक समस्यायें एवं जोखिम सन्निहित होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1) विदेशी विनिमय का अर्थ बताइये।
2) विदेशी विनिमय के विभिन्न तरीकों को संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए।
3) विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने के क्या कारण है?

16.4 विदेशी विनिमय दर

16.4.1 विदेशी विनिमय दर का अर्थ

सामान्यतया दो देशों की मुद्राओं के विनिमिय अनुपात को विदेशी विनिमय दर अथवा विनिमय दर कहा जाता है। वास्तव में जिस दर पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तित की जाती है उसे ही विनिमय दर कहते हैं अर्थात् यह दर एक करेंसी में दूसरी करेंसी की कीमत होती है। इसे विदेशी करेंसी की एक इकाई की कीमत को घरेलू करेंसी के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण से भारतीय रूपये तथा संयुक्त राज्य अमरीका के डालर के बीच विनिमय दर रू.50 = 1 डालर के रूप में व्यक्त की जा सकती है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका के दृष्टिकोण से उपर्युक्त विनिमय दर को डालर 0.02 = 1 रूपया के रूप में व्यक्त किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि विभिन्न देशों में अलग-अलग मुद्रायें चलन में होती हैं इसलिए एक देश की मुद्रा की विनिमय दर भिन्न-भिन्न मुद्राओं के सन्दर्भ में स्वाभाविक रूप से भिन्न-भिन्न होगी।

16.4.2 विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन के कारण

दीर्घकालीन अथवा सामान्य विनिमय दर की प्रवृत्ति स्थिरता की ओर होती है किन्तु अल्पकालीन या बाजार दर या वास्तविक विनिमय दर में परिवर्तन होते रहते हैं। विनिमय दरों में उच्चावचनों के लिए मुख्यतया विदेशी विनिमय की मांग एवं पूर्ति की शक्तियाँ ही उत्तरदायी होती हैं किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी विनिमय दरों में उच्चावचन लाते हैं जिनका विवरण निम्नवत् हैः-

1. आयातों एवं निर्यातों में परिवर्तनः यदि किसी देश के निर्यात से आयात बढ़ जाते हैं तो विदेशी मुद्रा की मांग उसकी पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाती है और विनिमय दर उस देश के प्रतिकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि देश के आयात निर्यातों की तुलना में कम हैं तो विदेशी विनिमय की मांग पूर्ति की तुलना में कम होगी। अतः विनिमय दर देश के पक्ष में होगी।

2. कीमतों में परिवर्तनः विभिन्न देशों के सापेक्ष कीमत-स्तरों में परिवर्तन विनिमय दर में परिवर्तन लाते हैं। यदि घरेलू कीमत स्तर में वृद्धि विदेशी कीमत-स्तर की तुलना में अधिक

होती है तो निर्यात महंगे होने के कारण घट जाते हैं जबकि आयात सापेक्षिक रूप से सस्ते होने के कारण बढ़ जाते हैं। परिणामतः भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न हो जाता है और देश की विनिमय दर में कमी हो जाती है।

3. ब्याज-दरों में परिवर्तनः यदि देश में ब्याज दरें विदेशों की तुलना में सापेक्षतः अधिक होती है तो विदेशों से पूँजी का अन्तर्प्रवाह होता है और घरेलू करेंसी की विनिमय दर का मूल्य विदेश करेंसी का तुलना में बढ़ जाता है। इसके विपरीत यदि घरेलू ब्याज दरें सापेक्षतः कम होती हैं तो विनिमय दर का मूल्य घट जायेगा।

4. बैंकिंग नीति का प्रभावः यदि व्यापारिक बैंक, विदेशी बैंकों के नाम बहुत अधिक राशि के ड्राफ्ट तथा साख पत्र जारी कर देते हैं तो विदेशी करेंसी की मांग बढ़ जाती है और विनिमय दर प्रतिकूल हो जायेगी। इसके अतिरिक्त अन्य देशों की तुलना में घरेलू अर्थ-व्यवस्था में बैंक दर बढ़ जाती है तो अधिक ब्याज दर अर्जित करने के लिए विदेशों से देश में अधिक कोष आएंगे। इन परिस्थितियों में घरेलू करेंसी की मांग बढ़ने के कारण विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाएगी। यदि बैंक दर गिरेगी तो विनिमय दर देश के प्रतिकूल हो जाएगी।

5. पूँजी गतियाः किसी देश में पूँजी का प्रवाह पूँजी आयात करने वाले देश की करेंसी का मूल्य बढ़ा देता है और पूँजी निर्यातकर्ता देश की करेंसी का मूल्य घटा देता है। अतः विनिमय दर पूँजी आयातकर्ता देश के अनुकूल तथा पूँजी निर्यातकर्ता देश के प्रतिकूल हो जाती है।

6. सट्टे का प्रभावः विदेशी विनिमय बाजार में सटोरियों द्वारा जब किसी मुद्रा की मांग अधिक की जाती है तब उस मुद्रा का वाह्य मूल्य बढ़ जाता है। इसके विपरीत, सटोरियों द्वारा किसी मुद्रा की अत्यधिक बिकवाली करने पर मुद्रा पूर्ति बढ़ने से उसका मूल्य घट जाता है।

7. औद्योगिक कारणः कोई देश जब औद्योगिक प्रगति की और बढ़ता है तब ऐसे देश में अधिक नाम अर्जित करने के उद्देश्य से विदेशी पूँजी का अधिक विनियोजन होने लगता है जिससे देश की मुद्रा की मांग अधिक बढ़ने के कारण विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाती है। इसके विपरीत औद्योगिक अवनति की दशा में विदेशी पूँजी का देश से पलायन होने लगता है और विनिमय दर देश की प्रतिकूल हो जाती है।

8. स्टॉक एक्सचेंज की क्रियायेः यदि स्टॉक एक्सचेंज इस बात में सहायता करते हैं कि विदेशियों को शेयर, डिबेंचर व प्रतिभूतियाँ आदि बेची जाये तो घरेलू करेंसी की मांग बढ़ने के कारण विनिमय दर बढ़ जाएगी किन्तु इसके विपरीत स्थिति में विनिमय दर घट जाएगी।

9. विनिमय नियंत्रणः विनिमय नियंत्रण और संरक्षण सम्बन्धी नीतियाँ आयातों को हतोत्साहित करती है जिससे विदेशी विनिमय की माँग कम हो जाती है और घरेलू विनिमय दर विदेशी करेंसी की तुलना में बढ़ जाती है।

10. संरचनात्मक परिवर्तनः किसी देश में संरचनात्मक परिवर्तन जैसे नवपर्वर्तन व प्रौद्योगिकीय परिवर्तन आदि, वस्तुओं की मांग के साथ-साथ लागत-ढाँचे को भी प्रभावित करते हैं। यह संरचनात्मक परिवर्तन घरेलू वस्तुओं की विदेशी माँग बढ़ाते हैं जिससे देश के निर्यात बढ़ते

हैं। परिणामस्वरुप घरेलू करेंसी की माँग बढ़ती है उसका मूल्य बढ़ता है और देश की विनिमय दर बढ़ जाती है।

11. राजनीतिक परिस्थितियाः यदि देश में राजनीयिक स्थिरता है और सरकार बहुमत में होने के साथ दक्ष है तो विदेशी निवेशकों द्वारा देश में अपने कोषों का निवेश किया जाएगा जिससे देश में पूँजी का प्रवाह होने से घरेलू करेंसी की माँग बढ़ेगी और विनिमय दर देश के अनुकूल हो जाएगी। इसके विपरीत अस्थिर, कमजोर एवं भ्रष्ट सरकार की स्थिति में पूँजी का देश से पलायन होगा और विनिमय दर देश के प्रतिकूल होगी।

अभ्यास प्रश्न 2

1) विदेशी विनिमय दर से आप क्या समझते हैं?
2) विदेशी विनिमय दर में होने वाले परिवर्तनों के कारणों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

16.5. विदेशी विनिमय दर निर्धारण के सिद्धान्त

16.5.1 विदेशी विनिमय दर का निर्धारण

विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर का निर्धारण ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार आन्तरिक बाजार में वस्तु की माँग और पूर्ति फलनों के आधार पर इसके मूल्य का निर्धारण किया जाता है। यद्यपि विनिमय दर निर्धारण की सैद्धान्तिक व्यवस्था प्रायः स्वतंत्र विनिमय बाजार के सन्दर्भ में की जाती है किन्तु प्रत्येक देश में विनिमय बाजार पूर्ण अथवा आँशिक रूप से सरकारी नियंत्रण में होता है। अतः वास्तविक रूप में विनिमय दर का निर्धारण सरकारी नीति पर आधारित होता है. इसके बावजूद विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय दर के निर्धारण में विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः साम्य विनिमय दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ विदेशी विनिमय की माँग विदेशी विनिमय की पूर्ति के बराबर होती है। इसे सामान्य विनिमय दर भी कहा जाता है। बाजार विनिमय दरें (तात्कालिक विनिमय दर) में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं किन्तु यह परिवर्तन कुछ सीमाओं के अन्तर्गत ही होते हैं तथा सामान्य विनिमय दर पर पहुँचने की प्रवृत्ति रखते हैं. विनिमय दरों में समय-समय पर परिवार्तन का कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं की माँग-पूर्ति में परिवर्तन होना है। अतः विनिमय दर निर्धारण हेतु विदेशी विनिमय की माँग व पूर्ति का विश्लेषण करना आवश्यक है।

विदेशी विनिमय की माँगः विदेशी विनिमय की माँग व्युत्पन्न मांग होती है जो प्रायः व्यावसायिक व्यवहार, वित्तीय व्यवहार तथा सट्टे के व्यवहार के लिए की जाती है। व्यवसायिक व्यवहार के अन्तर्गत वस्तुओं का आयात, विदेशों से ली गई सेवाओं का भुगतान, पर्यटकों द्वारा विदेशों में किया गया व्यय, भारतीय प्रतिभूतियों पर विदेशियों को लाभांश का भुगतान तथा अन्य व्यवहार सम्मिलित किए जाते हैं। वित्तीय व्यवहार के अन्तर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन विनियोजन सम्मिलित होते हैं। जब देश के नागरिक विदेशी प्रतिभूतियों में विनियोजन करते हैं अथवा विदेशियों के ऋण चुकाते हैं तब उनके द्वारा विदेशी विनिमय की मांग की जाती है। इसी प्रकार सट्टा व्यवहारों के

अन्तर्गत विदेशी मुद्राओं की विनिमय दरों में परिवर्तन से लाभ कमाने हेतु समय विशेष पर विदेशी मुद्रा की माँग की जाती है।

विदेशी विनिमय की माँग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होता है और इसका रूप आयात की माँग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि आयातित सामग्री आवश्यक वस्तुयें अथवा कच्चा माल है तब आयात सामग्री की माँग की लोच कम होगी और आयातित मात्रा कीमत परिवर्तन के प्रति बेलोच होगी। इसके विपरीत यदि आयातित सामग्री विलासिता की वस्तुएँ हैं और जिनके स्थानापन्न उपलब्ध हैं तब आयात की मांग-लोच प्रायः ऊँची होगी।

चित्र 1 में अमरीकी डालर का माँग वक्र DD के द्वारा प्रदर्शित किया गया है जो भारत में अमरीकी वस्तुओं एवं सेवाओं की आयात मांग को व्यक्त करता है। यदि अमरीकी डालर की विनिमय दर रूपये की तुलना में सापेक्षिक रूप से नीची है तब भारतीय आयातकर्ता अमरीकी वस्तुओं व सेवाओं की अधिक मांग करने हेतु प्रेरित होंगे अर्थात् विदेशी विनिमय (अमरीकी डालर) की माँग अधिक की जाएगी। इसके विपरीत स्थिति में विदेशी विनिमय की माँग कम की जाएगी।

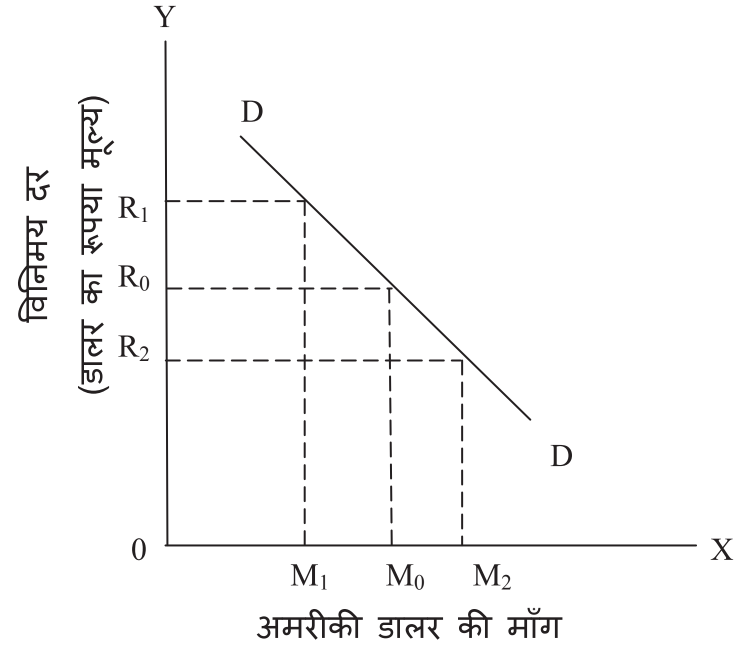

चित्र 1

उपर्युक्त चित्र 1 से स्पष्ट है कि जब विनिमय दर R_0 है तब अमरीकी डालर की माँग $0M_0$ है। यदि विनिमय दर नीची अर्थात् R_2 हो जाती है तब अमरीकी डालर की माँग बढ़कर $0M_2$ हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि विनिमय दर बढ़कर R_1 हो जाती है तब अमरीकी डालर की माँग घटकर $0M_1$ हो जाएगी।

विदेशी विनिमय की पूर्ति: विदेशी विनिमय (अमरीकी डालर) की पूर्ति घरेलू देश (भारत) द्वारा विदेश (संयुक्त राज्य अमरीका) को वस्तुओं एवं सेवाओं की पूर्ति पर निर्भर करेगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति में वृद्धि अथवा कमी भारत द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका को किए जाने वाले वस्तुओं एवं सेवाओं के निर्यात की मात्रा में वृद्धि अथवा कमी पर निर्भर करेगी। विदेशी विनिमय की पूर्ति भी व्यवसायिक व्यवहारों, वित्तीय व्यवहारों एवं सट्टे के व्यवहारों से होती है। व्यवसायिक व्यवहारों के अन्तर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात, विदेशी पर्यटकों द्वारा देश में व्यय, विदेशों में भारतीय प्रतिभूतियों पर आय तथा अन्य मदें जिनके द्वारा भारतीय नागरिकों को भुगतान आदि प्राप्त है, को सम्मिलित किया जाता है। वित्तीय व्यवहारों में विदेशियों द्वारा भारतीय दीर्घकालीन प्रतिभूतियों में विनियोग तथा अल्पकालीन विनियोग सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार सट्टे के व्यवहारों में विदेशी विनिमय की वह समस्त बिक्री सम्मिलित हैं जिससे भविष्य में विनिमय दर घटने पर कम दर पर क्रय करके लाभ अर्जित किया जा सके।

चित्र 2 में विदेशी विनिमय का पूर्ति वक्र SS प्रदर्शित किया गया है जो बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता हुआ है। यह प्रदर्शित करता है कि यदि डालर के विनिमय मूल्य रूपये की तुलना में कम है तो संयुक्त राज्य अमरीका को निर्यात हतोत्साहित होंगे और निम्न विनिमय दर पर डालर (विदेशी विनिमय) की कम मात्रा उपलब्ध होगी। इसके विपरीत, यदि डालर का विनिमय मूल्य रूपये की तुलना में अधिक है तब भारतीय निर्यातक अमरीका को निर्यात हेतु प्रोत्साहित होंगे और विदेशी विनिमय (डालर) की पूर्ति ऊँची विनिमय दर पर अधिक होगी। इस प्रकार विदेशी विनिमय की पूर्ति और विनिमय दर में सीधा सम्बन्ध होता है।

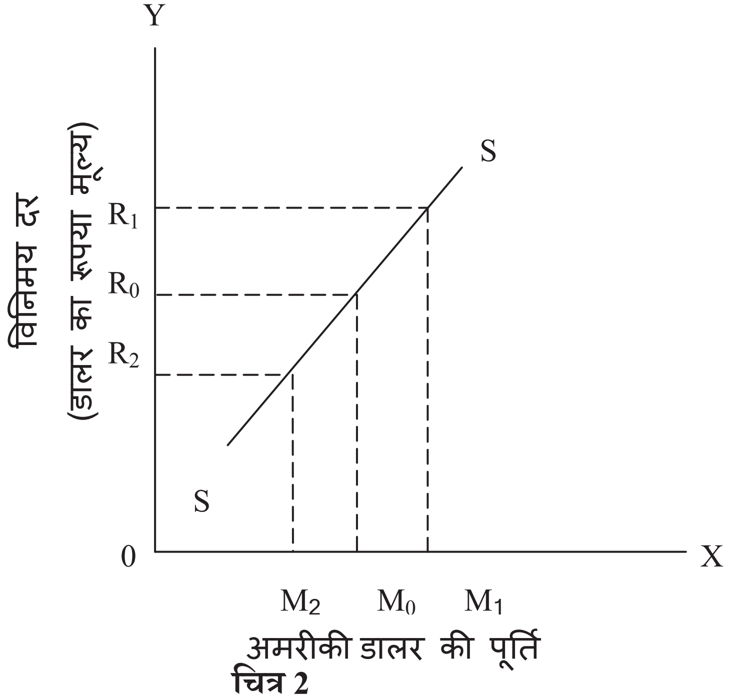

चित्र 2

उपर्युक्त चित्र 2 से स्पष्ट है कि जब विनिमय दर R_0 है तो विदेशी विनिमय की पूर्ति $0M_0$ है। किन्तु जब विनिमय दर बढ़कर R_1 हो जाती है तब विदेशी विनिमय की पूर्ति बढ़कर $0M_1$ हो जाती है क्योंकि भारतीय निर्यातक अमरीका को अधिक निर्यात करने के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इसके विपरीत, जब विनिमय दर घटकर R_2 हो जाती है तब विदेशी विनिमय की पूर्ति कम होकर $0M_2$ रह जाती है। उल्लेखनीय है कि विदेशी विनिमय के पूर्ति वक्र का रूप पूर्ति वक्र की लोच निर्धारित करेगी।

संतुलन विनिमय दरः संतुलन विदेशी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति द्वारा होता है। विदेशी मुद्रा का माँग वक्र (DD) विदेशी मुद्रा के पूर्ति वक्र (SS) को जिस बिन्दु पर काटता है वहाँ विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति दोनों एक दूसरे के बराबर (OM) होती है और संतुलन विनिमय दर (OR) निर्धारित हो जाती है। संतुलन विनिमय दर में उतार-चढ़ाव विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति में परिवर्तन के कारण होते हैं।

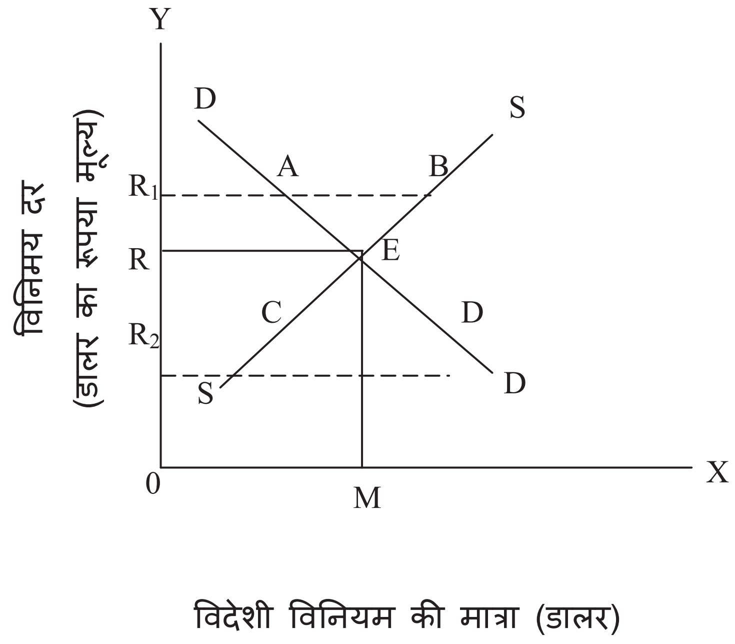

चित्र 3

उपर्युक्त चित्र-3 से स्पष्ट है कि संतुलन विनिमय दर OR पर विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति दोनों OM के बराबर है। विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति के स्थायी साम्य द्वारा निर्धारित विनिमय दर को विनिमय की समता दर भी कहते हैं। किन्तु जो विनिमय दर विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति के अस्थायी साम्य द्वारा निर्धारित होती है उसे बाजार विनिमय दर कहा जाता है। चित्र 3 में विनिमय दर OR_1 जहाँ विदेशी विनिमय की मांग उसकी पूर्ति से कम है तथा OR_2 जहाँ विदेशी विनिमय की मांग उसकी पूर्ति से क्रमशः कम व अधिक है, बाजार विनिमय दर को व्यक्त करती है। संतुलन विनिमय दर तथा बाजार विनिमय दर में अन्तर यह है कि संतुलन विनिमय दर दीर्घकालीन विनिमय

दर होती है और इसमें परिवर्तन नहीं होते हैं जबकि बाजार विनिमय दर अल्पकालीन विनिमय दर होती है और इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु दीर्घकालीन में इसकी प्रवृत्ति संतुलन अथवा साम्य विनिमय दर के बराबर होने की होती है।

16.5.2 टंकण मूल्य समता सिद्धान्त

जब देशों में स्वर्णमान प्रचलन में था तब देशों की प्रामाणिक मुद्राएं स्वर्ण की बनी होती थी अथवा स्वर्ण में संपरिवर्तनीय होती थी। ऐसी स्थिति में दो देशों की मुद्राओं के मध्य विनिमय दर का निर्धारण टकसाली समता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विनिमय दर दोनों देशों की मुद्राओं के प्रामाणिक सिक्कों को विशुद्ध स्वर्ण की समानता स्थापित करके ज्ञात किया जाता है और इसे टकसाल दर समता अथवा विनिमय की टकसाल दर समता कहा जाता है।

उदाहरण के लिए, प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व इंग्लैंड एवं अमरीका में स्वर्णमान प्रचलन में था और पौण्ड में 113.0016 ग्रेन स्टैण्डर्ड स्वर्ण जबकि डॉलर में 23.2200 ग्रेन स्टैण्डर्ड स्वर्ण विद्यमान था। अतः इन दोनों करेंसी के मध्य टकसाल समता दर 113.0016/23.2200 अर्थात पौण्ड 1 = 4.8665 डॉलर के रूप में व्यक्त की जा सकती है। यद्यपि स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर करेंसी के स्वर्ण मूल्य अनुपात के बराबर होती है किन्तु इसमें परिवर्तन स्वर्ण बिन्दुओं के बीच हो सकता है जो कि बीमा, परिवहन, पैंकिंग आदि की लागत पर निर्भर करेगा। इसलिए स्वर्ण बिन्दुओं पर स्वर्ण निर्यात और आयात अनुसूची पूर्णतया लोचदार हो जाती है।

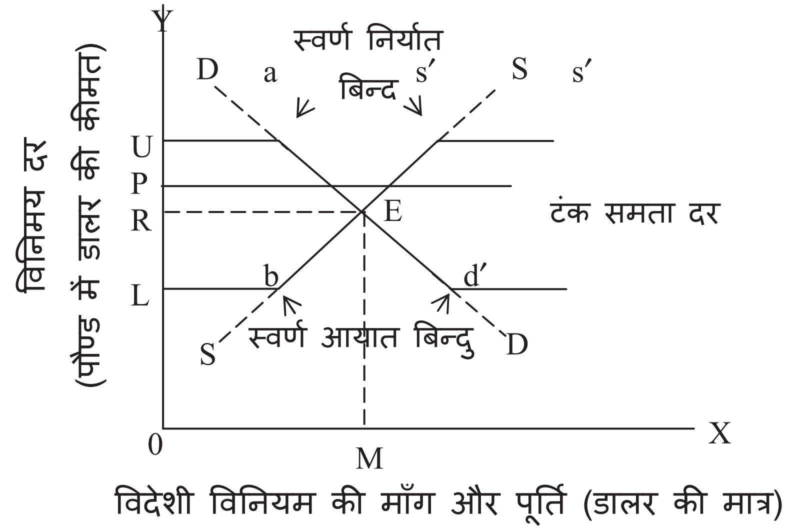

चित्र 4

चित्र 4 से स्पष्ट है कि डालर एवं पौण्ड के ध्य संतुलन विनिमयदर OR है। क्षैतिज रेखा P टंकण समता दर को व्यक्त करती है। U तथा L क्षैतिज रेखायें क्रमशः स्वर्ण निर्यात बिन्दु या उच्च सीमा (1 पौण्ड = 4.8665 डालर) तथा स्वर्ण आयात बिन्दु या निम्न सीमा को प्रदर्शित करती हैं। यदि 4.8665 डालर मूल्य के स्वर्ण को निर्यात करने की लागत 0.04 डालर आती है तो कोई भी

अमरीकी प्रत्येक पौण्ड के लिए 4.9065डालर से अधिक देने हेतु तैयार नहीं होगा क्योंकि वे पौण्ड की कोई भी मात्रा 4.9065 डालर मूल्य के स्वर्ण को निर्यात करके प्राप्त कर सकते हैं। अतएव ऊपरी बिन्दु पर पूर्ति अनुसूची पूर्णतया लोचदार हो जाती है। इसी प्रकार विनिमय दर पौण्ड 1 = 4.8265 डालर की निचली सीमा की स्थिति में अमरीकी नागरिकों द्वारा पौण्ड की असीमित मांग की जाएगी। यदि विनिमय दर निचली सीमा से नीचे चली जाती है तो अमरीकी नागरिक इंग्लैण्ड से स्वर्ण के आयात को प्राथमिकता देंगे।

यह सिद्धान्त इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि वास्तविक विनिमय दर सामान्य विनिमय दर से क्यों अलग होती है और इसमें उच्चावचन की उच्चतम एवं निम्नतम सीमायें क्या हैं। परन्तु जैसा आप जानते है कि वर्तमान समय में यह सिद्धान्त अनुपयोगी हो गया है क्योंकि किसी भी देश में स्वर्णमान प्रचलन में नहीं है और प्रायः सभी देशों में अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा चलन में है।

16.5.3. क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) के दौरान स्वर्णमान के समाप्त होने के कारण विनिमय दर में परिवर्तन स्वर्ण बिन्दुओं से परे होने लगे और अपरिवर्तनशील पत्र मुद्राओं के बीच सोम्य विनिमय दर का निर्धारण टंकण समता सिद्धान्त द्वारा सम्भव नहीं था। अतः क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त का विचार सर्वप्रथम जॉन व्हीटले के द्वारा किया गया। बाद में स्वीडिश अर्थशास्त्री गुस्ताव कैसल को इस सिद्धान्त की वैज्ञानिक व्याख्या करने का श्रेय प्राप्त है।

क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार दो अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं के बीच विनिमय दर, उनकी क्रयशक्तियों की समता निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में, दो मुद्राओं के बीच विनिमय दर आन्तरिक क्रय-शक्ति के भागफल पर निर्भर करती है। क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त के दो दृष्टिकोण हैं –

1. **निरपेक्ष दृष्टिकोण**: इस दृष्टिकोण के अनुसार क्रय-शक्ति समता द्वारा निर्धारित विनिमय दर देशों की राष्ट्रीय मुद्रा इकाइयों के बीच आन्तरिक क्रय शक्ति के अनुपात को व्यक्त करती है। उदारहणार्थ, यदि 10 प्रतिनिधि वस्तुओं का समूह भारत में रू. 500 में खरीदा जा सकता है और उन्हीं वस्तुओं का समूह अमरीका में डालर 10 में खरीदा जा सकता है तब भारत व अमरीका के बीच विनिमय दर को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

रूपये 500 = डालर 10

1 रूपया = 0.02 डालर

अथवा 1 डालर = 50 रूपये

इस प्रकार देश A तथा B की करेंसी के बीच विनिमय दर की माप निम्नलिखित रूप से किया जाना सम्भव है –

$$\text{विनिमय दर} = \frac{A \text{ करेंसी की इकाईयाँ}}{B \text{ करेंसी की इकाईयाँ}} \times \frac{A \text{ की आन्तरिक क्रय–शक्ति}}{B \text{ की आन्तरिक क्रय–शक्ति}}$$

चूँकि प्रत्येक करेंसी की आन्तरिक क्रय-शक्ति सम्बन्धित देश के सामान्य कीमत-सूचकांक का व्युत्क्रम होती है। अतः उपर्युक्त सूत्र को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है-

$$\text{विनिमय दर} = \frac{\text{करेंसी } A \text{ की इकाईयाँ}}{\text{करेंसी } B \text{ की इकाईयाँ}} \times \frac{B \text{ देश का कीमत सूचकांक}}{A \text{ देश का कीमत सूचकांक}}$$

उपर्युक्त दृष्टिकोण विनिमय दर विर्धारण हेतु निरपेक्ष आन्तरिक कीमत स्तर की माप करता है जबकि मुद्रा की इस प्रकार निरपेक्ष माप नहीं की जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश के उत्पाद एवं उनकी माँग गुणवत्ता एवं प्रकार में एक समान नहीं होने के साथ अन्य अन्तर भी होते हैं जिनके कारण भी निरपेक्ष माप नहीं की जा सकती है।

2. **सापेक्ष दृष्टिकोण**: यह दृष्टिकोण दो देशों की करेंसियों के मध्य साम्य विनिमय दर में परिवरितन की व्याख्या करती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार वर्तमान अवधि में विनिमय दर का निर्धारण आधार वर्ष में संतुलनविनिमय दर और एक देश में वर्तमान व आधार वर्ष में कीमत सूचकांक अनुपात का दूसरे देश के वर्तमान व आधार वर्ष में कीमत सूचकांक के अनुपात के द्वारा निर्धारित होती है। सांकेतिक रूप में,

$$R_1 = R_0 \cdot \frac{P_{B1}/P_{B0}}{P_{A1}/P_{A0}}$$

जहाँ R_1 वर्तमान अवधि में विनिमय दर, R_0 आधार वर्ष अथवा मूल विनिमय दर, P_{A0} व P_{A1} देश A में क्रमशः आधार एवं वर्तमान वर्ष में कीमत सूचकांक तथा P_{B0} व P_{B1} क्रमशः B देश में आधार व वर्तमान वर्ष में कीमत सूचकांक को व्यक्त करते हैं।

उदाहरणार्थ, यदि रूपये और डॉलर के बीच मूल अथवा आधार वर्ष में विनिमय दर 1 डालर = 50 रूपये है। यदि भारत (देश B) में वर्तमान वर्ष (P_{B1}) में कीमत सूचकांक 201 और अमरीका (देश A) में वर्तमान अवधि में कीमत सूचकांक (P_{A1}) 150 है। साथ ही दोनों देशों में आधार वर्ष में कीमत सूचकांक (अथार्त P_{B0} एवं P_{A0}) 100 था। ऐसी दशा में वर्तमान अवधि में दोनों देशों के बीच साम्य विनिमय दर निम्नलिखित प्रकार से ज्ञात की जा सकती है –

$$R_1 = R_0 \cdot \frac{P_{B1}/P_{B0}}{P_{A1}/P_{A0}}$$

$$= 50 \cdot \frac{201/100}{150/100}$$

$$= 50 \times \frac{201}{100} \times \frac{100}{150}$$

$$= 50 \times \frac{201}{150}$$

$$= 67$$

R_1 : 1 डालर = 67 रूपये

यह वर्तमान साम्य विनिमय दर यह व्यक्त करती है कि अब इस अवधि में डालर का मूल्य बढ़ गया है जबकि रूपये का मूल्य घट गया है। वस्तुओं की परिवहन लागत जिसमें प्रशुल्क भी सम्मिलित है, बीमा, बैकिंग, विदेशी बाजार में विज्ञापनों पर व्यय आदि क्रय-शक्ति समता को संशोधित करेगी।

इसकी ऊपरी सीमा वस्तु निर्यात बिन्दु तथा निचली सीमा वस्तु आयात बिन्दु कहलाती है। ये सीमाएँ टंकण समता सिद्धान्त के स्वर्ण बिन्दुओं की भाँति उतनी सुनिश्चित नहीं होती है जिनके बीच विनिमय दर परिवर्तित होती है।

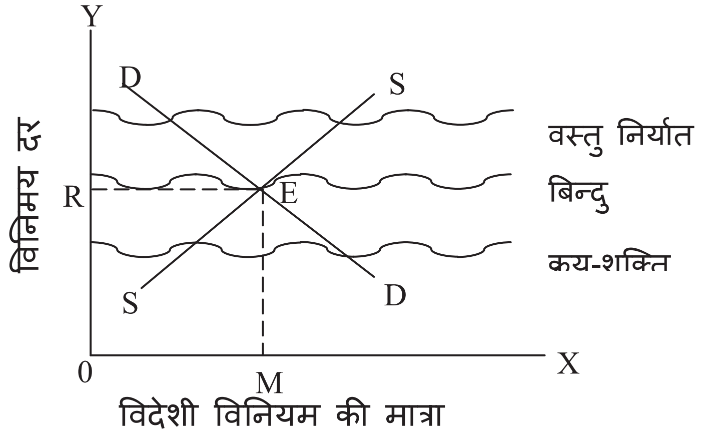

चित्र 5

चित्र 5 से स्पष्ट है कि बाजार विनिमय दर 0R विदेशी विनिमय की मांग (DD) और पूर्ति (SS) वक्र के द्वारा निर्धारित है जहाँ विदेशी विनिमय की मांगी गई मात्रा तथा पूर्ति दोनों OM के बराबर है। जब विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति में परिवर्तन होता है तब बाजार विनिमय दर क्रय-शक्ति समता द्वारा निर्धारित साम्य विनिमय दर की उच्च सीमा वस्तु निर्यात बिन्दु तथा निम्न सीमा वस्तु आयात बिन्दु के बीच परिवर्तित होगी।

यह सिद्धान्त विनिमय दर निर्धारण हेतु सभी प्रकार की अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा प्रणालियों पर लागू होता है किन्तु इसकी सबसे बड़ी कठिनाई कीमत सूचकांकों के निर्माण तथा उन्हे तुलनीय बनाने की है। इसके अतिरिक्त यह पूँजी लेखा की मदों की उपेक्षा करता है और विनिमय दर के परिवर्तनों का कीमत-स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव को शामिल नहीं करता है।

16.5.4. भुगतान संतुलन सिद्धान्त

किसी देश की करेंसी की विनिमय दर मुक्त विनिमय दरों के अन्तर्गत उसके भुगतान संतुलन पर निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करती है। विदेशी विनिमय की माँग भुगतान-संतुलन के उधार खाते से उत्पन्न होती है जिसमें दूसरे देशों से खरीदी गई वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले उन देशों के किए गए भुगतानों तथा ऋण व विदेश में किए गए निवेशों को सम्मिलित किया जाता है। इसी प्रकार विदेशी विनिमय की पूर्ति भुगतान-संतुलन के जमा खाते से उत्पन्न होती है जिसके अन्तर्गत देश से खरीदी गई वस्तुओं व सेवाओं के बदले में विदेशों से प्राप्त भुगतानों तथा विदेशों द्वारा लौटाए गए ऋणों व देश में किए गए निवेशों के मूल्य को सम्मिलित किया जाता है। जब जमा खाता तथा उधारखाता दोनों आपस में बराबर हो तब भुगतान-शेष संतुलन की स्थिति में होता है और विनिमय दर साम्य की दशा में होती है।

यदि जमा राशि से उधार राशि बढ़ जाए तो भुगतान-शेष प्रतिकूल होता है व विनिमय दर संतुलन विनिमय दर से नीचे चली जाती है और निर्यात बढ़ते हैं, फलस्वरुप संतुलन विनिमयदर पुनः स्थापित हो जाती है। इसके विपरीत, जब जमा राशि से उधार राशि घट जाए तब भुगतान-शेष अनुकूल होता है व विनिमय दर संतुलन दर से ऊपर चली जाती है और निर्यात घटने लगते हैं। फलस्वरुप अनुकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और संतुलन विनिमयदर पुनः स्थापित हो जाती है।

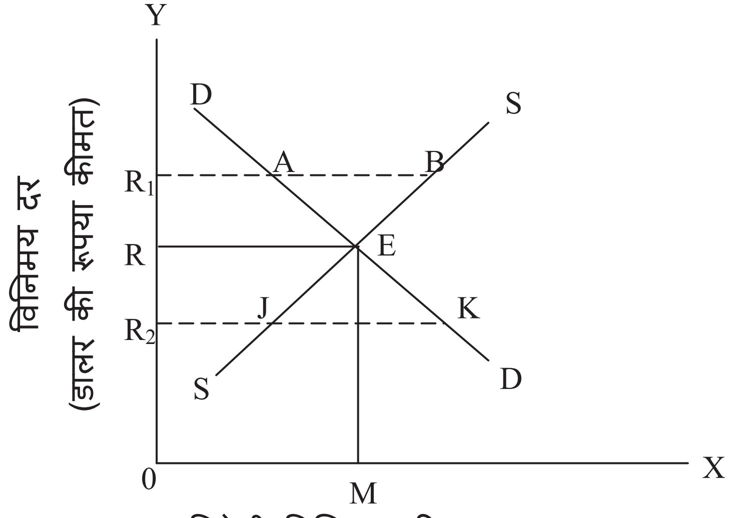

चित्र 6

चित्र 6 से स्पष्ट है कि साम्य विनिमय दर E बिन्दु पर स्थापित होती है जहाँ विदेशी विनिमय का माँग-वक्र DD विदेशी विनिमय के पूर्ति वक्र SS के बराबर है। विदेशी विनिमय की पूर्ति R_1B विदेशी विनिमय की माँग R_1A की तुलना में अधिक है तब अनुकूल भुगतान संतुलन की दशा में विनिमय दर संतुलन विनिमय दर OR से बढ़कर OR_1 हो जाएगी और निर्यात घटने से अनुकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत, जब विदेशी विनिमय की माँग R_2K उसकी पूर्ति R_2J से अधिक है तब प्रतिकूल भुगतान संतुलन की दशा में विनिमय दर संतुलन विनिमय दर OR से घटकर OR_2 हो जाएगी। फलस्वरुप निर्यात बढ़ने लगेगें व प्रतिकूल भुगतान-शेष धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा और संतुलन विनिमय दर OR पुनः स्थापित हो जाएगी।

इस प्रकार विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति विनिमय दर को निर्धारित करते हैं तथा इन वक्रों के स्वरुप निर्यात की माँग की विदेशी लोच, निर्यात की पूर्ति की घरेलू लोच, आयात की माँग की घरेलू लोच व आयात की पूर्ति की विदेशी लोच पर निर्भर करते हैं। यदि माँग की लोचें ऊँची हों, साथ ही पूर्ति लोचे नीची हों तो संतुलन विनिमय दर स्थिर रहती है।

अभ्यास प्रश्न 3

1) विदेशी विनिमय दर निर्धारण के कौन-कौन से सिद्धान्त है?
2) टंकण-मूल्य समता सिद्धान्त किस मुद्रामान के अन्तर्गत लागू होता है?
3) क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?

4) टंकण मूल्य समता सिद्धान्त के अन्तर्गत ऊपरी सीमा को क्या कहा जाता है?

5) क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त में विनिमय दर की निम्न सीमा को क्या कहा जाता है?

16.6 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति में विदेशी भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की आवश्यकता होती है। सामान्यतया अन्य देशों की मुद्राओं को विदेशी विनिमय कहा जाता है किन्तु इसके अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं एवं विधियों को शामिल किया जाता है जिनके द्वारा दो या दो से अधिक देशों के व्यापारी अपने व्यावसायिक दायित्वों का भुगतान करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय की समस्या उत्पन्न होने का मुख्य कारण विभिन्न देशों की मुद्राओं का भिन्न-भिन्न होना, मुद्राओं की माँग और पू र्ति में असाम्य तथा स्थायी विनिमय दरों का अभाव है। विदेशी विनिमय दर दो देशों की मुद्राओं के बीच विनिमय अनुपात को कहा जाता है जिस पर एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा से परिवर्तित की जाती है। दीर्घकालीन विनिमय दरों को सामान्य या साम्य विनिमय दर और अल्पकालीन विनिमय दरों को तात्कालिक अथवा बाजार विनिमय दर कहा जाता है जिसमें विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति में परिवर्तन के कारण निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। विनिमय दर का निर्धारण स्वर्णमान के अन्तर्गत टंकण मूल्य समता सिद्धान्त के द्वारा किया जाता है जबकि अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं के बीच विनिमय दर का निर्धारण क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त अथार्त उनकी पारस्परिक आन्तरिक क्रय-शक्तियों के अनुपात के आधार पर किया जाता है। भुगतान संतुलन सिद्धान्त के अन्तर्गत भुगतान-शेष के उधार खाता एवं जमा खाते की मदों की समानता के आधार पर किया जाता है।

16.7 शब्दावली

1. विदेशी विनिमय – विदेशी भुगतानों हेतु प्रयुक्त साधन – अन्य देशों की मुद्रायें तथा स्वर्ण आदि।
2. विदेशी विनिमय दर – वह दर जिस पर एक देश की मुद्रा को दूसरे देश की मुद्रा से बदला जाता है।
3. विदेशी विनिमय बिल – एक लिखित आदेश जिसमें क्रय करने वाला एक निश्चित अवधि में अंकित राशि का भुगतान लेनदार को करने का आदेश देता है।
4. साख-पत्र – इसमें साख पत्र जारी करने वाला बैंक एक निश्चित अवधि में किसी व्यक्ति को निश्चित राशि चेक अथवा बिल द्वारा निकालने का अधिकार देता है।
5. विदेशी विनिमय की माँग– विदेशों से वस्तुओं एकं सेवाओं के आयातों तथा अन्य देशों में किए गए निवेशों व ऋणों के भुगतान हेतु की जाने वाली व्युत्पन्न माँग है।

6. विदेशी विनिमय की पूर्ति– यह घरेलू देश द्वारा विदेश को वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात एवं देश में विदेशियों द्वारा किए गए निवेश को व्यक्त करती है।
7. साम्य विनिमय दर – विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित स्थायी दर को साम्य विनिमय दर कहा जाता है।
8. टकसाल दर समता – दो देशों की मुद्राओं के प्रामाणिक सिक्कों में निहित विशुद्ध स्वर्ण की समानता।
9. क्रय-शक्ति समता – दो देशों की अपरिवर्तनीय पत्र मुद्राओं की आन्तरिक क्रय शक्तियों का आपस में अनुपात।
10. भपगतान संतुलन – शेष विश्व के साथ किसी देश का एक निश्चित अवधि में समस्त आर्थिक लेखा-जोखा।

16.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 1

1) कृपया भाग 16.3.1 को पढ़िए।2) कृपया भाग 16.3.2 को पढ़िए।3)कृपया भाग 16.3.3 को पढ़िए।

उत्तर अभ्यास प्रश्न 2

1) कृपया भाग 16.4.1 को पढ़िए। 2) कृपया भाग 16.4.2 को पढ़िए।

उत्तर अभ्यास प्रश्न 3

1) टंकणमूल्य समता सिद्धान्त, क्रयशक्ति समता सिद्धान्त, भुगतान संतुलन सिद्धान्त 2)स्वर्णमान

3) गुस्ताव कैसल 4)स्वर्ण निर्यात बिन्दु 5)वस्तु आयात बिन्दु

16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mithani, D.M. (2010). “International Economics” Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
3. अग्रवाल एवं बरला (2008). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र”लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). “अंतरविदीय अर्थशास्त्र”विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

16.10. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झिंगन, एम.एल. (2011). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।

2. Salvatore, Dominick (1998) “International Economics” Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
3. Pugel, A. Thomas (2011). “International Economics” 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
4. Avadhani, V.A. (2012). “International Economics” Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सन्तुलन विनिमय दर से क्या अभिप्राय है? संतुलन विनिमय दर किस तरह निर्धारित होती है?
2. स्वर्णमान के अन्तर्गत विनिमय दर के टंकण मूल्य समता सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक समझाइए।
3. क्रय-शक्ति समता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. विनिमय दर निर्धारण के भुगतान संतुलन सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

इकाई-17 विनिमय नियंत्रण

इकाई संरचना

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 मुख्य भाग
17.3.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ
17.3.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ
17.3.3 विनिमय नियंत्रण के उद्देश्य
17.4 विनिमय नियंत्रण के तरीके
17.4.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण
17.4.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण
17.4.3 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव
17.4.4 विनिमय नियंत्रण के गुण
17.4.5 विनिमय नियंत्रण के दोष
17.5 भारत में विनिमय नियंत्रण
17.5.1 विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम
17.5.2 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम
17.5.3 मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम
17.5.4 रूपये की परिवर्तनीयता
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विनिमय नियंत्रण को स्पष्ट किया जाएगा। आप देखेंगे कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तथा उसके बाद विदेशी विनिमय लेनदेनों पर देशों द्वारा नियंत्रण किया जाने लगा था। 1930 की विश्वव्यापी मंदी ने इसे और आवश्यक बना दिया और देशों द्वारा अपने भुगतान शेष को संतुलित बनाये रखने हेतु विनिमय नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को अपनाया जाने लगा। यद्यपि 1950 से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय नियंत्रण में कमी होने लगी है फिर भी इस स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है तथा देशों द्वारा किसी न किसी रूप में विनिमय नियंत्रण भी अपनाया जा रहा है। आप इस इकाई में विनिमय नियंत्रण के इन विभिन्न तरीकों की समझ सकेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के सन्दर्भ में विनिमय नियंत्रण की स्थिति पर संक्षिप्त चर्चा की जाएगी।

17.2. उद्देश्य

प्रत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

1. विनिमय नियंत्रण का अर्थ और इसके विभिन्न तरीके क्या हैं।
2. विनिमय नियंत्रण के विभिन्न तरीके तथा इसका प्रभाव क्या होता है।
3. विनिमय नियंत्रण के पारस्परिक गुण-दोष क्या हैं।
4. भारत में विनिमय नियंत्रण के सम्बन्ध में क्या प्रावधान किए गए हैं।

17.3. मुख्य भाग

17.3.1 विनिमय नियंत्रण का अर्थ

विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेनदेन को प्रतिबंधित कर दिया जाता है। इस स्थिति में विदेशी विनिमय बाजार में आर्थिक शक्तियों के मुक्त व्यवहार की बजाय राज्य अथवा सरकार द्वारा विदेशी विनिमय को नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार जब विदेशी विनिमय बाजार में विनिमय नियंत्रण पूर्णरूपेण होता है तब विदेशी विनिमय बाजार पूर्णतया सरकारी निर्णयों द्वारा संचालित होता है। यह विदेशी विनिमय के मुक्त लेनदेनों को पूर्णरूप से प्रतिबंधित कर देता है। ऐसी स्थिति में सरकार अथवा देश के केन्द्रीय बैंक का विदेशी विनिमय बाजार पर सम्पूर्ण नियंत्रण होता है। देश के निर्यातों तथा अन्य समस्त स्रोतों से अर्जित विदेशी प्राप्तियाँ केन्द्रीय बैंक के अधीन होती हैं और वह देश की आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर आयातकों को विदेशी विनिमय का आवंटन करता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति प्रवाहों में सन्तुलन स्थापित कर भुगतान संतुलन तथा अधिकारिक विनिमय दर को संतुलित बनाए रखने का प्रयास करता है।

17.3.2 विनिमय नियंत्रण की विशेषताएँ

विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. सशक्त विदेशी विनिमय व्यवहारों का विनिमय नियंत्रण द्वारा केन्द्रीयकरण हो जाता है और उनका संचालन सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है।
2. केन्द्रीय बैंक सरकारी विनिमय दर निश्चित करता है और इसे स्थिर रखने हेतु विदेशी करेंसियों की माँग-पूर्ति का नियमन करता है।

3. निर्यातकों द्वारा अर्जित समस्त विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक के पास जाती है और वह स्वदेशी मुद्रा में निर्यातकों को भुगतान करता है। इसी प्रकार आयातकों को विदेशी भुगतान करने हेतु विदेशी मुद्रा बेच दी जाती है।
4. लाइसेंस प्राप्त व्यापारी और विशिष्ट बैंक ही विदेशी विनिमय का लेनदेन कर सकते हैं।
5. विनिमय नियंत्रण के द्वारा व्यापार-संतुलन को अनुकूल बनाया जा सकता है क्योंकि आयातों को सीमित किया जा सकता है।

17.3.3. विनिमय नियंत्रण के उद्देश्य

देश की सरकारों अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा समय-समय पर विनिमय नियंत्रण को अपनाया गया है जिसके उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. विनिममय दरों का स्थिरीकरणः मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे उद्योग तथा वाणिज्य को हानि पहुँचती है। इसलिए सरकार निश्चित विनिमय दर घोषित कर विनिमय नियंत्रण द्वारा उसे स्थिर बनाए रखती है।
2. विदेशी विनिमय का संरक्षणः विनिमय नियंत्रण द्वारा मौद्रिक प्राधिकारी आवश्यक अथवा विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं के आयातों को प्रतिबंधित कर आवश्यक वस्तुओं के आयातों हेतु विदेशी विनिमय की आपूर्ति कर सकते हैं।
3. पूँजी बहिर्गमन पर रोकः राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों से यदि विदेशों में पूँजी का विनियोग होने लगे तो देश के स्वर्ण एवं विदेशी कोष समाप्त हो सकते हैं। अतः विनिमय नियंत्रण द्वारा पूँजी के बहिर्गमन को राका जा सकता है।
4. विदेशी ऋण का पुनर्भुगतानः देश, विदेशी ऋण के मूल और ब्याज का भुगतान करने के लिए, विनिमय नियंत्रण को अपनाकर विदेशी विनिमय अर्जित कर सकता है।
5. प्रतिकूल भुगतान-संतुलन को सुधारनाः देश अपने भुगतान-संतुलन के घाटे को पूरा करने हेतु विनिमय नियंत्रण द्वारा आयातों को सीमित कर सकता है।
6. प्रभावी आर्थिक आयोजनः देश में आर्थिक आयोजन की सफलता हेतु विदेशी व्यापार का आयोजित कार्यक्रमों के साथ समन्वय आवश्यक है जिससे घरेलू उद्योगों हेतु आवश्यक पूँजी उपलब्ध हो सके। इस उद्देश्य हेतु विनिमय नियंत्रण अतिआवश्यक है।
7. घरेलू उद्योगों का संरक्षणः विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उत्पादकों तथा उद्योगों को आयात सीमित कर विदेशी व्यापारियों की प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विशेषतया शिशु उद्योगों और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु ऐसा किया जाना आवश्यक है।
8. मुद्रा का अधिमूल्यनः देश विनिमय नियंत्रण द्वारा मुद्रा की कीमत अन्य देशों की तुलना में अधिक घोषित कर आवश्यक कच्चामाल, उपभोग वस्तुओं तथा सैन्य सामग्री आदि सस्ती कीमत पर आयात कर सकता है। किन्तु यह एक अल्पकालीन उपाय है क्योंकि इससे निर्यात महँगें तथा आयात सस्ते होने के कारण भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

9. मंदी के विस्तार पर रोकः अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के कारण विकसित देश आयातों एवं निर्यातों के द्वारा मंदी का विस्तार अन्य देशों में भी कर सकते हैं जिन्हें विनिमय नियंत्रण द्वारा उसी देश तक सीमित रखा जा सकता है।

10. राजस्व की प्राप्तिः विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत सरकार द्वारा अधिकृत केन्द्रीय बैंक अन्य देशों से क्रय की गई विदेशी करेंसी को ऊँची कीमत पर देश के व्यापारियों व नागरिकों को बेचकर राजस्व प्राप्त कर कता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1) विनिमय नियंत्रण को स्पष्ट कीजिए।
2) विनिमय नियंत्रण की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
3) विनिमय नियंत्रण के उद्देश्यों को संक्षेप में बताइए।

17.4 विनिमय नियंत्रण के तरीके

प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण विधियों को मुख्यतया दो रूपों – प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष में विभाजित किया जा सकता है।

17.4.1 प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

प्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय को उनकी मात्रा, प्रयोग एवं आवंटन की दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करते हैं और इनका क्रियान्वयन केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है। ये निम्नवत् हैं –

1. सरकारी हस्तक्षेपः सरकारी हस्तक्षेप के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक विनिमय दर को ऊँचा अथवा नीचा रखने हेतु विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है। इसे कीलित विनिमय दरें कहा जाता है। यदि केन्द्रीय बैंक घरेलू करेंसी की विनिमय दर को विदेशी विनिमय बाजार में प्रचलित विनिमय दर से नीची निर्धारित करता है तो इसे 'नीचे कीलना' कहते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय बैंक विदेशी करेन्सियों के बदले स्थानीय करेंसी को निर्धारित दरों पर बेचता है क्योंकि नीची विनिमय दर पर स्थानीय करेंसी की माँग उनकी पूर्ति से अधिक होती है। इसलिए स्थानीय करेंसी की उपलब्धता अधिक मात्रा में आवश्यक होती है।

   इसके विपरीत, यदि केन्द्रीय बैंक वर्तमान विनिमय दर की अपेक्षा घरेलू करेंसी की ऊँची विनिमय दर निर्धारित करता है तो इसे 'ऊपर कीलना' कहते हैं। ऐसी स्थिति में घरेलू करेंसी की माँग उसकी पूर्ति से कम होती है और निर्धारित विनिमय दर पर केन्द्रीय बैंक को विदेशी करेन्सियों के बदले घरेलू करेंसी को क्रय करना होता है। फलस्वरुप विदशी करेंसियों की अधिक आवश्यकता होती है।

   उपर्युक्त दोनों स्थितियों में केन्द्रीय बैंक को घरेलू करेंसी अथवा विदेशी करेंसी के विशाल संसाधनों की आवश्यकता होती है। इसलिए ऊँचा कीलना की तुलना में नीचा कीलना केन्द्रीय बैंक हेतु अधिक व्यावहारिक होता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा इस प्रकार हस्तक्षेप मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकने हेतु अल्पकालीन उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

2. विनिमय प्रतिबंधः विनिमय प्रतिबंध के अन्तर्गत सरकारी विनिमय नियंत्रण प्राधिकरण अर्थात् केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय बाजार में घरेलू करेंसी की पूर्ति को अनिवार्य रूप से कम अथवा प्रतिबंधित कर

देता है। ऐसा करने हेतु सरकार सभी प्रकार के विदेशी विनिमय व्यापार को स्वयं अर्थात् केन्द्रीय बैंक तक सीमित कर सकता है। विदेशी करेंसी के बदले में घरेलू करेंसी के विनिमय को प्रतिबंधित कर सकता है। इसके अतिरिक्त, सरकार विदेशी विनिमय लेनदेन हेतु सरकारी अभिकरण को अधिकृत कर सकता है।

विनिमय प्रतिबंध के अनेक रूप होते हैं जिनमें अधिकांशतः निम्नलिखित प्रयोग किए जाते हैः

(i) बहु-विनिमय दरें – इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों एवं निर्यातों के विभिन्न वर्गों एवं श्रेणियों हेतु अलग-अलग विनिमय दरें निर्धारित करता है जिसका उद्देश्य आयातों में कमी करना और निर्यातों के वृद्धि करना है जिससे भुगतान-संतुलन को ठीक किया जा सके। उदाहरण के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात हेतु केन्द्रीय बैंक अपेक्षाकृत नीची विनिमय दर तथा विलासिता वाली वस्तुओं हेतु ऊँची दर निर्धारित कर सकता है। इसी प्रकार केन्द्रीय बैंक ऊँची विनिमय दर रखकर निर्यातकों को सहायिकी दे सकता है। प्रायः अदृश्य मदों और पूँजी हस्तान्तरणों की विनिमय दर अपेक्षाकृत ऊँची निर्धारित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त विनिमय दरें वस्तुओं की माँग की लोच के आधार पर भी निर्धारित की जाती हैं।

बहु-विनिमय दर प्रणाली का प्रभाव आयात पर लगने वाले प्रशुल्क और निर्यात पर दी जाने वाली सहायिकी के समान होता है। साथ ही यह भुगतान संतुलन को ठीक करने का एक प्रभावी उपाय है। इसकी सबसे बड़ी कमी यह है कि यह भुगतान संतुलन को ठीक करने की बजाय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को सीमित कर विश्व स्तर पर उत्पादन व कल्याण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

(ii) अवरुद्ध खाते – देश में वित्तीय संकट की स्थिति में ऋणी देश अपने ऋणदाता देशों के खातों को अवरुद्ध कर सकता है। इसके अन्तर्गत आयातों का भुगतान विदेशी निर्यात कर्ताओं के अवरुद्ध खातों में जमा कर दिए जाते हैं और उन खातों से उन्हें मुद्रा निकालने की मनाही कर दी जाती है। किन्तु नियन्त्रणकर्ता देश इन अवरुद्ध खातों को अपने काम में ले सकता है। इस योजना के अन्तर्गत अन्य देशों के ऋणदाताओं को भुगतान ऋणी द्वारा सीधे तौर पर न कर देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किए जाते हैं जहाँ विदेशी ऋणदाताओं के नाम खाते होते हैं। यह भुगतान राशि विदेशियों को उनकी करेंसी में नहीं प्राप्त होती बल्कि नियंत्रणकर्ता देश में क्रय हेतु प्रयोग की जाती है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1931 में जर्मनी द्वारा किया गया था। इस प्रणाली की कमी यह है कि यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को न्यूनतम स्तर पर ले आती है और विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देती है।

(iii) प्राथमिकताओं के अनुसार आवंटन – इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक आयातों तथा विदेशी भुगतानों हेतु वित्तीय व्यवस्था उनकी प्राथमिकताओं के आधार पर करता है। इस दृष्टि से आवश्यक आयातों जैसे – कच्चा माल, पूँजीगत वस्तुएँ इत्यादि के लिए विदेशी विनिमय आवंटन विलासिता संबन्धी अनावश्यक वस्तुओं की तुलना में प्राथमिकता के आधार पर किया जाएगा। यद्यपि विनिमय नियंत्रण हेतु यह प्रणाली अत्यन्त सरल है किन्तु इसमें नौकरशाहों का मनमानापूर्ण व्यवहार स्वाभाविक है जिससे विलम्ब के साथ प्रशासनिक लागतें भी अधिक हो सकती हैं।

3. समाशोधन समझौते: इसके अन्तर्गत द्विपक्षीय व्यापार की दशा में दोनों देश अपने-अपने देश के केन्द्रीय बैंक में खाता खौलकर आयात तथा निर्यात के सभी भुगतानों का पारस्परिक तय विनिमय दर पर समाशोधन करने का समझौता कर लेते हैं।

उदाहरण के तौर पर यदि भारत से चीन वस्तुएँ आयात करता है तो आयातकों को अपने देश के केन्द्रीय बैंक के समाशोधन खाते में अपनी ही करेंसी में भुगतान करना होगा। इसी प्रकार भारतीय निर्यातकों को समाशोधन खाते में अपनी करेंसी में भुगतान करना पड़ेगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों देशों में आयात व निर्यात बराबर हो और समाशोधन खाते संतुलित हों। समाशोधन खाते में कमी अथवा बेशी की दशा में उसे स्वर्ण अथवा अन्य विदेशी करेंसी के रूप में भुगतान किया जाता है जिसे दोनों देश स्वीकार करने हेतु तैयार हो।

इस समाशोधन समझौते की मुख्य कमी यह है कि इसमें सशक्त देश कमजोर देश का शोषण कर सकता है। यह विदेशी व्यापार के सामान्य ढाँचे में परिवर्तन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में भी कमी ला सकता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण की यह विधि तभी प्रयोग की जा सकती है जबकि सभी विदेशी भुगतान केन्द्रीय बैंक द्वारा ही सम्पादित किए जायें।

4. भुगतान समझौते – भुगतान समझौते, समाशोधन समझौते की तुलना में विनिमय नियंत्रण की अधिक व्यापक विधि है क्योंकि इसमें वस्तुओं के आयात-निर्यात के अतिरिक्त सेवा सम्बन्धी मदें जैसे – जहाजरानी खर्चे, बीमा, पर्यटन तथा ऋण सेवा आदि भी शामिल होती हैं। इसके अन्तर्गत ऋणदाता देश के आयात के भुगतान का कुछ अंश उसके ऋण के भुगतान के लिए समाशोधन खाते में जमा कर दिया जाता है तथा शेष राशि का भुगतान ऋणी देश के निर्यातकों को कर दिया जाता है। ऋणदाता देश ऋणी देश के आयातों पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता है किन्तु ऋणी देश ऋणदाता देश के आयात पर प्रतिबंध लगा सकता है जिससे वह अपने निर्यातों में वृद्धि करके विदेशी दायित्वों का भुगतान कर सके।

इस विधि की मुख्य कमी यह है कि खातों की शेष राशि का प्रयोग भुगतान हेतु केवल एक देश से दूसरे साझीदार देश को किया जा सकता है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि यह कमजोर देश के प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करने में सहायक है किन्तु ऋण सेवा अवधि बढ़ने से कमजोर देशों का ऋण सेवा भार बढ़ जाता है जो भुगतान संतुलन पर दीर्घकालीन प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

17.4.2 अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण

विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियाँ विदेशी विनिमय की माँग और पूर्ति को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

1. ब्याज दरों में परिवर्तन – किसी देश में ब्याज दरों में किया जाने वाला परिवर्तन विदेशी विनिमय दर को प्रभावित करता है। यदि देश में ब्याज दरें ऊँची हैं तो वह विदेशी पूँजी तथा बैंकिंग कोषों को आकर्षित करती हैं। फलस्वरुप घरेलू करेंसी की माँग बढ़ती है जो इसके विदेशी मूल्य को बढ़ा देती है और विदेशी विनिमयदर को देश के अनुकूल बना देती है। इसके विपरीत ब्याज दर कम होने पर विदेशी पूँजी के

पलायन के साथ घरेलू पूँजी का प्रवाह भी अन्य देशों में होगा जो विदेशी विनिमय दर को प्रतिकूल बना देगा।

यहाँ आपको यह बताना आवश्यक है कि कोई भी देश ब्याज दरों को अधिक नहीं बढ़ा सकता क्योंकि इसका घरेलू व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही अन्य देश भी प्रतिक्रिया स्वरुप अपनी ब्याज दरें बढ़ा सकते हैं।

2. प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण – विदेशी व्यापार के परिमाण पर प्रतिबंध लगाने हेतु प्रशुल्क एवं आयात कोटा व अन्य मात्रात्मक प्रतिबंध एक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष विधि है। आयात शुल्क आयातों की मात्रा में कमी करते हैं और विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य में वृद्धि कर देते हैं। इसी प्रकार निर्यात शुल्क, निर्यातों की मात्रा में कमी करने के साथ विदेशी करेंसी की तुलना में घरेलू करेंसी के मूल्य को कम कर देते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य व्यापार निगम अथवा ऐसे किसी प्राधिकरण को सरकार द्वारा कुछ वस्तुओं के आयात का एकाधिकार दे दिया जाता है। यह निगम ही आयातित वस्तुओं की मात्रा निर्धारित करता है और उसे देश में वितरित करता है। उपर्युक्त मात्रात्मक प्रतिबंधों का उद्देश्य देश की विनिमय दरों को अनुकूल बनाना तथा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को ठीक करना है। किन्तु, कोई भी देश आयातों को पूर्णतया प्रतिबंधित नहीं कर सकता है। साथ ही, अन्य देश प्रशुल्क नीति के सम्बन्ध में प्रतिकार कर अपने देश में भी आयातों को प्रतिबंधित कर सकते हैं।

3. निर्यात सहायिकी – प्रायः निर्यातों में वृद्धि करने हेतु सरकार निर्यातों को सहायिकी प्रदान कर सकती हैं अथवा नि निर्यातों पर लगाए जाने वाले करों में कमी या छूट प्रदान कर सकती हैं। इससे विदेशी विनिमय बाजार में देश की मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है और विनिमय दर देश के अनुकूल होने के साथ भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार होता है। किन्तु सरकार के पास उपलब्ध निधियों की राशि निर्यात सहायिकी को सीमित कर देती है।

17.4.3 विनिमय नियंत्रण का प्रभाव

विनिमय नियंत्रण व आयात लाइसेंस मिलकर एक देश में आयातकों के लिए एकाधिकार लाभ उत्पन्न करते हैं। यदि कोई देश पूर्ण विनिमय नियंत्रण को अपनाता है तो आयातकों द्वारा अर्जित एकाधिकारी लाभ उपभोक्ताओं के कल्याण को कम कर देता है और आयात लाइसेंस व विदेशी मुद्रा लाइसेंस प्राप्त करने हेतु भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है। चित्र 1 में कठोर विनिमय नियंत्रण की दशा में आयातकों द्वारा X-वस्तु के आयात की माँग और पूर्ति को प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 1 में P_W x-वस्तु की विश्व कीमत तथा D_C घरेलू उपभोक्ताओं की माँग को व्यक्त कर रही है जबकि कोई विनिमय नियंत्रण नहीं है। इस $0P_W$ कीमत पर घरेलू उपभोक्ताओं की कुल माँग 0Q मात्रा के बराबर है। ऐसी स्थिति में क्षेत्रफल $0P_WEQ$ राशि के बराबर विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी।

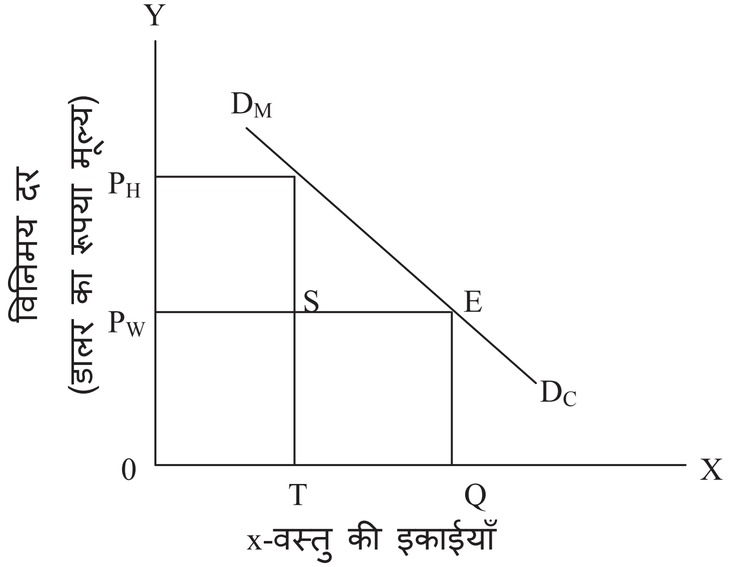

विनिमय नियंत्रण की दशा में निर्गत सीमित राशि क्षेत्रफल $0P_WST$ वांछित राशि की तुलना में कम है जो आयातकों के आयाताकार परवलयाकार वक्र D_M से स्पष्ट है। अतः 0Q माँग की तुलना में प्रूति 0T तक प्रतिबंधित होने के कारण आयातित x-वस्तु की घरेलू कीमत बढ़कर $0P_H$ हो जाएगी। आयातित वस्तु x की कीमत में $0P_W$ और $0P_H$ के बीच का अन्तर आयातकों को विनिमय नियंत्रण के कारण मिलने वाले एकाधिकारी लाभ को व्यक्त करता है और तीव्र ढाल वाला माँगवक्र आयातकों को पुनः एकाधिकारी लाभ दिलाएगा।

अभ्यास प्रश्न 2

1) विनिमय नियंत्रण के तरीकों को किन दो भागों में विभाजित किया जाता है?
2) विनिमय नियंत्रण हेतु सरकारी विनिमय प्राधिकरण के रूप में कौन कार्य करता है?
3) विनिमय प्रतिबंध को स्पष्ट कीजिए।
4) प्रशुल्क एवं गैर-प्रशुल्क नियंत्रण किस प्रकार विनिमय नियंत्रण में सहायक होते हैं?

17.4.4 विनिमय नियंत्रण के गुण

विकसित एवं विकासशील दोनों प्रकार के देशों द्वारा विनिमय नियंत्रण की नीतियों को अपनाया जाता है। विनिमय नियंत्रण के मुख्य गुण इस प्रकार हैं।

1. विनिमय नियंत्रण आयात को प्रतिबंधित कर भुगतान शेष को ठीक करने में सहायता करता है।
2. विनिमय नियंत्रण विदेशी कंपनियों के प्रसार को सीमित करता है और राष्ट्रीय हित में उनके कार्यकरण का नियमन करता है।
3. विनिमय नियंत्रण द्वारा घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जा सकता है और देश में आयात स्थनापन्नता व निर्यात प्रोत्साहन को प्रारम्भ किया जा सकता है।

4. विनिमय नियंत्रण पूँजी के अनियमित प्रवाह को रोकता है और विदेशी विनिमय की उपलब्धता को सुनिश्चित करके आवश्यक पूँजी वस्तुओं के आयात को संभव बनाता है।
5. विनिमय नियंत्रण विनिमय दरों में होने वाले उच्चवचनों को रोककर उसमें स्थिरता लाने में सहायक होता है।
6. सरकार विनिमय नियंत्रण का प्रयोग विदेशी ऋणों के भुगतान हेतु भी अपना सकती है।
7. यह दो देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार संबंधों से लाभ उठाने हेतु एक प्रभावी विधि है।
8. विनिमय नियंत्रण देश में आर्थिक राष्ट्रीयता की भावना का विकास करता है।
9. विनिमय नियंत्रण द्वारा विदेशी मुद्रा का संरक्षण कर देश अपनी सुरक्षा, आयोजन, आर्थिक विकास आदि महत्वपूर्ण कार्यो को सम्पादित करने में सफल हो सकता है।
10. किसी देश के विरोधी हो जाने की स्थिति में सरकार विनिमय नियंत्रण द्वारा उस देश की सभी परिसम्पत्तियों को अपने अधिकार में लेकर उसकी निधियों को लौटाने पर रोक लगा सकता है।
11. अन्ततः सरकार विनिमय नियंत्रण के माध्यम से राजस्व भी एकत्रित कर सकती है।

17.4.5 विनिमय नियंत्रण के दोष

विनिमय नियंत्रण की नीति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं –

1. विदेशी विनिमय की कालाबाजारी – विनिमय नियंत्रण विदेशी विनिमय की कालाबाजारी को जन्म देता है जिससे विदेशी मुद्राओं का देश की बजाय विदेशों में प्रयोग होता है और इनकी तस्करी में वृद्धि होती है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी – विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत जब एक देश आयातों को प्रतिबंधित करता है तब दूसरे देश प्रतिक्रिया स्वरुप अपने आयातों पर भी प्रतिबंध लगाते हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के परिमाण में कमी आती है और विश्वस्तर पर भी कुल उत्पादन में कमी आती है।
3. लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार – विनिमय नियंत्रण का कार्य सरकारी कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है। अतः वे अपने निहित स्वार्थों के कारण प्रशासनिक व्यवस्था का दुरुपयोग करते हैं जिससे अनावश्यक विलम्ब तथा भ्रष्टाचार का जन्म होता है।
4. औद्योगिक अक्षमता – विनिमय नियंत्रण के कारण विदेशी प्रतियोगिता के अभाव में घेरलू उद्योगों में प्रौद्योगिकीय स्थिरता, औद्योगिक अकुशलता व गुणवत्ता ह्रास का जन्म होता है जो लागतों में वृद्धि कर घेरलू कीमत-स्तर को बढ़ा देता है।
5. आय एवं धन का असमान वितरण – विनिमय नियंत्रण छोटे उत्पादकों की बजाय कुछ बड़े उत्पादकों अथवा उनके समूह के लिए असामान्य लाभ के अवसर उत्पन्न करता है। फलस्वरुप आय व धन के वितरण में असमानता बढ़ने लगती है।
6. मनमानापूर्ण एवं अपव्ययी – विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय का आवंटन प्रायः नौकरशाहों की मनमानी प्राथमिकताओं के अनुसार किया जाता है। इसके अतिरिक्त विनिमय नियंत्रण

की नीति के क्रियान्वयन हेतु नियुक्त प्रशासनिक मशीनरी पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जाता है जिससे सरकारी धन का अनावश्यक व्यय होता है।

अन्ततः आप परिचित हो गए होगें कि विनिमय नियंत्रण देश के अनुकूल भुगतान-संतुलन एवं विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखने हेतु सहायक है किन्तु इससे देश में कुछ निहित स्वार्थों का भी जन्म हो सकता है जो भविष्य में देश के विकास के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

17.5. भारत में विनिमय नियंत्रण

भारत में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से ही विनिमय नियंत्रण को अपनाया गया। सितम्बर 1939 में भारतीय रिजर्व बैंक ने सूचना जारी करते हुए कहा कि विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय केवल विनिमय नियंत्रण विभाग की अनुमति के आधार पर ही किया जा सकता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य को एक सस्टर्लिंग क्षेत्र में संगठित किया गया। बाद में पूँजी के सटोरिए प्रवाह को रोकने हेतु स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्राओं का क्रय-विक्रय केवल अधिकार प्राप्त बैंकों द्वारा करने की अनुमति दी गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अयातों की निरन्तर माँग तथा निर्यातों में कमी के भय के कारण सरकार ने विनिमय नियंत्रण कानून मार्च 1947 के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के वितरण का पूर्ण तथा स्थायी अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को दे दिया गया किन्तु स्टर्लिंग क्षेत्र के लोगों को प्रतिमाह 150 पौण्ड पारिवारिक व्यय हेतु भेजने की छूट दी गई। जुलाई 1947 में विनिमय नियंत्रण क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए स्टर्लिंग क्षेत्र की मुद्राओं को भी इसमें शामिल कर लिया गया। अब कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना विदेशी विनिमय नहीं खरीद सकता था।

17.5.1 विदेशी विनिमय विनिमयन अधिनियम

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत में विनिमय नियंत्रण की नीति को लागू रखा गया और 1947 के विदेशी विनिमय नियंत्रण कानून के अन्तर्गत विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय अधिकार प्राप्त संस्थाओं तथा व्यापारिक बैंकों तक ही सीमित रखा गया। किन्तु, ये संस्थाएँ अथवा बैंक केवल उन्हीं भारतीय व्यक्तियों अथवा फर्मों को विदेशी मुद्रा बेच सकती थी जिन्होंने भारतीय रिजर्व बैंक से इस अधिनियम के बाद अनुमति प्राप्त कर ली थी। सामान्यतया विदेशी विनिमय अनुमतियाँ विशेष उद्देश्यों तथा उन आयातकर्ताओं को दी जाती थीं जिन्हें आयात लाइसेन्स प्राप्त होते थे। समय-समय पर सरकार अपने गजट द्वारा विदेशी विनिमय नियंत्रण प्रावधानों में किए गए परिवर्तनों को प्रकाशित करती रही है।

वर्ष 1973 में विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम लागू किया गया जिसने पूर्व विदेशी विनिमय नियंत्रण कानून का स्थान ले लिया। इस अधिनियम में पुनः वर्ष 1993 में अनेक संशोधन किए गए। विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम के अन्तर्गत यह प्रावधान था कि यदि कोई इस अधिनियम का उल्लंघन करता है तो उसे सम्बन्धित राशि का पाँच गुना अर्थदण्ड तथा साथ में कारावास की सजा भी दी जाएगी। इस प्रकार की जाँच का कार्य प्रवर्तन निदेशालय द्वारा किए जाने का व्यवस्था थी। विनियमन अधिनियम का उद्देश्य विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था। इसलिए व्यापारिक कार्य, सम्मेलन, यात्रा और उपहार आदि उद्देश्यों हेतु विदेशी मुद्रा की राशि सीमित रखी गई थी। 'फेरा' के अन्तर्गत सिद्ध करने का कार्य स्वयं आरोपी अर्थात अभियुक्त का होता था। संक्षेपतः 'फेरा' विदेशी विनिमय के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कठोर कानून था।

17.5.2 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम

विदेशी मुद्रा बाजार में लेन-देन को अधिक उदार बनाने और देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित विकास हेतु केन्द्र सरकार ने वर्ष 1999 में 'फेरा' के स्थान पर विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (Foreign Exchange Management Act – FEMA) को लागू किया जो 1 जून 2000 से देश में प्रभावी हो गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार और विदेशी भुगतानों को सुविधाजनक बनाना है। साथ ही देश में विदेशी मुद्रा बाजार के समुचित रख रखाव को प्रोत्साहित करना है। यह अधिनियम 'फेरा' की तुलना में अधिक उदार एवं पारदर्शी है।

इसके अन्तर्गत भारत में रह चुका कोई भी व्यक्ति अन्य देश का निवासी हो जाने पर भी उन शेयरों, प्रतिभूतियों तथा सम्पत्तियों को धारण कर सकेगा जो उसने भारत प्रवास के दौरान धारण की थी। 'फेमा' के उल्लंघन के मामलों का निपटान सिविल अपराधों की भाँति किया जाएगा और उल्लंघनकर्ताओं को केवल अर्थदण्ड वहन करना होगा जो सम्बन्धित राशि का अधिकतम तीन गुना होगा जिसके लिए अलग से प्रशासनिक तंत्र होगा जिसमें न्यायिक प्राधिकारी, विशिष्ट निदेशक (अपील) और अपीलीय ट्राइब्यूनल सम्मिलित होंगे जो एक निश्चित समय अवधि में ऐसे मामलों का निपटान करेगा। इसमें निबटारा प्राधिकारी भारतीय रिजर्व बैंक है जिसे प्रार्थना पत्र का समाधान 180 दिनों के अन्दर करना होता है

इसमें विदेशी यात्राओं तथा अन्य विभिन्न उद्देश्यों हेतु विदेशी मुद्राओं के आहरण की सीमायें काफी अधिक निर्धारित की गई हैं। उदाहरण के लिए नागरिकों द्वारा अप्रवासी भारतीयों को उपहार स्वरुप प्रतिभूतियों की राशि एक वित्तीय वर्ष में डालर 50,000 तक है। इसी प्रकार व्यक्तिगत भारतीय अपने अप्रवासी निकट सम्बन्धी के साथ देश में 'स्वयं अथवा उत्तरजीवी' आधार पर संयुक्त खाता खोल सकता है किन्तु वह भारतीय खाताधारकों के समान जीवन-पर्यन्त खाते का संचालन नहीं कर सकता है। संक्षेपतः 'फेमा' के अन्तर्गत विदेशी विनिमय लेन-देनों को अधिक उदार बना दिया गया है।

17.5.3. मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम

'मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम 2002' 1 जुलाई 2005 से देश में प्रभावी हो गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य गैरकानूनी तरीके से अर्जित धन को देश में लाने और उसके द्वारा सम्पत्ति खड़ी करने जैसी गतिविधियों पर अंकुश लगाना है। इस अधिनियम के अन्तर्गत मनी लांडरिंग पर अंकुश के लिए मुख्य तीन उद्देश्य हैं –

(i) मनी लांडरिंग को रोकना,

(ii) मनी लांडरिंग से हासिल सम्पत्ति को जब्त करना और

(iii) मनी लांडरिंग से जुड़े दूसरे किसी भी मुद्दे को हल करना है।

इस नियम के अन्तर्गत अपराध सिद्ध होने पर 10 वर्ष तक की सजा और 5 लाख रूपये तक जुर्माने का प्रावधान है। अधिनियम के अन्तर्गत मनी लांडरिंग के मामले में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शामिल होने के साथ-साथ ऐसी गतिविधि में मदद करने वाले को भी दण्डित किए जाने का प्रावधान है। इस अधिनियम में 2008 में संशोधन किए गए जो फरवरी 2009 में स्वीकृति के पश्चात् लागू हो गए। इसमें अब अन्य विभिन्न सेवाओं एवं व्यापारों के साथ आतंकवादी गतिविधियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है।

उल्लेखनीय है कि आर्थिक अपराधों पर अंकुश लगाने के लिए सभी बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को 10 लाख या इससे अधिक सभी प्रकार के लेन-देनों की जानकारी देना आवश्यक होगा। इसी प्रकार एक कलेन्डर वर्ष में इसी राशि के बराबर विदेशी मुद्रा के मामले में भी यही शर्त लागू होगी। शेयरों के लेन-देन और हस्तान्तरण के मामले भी सम्बन्धित मर्चेन्ट बैंकर व दूसरे संस्थानों को भी इस तरह की जानकारी उपलब्ध कराना होगी।

17.5.4 रूपये की परिवर्तनीयता

स्वर्णमान के अन्तर्गत स्वर्ण मुद्रा का कुछ शर्तों के अन्तर्गत मुक्त रूप से स्वर्ण में तथा स्वर्ण का स्थानीय मुद्रा में परिवर्तन किया जा सकता था। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रचलित मुद्रा के संपरिवर्तन को ही मुद्रा की परिवर्तनीयता कहा जाता है। स्वर्णमान के समाप्त हो जाने के बाद वर्तमान में प्रचलित अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रामान के अन्तर्गत मुद्रा की परिवर्तनीयता से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत देश की मुद्रा मुक्त रूप से प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्रायें स्थानीय मुद्रा में मुक्त रूप से परिवर्तनशील हों।

वर्ष 1992-93 के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्ध प्रणाली को प्रस्तावित किया गया जिसके अन्तर्गत मार्च 1992 से दोहरी विनिमय दर प्रणाली लागू की गई। इसके अन्तर्गत निर्यातक अपनी विदेशी मुद्रा प्राप्तियों का 60 प्रतिशत खुले बाजार में निर्धारित विनिमय दर पर अधिकृत विदेशी मुद्रा डीलरों को बेच सकते थे और शेष 40 प्रतिशत का विक्रय भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विनिमय दरों पर करना अनिवार्य था। साथ ही साथ केवल अत्यावश्यक आयातों के लिए ही विदेशी मुद्रा सरकार अधिकृत विनिमय दर पर उपलब्ध कराती थी जबकि अन्य आयातों के लिए खुले बाजार से ही आयातकों को विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध करना होता था। 1993-94 में रूपये को व्यापार खाते में परिवर्तनीय बना दिया गया और खुले बाजार में एकीकृत विनिमय दर प्रणाली को देश में लागू कर दिया गया। 1994-95 के बजट में चालू खातों में रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता की घोषणा कर दी गई और अगस्त 1994 को भारतीय रिजर्व बैंक ने रूपये को चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीय घोषित कर दिया।

पूँजी खाते में रूपये को पूर्ण परिनर्तनीय बनाने हेतु रिजर्व बैंक के पूर्व डिप्टी गव्रनर एस.एस. तारापोर की अध्यक्षता में 1997 में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई जिसने तीन चरणों में रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की सिफारिश की थी। इसके बाद पी.एस. मिस्त्री के नेतृत्व में गठित 15 सदस्सीय विशेषज्ञ दल ने भी 2008 तक रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बनाने की सिफारिश की। किन्तु अपरिहार्य आर्थिक कारणों से अभी तक भी रूपये को पूँजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीय नहीं बनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1) भारत में विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम वर्ष .... में लागू किया गया।

2) वर्ष 1999 में 'फेरा' का स्थान .... अधिनियम ने ले लिया।

3) भारत में 1 जुलाई 2005 से अधिनियम .... लागू हो गया।

4) भारतीय रूपये को अगस्त 1994 में .... में पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया।

17.6 सारांश

आप परिचित हो गए होंगे कि विनिमय नियंत्रण के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के स्वतंत्र लेन-देन को प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। इसके अनेक स्वरुप हो सकते हैं जिनको प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधियों में बाँटा जा सकता है। प्रत्यक्ष विधियों में आपने मुख्य रूप से सरकारी हस्तक्षेप, विनिमय प्रतिबंध, विनिमय समाशोधन समझौते आदि और अप्रत्यक्ष विनिमय नियं त्रण के अन्तर्गत ब्याज दरों में परिवर्तन, प्रशुल्क व आयात कोटा, निर्यात सहायिकी का विस्तृत अध्ययन किया है। विनिमय नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य मुक्त विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरों में होने वाले उच्चावचनों को रोकना और देश के भुगतान शेष को सन्तुलित बनाए रखना होता है। इस कार्य हेतु देश का केन्द्रीय बैंक सरकारी केन्द्रीय प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है। इसके अतिरिक्त आप भारत में विदेशी विनिमय नियंत्रण हेतु बनाए गए विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम (फेरा), विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (फेमा) और मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम के साथ ही रूपये की परिवर्तनीयता के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गए प्रयासों से भी परिचित हो गए होंगे।

17.7 शब्दावली

1. विनिमय नियंत्रण – विदेशी विनिमय के मुक्त लेन-देन पर प्रतिबंध।
2. बहु विनिमय दरें – विभिन्न वस्तुओं के आयात व निर्यात हेतु निर्धारित अलग-अलग विनिमय दरें।
3. प्रशुल्क – आयातों और निर्यातों पर लगाया जाने वाला अप्रत्यक्ष कर।
4. निर्यात सहायिकी–निर्यातों में वृद्धि अथवा प्रोत्साहन हेतु निर्यात करों में छूट या निर्यात को दिया गया अनुदान।
5. ‘फेरा’ (F.E.R.A.)– विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम जिसका उद्देश्य विदेशी विनिमय का संरक्षण करना था।
6. ‘फेमा’ (F.E.M.A.)– विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम जिसने ‘फेरा’ का स्थान लिया।
7. मुद्रा की परिवर्तनीयता–मुक्त रूप से देश की मुद्रा का प्रमुख विदेशी मुद्राओं में तथा प्रमुख विदेशी मुद्राओं का देश की मुद्रा में संपरिवर्तनीयता।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 1

1) कृपया भाग 17.3.1. को पढ़िए।2) कृपया भाग 17.3.2 को पढ़िए। 3) कृपया भाग 17.2.3 को पढ़िए।

उत्तर अभ्यास प्रश्न 2

1) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विनिमय नियंत्रण।2) केन्द्रीय बैंक3) कृपया भाग 17.4.1 पढ़िए।4) कृपया भाग 17.4.2 पढ़िए।

उत्तर अभ्यास प्रश्न 3

1) 1973 ,2) ‘फेमा’ ,3) मनी लांडरिंग निरोधक अधिनियम ,4)चालू खाता

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mithani, D.M. (2010). “International Economics” Himalaya Publishing House, Mumbai.
2. वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
3. अग्रवाल एवं बरला (2008). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र”लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). “अंतरविदीय अर्थशास्त्र”विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

17.10. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झिंगन, एम.एल. (2011). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
2. Salvatore, Dominick (1998) “International Economics” Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
3. Pugel, A. Thomas (2011). “International Economics” 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
4. Avadhani, V.A. (2012). “International Economics” Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
5. Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004). “International Economics” Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
6. Sodersten, B. and Reed, G. (2006). “International Economics” third ed., Macmillan Press Ltd., London.

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विनिमय नियंत्रण की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. विनिमय नियंत्रण से क्या तात्पर्य है? विनिमय नियंत्रण की विभिन्न विधियों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
3. ‘विनिमय नियंत्रण’ से आप क्या समझते हैं? इसके गुण तथा दोषों पर प्रकाश डालिए।
4. विनिमय नियंत्रण की अप्रत्यक्ष विधियों का विवरण देते हुए बताइए कि वे किस सीमा तक प्रभावकारी हो सकती हैं?
5. मुद्रा की परिवर्तनीयता का अर्थ बताइए। रूपये की पूर्ण परिवर्तनियता के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदमों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

इकाई-18 विदेशी विनिमय बाजार – आर्बिट्रेज, सट्टा बाजार और हैजिंग

इकाई संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 विदेशी विनिमय बाजार

18.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ

18.3.2 विदेशी विनिमय बाजार का ढाँचा

18.3.3 तत्काल और अग्रिम विनिमय दर

18.4 विदेशी विनिमय दर नीति

18.4.1 स्थिर विनिमय दर

18.4.2 नम्य विनिमय दर

18.4.3 मध्यवर्ती विनिमय दर

18.4.4 बहुविनिमय दर

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों के अध्ययन से आप विदेशी विनिमय दर और विनिमय नियंत्रण अवधारणा से आप परिचित हो गए होंगे। विस्तारपूर्वक विवेचना की गई है। प्रस्तुत इकाई में विनिमय दर नीति के विभिन्न पहलुओं तथा समय-समय पर प्रचलित विनिमय दर नीतियों पर चर्चा की जाएगी।

सामान्यतया पूर्णतया नम्यशील विनिमय दरों के अन्तर्गत यह माना जाता है कि मौद्रिक प्राधिकारियों के सरकारी हस्तक्षेप के बिना विदेशी मुद्रा की मांग व पूर्ति के अन्तर्क्षेदन द्वारा विनिमय दर निर्धारित होती है। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दरों में अल्पकालीन उच्चावचनों को दूर करने हेतु हस्तक्षेप करते हैं। किन्तु ब्रेडनवुड्स प्रणाली के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को अपनी मुद्रा के सममूल्य पर बनाए रखने हेतु विदेशी मुद्रा बाजार में हस्तक्षेप करते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सरकार द्वारा किए जाने वाले हस्तक्षेप को समझने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार के व्यवहारिक कार्यान्वयन का विश्लेषण करना आवश्यक है।

18.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

1. विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ व ढाँचा क्या है।
2. विनिमय दर के विभिन्न रूप क्या हैं।
3. समय-समय पर प्रचलित विभिन्न विनिमय दरों के गुण-दोष क्या रहे हैं।
4. विदेशी मुद्रा बाजार का विभिन्न परिस्थितियों में कार्यान्वयन किस प्रकार होता है।
5. विदेशी विनिमय बाजार व सम्बन्धित व्यावहारिक गतिविधियों का सम्पादन किस प्रकार होता है।

18.3. विदेशी विनिमय बाजार

18.3.1 विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ

विदेशी विनिमय बाजार अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। जब अलग-अलग देशों के बीच वाणिज्यिक एवं वित्तीय लेन-देनों का आदान-प्रदान होता है तब सम्बन्धित देशों को अपनी घरेलू मुद्राओं को आपस में बदलने की आवश्यकता है जिससे भुगतानों अथवा प्राप्तियों का निपटान किया जा सके। विदेशी विनिमय बाजार इस प्रकार की सुविधा प्रदान करता है। एक देश जब अन्य देश से वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग करता है तब वह उस देश की करेंसी की माँग विदेशी मुद्रा बाजार में करता है। इसके अतिरिक्त अन्य देशों में अल्पकालीन पूँजी प्रवाह अथवा दीर्घकालीन भौतिक एवं वित्तीय परिसम्पत्तियों में निवेश हेतु भी करेंसी का विनिमय करना आवश्यक है। इस प्रकार विदेशी विनिमय बाजार देशों के बीच व्यापारिक लेन-देनों एवं वित्तीय भुगतानों हेतु एक अभिन्न अंग होता है। अतः जिस बाजार में अंतर्राष्ट्रीय करेंसी का व्यापार किया जाता है उसे विदेशी विनिमय बाजार कहा जाता है।

18.3.2 विदेशी विनिमय बाजार ढाँचा

विदेशी विनिमय बाजार में प्रमुख भागीदार वाणिज्यिक बैंक, गैरबैंकवित्तीय संस्थायें, विदेशी विनिमय दलाल या अन्य अधिकृत सौदाकार और मौद्रिक प्राधिकारी होते हैं।

1. <u>वाणिज्यिक बैंक</u> – वाणिज्यिक बैंक का विदेशी विनिमय बाजार में केन्द्रीय स्थान होता है क्योंकि अधिकांशतः प्रत्येक बड़े अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन में उधार एवं जमा हेतु बैंकों के विभिन्न वित्तीय केन्द्र सम्मिलित होते हैं। इस

प्रकार विदेशी विनिमय लेनदेन में बैंकों में जमा विभिन्न करेंसियों का विनिमय में योगदान प्रमुखता से होता है। बैंक न केवल अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विदेशी विनिमय बाजार में प्रवेश करते हैं बल्कि अन्य बैंकों की विनिमय दरों को भी व्यक्त करते हैं जिसपर वह दूसरे बैंकों से करेंसियों का क्रय अथवा विक्रय करते हैं। बैंकों के बीच इस प्रकार विदेशी करेंसियों का व्यापार अन्तर बैंक व्यापार कहलाता है। कारपोरेट ग्राहकों हेतु विनिमय दरों को 'फुटकर दरें' कहा जाता है जो थोक अन्तरबैंक की अपेक्षा कम लाभप्रद होती है। इन दोनों दरों का अन्तर, बैंकों को इस व्यवसाय हेतु मिलने वाली क्षतिपूर्ति होती है।

2. गैर बैंक वित्तीय संस्थायें – गैर बैंक वित्तीय संस्थायें अपने ग्राहकों को वर्तमान समय में अन्य सेवायें भी प्रदान करती हैं जिसमें विदेशी विनिमय लेन-देन भी शामिल है। संस्थात्मक निवेशक जैसे – पेन्शन फंड भी विदेशी करेंसियों का प्रायः व्यापार करते हैं।
3. विदेशी विनिमय दलाल – विदेशी विनिमय दलाल बिचौलिए के रूप में विदेशी मुद्रा बाजार में विदेशी करेंसियों के क्रय-विक्रय करने में संलग्न होते हैं जिसके लिए उन्हें कमीशन प्राप्त होता है।
4. मौद्रिक प्राधिकारी – मौद्रिक प्राधिकारी अथार्त केन्द्रीय बैंक कभी-कभी विदेशी विनिमय बाजार में हस्तक्षेप करता है। यद्यपि इसका परिमाण बहुत अधिक नहीं होता है फिर भी इन लेन-देन का प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। विदेशी मुद्रा बाजार में संलग्न सभी भागीदार केन्द्रीय बैंक के निर्णयों के आधार पर भविष्य में विनिमय दरों को प्रभावित करने वाली समष्टि आर्थिक नीतियों के बारें में पूर्वानमुमान लगाकर विदेशी करेंसियों का कारोबार करते हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय कारपोरेशन तथा स्वयं व्यक्तियों द्वारा भी विदेशी मुद्रा बाजार में आवश्यकतानुसार विदेशी विनिमय का लेन-देन किया जाता है। विदेशी विनिमय बाजार का मुख्य कार्य एक देश की करेंसी निधियों का दूसरी करेंसी में स्थानान्तरण करना है। साथ ही देशों के बीच व्यापार को वित्तपोषित करने हेतु विभिन्न उधार तरीकों – माँग ड्राफ्ट, विनिमय बिल, बैंकर्स चेक तथा तार द्वारा स्थानान्तरण आदि द्वारा अल्पकालीन उधार उपलब्ध कराना है। इसके अतरिक्त विदेशी विनिमय जोखिनों से सुरक्षा अथवा हैजिंग व सट्टा की सुविधा प्रदान करना होता है।

18.3.3 तत्काल एवं अग्रिम विनिमय दर

विदेशी विनिमय बाजार में दो प्रकार की विनिमय दरें होती हैं –

1. तत्काल विनिमय दर – तत्काल विनिमय दर वह दर होती है जिस पर एक देश की करेंसी को दूसरे देश की करेंसी से वर्तमान अवधि में विनिमय किया जाता है। प्रायः सौदा होने के दो दिन बाद तक प्रभावी दर को तत्काल विनिमय दर कहा जाता है और ऐसे सौदों के लिए बाजार को तत्काल बाजार कहा जाता है।
2. अग्रिम विनिमय दर – अग्रिम विनिमय दर होती है जिस पर भविष्य में विदेशी करेंसी का भुगतान किया जाता है। यह वह वास्तविक दर है जो भविष्य में विदेशी विनिमय खरीदने व बेचने के लिए वर्तमान में तय की जाती है। इस दर की विशेषता यह है कि सौदे के निपटारे का भुगतान वर्तमान में निर्धारित दरों के आधार पर भविष्य में किसी निश्चित तिथि को किया जाता है।

अग्रिम विनिमय दर तत्काल विनिमय दर के सन्दर्भ में निर्धारित की जाती हैं। यदि अनुबंध के समय अग्रिम विनिमय दर तत्काल दर के बराबर है तो यह अग्रिम दर सममूल्य पर कहलाएगी। जब

अग्रिम दर तत्काल दर की तुलना में अधिक होती है अथार्त एक करेंसी दूसरी करेंसी की अधिक इकाईयाँ अग्रिम बाजार में खरीदती है तो अग्रिम विनिमय दर को अधिमूल्य पर कहा जाता है। इसके विपरीत जब अग्रिम दर तत्काल दर से कम होती है तो यह बट्टे पर कहलाती है। अतः तत्काल और अग्रिम दर का अन्तर अधिमूल्य (या प्रीमियम) और बट्टा पर (डिस्काउन्ट) कहलाता है जिसे प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अग्रिम दर का निर्धारण अग्रिम विनिमय की मांग और पूर्ति के आधार पर होता है।

अग्रिम विनिमय में व्यापारिक बैंक भी लेन-देन करते हैं। वे विदेशी विनिमय में अपने कोषों का समायोजन करने के लिए स्वयं परिचालन करते हैं। इसके अन्तर्गत एक करेंसी को तत्काल बेचने या खरीदने के साथ उसी करेंसी को अग्रिम सुपुर्दगी के लिए खरीदने व बेचने की क्रिया सम्मिलित होती है जिससे विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव के कारण होने वाले जोखिमों से बचा सके।

अग्रिम विनिमय दर के लाभ – अग्रिम विनिमय दर के लाभ निम्न लिखित हैं –

1. जोखिम से सुरक्षा – अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न निर्यातक एवं आयातक अग्रिम विनिमय दरों के माध्यम से विनिमय दरों में होने वाले जोखिम से सुरक्षा प्राप्त करने हेतु व्यापारी जिस दिन माल का सौदा करते हैं उसी दिन निश्चित अवधि बाद उसके भुगतान अथवा प्राप्ति का भी सौदा कर लेते हैं।
2. निवेशकों का लाभ – निवेशक अग्रिम विनिमय दर पर पहले ही विदेशी विनिमय की बिक्री कर देते हैं जिससे निवेश की राशि पहले ही तय हो जाती है। इसी प्रकार निवेश पर उन्हें जो लाभ प्राप्त होता है उसके लिए भी वे अग्रिम सौदे कर लेते हैं।
3. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन – अग्रिम विनिमय सौदों के कारण जोखिम कम होने से व्यापारी अधिक रूचि लेते हैं जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रोत्साहित होता है।
4. विनिमय दरों में स्थायित्व – अग्रिम विनिमय के सौदों के व्यवसायी अपने अनुभव, बाजार की तात्कालिक परिस्थितियों तथा मांग-पूर्ति के पूर्वानुमानों के आधार पर क्रय-विक्रय के सौदे करते हैं जिससे मांग-पूर्ति की शक्तियों में संतुलन के कारण विनिमय दरों में स्थिरता आती है।
5. रोजगार एवं आर्थिक विकास में वृद्धि – अग्रिम विनिमय दरों से व्यापारियों को लाभ होते हैं और व्यवसायिक क्रियाओं में वृद्धि होती है। फलस्वरुप देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है और आर्थिक विकास होता है।

अग्रिम विनिमय दर की समस्यायें

अग्रिम विनिमय दर प्रणाली में निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ता है –

1. विनिमय दर निर्धारण की समस्या – अग्रिम विनिमय दर निर्धारण हेतु अनेक तत्वों – अग्रिम विनिमय की मांग व पूर्ति, बैंकों के पास विदेशी मुद्राओं के कोष, ब्याजदरों में अन्तर तथा सरकारी नियंत्रण आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होना आवश्यक है जो कि पूर्णरूप से सम्भव नहीं है।
2. भुगतान की तिथि निश्चित करने में कठिनाई – अग्रिम विनिमय सौदों के सम्बन्ध में एक कठिनाई भुगतान प्राप्त करने की तिथि को निश्चित करने की है जिस दिन बैंकों से विदेशी विनिमय लेना होता है।

3. सट्टेबाजी को प्रोत्साहन – तत्काल तथा अग्रिम विनिमय दरों में अन्तर होने के कारण विदेशी विनिमय में सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है जिससे कभी-कभी विदेशी मुद्रा की कृत्रिम कमी के कारण विदेशी व्यापार में रूकावट उत्पन्न हो जाती है।
4. सभी मुद्राओं में सौदे न होना – प्रायः अग्रिम सौदे प्रमुख विदेशी मुद्राओं में ही किए जाते हैं जिससे अन्य मुद्राओं की विनिमय दरों में उच्चावचनों को दूर करने का कोई उपाय नहीं बचता है।
5. हानि की सम्भावना – कभी-कभी भुगतान की तिथि से पूर्व ही विनिमय दरों में परिवर्तन के कारण व्यापारियों को हानि उठानी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, अग्रिम विनिमय प्रणाली की सफलता हेतु स्वतंत्र विनिमय प्रणाली आवश्यक है, किन्तु वर्तमान समय में देशों द्वारा अग्रिम विनिमय पर कुछ न कुछ नियंत्रण अवश्य लगाए जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1) विदेशी विनिमय बाजार के प्रमुख भागीदार कौन हैं?
2) तत्काल विनिमय दर को बताइये।
3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(i) तत्काल विनिमय दरों के अन्तर्गत सामान्यतया भुगतान .... दिनों में हो जाते हैं।
(ii) अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी को घरेलू करेंसी से तत्काल दर से कम में बदलना .... कहलाता है।
(iii) अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी को घरेलू करेंसी की तुलना में तत्काल दर से अधिक में बदलना .... कहलाता है।
(iv) अग्रिम विनिमय दर यदि तत्काल विनिमय दर के बराबर है तो वह .... कहलाती है।

18.4 विदेशी विनिमय दर नीति

स्वर्णमान के अन्तर्गत विदेशी विनिमय दर स्थिर विनिमय दर नीति पर आधारित थी किन्तु विश्व युद्ध के दौरान विनिमय दर नीति अस्त-व्यस्त रही। ब्रेटनवुड्स प्रणाली के अन्तर्गत 1944 से 1973 की अवधि में पुनः स्थिर विनिमय दर नीति को अपनाया गया। 1973 के पश्चात् से नम्य विनिमय दर नीति प्रचलन में है। इस भाग में आप विदेशी विनिमय दर नीति से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।

18.4.1 स्थिर विनिमय दर

स्थिर विनिमय दर वह है जिस पर मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित दर पर सभी विदेशी विनिमय लेन-देन किए जाते हैं। यह दर मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा स्वयं निर्धारित की जाती है अथवा करेंसी बाजार में हस्तक्षेप कर उसे स्थिर बनाए रखा जाता है। देश का मौद्रिक प्राधिकारी अर्थात केन्द्रीय बैंक विदेशी करेंसी का रिजर्व अपने पास रखता है जिससे विदेशी मुद्रा की पूर्ति एवं मांग के अनुसार उनका क्रय-विक्रय कर विनिमय दर को स्थिर बनाये रखा जा सके।

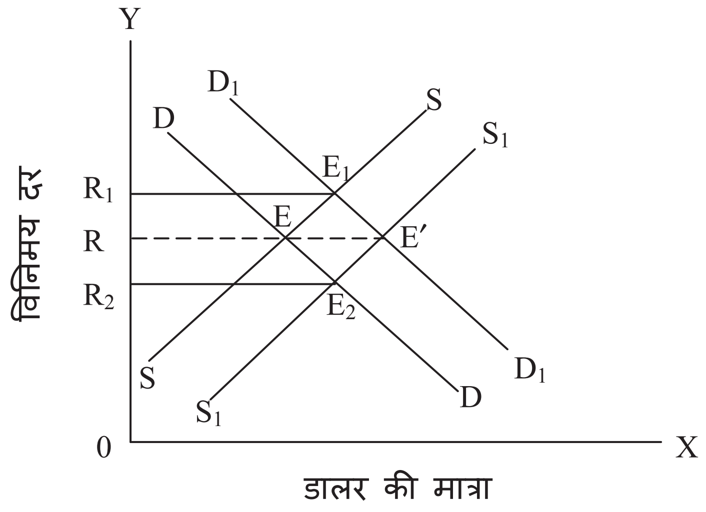

चित्र-1

चित्र-1 में विदेशी मुद्रा (डालर) का मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS है जिसके द्वारा निर्धारित विनिमय दर OR है और केन्द्रीय बैंक इस दर को स्थिर बनाए रखना चाहता है। यदि देश में डालर की मांग बढ़ जाए तो नया मांग वक्र D_1D_1 हो जाएगा और डालर की पूर्ति यथावत् रहने पर विनिमय दर बढ़कर OR_1 हो जाएगी। ऐसी दशा में केन्द्रीय बैंक डालर की पूर्ति मुद्रा बाजार में तब तक बढ़ाता रहेगा जब तक S_1S_1 पूर्ति वक्र नये मांग वक्र D_1D_1 को E′ पर नहीं स्पर्श करता और पूर्व विनिमय दर OR नहीं स्थापित हो जाती है। इसी प्रकार यदि विनिमय दर OR से घटकर OR_1 हो जाए तो केन्द्रीय बैंक डालर की मांग अर्थात क्रय तब तक करता रहेगा जबतक कि मांग वक्र D_1D_1 खिसक कर E′ बिन्दु पर न पहुँच जाए और विनिमय दर OR हो जाए।

स्थिर विनिमय दर के पक्ष में तर्क

स्थिर विनिमय दर के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा एक निर्धारित विनिमय दर पर उसे स्थिर बनाए रखा जाता है जिसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं –

1. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि – स्थिर विनिमय दरों की स्थिति में अन्य देशों का विश्वास या साख सम्बन्धित करेंसी के प्रति बढ़ जाता है जिससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होती है। साथ ही वस्तुओं एवं साधनों की कीमतों में भी स्थिरता आती है।
2. सट्टे का प्रतिकूल प्रभाव नहीं – इस प्रणाली के अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी सट्टे की क्रियाओं को रोकता एवं नियंत्रित करता है जिससे विदेशी मुद्रा बाजार में करेंसी का कृत्रिम अभाव उत्पन्न नहीं होता है।
3. समान करेंसी क्षेत्र के लिए उपयुक्त – यह प्रणाली समान करेंसी क्षेत्र (जैसे – यूरो क्षेत्र आदि) के लिए उपयुक्त हैं क्योंकि इन क्षेत्रों की स्थिर विनिमय दरें विश्व व्यापार की वृद्धि को प्रोत्साहित करती हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को भी प्रेरित करती है।
4. मुद्रा एवं पूँजीबाजार में वृद्धि – यह प्रणाली अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार का विस्तार करती है जिससे अंतर्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाह में वृद्धि होती है और मुद्रा व पूँजी बाजार का विकास होता है।

5. व्यापार पर आश्रित देशों के लिए उपयुक्त – ऐसे देशों जिनकी राष्ट्रीय आय में विदेशी व्यापार का योगदान अधिक है के लिए स्थिर विनिमय दर उपयुक्त होती है क्योंकि विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव की स्थिति में घरेलू उत्पादन व व्यापार की दिशा में परिवर्तन होने का भय रहता है।
6. आर्थिक स्थायित्व में सहायक – यह प्रणाली कम स्फीतिकारी होती है जो आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखने में सहायक है।

स्थिर विनिमय दर के विपक्ष में तर्क

स्थिर विनिमय दरों को निम्नवत् कारणों से उचित नहीं कहा जा सकता है –

1. नियंत्रित एवं प्रतिबंधित व्यवस्था – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु विदेशी विनिमय के लेन-देन पर अनेक नियंत्रण एवं प्रतिबंध लगाए जाते हैं जिससे दुर्लभ विनिमय का दोषपूर्ण आवंटन होता है और अदक्ष नौकरशाही व भ्रष्टाचार का जन्म होता है।
2. विनिमय दर स्थिरता को प्राथमिकता – इस प्रणाली के अन्तर्गत कीमत स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार आदि उद्देश्यों की उपेक्षा होती है। यदि देश का भुगतान-शेष प्रतिकूल है तो इस प्रणाली के अन्तर्गत देश को इसे संतुलन स्थिति में लाने हेतु अवस्फीतिकारी नीति का सहारा लेना पड़ेगा जिससे देश में सुस्ती के कारण कीमतों में कमी एवं बेरोजगारी बढ़ेगी। इसके विपरीत अनुकूल भुगतान शेष की दशा में स्फीतिकारी नीति तेजी, कीमतों में वृद्धि व असमान वितरण को बढ़ावा देगी। उपर्युक्त दोनों स्थितियाँ आन्तरिक स्थायित्व हेतु हानिकारक हैं।
3. प्रचुर विदेशी विनिमय की आवश्यकता – विदेशी विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु बड़ी मात्रा में विदेशी विनिमय की आवश्यकता होगी अन्यथा प्रतिकूल भुगतान शेष की दशा में देश को अवमूल्यन का सहारा लेना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त निष्क्रिय विदेशी विनिमय भण्डार देश के लिए अनार्थिक, अपव्ययी और लागत बढ़ाने वाला होता है।
4. अल्पावधि के लिए उपयुक्त – यह प्रणाली अल्पकाल के लिए उपयुक्त हो सकती है किन्तु दीर्घकाल में संरचनात्मक एवं प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की दशा में स्थिर दरें अनुपयुक्त हो जाती हैं क्योंकि भुगतान संतुलन की स्थिति एवं वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें इसमें परिवर्तन को आवश्यक बना देती हैं।
5. अनैतिक व्यापार व्यवहार को प्रोत्साहन – स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गत देश-विदेश के मूल्य-स्तर में अन्तर होना स्वाभाविक होता है जिससे तस्करी तथा अन्य अनैतिक व्यापारिक लेनदेनों को प्रोत्साहन मिलता है।
6. मौद्रिक नीति की सफलता में संदेह – केन्द्रीय बैंक विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने हेतु जो मौद्रिक नीति अपनाता है उनकी सफलता संदेहास्पद होती है। विदेशी मुद्रा के क्रय के लिए खुले बाजार की क्रियाओं सम्बन्धी नीति स्थिर विनिमय दरों के कारण असफल हो जाती है।

18.4.2 नम्य विनिमय दर

नम्य विनिमय दर उन विनिमय दरों को कहा जाता है जो विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी मुद्रा की मांग और पूर्ति की मुक्त एवं सापेक्षिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित होती है और जो विदेशी मुद्रा की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती हैं।

इस प्रकार यदि किसी करेंसी की मांग उसकी पूर्ति की तुलना में अधिक होगी तो विनिमय दर ऊँची हो जाएगी। इसके विपरीत, करेंसी की पूर्ति अधिक होने पर उसकी विनिमय दर गिर जाएगी। यह बाजार शक्तियाँ स्वयं कार्यशील रहती हैं और मौद्रिक प्राधिकारी इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

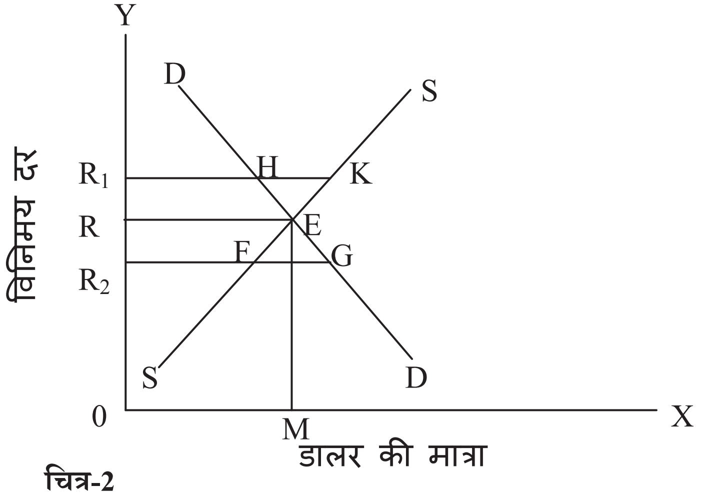

चित्र-2

चित्र-2 से स्पष्ट है कि विदेशी मुद्रा की मांग DD इसकी पूर्ति SS दोनों E बिन्दु पर आपस में बराबर हैं। अतः संतुलन विनिमय दर OR होगी। यदि विनिमय दर बढ़कर OR_1 हो जाती है तो डालर की मांग R_1H की तुलना में उसकी पूर्ति R_1K अधिक होगी जिससे विनिमय दर नीचे गिरकर पुनः OR हो जाएगी। इसके विपरीत, विनिमय दर कम होकर OR_2 हो जाने पर डालर की मांग R_2G उसकी पूर्ति R_2F की तुलना में अधिक होगी। फलस्वरुप विनिमय दर बढ़कर पुनः संतुलन स्थिति OR पर पहुँच जाएगी। अतः नम्य विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरें स्वतः विदेशी करेंसी की मांग व पूर्ति द्वारा समायोजित होकर संतुलन की स्थिति में बनी रहती है।

नम्य विनिमय दरों के पक्ष में तर्क

विश्व की प्रमुख मुद्राओं में समय-समय पर आए संकट को देखते हुए नम्य विनिमय दरों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं –

1. सरल एवं स्वायत्त समायोजन – नम्य विनिमय दर प्रणाली अत्यन्त सरल है क्योंकि विनिमय दर मुक्त रूप से स्वयं बदलती रहती है और विदेशी विनिमय बाजार निरन्तर समाशोधित होता रहता है।
2. विदेशी विनिमय आरक्षिति की आवश्यकता नहीं – इस प्रणाली के अन्तर्गत देश को विदेशी विनिमय आरक्षिति (रिजर्व) रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संतुलन विनिमय दरें स्वतः समायोजित होती रहती हैं। फलस्वरुप अंतर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या उत्पन्न नहीं होती है।
3. घरेलू नीतियों में स्वायत्ता – इस प्रणाली के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में प्रतिबन्धों एवं नियंत्रणों की आवश्यकता नहीं होती है। फलस्वरुप सरकार आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र आर्थिक नीति अपना सकती है। इसके अतिरिक्त, मौद्रिक नीति को भी प्रभावी रूप से अर्थव्यवस्था की अवश्यकतानुसार लागू किया जा सकता है।
4. प्रतिकार का भय नहीं – इस प्रणाली के अन्तर्गत अन्य देशों द्वारा किसी प्रकार के प्रतिकार का भय नहीं रहता है क्योंकि अवमूल्यन और आयात प्रशुल्क आदि प्रतिबंध नहीं लगाए जाते हैं।

5. मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संभव – इस प्रणाली के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर किसी प्रकार के नियंत्रण नहीं होते हैं। अतः निर्बाध विदेशी व्यापार संभव होता है। साथ ही सीमा संघ (कस्टम यूनियन) तथा करेंसी क्षेत्र बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
6. मितव्ययी – इस प्रणाली के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा के निष्क्रिय धारणों की आवश्यकता नहीं होती है। इस दृष्टि से यह मितव्ययी होती है, किन्तु देश अपनी आवश्यकतानुसार विदेशी मुद्रा रिजर्वों का प्रयोग कर सकता है।

नम्य विनिमय दरों के विपक्ष में तर्क

नम्य विनिमय दरों के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं –

1. विनिमय जोखिम एवं अनिश्चितता – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दरें निरन्तर बदलती रहती हैं और जब विनिमय दरें एक अनुमानित स्तर से बहुत अधिक ऊपर अथवा नीचे चली जाती हैं तो सम्बन्धित देशों को विनिमय जोखिम वहन करना पड़ता है। साथ ही अनिश्चितता बनी रहती है।
2. भुगतान शेष में असंतुलन की संभावना – नम्य विनिमय दरों के अन्तर्गत भुगतान शेष में असंतुलन बने रहने की संभावना बनी रहती है। यदि अल्पविकसित देशों का भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है तो करेंसी के निरन्तर मूल्यह्रास के कारण व्यापार एवं विकास प्रक्रिया पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
3. स्फीतिकारी प्रभाव – यदि किसी करेंसी का विनिमय ह्रास होता है तो आयातित सामानों की कीमतें बढ़ने के कारण लागतें बढ़ जाती हैं जिससे देश में स्फीतिक दशायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार के प्रभाव को राबर्ट ट्रिफिन ने 'रैच्ट प्रभाव' कहा है।
4. सट्टे को प्रोत्साहन – नम्य विनिमय दरों पर सट्टे का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि सट्टे के कारण विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव बहुत अधिक होते हैं।
5. सरकारी हस्तक्षेप – इस प्रणाली के अन्तर्गत सरकार मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से आयातों एवं निर्यातों को प्रभावित करती है।

18.4.3 मध्यवर्ती विनिमय दर

स्थिर एवं नम्य विनिमय दर प्रणालियाँ दो पूर्णतया चरम स्थितियाँ हैं। वास्तव में इन सीमाओं के बीच अनेक मध्यवर्ती अथवा मिश्रित विनिमय दर प्रणालियाँ समय-समय पर विभिन्न देशों द्वारा अपनायी गई हैं जिनका विवरण निम्नवत् है।

1. समायोज्य कीलन प्रणाली – इसके अन्तर्गत विनिमय दर को निश्चित समय के लिए स्थिर रखने का प्रयास किया जाता है। फिर भी यदि भुगतान शेष में घाटा अथवा अधिक्य बना रहता है तो विनिमय दरों का अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन द्वारा करेंसी का नीची अथवा ऊँची विनिमय दर पर कीलन किया जाता है। फलस्वरुप विनिमय दर में स्थिरता के साथ नम्यता बनी रहती है।

चित्र-3 में विदेशी विनिमय की मांग DD_0 तथा पूर्ति SS' द्वारा निर्धारित संतुलन विनिमय दर $0R_0$ है। यदि विदेशी मुद्रा (डालर) की मांग बढ़कर D_1 व D_2 हो जाती है तो विनिमय दर को $0R_0$ पर कीलित रखने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय की पूर्ति हेतु ab व bc मात्रा में डालर की बिक्री करते हैं। किन्तु पुनः विनिमय की माँग बढ़कर D_3 हो जाने पर विनिमय दर बढ़कर $0R_0$ से $0R_1$ हो जाएगी और पूर्तिवक्र लम्बवत c से d हो जाएगा। अब विनिमय दर को $0R_1$ पर कीलित रखने के लिए D_4 व D_5 विनिमय

माँग की दशा में डालर की पूर्ति में de व ef मात्रा में वृद्धि की जाती है। फिर भी माँग के D_6 हो जाने पर पूर्ति लम्बवत fg हो जाएगी और विनिमय दर बढ़कर OR_2 हो जाएगी। इस प्रकार समायोज्य कीलन प्रणाली में विनिमय का पूर्ति वक्र टेढ़े-मेढ़े आकार अथार्त Sabcdefg आकार का होगा।

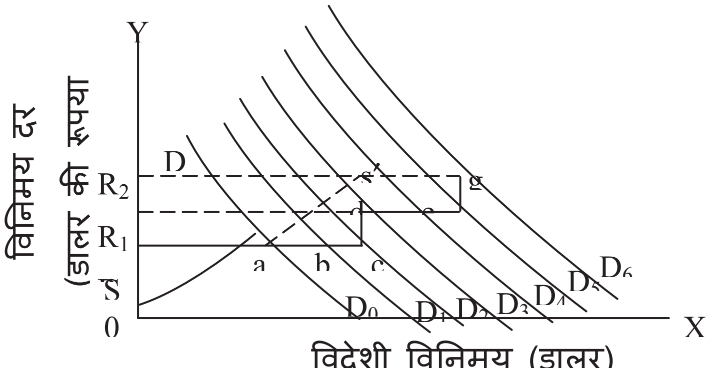

चित्र - 3

यह प्रणाली स्फीति व मंदी को रोकने की दृष्टि से उपयोगी होती है। साथ ही इसमें विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन की अनिश्चितता नहीं रहती है। किन्तु इसमें विदेशी विनिमय धारणों की आवश्यकता होती है और सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। इसके अतिरिक्त भुगतान शेष में घाटे अथवा अतिरेक दोनों स्थितियों में देश विनिमय दरों में परिवर्तन करने में रूचि नहीं रखते हैं।

3. रेंगती कीलन प्रणाली – इसके अन्तर्गत विनिमय दर में बड़े परिवर्तन करने की बजाय छोटी राशियों में निरन्तर साय-समय पर समायोजन किया जाता है। अतः मौद्रिक प्राधिकारी संतुलन विनिमय दर में धीरे-धीरे समायोजन करता रहता है। इसे रेंगने वाली कीलन अथवा सरकारी सममूल्य प्रणाली भी कहा जाता है।

4.

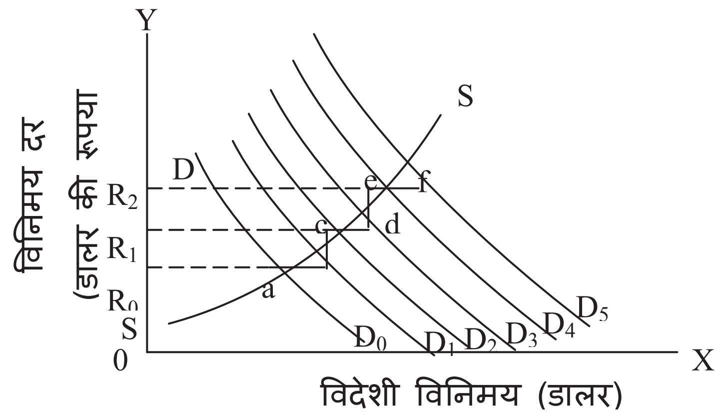

चित्र–4

चित्र-4 विदेशी विनिमय मांग वक्र DD_0 व पूर्ति वक्र SS के अन्तर्क्षेदन द्वारा संतुलन विनिमय दर $0R_0$ निर्धारित होती है। यदि विनिमय माँग बढ़कर D_1 हो जाती है तो मौद्रिक अधिकारी ab मात्रा में विदेशी मुद्रा (डालर) बेचकर उसे $0R_0$ विनिमय दर पर कीलित रखेगा। अब मांग D_2 बढ़ने पर विनिमय दर OR_1 हो जाएगी और पूर्ति वक्र bc अनुलंब होगा। फिर मांग वक्र D_3 बढ़ने पर डालर की पूर्ति cd मात्रा में बढ़ाकर विनिमय दर OR_1 पर कीलित रखी गई है। पुनः मांग D_4 बढ़ने पर विनिमय दर बढ़कर OR_2 हो गई है जिसे D_5 मांग बढ़ने पर भी बनाए रखने के लिए ef राशि के बराबर डालर की बिक्री मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा की गई है। इस प्रकार मौद्रिक प्राधिकारी माँग बढ़ने के साथ-साथ विदेशी मुद्रा की पूर्ति को धीरे-धीरे समायोजित करता है जैसा कि विदशी विनिमय के पूर्ति वक्र sabcdef के द्वारा प्रदर्शित है।

3. प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली – प्रबंधित तिरती विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न देशों के मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दरों में अल्पकालीन उच्चावचनों को विनिमय दरों की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों को प्रभावित किए बिना दूर करने का प्रयास करते हैं। अतः विदेशी विनिमय आरक्षिति की कुछ मात्रा की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली के निम्नलिखित रूप होते हैं।

(i) स्वच्छ तिरण प्रणाली – इसके अन्तर्गत मौद्रिक प्राधिकारी के हस्तक्षेप के बिना विनिमय दर विदेशी मुद्रा की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

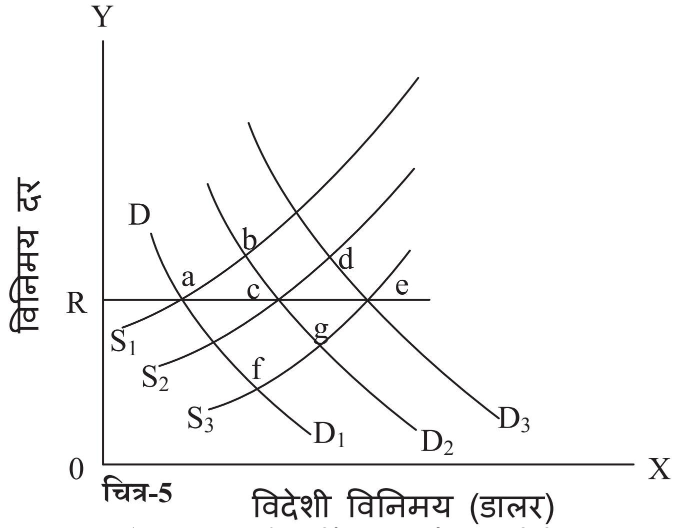

चित्र-5

चित्र-5 में विदेशी मुद्रा (डालर) का मूल माँग वक्र D_1 और पूर्ति वक्र S_1 के द्वारा विनिमय दर OR निर्धारित होती है। यदि भुगतान शेष में अतिरेक अथवा घाटा होता है तो विदेशी मुद्रा माँग व पूर्ति वक्र सरककर D_2S_2 और D_3S_3 हो जाते हैं। फलस्वरुप भुगतान शेष अतिरेक के कारण विनिमय दर abcde पथ पर ऊपर को जाती है। इसके विपरीत, भुगतान शेष में घाटे की दशा में यह नीचे की ओर afcge पथ पर चलती है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में विनिमय दर OR के ऊपर-नीचे गति करती है।

(ii) गंदी तिरण प्रणाली – इस प्रणाली के अन्तर्गत विनिमय दर यद्यपि मुक्त रूप से निर्धारित होती हैं फिर भी इसमें तीव्र उतार-चढ़ाव को रोकने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय द्वारा हस्तक्षेप करता है। चित्र-5 से स्पष्ट है कि मौद्रिक प्राधिकारी **a** से **c** और **c** से **e** तक विनिमयदर में परिवर्तन होने

देता है। जब विदेशी मुद्रा की माँग बढ़ती है और माँग वक्र ऊपर की ओर खिसकता है तो मौद्रिक प्राधिकारी विदेशी मुद्रा को बेचता है। किन्तु जब विदेशी मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है और पूर्तिवक्र दायी ओर ऊपर खिसकता है तो वह **ac** और **ce** के बराबर विदेशी मुद्रा खरीद लेता है। इस प्रकार मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को **OR** स्तर पर स्थिर रखता है।

(iii) विनिमय दर पट्टी – इस प्रणाली के अन्तर्गत करेंसी के संस्थापित मूल्य के ऊपर-नीचे विनिमय दर को घटने-बढ़ने दिया जाता है। किन्तु इस पट्टी से बाहर परिवर्तन की अनुमति नहीं होती है और ऐसी स्थिति में मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा विनिमय दर को इस सीमा में बनाए रखने हेतु हस्तक्षेप किया जाता है। यह विनिमय दर पट्टी संकुचित अथवा विस्तृत हो सकती है।

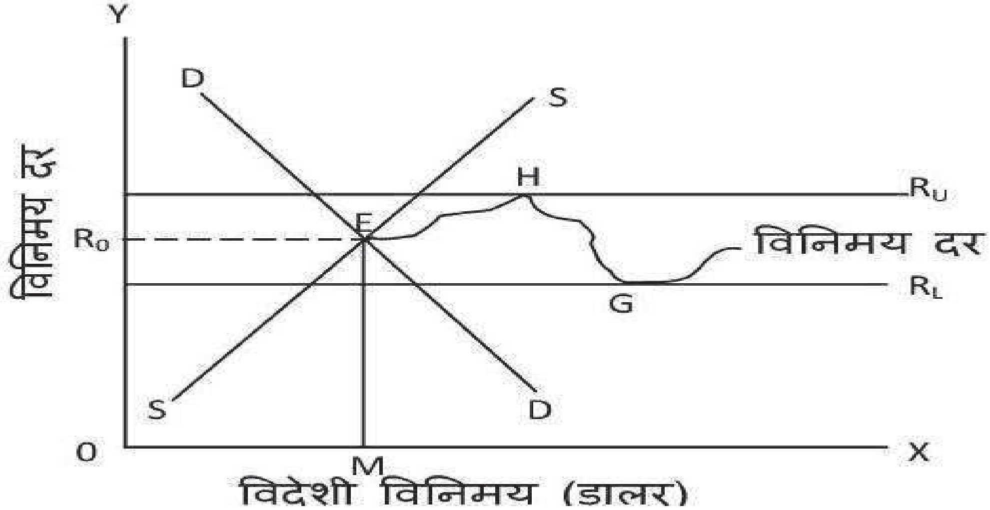

चित्र-6

चित्र-6 में विदेशी मुद्रा (डालर) की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित विनिमय दर OR_0 है जो विनिमय पट्टी की ऊपरी सीमा R_U और निचली सीमा R_L के बीच मुक्त रूप से परिवर्तित हो सकती है। यदि विनिमय दर H बिन्दु पर पहुँच जाती है तो मौद्रिक प्राधिकारी विनिमय दर को पट्टी में बनाए रखने के लिए डालर की पूर्ति अर्थात् बिक्री करेगा। इसके विपरीत विनिमय दर के G बिन्दु पर पहुँचने पर डालर की माँग अर्थात् क्रय करने लगेगा।

(iv) संयुक्त तिरण प्रणाली – इसके अन्तर्गत देशों का एक समूह अपनी करेंसियो के बीच एक समोज्य कीलन प्रणाली रखते हैं किन्तु दूसरे देशों के साथ संयुक्त तिरण प्रणाली का प्रयोग करते हैं।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय के मूल सदस्यों ने 1972 में संयुक्त तिरण प्रणाली की भाँति एक विनिमय दर नीति अपनायी जिसे 'सुरंग में साँप' नीति कहा जाता है। इसके अन्तर्गत उन्होंने आपस में अपनी करेंसियों को 2.25% पट्टी के बीच घटने-बढ़ने की अनुमति दी किन्तु अन्य देशों की करेंसियों को 4.5% तक घटने बढ़ने की छूट प्रदान की थी।

18.4.4 बहु विनिमय दर प्रणाली

इसके अन्तर्गत एक देश आयात तथा निर्यात के लिए अलग-अलग विनिमय दर अपनाता है। इसके अतिरिक्त देश कुछ वस्तुओं अथवा देशों के लिए नियंत्रित विनिमय दरें तथा अन्य के लिए मुक्त विनिमय दरों को भी अपना सकता है। यद्यपि नियंत्रित विनिमय दरों में बहुत उतार-चढ़ाव नहीं होते हैं फिर भी उनकी अनेक श्रेणियाँ हो सकती

हैं। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य निर्यातों में वृद्धि तथा आयातों को न्यूनतम स्तर तक कम करना होता है जिससे अधिकतम विदेशी विनिमय अर्जित किया जा सके और प्रतिकूल भुगतान संतुलन की समस्या को हल किया जा सके।

बहु विनिमय दर प्रणाली के गुण

इस प्रणाली के मुख्य गुण निम्नलिखित हैं –

1. भुगतान शेष असंतुलन को ठीक करना – बहु विनिमय दर प्रणाली को अपनाकर एक देश अपने निर्यातों को बढ़ाकर अधिक विदेशी विनिमय अर्जित कर सकता है और आयातों को सीमित कर विदेशी विनिमय बचा सकता है। फलस्वरुप भुगतान शेष के असंतुलन को ठीक कर सकता है।
2. अर्थ व्यवस्था का विविधीकरण – यह प्रणाली अनुकूल विनिमय दरों द्वारा देश के उद्योगों में विविधीकरण लाती है और कमजोर उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण प्रदान करती है। साथ ही, यह नये निर्यात उद्योगों तथा रक्षा उद्योगों के विकास में भी सहायक होती है। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था का विविधीकरण कर उत्पादन, रोजगार तथा आय स्तर बढ़ाने में सहायक होती है।
3. इच्छित पूँजी प्रवाह – इस प्रणाली के माध्यम से देश ऊँची विनिमय दर द्वारा पूँजी के बहिर्गमन को रोक सकता है और नीची विनिमयदर द्वारा पूँजी के अन्तर्प्रवाह को बढ़ा सकती है। फलस्वरुप उपलब्ध विदेशी विनिमय का प्रयोग आवश्यक उत्पादन हेतु किया जा सकता है।
4. जीवन स्तर में सुधार – इसके अन्तर्गत आवश्यक उपयोग वस्तुएँ, कच्चा माल तथा पूँजीगत वस्तुओं आदि का आयात कम कीमतों पर किया जाता है जिससे लागत कम होने के कारण जीवन स्तर में सुधार होता है। यह प्रणाली कीमत स्थिरीकरण नीति में भी सहायक होती है।
5. अनुकूल व्यापार शर्तें – इस प्रणाली का प्रयोग निर्यात वस्तुओं की कीमतों को ऊँचा रखने तथा आयात वस्तुओं की कीमतों को नीचा रखने हेतु किया जाता है। फलस्वरुप व्यापार शर्तें देश के अनुकूल होती हैं।

बहु विनिमय दर प्रणाली के दोष

इस प्रणाली के निम्नलिखित दोष भी हैं –

1. विभेदात्मक – उसके अन्तर्गत वस्तुओं, उद्योगों तथा देशों के बीच भेद किया जाता है और एक ही वस्तु विभिन्न देशों को अलग-अलग दरों पर निर्यात की जाती है। फलस्वरुप अन्य देशों में बदले की भावना उत्पन्न होती है और व्यापारिक व राजनीतिक संबंध खराब हो जाते हैं।
2. जटिल एवं बोझिल प्रणाली – इसके अन्तर्गत एक बड़े प्रशासनिक ढाँचे की आवश्यकता पड़ती है जिससे प्रशासनिक अदक्षता, लालफीताशाही एवं भ्रष्टाचार का जन्म बोता है। इस दृष्टि से यह जटिल व बोझिल प्रणाली मानी जाती है।
3. कालाबजारी – इसके अन्तर्गत आयात हेतु विनिमय दर कम होने के कारण आयातक विदेशी विनिमय आयात के नाम पर क्रय कर लेते हैं और ऊँची विनिमय दर पर विदेशी मुद्रा बाजार में बेच देते हैं जिससे विदेशी मुद्रा की कालाबाजारी शुरू हो जाती है।
4. घरेलू उद्योगों हेतु हानिकारक – इसके अन्तर्गत कम दरों पर देश में आयात होने के कारण विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता जिससे उनकी कुशलता में वृद्धि नहीं हो पाती है। दूसरी ओर विनिमय दरों के अनुकूल होने के पूर्वानुमान में निर्यात माल अनुसूची बढ़ती चली जाती है जिससे संसाधनों का दुरुपयोग होता है।
5. प्रभावी नीति नहीं – देश के भुगतान शेष में सुधार हेतु यह नीति अन्य मात्रात्मक प्रतिबंधों की तुलना में कम कारगर है। इसके अतिरिक्त, इसकी सफलता हेतु आवश्यक शर्तों का पूरा होना आवश्यक है जैसे निर्यात एवं

आयात की माँग व पूर्ति की लोच का ज्ञान, समायोजन हेतु लंबी समयावधि तथा पर्याप्त विदेशी विनिमय आदि।

18.4.5 आर्बिट्रेज, सट्टा एवं हेजिंग

आर्बिट्रेज – विदेशी मुद्रा बाजारों में दो करेंसियों की विनिमय दर में अन्तर के कारण क्रमशः क्रय-विक्रय से लाभ अर्जित करने की क्रिया को आर्बिट्रेज कहा जाता है। यद्यपि यह क्रिया केवल दो बाजारों अथवा करेंसियों तक ही सीमित न होकर उससे अधिक बाजारों अथवा करेंसियों तक विस्तृत हो सकती है।

यदि दिल्ली में डालर-रूपया विनिमय दर डालर 1 = 55 रूपये है और यही दर न्यूयार्क में डालर 1 = 56 रूपये है तो बैंक दिल्ली में डालर का क्रय करके न्यूयार्क के बाजार में बेचकर एक रूपया प्रति डालर लाभ अर्जित करेंगे। इस प्रकार दिल्ली में रूपये की पूर्ति डालर की माँग की तुलना में बढ़ेगी जिससे विनिमय दर डालर के पक्ष में जाएगी। दूसरी ओर, न्यूयार्क में रूपये की माँग, डालर की तुलना में बढ़ेगी और विनिमय दर रूपये के पक्ष में हो जाएगी। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक विनिमय दर दोनों बाजारों में समान नहीं हो जाती है।

इसके अतिरिक्त ब्याज आर्बिट्रेज उस क्रिया को कहा जाता है जब उच्च ब्याज दर के लाभ के उद्देश्य से विदेसी करेंसी का तत्काल दर पर क्रय कर उसे अग्रिम दर पर बेचा जाता है। विदेशी करेंसी के तत्काल क्रय के निवेश और विदेशी विनिमय जोखिम से बचने के लिए उसका तुरंत अग्रिम विक्रय आच्छादित ब्याज आर्बिट्रेज कहलाता है। इसके विपरीत स्थिति को आच्छादित ब्याज आर्बिट्रेज कहा जाता है। सामान्यतया ब्याज आर्बिट्रेज अनाच्छादित ही होता है।

सट्टा – अग्रिम विनिमय बाजार की माँग और पूर्ति का एक स्रोत सट्टा भी है जिसके अन्तर्गत सट्टा करने वाला लाभ प्राप्ति की आशा में विदेशी विनिमय जोखिम लेता है। यह विदेशी करेंसी की अग्रिम दर की प्रत्याशा पर निर्भर करता है और भविष्य में तत्काल दर के विकास से सम्बन्धित होता है।

यदि सट्टा करने वाला यह अनुमान लगाता है कि विदेशी करेंसी की तत्काल दर घरेलू करेंसी की तुलना में आगामी 3 महीने में बढ़ जाएगी तो वह अग्रिम बाजार में विदेशी मुद्रा क्रय कर लेगा और इन तीन महीनों के बाद तत्काल दर पर बेच देगा। यदि उसका यह अनुमान सही निकलता है तो उसे लाभ प्राप्त होगा अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ेगी।

इसके विपरीत, यदि वह अनुमान लगाता है कि अगले 3 महीनों में तत्काल दर गिर जाएगी तो वह अग्रिम बाजार में विदेशी करेंसी का का विक्रय इस आशा में करता है कि तीन महीने बाद तत्काल दर पर विदेशी करेंसी खरीद लेगा। पुनः यदि उसका पूर्वानुमान भावी तत्काल दर के बारे में सही निकलता है तो उसे लाभ होगा अन्यथा उसे हानि सहन करनी पड़ेगी।

विदेशी करेंसी में सट्टा घरेलू व विदेशी ब्याज दर विभेदक और भावी विनिमय दर में परिवर्तन की प्रत्याशा पर निर्भर करता है। सट्टा स्थिरात्मक व अस्थिरात्मक हो सकता है। स्थिरात्मक सट्टा वह होता है जब विदेशी करेंसी का निम्न दर पर क्रय इस आशा में किया जाता है कि शीघ्र ही इसमें वृद्धि होगी और लाभ होगा। इसी प्रकार विदेशी करेंसी का ऊँची दर पर विक्रय कि शीघ्र ही इसमें कमी हो जाएगी और हानि होगी। अतः इस प्रकार का सट्टा किसी समयावधि में विनिमय दरों में उच्चावचन को स्थिर रखने में उपयोगी होता है।

इसके विपरीत, अस्थिरात्मक सट्टा वह होता है जब विदेशी करेंसी की नीची विनिमय दर पर विक्रय इस आशा में किया जाता है कि भविष्य में इसकी विनिमय दर और नीचे गिर जाएगी अथवा विदेशी करेंसी का ऊँची दर पर क्रय कि भविष्य में इसकी विनिमय दर और बढ़ जाएगी। अतः इस प्रकार का सट्टा विनिमय दर में अधिक उच्चावचन को जन्म देता है जो निवेश एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रवाह को क्षति पहुँचाता है।

हेजिंग – हेजिंग अग्रिम विनिमय दर से होने वाले जोखिम को दूर करने की क्रिया है। इसके अन्तर्गत वर्तमान में तय विनिमय दर पर भविष्य में विदेशी विनिमय के भुगतदान अथवा प्राप्ति का करार किया जाता है। सामान्यतया यह अवधि तीन महीने की होती है।

एक आयातक भविष्य में विनिमय दर में परिवर्तन से उत्पन्न जोखिम से बचने हेतु आयातित वस्तु के भुगतान के लिए वर्तमान में अग्रिम दर पर विदेशी विनिमय क्रय करता है जिसे वह तय अवधि के बाद (सामान्यतया 3 महीने) भुगतान कर सके। इसी प्रकार निर्यातक वर्तमान में अग्रिम दर पर निर्यात से प्राप्त होने वाली राशि का विक्रय कर देता है जिसे वह तीन महीने पश्चात् निर्यात माल की सुपुर्दगी के समय प्राप्त कर सके।

हेजिंग क्रिया पूर्णतया लागत रहित नहीं होती है। अग्रिम विनिमय करार में अनेक लेनदेन लागतें निहित होती हैं। अतः निर्यातक व आयातक हेजिंग तभी करते हैं जब विनिमय दर जोखिम की तुलना में ये लागते कम होती हैं और वे कितनी जोखिम प्रतिकूल हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1) स्थिर न नम्य विनिमय दरों में संक्षिप्त अन्तर बताइए।
2) समायोज्य एवं रेंगती कीलन प्रणाली में क्या अन्तर है?
3) सुरंग में सांप नीति क्या है?
4) सट्टा व हेजिंग में अन्तर बताइए।
5) निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) स्थिर विनिमय दर प्रणाली में मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा विनिमय दर निर्धारण में हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। (सही/गलत)
(ii) नम्य विनिमय दरें मुक्त रूप से बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित होती हैं। (सही/गलत)
(iii) अग्रिम विनिमय दर का निर्धारण तत्काल विनिमय दर के सन्दर्भ में किया जाता है। (सही/गलत)
(iv) हेजिंग का सम्बन्ध नम्य विनिमय दर नीति से होता है। (सही/गलत)

18.5 सारांश

विदेशी विनिमय बाजार में अंतर्राष्ट्रीय करेंसी का व्यापार होता है जिसके प्रमुख भागीदार वाणिज्यिक बैंक, गैर बैंक वित्तीय संस्थायें, विदेशी विनिमय दलाल या अधिकृत सौदाकार और मौद्रिक प्राधिकारी होते हैं। विदेशी विनिमय बाजार का मुख्य कार्य क्रय शक्ति का स्थानान्तरण एक देश और उसकी करेंसी का अन्य देशों को करना होता है। समस्त अंतर्राष्ट्रीय लेन-देनों का निपटान तत्काल और अग्रिम विनिमय दरों के आधार पर किया जाता है। चूँकि विनिमय दरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे विदेशी विनिमय का जोखिम बना रहता है। अतः सम्बन्धित भागीदार अग्रिम विनिमय दरों के जोखिम से बचने के लिए हेजिंग का सहारा लेते हैं अथवा जोखिम उठाने हेतु क्रमशः सट्टा की क्रिया अपनाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विदेशी मुद्रा बाजारों में विनिमय दरों में अन्तर से लाभ

अर्जित करने हेतु आर्बिट्रेज की क्रिया अपनायी जाती है। स्थिर विनिमय दरों के अन्तर्गतच मौद्रिक प्राधिकारी एक तय स्तर पर विनिमय दर को स्थिर बनाए रखने का प्रयास करता है जबकि नम्य विनिमय दरों के अन्तर्गत मुक्त रूप से बाजार शक्तियों द्वारा परिवर्तन होता रहता है। अधिकांश देशों द्वारा इन दोनों प्रणालियों के मिश्रित रूप को अपनाया गया है। साथ ही समय-समय पर विभिन्न देशों में बहु विनिमय दरें भी प्रचलन में रही हैं।

18.6 शब्दावली

1. विदेशी विनिमय बाजार –वह बाजार जहाँ विदेशी करेंसी का क्रय-विक्रय किया जाता है।
2. स्थिर विनिमय दर–वह दर जिसे मौद्रिक प्राधिकारी हस्तक्षेप द्वारा एक तय स्तर पर बनाए रखने का प्रयास करता है।
3. नम्य विनिमय दर–विदेशी करेंसी की मांग व पूर्ति के द्वारा मुक्त रूप से निर्धारित विनिमय दर।
4. तत्काल दर –विदेशी व्यापार सौदों के भुगतान हेतु वर्तमान दर जो सामान्यतया सौदे के दो दिनों तक प्रभावी रहती है।
5. अग्रिम दर –वह दर जो भविष्य में विदेशी विनिमय खरीदने व बेचने के लिए वर्तमान में तय की जाती है।
6. आर्बिट्रेज –विदेशी करेंसी का नीची विनिमय दर वाले बाजार में क्रय और ऊँची विनिमय दर वाले बाजार में विक्रय।
7. सट्टा–विनिमय दरों में होने वाले उतार-चढ़ाव के कारण लाभ अर्जित करने की आशा में विदेशी करेंसी का क्रय और विक्रय।
8. हेजिंग–विनिमय दरों में उच्चावचन के कारण विदेशी विनिमय से होने वाले जोखिम को आच्छादित करने हेतु क्रिया। यह सट्टा के विपरीत होती है।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 1

1) वाणिज्यिक बैंक, गैर बैंक वित्तीय संस्थायें, दलाल या अधिकृत डीलर और मौद्रिक प्राधिकारी।
2) कृपया भाग 18.3.3 पढ़िए।3) (i) 2 दिन, (ii) सट्टा, (iii) अधिमूल्य या प्रीमियम, (iv) सममूल्य पर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 2

1) कृपया भाग 18.4.1 एवं 18.4.2 पढ़िए। 2) कृपया भाग 18.4.3 पढ़िए।3) कृपया भाग 18.4.3 पढ़िए।
4) कृपया भाग 18.4.5 पढ़िए।5) (i) गलत, (ii) सही, (iii) सही, (iv) सही

18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Salvatore, Dominick (1998) “International Economics” Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
2. Mithani, D.M. (2010). “International Economics” Himalaya Publishing House, Mumbai.
3. वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
4. अग्रवाल एवं बरला (2008). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

5. राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

18.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
2. Pugel, A. Thomas (2011). "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
3. Avadhani, V.A. (2012). "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.
4. Krugman, Paul R. and Obstfeld, Maurice (2004). "International Economics" Sixth ed. Pearson Education, Delhi.
5. Sodersten, B. and Reed, G. (2006). "International Economics" third ed., Macmillan Press Ltd., London.

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थिर विनिमय दर क्या है? इसके सापेक्षिक गुण-दोषों का वर्णन कीजिए।
2. नम्य विनिमय दरों को स्पष्ट कीजिए। यह स्थिर विनिमय दरों से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
3. मध्यवर्ती अथवा मिश्रित विनिमय दर से क्या अभिप्राय है? इनके विभिन्न प्रकारों को संक्षेप में बताइए।
4. अग्रिम विनिमय दर क्या है? अग्रिम विनिमय दर से होने वाले लाभ तथा समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई-19 भारत की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति सुधार पूर्व काल

इकाई संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति सुधार पूर्व काल

19.3.1 विदेशी व्यापार नीति का अर्थ

19.3.2 आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति

19.3.3 1950 एवं 1960 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

19.3.4 1970 एवं 1980 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

19.4 भारतीय विदेशी व्यापारः 1950-1990

19.4.1 निर्यात-आयात स्थितिः 1950-51 से 1969-70

19.4.2 निर्यात-आयात स्थितिः 1970-71 से 1989-90

19.4.3 सुधार पूर्व काल में निर्यात-आयात संरचना

19.4.4 सुधार पूर्व काल में विदेशी व्यापार की दिशा

19.5 सारांश

19.6 शब्दावली

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

19.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

विदेशी व्यापार नीति किसी भी देश की विकास कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण अंग होती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डी0एच0 राबर्टसन का कहना था कि 'व्यापार विकास का एक इंजन है।' इसलिए भारतीय नीति निर्माता तथा अर्थशास्त्री सदैव आर्थिक विकास के उद्देश्य से व्यापार नीतियों को महत्त्वपूर्ण स्थान देते रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से सुधार पूर्व काल तक सामान्यतया सभी व्यापार नीति निर्माता यह मानते थे कि देश की व्यापार नीति शिशु उद्योगों को संरक्षण देने वाली होनी चाहिए जिससे औद्योगीकरण के द्वारा देश का तीव्र आर्थिक विकास किया जा सके। साथ ही प्रेविस प्राक्कल्पना कि विदेशी व्यापार से प्राथमिक वस्तुओं की सापेक्षिक कीमतों में गिरावट आती है, को भी अर्थशास्त्रियों द्वारा समर्थन मिला। किन्तु पचास के दशक से सत्तर के मध्य दशक तक के आँकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होने लगा था कि प्राथमिक वस्तुओं की व्यापार शर्तों में यद्यपि गिरावट आयी है किन्तु इनकी कीमतों में वृद्धि देखने को मिली है। ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर भारतीय विदेश व्यापार नीति में समय-समय यथोचित बदलाव किए गये जिससे देश के भुगतान शेष को संतुलित रखा जा सके और आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सके।

19.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि –

1. विदेशी व्यापार नीति का अर्थ और उसके उपकरण क्या हैं।
2. आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति का औचित्य।
3. विदेश व्यापार नीति में समय-समय पर होने वाले परिवर्तन।
4. सुधार पूर्व काल में भारत के विदेशी व्यापार की प्रगति।

19.3. भारत की विदेशी व्यापार नीति सुधार पूर्व काल

19.3.1 विदेशी व्यापार नीति का अर्थ

देश के व्यापारिक वातावरण में अंतःक्षेप करने के लिए सरकार द्वारा अपनाये गए उपकरणों के समुच्चय को व्यापार नीति कहा जाता है। व्यापारिक वातावरण से अभिप्राय एक देश द्वारा विश्व के अन्य देशों के साथ विद्यमान व्यापारिक सम्बन्धों से होता है। उदाहरण के रूप में एक देश अन्य देशों से व्यापार के लिए अपनी सीमाओं को प्रतिबन्धित कर सकता है अथवा प्रतिबंधों से मुक्त कर सकता है। इसी प्रकार एक देश दूसरे देश अथवा देशों के एक समूह के साथ व्यापारिक व्यवस्था को अधिक प्रोत्साहन दे सकता है जबकि अन्य देशों अथवा देशों के समूह के साथ अपने व्यापारिक रिश्तों को प्रतिबंधित कर सकता है। विदेश व्यापार नीति के मुख्य उपकरण प्रशुल्क, कोटा, विनिमय नियंत्रण एवं निर्यात सहायिकी है जिनके माध्यम से एक देश की सरकार अपने आयातों अथवा

निर्यातों को प्रतिबंधित अथवा प्रोत्साहित कर सकती है। आयातों को प्रतिबंधित करने के लिए एक देश अपने आयातों पर आयात शुल्क की दरें बढ़ा सकता है, आयात कोटा निश्चित कर सकता है आदि। इसी प्रकार अपने निर्यातों को प्रोत्साहित या बढ़ाने के लिए देश निर्यातों को सहायिकी प्रदान कर उन्हें अधिक कीमत प्रतियोगी बना सकता है।

19.3.2 आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था प्राथमिक उत्पादों के निर्यात पर निर्भर थी। माँग की कीमत लोच तथा आय के निम्न होने के कारण निर्यातों की मात्रा में वृद्धि के बावजूद निर्यात प्राप्तियों में वृद्धि नहीं हुई क्योंकि इन उत्पादों की कीमतों में कमी आयी थी। दूसरी ओर, औद्योगीकरण हेतु आवश्यक पूँजीगत वस्तुओं की माँग में वृद्धि एवं इनकी कीमतों के ऊँची होने के कारण आयातों के भुगतानों में काफी वृद्धि हुई। इसलिए आर्थिक विकास की वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए में वृद्धि हेतु किए गए प्रयासों से देश की व्यापार शर्तें तथा भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो गया। ऐसी स्थिति में योजनाओं के निवेश में कमी करनी पड़ी जिसके आर्थिक विकास की दर को कम कर दिया। फलस्वरुप यह माना जाने लगा कि विकास प्राथमिक उत्पादों पर आधारित नहीं हो सकता और इसके लिए औद्योगीकरण का आधार विकसित करना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त भारत जैसे अतिजनसंख्या वाले कृषि प्रधान देशों में खेती पर दबाव अधिक होने के कारण श्रम की उत्पादकता कम होने के साथ कृषि विकास की आशा भी कम है। इसलिए औद्योगीकरण ही एकमात्र विकल्प है जो इस अतिरिक्त श्रम-शक्ति को कृषि में उपयोग कर विकास की गति को बढ़ा सकता है।

इन तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक दशकों में भारत में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण की कार्यनीति को अपनाया गया। नर्क्स का मानना था कि विकासशील देशों में माँग की कमी निवेश को सीमित कर देती है। किन्तु आयातों को यदि प्रतिबंधित कर दिया गया तो यह पूर्व में आयातित उत्पादों की माँग को उत्पन्न करेंगे और उद्यमी आयात प्रतिस्थापन उद्योगों में निवेश कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्रियों का मानना था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व अर्थव्यवस्था धीमी गति से बढ़ेगी और विकसित देश पूर्व की भाँति व्यापार पर अनेक प्रतिबंध लगायेंगे, विशेषतया विकासशील देशों द्वारा निर्मित श्रम गहन वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबंध होंगे। साथ ही, इन देशों को अपनी श्रमशक्ति को विश्व बाजार के लिए कुशल व अधिक उत्पादक बनाने हेतु कुछ समय की आवश्यकता होगी। इन सभी कारणों की वजह से भारत में प्रारम्भिक दशकों में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण की कार्यनीति को अपनाया गया।

आयातों को कम करने हेतु देश द्वारा मात्रात्मक प्रतिबंध लगाए गए। यह इस ओर संकेत करता है कि निवेशक संरक्षित उद्योगों में निवेश करने के लिए आकर्षित होंगे। इस कार्यनीति को

लागू करने के लिए देश आयातों को सीमित करने हेतु प्रशुल्क का प्रयोग कर सकता है किन्तु इससे कीमतों में होने वाला उच्चावचन अनिश्चित हो सकता था। अतः अधिकांश देशों में उपभोग वस्तु उद्योगों में निवेश हेतु निजी क्षेत्र की भूमिका आयात प्रतिस्थापन कार्यनीति के सम्बन्ध में प्रमुख रही थी। इसके पीछे तर्क यह था कि अन्तर्देशीय निगमों द्वारा उत्पादित आयातित उपभोग वस्तुओं को यदि प्रतिबंधित कर दिया गया तो वे स्वयं विकासशील देशों में इन वस्तुओं का उत्पादन करने लगेंगे जिससे निवेश निधियों, प्रौद्योगिकी हस्तानान्तरण और उद्यमियों की कमी जैसी समस्याओं का पर्याप्त समाधान किया जा सकेगा।

19.3.3 1950 एवं 1960 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय निर्यात उत्पादों एवं स्थानों दोनों दृष्टि से पूर्णतया केन्द्रीकृत थे। भारतीय निर्यातों में तीन प्राथमिक उत्पादों – कपास, जूट एवं चाय का हिस्सा लगभग 70 प्रतिशत था और भारत इन वस्तुओं का एक प्रमुख निर्यातक देश था। इसलिए विश्व निर्यातों में इनकी हिस्सेदारी में वृद्धि बहुत कठिन थी। साथ ही भारत के लगभग 60 प्रतिशत निर्यात केवल संयुक्त ब्रिटेन को किए जाते थे। इसके अतिरिक्त देश में निर्मित वस्तुओं का विकास अत्यन्त सीमित था। प्रथम पंचवर्षीय योजना तथा द्वितीय योजना के आरंभिक वर्षों से पूँजीगत वस्तुओं तथा निवेश वृद्धि के कारण सरकारी बजट में हुए घाटे को पूरा करने हेतु सरकार विदेशी विनिमय आरक्षिति पर निर्भर थी। किन्तु द्वितीय योजना के अंत तक विदेशी विनिमय आरक्षिति के क्षय हो जाने के साथ देश में भुगतान शेष संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। अतः इस अवधि से तृतीय योजना की समाप्ति तक सरकार विदेशी सहायता के द्वारा निवेश एवं भुगतान शेष घाटे को वित्तपोषित करती रही। द्वितीय एवं तृतीय योजना के दौरान विदेशी सहायता देश के सकल घरेलू उत्पाद के लगभग 3 प्रतिशत तथा भारतीय निवेश के 25 प्रतिशत तक पहुँच गई थी।

अतः सरकार ने विदेशी विनिमय आरक्षिति की उपलब्धता के अनुरूप आयातों पर सख्त मात्रात्मक प्रतिबंध की व्यवस्था को लागू किया। अब केवल उन्हीं आवश्यक वस्तुओं के आयात की अनुमति थी जिन्हें देश में उत्पादित नहीं किया जाता था। इसके बावजूद भुगतान शेष का विशाल घाटा नियंत्रित नहीं किया जा सका और सरकार ने भुगतान शेष घाटे को कम करने के लिए निर्यातों में वृद्धि हेतु नीतिगत परिवर्तन किए। इसके अन्तर्गत निर्यातों को सहायिकी प्रदान की गई और इनकी विभिन्न दरें रखी गई। साथ ही आयात शुल्कों में काफी वृद्धि की गई। इस अवधि में भारत की व्यापार नीति अत्यन्त जटिल एवं प्रतिबंधित थी।

आयात नीति में प्रगतिशील कठोरता 1957 से ही दृष्टिगत होने लगी थी। सामान्य खुला लाइसेंस (पाकिस्तान से आयातित कुछ उत्पादों को छोड़कर) स्थगित कर दिया गया फिर भी 1952-56 की अवधि में वास्तविक आधार पर आवश्यक वस्तुओं के आयात की अनुमति आयातकों को

प्रदान की गई। इस अवधि में कोई नया लाइसेंस निर्गत नहीं किया गया और पूँजीगत वस्तुओं के स्थगित भुगतान आधारित आयात लाइसेंस को सख्त बना दिया गया। फलस्वरुप आयातों में अधिक कमी आयी जिससे 1959-60 में भुगतान शेष की स्थिति पूर्व वर्षों की तुलना में बेहतर हुई। निर्यातों पर मात्रात्मक प्रतिबंधों को कम करने की नीति जारी रही और कुछ मदों जैसे तिलहन एवं तेल के लिए निर्यात कोटा को उदारीकृत किया गया। इसके अतिरिक्त नवीन बाजारों की खोज शुरू रही और उनके पूर्वी यूरोपिय देशों के साथ व्यापार स्तर को बढ़ाने का प्रयास किया गया।

1960-61 के वर्ष में खाद्यान्न, कच्ची कपास एवं धातुओं के आयात का हिस्सा महत्वपूर्ण था जिससे सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों के निर्यातों में वृद्धि हुई। इसी अवधि में 12 निर्यात प्रोत्साहन परिषदों की सम्बन्धित क्षेत्रों में स्थापना की गई और विशिष्ट निर्यात निर्यात योजना का भी निर्माण एवं क्रियान्वयन किया गया। वर्ष 1964-65 में पुनः भुगान शेष पर दबाव देखने को मिला क्योंकि ऋण सेवा भार में वृद्धि, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को पुनर्भुगतान, खाद्य आयात एवं विकास हेतु वस्तुओं के आयात में वृद्धि हुई।

1964-65 में देश में पड़े भीषण सूखे एवं 1965 के भारत पाकिस्तान युद्ध के कारण विदेशी सहायता बन्द कर दी गई थी और घरेलू कीमत स्तर अंतर्राष्ट्रीय कीमतों की तुलना में काफी बढ़ गया था जिससे विदेशी विनिमय की कमी उत्पन्न हो गई। साथ ही विदेशी व्यापार नीतियों में आयात लाइसेंसिंग व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। औद्योगिक क्षेत्र में सरकारी उपक्रमों का प्रभुत्व था और निजी क्षेत्र पर अनेक प्रतिबंध थे। इस कठोर प्रशासनिक व्यवस्था को 'लाइसेसिंग राज' का नाम दिया। 1966 में भारतीय रूपये का अवमूल्यन किया गया जिससे निर्यातों में वृद्धि हो और विदेशी विनिमय की कमी को दूर किया जा सके।

19.3.4 1970 एवं 1980 के दशक में विदेशी व्यापार नीति

भारत में 1970 दशक के अंतिम वर्षों एवं 1980 के प्रारम्भिक वर्षों में व्यापार व्यवस्था जटिल लाइसंसिग प्रणाली पर आधारित थी और विदेशी व्यापार नीति में प्रशुल्क के स्थान पर कोटा पर बल दिया गया। यद्यपि कोटा लाइसेंसिंग हेतु दो नियम प्रमुख थे। प्रथम, आवश्यकता का नियम और द्वितीय, घरेलू अनुपलब्धता का नियम। खुला सामान्य लाइसेंस श्रणी में सूचीबद्ध वस्तुओं को छोड़कर लगभग सभी वस्तुओं के आयात का एकाधिकार राज्य व्यापार निगमों को उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत प्राप्त था। पूँजीगत वस्तुएँ दो श्रेणियों में विभाजित की ओ0जी0एल0 श्रेणी एवं प्रतिबंधित श्रेणी। इसी प्रकार मध्यवर्ती वस्तुएँ – निषिद्ध प्रतिबंधित, सीमित स्वीकृति तथा ओ0जी0एल0 श्रेणियों में विभाजित थी। उपभोक्ता, वस्तुओं का आयात पूर्णतया प्रतिबंधित था। केवल अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुएँ ही सरकारी अभिकरणों के द्वारा आयातित की जा सकती थी।

1980 दशक के मध्य में निर्यातों में वृद्धि दर देखने में मिली। किन्तु निर्यातों ती तुलना में आयातों में वृद्धि अधिक हुई जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति प्रतिकूल बनी रही। निर्मित क्षेत्र में आयत नियंत्रण कठोर थे और औद्योगिक प्रौद्योगिकी का आधूनिकीकरण करना आवश्यक हो गया था। फलस्वरुप 1980 दशक के मध्य से उदारीकरण की प्रक्रिया धीमे व अस्पष्ट रूप से शुरू हो गई। यद्यपि निर्यातों में वृद्धि हेतु अनेक प्रोत्साहन दिए गए और आयातों को सीमित रखा गया फिर भी भुगतान संतुलन की स्थिति इतनी प्रतिकूल थी कि विदेशी विनिमय की राशि मात्र एक माह के आयात बिलों के भुगतान हेतु ही पर्याप्त थी।

1977-78 की आयात-निर्यात नीति में आयातों पर नियंत्रण धीरे-धीरे व निरन्तर कम होने लगे थे। ओ0जी0एल0 श्रेणी के अन्तर्गत 1976 में आयातित वस्तुओं की संख्या 78 से बढ़कर 1988 में 1188 हो गई थी। इसी प्रकार मध्यवर्ती वस्तुएँ जो पूर्व में प्रतिबंधित अथवा सीमित स्वीकृति के साथ आयात की जा सकती थी उन्हें ओ0जी0एल0 श्रेणी के अन्तर्गत आयात करने की अनुमति प्राप्त हो गई। किन्तु इन सभी के आयात की अनुमति देश में इनके उत्पादन न होने की दशा में ही प्राप्त थी। अतः पूँजीगत एवं मध्यवर्ती वस्तुओं के स्थापित उत्पादकों में प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1987-88 तक निर्मित वस्तुओं पर प्रशुल्क की दरें लगभग 140-160 प्रतिशत तक पहुँच गई थी।

1985 के अन्त से आयातों पर मात्रात्मक प्रतिबंधों पर आधारित संरक्षण व्यवस्था प्रशुल्कों की ओर परिवर्तित हो गई। प्रौद्योगिकीय आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करने हेतु पूँजीगत लस्तुओं के आयातों में और छूट प्रदान की गई। निर्यातों को बढ़ाने के लिए निर्यातकों को अनेक प्रोत्साहन दिए गए और प्रशासनिक व्यवस्था को इसके अनुरूप सुव्यवस्थित किया गया। विशिष्ट उत्पाद आधारित आयात लाइसेंस-विक्रीय की दुबारा पूर्ति के आवंटन को निर्यातकों हेतु अधिक सुगम बना दिया गया। आयातित अदाओं पर दी जाने वाली प्रशुल्क छूट को सभी आयातित अदाओं तक विस्तारित कर सभी निर्यातकों को देय बना दी गई।

भारत में विदेश व्यापार नीति तैयार करने का दायित्व वाणिज्य मंत्रालय का है। फिर भी निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न स्वायत्त निकायों जैसे – निर्यात प्रोत्साहन परिषद पण्य बोर्ड, भारतीय विदेश व्यापार संस्थान आदि से भी नीति निर्माण हेतु सुझाव लिए गए। 1985 के पूर्व तक निर्यात-आयात नीति वाणिज्य मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष के लिए घोषित की जाती थी। किन्तु विदेश व्यापार को निश्चितता प्रदान करने हेतु 1985 में तीन वर्षीय निर्यात-आयात नीति की घोषणा की गई जिसे 1992 में बढ़ाकर पाँच वर्ष कर दिया गया।

अभ्यास प्रश्न 1

1) विदेश व्यापार नीति से क्या अभिप्राय है?

2) आयात प्रतिस्थापन से आप क्या समझते हैं?

3) 1970 के दशक की व्यापार नीति को संक्षेप में बताइये।

4) निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए –

(i) भारत में स्वतंत्रता के बाद आयात प्रतिस्थापन कार्यनीति को अपनाया गया। (सही/गलत)

(ii) स्वतंत्रता के समय भारतीय निर्यातों में कपास, जूट एवं चाय का हिस्सा न्यूनतम था। (सही/गलत)

(iii) भारतीय निर्यात संयुक्त ब्रिटेन को आजादी के समय कुल निर्यातों का लगभग 60 प्रतिशत थे। (सही/गलत)

(iv) भारतीय रूपये का अवमूल्यन 1966 में किया गया.। (सही/गलत)

19.4 भारतीय विदेश व्यापारः 1950 से 1990

1950 में भारत का कुल विश्व निर्यातों में हिस्सा 1.85 प्रतिशत और विश्व आयातों में 1.71 प्रतिशत था। साथ ही भारत के निर्यातों एवं आयातों का कुल विश्व व्यापार में हिस्सा 1.78 प्रतिशत था। 1980 में निर्यातों, आयातों एवं कुल विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घटकर क्रमशः 0.42 प्रतिशत, 0.72 प्रतिशत तथा 0.57 प्रतिशत रह गया था। यह आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि विश्व व्यापार में भारत का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है जिसका कारण भारत की अत्यंत प्रतिबंधात्मक नीतियाँ रही हैं। 1980 के बाद से विदेश व्यापार पर प्रतिबंधों में कमी आई है। फलस्वरुप विश्व व्यापार में निर्यातों एवं आयातों में वृद्धि हुई है और इनका प्रतिशत भी बढ़ा है।

19.4.1 निर्यात-आयात स्थितिः 1950-51 से 1969-70

इस अवधि में भारत के निर्यातों एवं आयातों में कुछ उतार-चढ़ाव के साथ स्थिरता की स्थिति बनी रही जिसे तालिका 19.1 से आप समझ सकते हैं।

तालिका 19.1 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यात 1950-51 में 1269 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 1969-70 में 1866 मिलियम अमरीकी डालर हो गए हैं। इसी अवधि में आयातों की मात्रा 1273 मिलियन डालर से बढ़कर 2089 मिलियन डालर हो गई है जबकि व्यापार शेष का घाटा 4 मिलियन डालर से बढ़कर 223 हो गया है। इसी प्रकार नियातों से आयातों का अनुपात जो 1950-51 में 0.996 था वह 1969-70 में घटकर 0.893 रह गया। आप यदि व्यापार शेष घाटे पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि उक्त अवधि में यह सर्वाधिक वर्ष 1966-67 था जबकि यह 1950-51 में न्यूनतम था। इसी प्रकार निर्यातों से आयातों का अनुपात सर्वाधिक वर्ष 1950-51 में था और न्यूनतम वर्ष 1957-58 में था।

तालिका 19.1

भारत के निर्यात-आयात की प्रवृत्तिः 1950-51 से 1969-70

(मिलियम अमरीकी डालर)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1950-51	1269	1273	–4	0.996
1951-52	1490	1852	–362	0.805
1952-53	1212	1472	–260	0.823
1953-54	1114	1279	–166	0.871
1954-55	1233	1456	–223	0.847
1955-56	1275	1620	–345	0.780
1956-57	1259	1750	–491	0.719
1957-58	1171	2160	–989	0.542
1958-59	1219	1901	–682	0.641
1959-60	1343	2016	–674	0.666
1960-61	1346	2353	–1007	0.572
1961-62	1381	2281	–900	0.605
1962-63	1437	2372	–935	0.606
1963-64	1659	2558	–899	0.649
1964-65	1701	2813	–1111	0.605
1965-66	1693	2944	–1251	0.575
1966-67	1628	2923	–1295	0.557
1967-68	1586	2656	–1071	0.598
1968-69	1788	2513	–726	0.711
1969-70	1866	2089	–223	0.893

स्रोत: वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

इसके अतिरिक्त, इस अवधि में निर्यातों में वार्षिक चक्रवृद्धि दर 1.8 प्रतिशत थी जिसके कारण आयात प्रतिस्थापन पर बल तथा निर्यात प्रोत्साहन उपायों का अभाव था। दूसरी ओर आयातों में वृद्धि 4 प्रतिशत वार्षिक दर से हुई। 1950 के मध्य से 1960 के मध्य तक आयातों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से ठीक रही क्योंकि औद्योगीकरण पर अधिक बल दिया गया, विशेषतया तृतीय पंचवर्षीय योजना से सार्वजनिक उपक्रमों को स्थापित किया गया। किन्तु यह प्रवृत्ति अधिक समय तक विद्यमान नहीं रही और व्यापार संतुलन के गहन संकट के कारण रूपये का 1966 में अवमूल्यन

करना पड़ा। अतः लाइसेंसिंग प्रणाली के साथ आयात नियंत्रण काल को अधिक कठोर बनाया गया। तालिका 19.2 में निर्यातों और आयातों की उक्त अवधि में वृद्धि दरों को व्यक्त किया गया है।

तालिका 19.2

निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दरेः 1950-51 से 1969-70

(मिलियन अमरीकी डालर एवं प्रतिशत में)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर	आयात वृद्धि दर
1950-51 से 1954-55	6318	7332	–1014	5.24 (0.63)	4.88 (6.75)
1955-56 से 1959-60	6267	9447	–3180	1.88 (1.70)	7.34 (7.2)
1960-61 से 1964-65	7524	12377	–4853	4.96 (5.00)	7.08 (7.22)
1965-66 से 1969-70	8561	13125	–4564	2.04 (12.62)	–5.48 (5.30)

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, 2010

नोटः 1) निर्यातों में पुनर्निर्यात भी शामिल हैं।

2) निर्यात-आयात पाँच वर्षों का कुल योग है और औसत प्रतिवर्ष वृद्धि दरें हैं।

3) कोष्ठक में रूपये के सन्दर्भ में वृद्धि दरें हैं।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत विश्व व्यापार में 7.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर के अवसर से लाभ उठाने में असफल रहा क्योंकि भारत का निर्यात इस अवधि में प्राथमिक उत्पादों तक ही सीमित रहा और घरेलू उद्योग लाइसेंसिंग प्रणाली द्वारा प्रतिबंधित थे। साथ ही स्थापित सार्वजनिक उपक्रम शिशु अवस्था में था और आधुनिकीकरण किया जाना अत्यंत कठिन था। भारतीय रूपये के 1966 में अवमूल्यन के बाद निर्यातों में वृद्धि-दर डालर एवं रूपये दोनों के सन्दर्भ अधिक रही जबकि इसके पूर्व वर्षों में विपरीत स्थिति रही थी।

19.4.2 निर्यात-आयात स्थितिः 1970-71 से 1989-90

आप इस तथ्य से परिचित हो गए होंगे कि इससे पूर्व अवधि में व्यापार शेष की स्थिति निरन्तर प्रतिकूल बनी रही थी। 1970 के अंत तक व्यापार शेष की दशा में तुलनात्मक रूप से सुधार हुआ। सरकार ने आयात उदारीकरण हेतु कुछ उपायों को शुरू किया। इसके अन्तर्गत 1980 के मध्य से आयात नियंत्रण में ढील देना, एकाधिकारी नियंत्रण को उदार बनाना, प्रौद्योगिकीय उन्नयन व आधुनिकीकरण की दृष्टि से पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदारीकृत करना, मात्रात्मक नियंत्रण के स्थान पर प्रशुल्क लगाना, निर्यातों को सहायिकी और सक्रिय विनिमय दर ह्रास नीति को अपनाना आदि अनेक महत्वपूर्ण उपायों का अपनाया गया। तालिका 19.3 में इस अवधि में भारत के निर्यातों एवं आयातों की प्रवृत्ति को व्यक्त किया गया है।

तालिका 19.3 भारत के निर्यात-आयात की प्रवृत्तिः 1970-71 से 1989-90

(मिलियन अमरीकी डालर)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1970-71	2031	2162	–131	0.939
1971-72	2153	2443	–290	0.881
1972-73	2550	2415	134	1.056
1973-74	3209	3759	–549	0.854
1974-75	4174	5666	–1492	0.737
1975-76	4665	6084	–1420	0.767
1976-77	5753	5677	77	1.013
1977-78	6316	7031	–715	0.898
1978-79	6978	8300	–1322	0.841
1979-80	7947	11321	–3374	0.702
1980-81	8486	15869	–7383	0.535
1981-82	8704	15174	–6470	0.574
1982-83	9107	14787	–5679	0.616
1983-84	9449	15311	–5861	0.617
1984-85	9878	14412	–4534	0.685
1985-86	8904	16067	–7162	0.554
1986-87	9745	15727	–5982	0.620
1987-88	12089	17156	–5067	0.705
1988-89	13970	19497	–5526	0.717
1989-90	16612	21219	–4607	0.783

स्रोत: वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

उपर्युक्त तालिका 19.3 से आपको ज्ञात हो गया होगा कि भारत के निर्यात वर्ष 1985-86 को छोड़कर इस अवधि में बढ़ते रहे हैं जबकि आयातों में उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि होती रही है। इसी अवधि में वर्ष 1972-73 एवं 1976-77 के वर्षों में भारत का व्यापार शेष क्रमशः 134 मिलियन अमरीकी डालर व 77 मिलियन अमरीकी डालर अनुकूल रहा है जबकि शेष वर्षों में यह प्रतिकूल रहा है। इसी प्रकार निर्यातों से आयातों का अनुपात भारत में जहाँ वर्ष 1972-73 में अपने उच्चतम स्तर (1.056) पर था वहीं वर्ष 1985-86 यह अपने निम्नतम स्तर (0.554) पर आ गया था। इसी प्रकार उक्त अवधि में व्यापार का कुल परिमाण 1970-71 में 4193 मिलियन अमरीकी डालर से बढ़कर 1989-90 में 37831 मिलियन अमरीकी डालर हो गया था।

तालिका 19.4 में इस अवधि में निर्यातों, आयातों , व्यापार शेष और वृद्धि दरों को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 19.4

निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दरें: 1970-71 से 1989-90

(मिलियन अमरीकी डालर एवं प्रतिशत में)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर	आयात वृद्धि दर
1970-71 से 1974-75	14117	16445	–2328	17.82 (19.18)	24.36(25.70)
1975-76 से 1979-80	31659	38413	–6754	13.86(14.36)	15.80(15.76)
1980-81 से 1984-85	45624	75553	–29929	4.46(12.98)	6.16(13.94)
1985-86 से 1989-90	61320	89666	–28346	11.62(19.76)	8.18(15.92)

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, 2010

नोट: 1) निर्यातों में पुनर्निर्यात भी शामिल हैं।

2) निर्यात-आयात पाँच वर्षो का कुल योग है और औसत प्रतिवर्ष वृद्धि दरें हैं।

3) कोष्ठक में रूपये के सन्दर्भ में वृद्धि दरें हैं।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उक्त पंचवर्षीय अवधि में व्यापार शेष निरन्तर प्रतिकूल बना रहा है। यद्यपि निर्यातों में वृद्धि हुई है किन्तु आयातों में वृद्धि निर्यातों की तुलना में सदैव अधिक रही है। इसी प्रकार 1985-86 से 1989-90 की अवधि में केवल निर्यातों की वृद्धि दर आयातों की तुलना में अधिक रही है जो इस अवधि में विदेश व्यापार में वृद्धि हेतु अपनाये गए महत्वपूर्ण उपायों का परिणाम है।

19.4.3 सुधार पूर्व काल में निर्यात-आयात संरचना

किसी देश की विदेशी व्यापार की संरचना से आप समझ सकते हैं कि एक देश अन्य देशों के साथ किन वस्तुओं का आयात एवं निर्यात करता है। इससे देश के आर्थिक विकास के स्तर के साथ अर्थव्यवस्था में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है।

1950 के दशक में कृषि एवं उससे सम्बन्धित उत्पादों का भारतीय निर्यातों में बाहुल्य था और इनका हिस्सा 32.75 प्रतिशत था। निर्मित उत्पादों जैसे – कपास सम्बन्धी वस्तुएँ, जूट, बोरी व कपड़े आदि का 38.85 प्रतिशत तथा खनिजों – कोयला, अभ्रक, मैंगनीज जैसी कच्ची धातुओं का हिस्सा 3.6 प्रतिशत था। 1960 के दशक से कृषि एवं उससे सम्बन्धित उत्पादों का निर्यातों में हिस्सा तेजी से कम होने लगा। किन्तु समुद्री उत्पादों के निर्यात में वृद्धि जारी रही है। इसी प्रकार 1950-51 में निर्मित वस्तुओं का कुल निर्यातों में हिस्सा लगभग 39 प्रतिशत था जो 1960-61 में बढ़कर 45.4 प्रतिशत और आर्थिक सुधारों से ठीक पूर्व 1990-91 में 72.9 प्रतिशत हो गया। तालिका 19.5 में सुधार पूर्व काल भारत के निर्यातों की संरचना को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 19.5भारतीय निर्यातों की संरचना(प्रतिशत में)

उत्पाद /वर्ष	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
1. कृषि एवं सम्बन्धित उत्पाद	24.61	44.28	31.71	30.65	19.41
1.1 कॉफी	–	1.10	1.62	3.19	0.78
1.2 चाय एवं अन्य सहायक	13.38	19.32	9.65	6.34	3.29
1.3 खाद्य तेल एवं खली	4.23	2.15	3.59	1.86	1.87
1.4 तम्बाकू	–	2.52	2.12	2.10	0.81
1.5 काजू गिरी	1.43	2.97	3.74	2.09	1.37
1.6 मसाले	3.42	2.67	2.51	0.17	0.73
1.7 चीनी एवं खाँड	–	4.46	1.92	0.59	0.12
1.8 कच्ची कपासट	0.83	1.86	0.94	2.46	2.60
1.9 चावल	–	–	0.34	3.33	1.42
1.10 मछली व उससे बने उत्पाद	–	0.74	1.92	3.23	2.95
1.11 मांस व उसके उत्पाद	–	0.15	0.20	0.82	0.43
1.12 फल एवं सब्जियाँ, दालें व काजू गिरी, प्रसंस्करित खाद्य व रसों को सम्मिलित कर	–	0.97	0.79	1.19	0.66
1.13 मिश्रित प्रसंस्करित खाद्य (प्रसंस्करित खाद्य रसों को सम्मिलित कर)	–	0.15	0.30	0.53	0.65
उत्पाद /वर्ष	**1950-51**	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
2. अयस्क एवं खनिज	3.59	8.81	10.68	6.16	4.60
2.1 लौह अयस्क	–	2.67	7.63	4.53	3.22
3. विनिर्मित वस्तुएँ	46.05	45.32	50.27	55.83	72.92
3.1 बुना हुआ वस्त्र एवं अन्य निर्मित वस्त्र (हस्तनिर्मित कालीन को छोड़कर)	19.72	11.37	9.45	13.89	20.98
3.1.1 कपास सूत, वस्त्र, निर्मित आदि	–	10.10	9.26	6.08	6.45
3.1.2 बुने कपड़े से तैयार सभी वस्त्र	–	–	1.92	8.20	12.32
3.2 नारियल की जटा व उससे निर्मित	–	0.96	0.84	0.26	0.15
3.3 जूट निर्मित उत्पाद	18.15	21.03	12.41	4.91	0.92
3.4 चमड़ा व चमड़ा उत्पाद	5.85	4.38	5.22	5.81	7.99
3.5 हस्तशिल्प (हस्तनिर्मित कालीन को सम्मिलित कर)	–	1.71	4.73	14.19	18.94
3.5.1 रत्न व आभूषण	–	–	2.90	9.22	16.12
3.6 रासायनिक पदार्थ व संबन्धित उत्पाद	–	1.1	1.92	3.47	6.48
3.7 मशीनरी, परिवहन, धातुनिर्मित वस्तुएँ (लोहा व इस्पात को शामिल कर)	–	3.42	12.85	12.31	11.89
4 खनिज तेल एवं चिकनाईयुक्त तेल (कोयले को सम्मिलित कर)	–	1.1	0.84	0.41	2.91

स्रोतः विभिन्न भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिकाए।

नोटः 1950-51 में अयस्क व खनिज में कोयला, अभ्रक एवं मैंगनीज शामिल हैं 1960-61 से कोयला को सम्मिलित नहीं किया गया है।

तालिका 19.5 से स्पष्ट है कि सुधार पूर्व काल में भारतीय परम्परागत निर्यातों में जैसे – चाय, कपास,लौह अयस्क एवं कृषि उत्पादों का हिस्सा कम हुआ है। देश में औद्योगीकरण के विस्तार के साथ इंजीनियरिंग वस्तुओं, रासायनिक पदार्थों, विनिर्मित वस्त्रों एवं चमड़ा उत्पादों के निर्यात में वृद्धि हुई है। इस अवधि में रत्न एवं आभूषणों के निर्यात में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जो 1970-71 के 2.90 प्रतिशत से बढ़कर 1980-81 व 1990-91 में क्रमशः 9.22 प्रतिशत व 16.12 प्रतिशत हो गयी थी।

तालिका 19.6 भारतीय आयातों की संरचना (प्रतिशत में)

उत्पाद /वर्ष	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
1. खाद्य एवं जीवित पशु (कच्चे काजू को छोड़कर)	15.48	19.08	14.85	3.03	–
1.1 अनाज व उसेस बनी चीजें	12.96	16.15	13.04	0.80	0.42
2. कच्चा सामान व मध्यवर्ती विनिर्मीत	36.57	46.96	54.39	77.77	59.25
2.1 काजू (गैरप्रसंस्करित)	–	–	1.80	0.07	0.31
2.2 कच्ची रबड़ (कृत्रिम व पुनः प्राप्त रबड़)	–	0.98	0.23	0.25	0.52
2.3 रेशे	23.85	9.01	7.77	–	–
2.3.1 कृत्रिम पुनर्सृजित रेशे (मानव निर्मित रेशे)	–	–	0.56	0.77	0.13
2.3.2 कच्ची ऊन	0.90	0.08	0.93	0.35	0.42
2.3.3 कच्ची कपास	16.17	7.31	6.06	–	–
2.3.4 कच्ची जूट	4.42	0.72	–	0.01	0.05
2.4 पेट्रोलियम, तेल, स्नेहक	6.65	6.16	8.33	41.94	25.04
2.5 पशु एवं शाकाहारी तेल	–	0.42	2.36	–	–
2.5.1 खाद्य तेल	–	0.34	1.43	5.40	0.76
उत्पाद /वर्ष	**1950-51**	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
2.6उर्वरक एवं रासायनिक उत्पाद	3.53	7.86	13.23	–	–
2.6.1 उर्वरक एवं उर्वरक विनिर्मीत	–	1.55	5.23	6.52	4.09
2.6.2 रासायनिक तत्व एवं मिश्रण	1.48	3.48	4.16	2.85	5.30
2.6.3 रंगाना, टैनिंग व रंगने का सामान	2.05	0.08	0.56	0.16	0.39
2.6.4 चिकित्सा एवं भेषज उत्पाद	1.60	0.89	1.48	0.67	1.08
2.6.5 प्लास्टिक सामान, पुनर्सृजित सेल्यूलोज एवं कृत्रिम रेजिन	–	0.81	0.51	0.9	2.53
2.7 लुग्दी एवं वव्यर्थ कागज	–	0.64	0.74	0.14	1.06
2.8 कागज, कागज बोर्ड, कागज विनिर्मीत	–	1.06	1.53	1.49	1.06
2.9 अधात्वीय खनिज विनिर्मीत	–	0.55	2.04	4,42	–
2.9.1 मोती, बहुमूल्य व अल्प बहुमूल्य पत्थर तराशे हुए एवं बिना तराशे हुए	–	0.08	1.53	4.42	8.65
2.10 लोहा व इस्पात	–	10.96	8.97	6.79	4.89
2.11 ऊलौह धातुएँ	–	4.21	7.31	3.81	2.55
3. पूँजीगत वस्तुएँ	23.10	31.75	24.70	15.22	24.23
3.1 धातु निर्मित उत्पाद	2.30	2.04	0.71	0.71	0.70
3.2 गैरइलेक्ट्रानिक मशीनरी, मशीन उपकरण आदि	14.04	18.10	15.77	8.68	9.82
3.3 इलेक्ट्रानिक मशीनरी, उपकरण आदि	1.52	5.10	4.30	2.07	3.94
3.4 परिवहन उपस्कर	–	6.92	4.07	3.76	3.87

स्रोतः विभिन्न भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिकायें।

भारतीय आयातों को मुख्यतया उपभोक्ता वस्तुओं एवं उत्पादक वस्तुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। उपभोक्ता वस्तुओं में अनाज, दालें व आटा प्रमुख थीं। इसी प्रकार कच्चे माल में कच्ची कपास, तेल व कच्चा जूट मुख्य मदें थी। पूँजीगत वस्तुओं के अन्तर्गत मशीनरी, इलैक्ट्रानिक वस्तुएँ, धातु, लोहा व इस्पात उत्पाद सम्मिलित थे। स्वतंत्रता के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय विदेश व्यापार के आयातों का स्वरुप उपनिवेशवादी ही था जो बाद के वर्षों में धीरे-धीरे परिवर्तित हुआ है। तालिका 19.6 में सुधार पूर्वकाल में आयातों की संरचना को प्रदर्शित किया गया है।

भारतीय आयातों में 1950-51 में प्रमुख स्थान खाद्यान्न, खाद्य तेलों तथा दालों का था जो कुल आयातों का 15.48 प्रतिशत था। इसके बाद आयातों में पेट्रोलियम उत्पाद (6.65 प्रतिशत), इंजीनियरिंग व पूँजीगत वस्तुएँ (23.10 प्रतिशत) तथा लोहा व इस्पात का स्थान था। 1960-61 में कच्चे माल व मध्यवर्ती वस्तुओं का आयात सर्वाधिक (46.9 प्रतिशत) था जिसमें लोहा व इस्पात, पेट्रोलियम उत्पादक तथा रासायनिक पदार्थ शामिल थे। इसके अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं के आयात का हिस्सा 31.7 प्रतिशत था। इस वर्ष खाद्य पदार्थों में विगत वर्षों की तुलना में वृद्धि हुई और उसका प्रतिशत 16.1 था। 1980-81 में कच्चे माल व मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुओं का आयातों में सर्वाधिक हिस्सा था जो कि 77.3 प्रतिशत था। इस वर्ष पेट्रोलियम उत्पादों में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की गई जिसका कुल आयातों से अनुपात 41.9 प्रतिशत था। 1990-91 में पेट्रोलियम उत्पादों के आयातों में कमी हुई और कुल आयातों में पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रतिशत 24.2 था। किन्तु इस वर्ष मोतियों व बहुमूल्य पत्थरों के आयातों के अनुपात में पूर्व की तुलना में अधिक वृद्धि देखी गई। इस प्रकार 1950-51 से 1990-91 की अवधि में मध्यवर्ती उत्पादों एवं पूँजीगत वस्तुओं की कुल आयातों के अनुपात में वृद्धि हुई। दूसरी ओर खाद्यान्नों एवं अन्य खाद्य पदार्थों के आयातों के अनुपात में कमी हुई।

19.4.4 सुधार पूर्व काल में विदेशी व्यापार की दिशा

इस अवधि में भारतीय आयात अधिकांशतया आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओ0ई0सी0डी0) देशों के साथ ही रहा है जिसे आप तालिका 19.7 से समझ सकते हैं।

तालिका 19.7 से स्पष्ट है कि 1960-61 में 78 प्रतिशत भारतीय आयात केवल ओ0ई0सी0डी0 देशों से ही किए गए थे जो कि 1980-81 में घटकर 45.7 प्रतिशत रह गए थे। इसी अवधि में यूरोपीय

संघ के देशों का आयातों में प्रतिशत 37.1 से घटकर 21.0 रह गया है। साथ ही संयुक्त ब्रिटेन व जर्मनी से भी आयातों का प्रतिशत घटा है जबकि फ्रांस, बेल्जियम व ननीदरलैण्ड का आयातों में प्रतिशत बढ़ा है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका, जिससे भारत का आयात सर्वाधिक है, का आयात घटकर 1960-61 के 29.2 प्रतिशत से 1990-91 में 12.1 प्रतिशत रह गया था।

तालिका 19.7भारतीय आयातों की दिशा (प्रतिशत में)

देश/संगठन	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
ओ0ई0सी0डी0	78.0	63.8	45.7	54.0
यूरोपीय संघ	37.1	19.6	21.0	29.4
संयुक्त ब्रिटेन	19.4	7.8	5.8	6.7
जर्मनी	10.9	6.6	5.5	8.0
फ्रांस	1.9	1.3	2.2	3.0
बेल्जियम	1.4	0.7	2.4	6.3
नीदरलैण्ड	0.9	1.2	1.7	1.8
संयुक्त राज्य अमरीका	29.2	27.7	12.9	12.1
कनाडा	1.8	7.2	2.6	1.3
आस्ट्रेलिया	1.6	2.2	1.4	3.4
जापान	5.4	5.1	6.0	7.5
रूस	1.4	6.5	8.1	5.9
ईरान	2.6	5.6	10.7	2.4
साऊदी अरब	1.3	1.5	4.3	6.7
कुवैत	–	–	2.7	0.8

स्रोतः विभिन्न वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

दूसरी ओर आस्ट्रेलिया, जापान व सऊदी अरब से आयात का प्रतिशत बढ़ गया है। रूस के साथ भी आयातों में वृद्धि हुई है जो कि वर्ष 1980-81 में सर्वाधिक 8.1 प्रतिशत थी। इसी वर्ष ईरान से भी आयात अपने उच्चतम स्तर 10.7 प्रतिशत तक पहुँच गए थे। इस प्रकार भारत के आयातों में संतुक्त ब्रिटेन व अमरीका के प्रतिशत में कमी हुई है जबकि पूर्वी यूरोपीय देशों, जापान, तेल निर्यातक देशों, रूस व अन्य विकासशील देशों से आयातों में वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार भारतीय निर्यात भी मुख्यतया आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन तथा संयुक्त राज्य अमरीका व तेल निर्यातक देशों के साथ अधिक रहा है जिसे तालिका 19.8 में व्यक्त किया गया है।

तालिका 19.8 से स्पष्ट है कि भारतीय निर्यातों में ओ0ई0सी0डी0 देशों का 1960-61 में 66.1 रतिशत भाग था जो 1980-81 में घटकर 45.7 प्रतिशत और पुनः 1990-91 में 54.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार यूरोपीय संघ, संयुक्त ब्रिटेन व जर्मनी को किए जाने वाले भारतीय निर्यातों के प्रतिशत में कमी आयी थी। यद्यपि 1990-91 में इन देशों के निर्यात प्रतिशत में कुछ सुधार हुआ है। बेल्जियम, नीदरलैण्ड व फ्रांस के निर्यात प्रतिशत में आँशिक वृद्धि हुई है। संयुक्त राज्य अमरीका के निर्यात प्रतिशत में काफी कमी हुई है। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया, जापान, रूस, ईरान तथा सऊदी अरब को किए जाने वाले निर्यातों में कुछ उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि हुई है। इस प्रकार 1950-51 की तुलना में भारत के निर्यात कुछ देशों की बजाय अधिक देशों तक विस्तृत हो गए हैं और इनमें विकासशील देशों को किए जाने वाले निर्यातों में वृद्धि हुई है जबकि ब्रिटेन के निर्यातों का प्रतिशत घट गया है।

तालिका 19.8 भारतीय निर्यातों की दिशा(प्रतिशत में)

देश/संगठन	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
ओ0ई0सी0डी0	66.1	63.8	45.7	54.0
यूरोपीय संघ	37.1	19.6	21.0	29.4
संयुक्त ब्रिटेन	19.4	7.8	5.8	6.7
जर्मनी	10.9	6.6	5.5	8.0
फ्रांस	1.9	1.3	2.2	3.0
बेल्जियम	1.4	0.7	2.4	6.3
नीदरलैण्ड	0.9	1.2	1.7	1.8
संयुक्त राज्य अमरीका	29.2	27.7	12.9	12.1
कनाडा	1.8	7.2	2.6	1.3
आस्ट्रेलिया	1.6	2.2	1.4	3.4
जापान	5.4	5.1	6.0	7.5
रूस	1.4	6.5	8.1	5.9
ईरान	2.6	5.6	10.7	2.4
साऊदी अरब	1.3	1.5	4.3	6.7
कुवैत	–	–	2.7	0.8

स्रोतः विभिन्न आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

अभ्यास प्रश्न 2

1) भारतीय आयातों की संरचना पर टिप्पणी लिखिए।

2) 1991 से पूर्व भारतीय विदेशी व्यापार की दिशा में होने वाले परिवर्तनों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

3) रिक्त सस्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) 1950 में कुल विश्व निर्यातों में भारत का हिस्सा .... प्रतिशत था।

(ii) 1980 में कुल विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा घटकर .... प्रतिशत हो गया था।

(iii) संयुक्त राज्य अमरीका को किए गए निर्यातों में 1960-61 में हिस्सा .... प्रतिशत था।

4) निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए।

(i) वर्ष 1972-73 में भारत का व्यापार शेष अनुकूल था। (सही/गलत)

(ii) 1950 के दशक में भारतीय निर्यातों में कृषि व उससे सम्बन्धित उत्पादों की प्रचुरता थी। (सही/गलत)

(iii) भारतीय आयातों में पेट्रोलियम उत्पादों का प्रतिशत 1980-81 में बहुत घट गया था। (सही/गलत)

19.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप परिचित हो गए होंगे कि आजादी के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय व्यापार नीति अत्यन्त प्रतिबंधात्मक थी जिसके कारण विदेशी व्यापार का परिमाण सीमित था और व्यापार कुछ वस्तुओं व देशों तक सीमित था। 1980 के दशक के मध्य से व्यापारिक नीतियों में धीरे-धीरे बदलाव आने लगा और भारत के विदेशी व्यापार का आधार विस्तृत होने लगा। सुधार पूर्वकाल के बाद के वर्षों में भारत केवल कृषि व सम्बन्धित उत्पादों के निर्यात तक ही सीमित नहीं रह गया बल्कि इंजीनियरिंग वस्तुओं, विनिर्मित वस्त्रों, चमड़ा उत्पादों और रत्न व आभूषणों के निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। भारत में आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण नीति को अपनाकर देश के औद्योगिक आधार को विकसित बनाया गया है जिससे कच्चे माल व मध्यवर्ती वस्तुओं के आयातों में वृद्धि हुई है और खाद्य पदार्थों के आयातों में कमी आयी है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन के साथ विकास की दर में तेजी आयी है।

19.6 शब्दावली

1. खुला सामान्य लाइसेंस–ऐसी मदें जिनके आयात हेतु लाइसेंस की आवश्यकता नहीं (ओ0जी0एल0) मदेंहोती है।
2. मात्रात्मक प्रतिबंध–किसी समयावधि में वस्तु विशेष के आयात अथवा निर्यात की भौतिक राशि का उसके मूल्य अथवा परिमाण के अनुसार निश्चित कोटा।
3. व्यापार शेष–देश की वस्तुओं के निर्यात से आयातों का अन्तर।

4. व्यापार नीति–व्यापार नीति वह नीति है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है। इसमें विशेष रूप से प्रशुल्क व गैर प्रशुल्क बाधायें सम्मिलित हैं।
5. आयात प्रतिस्थापन–पूर्व में आयातित वस्तुओं का देश में ही उत्पादन।
6. प्रतिबंधित मदें–ऐसी मदें जिनके लिए आयात लाइसेंस की आवश्यकता थी।

19.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 1

1) कृपया भाग 19.3.1 पढ़िए। 2) कृपया भाग 19.3.2 पढ़िए। 3) कृपया भाग 19.3.4 पढ़िए।
4) (i) सही, (ii) गलत, (iii) सही, (iv) सही, (v) सही

उत्तर अभ्यास प्रश्न 2

1) कृपया भाग 19.3.1 पढ़िए।2) कृपया भाग 19.4.4 पढ़िए।
3) (i) 1.85 प्रतिशत (ii) 0.57 प्रतिशत (iii) 29.2 प्रतिशत4)(i) सही, (ii) सही, (iii) गलत

19.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।
- Government of India, 'The Economic Survey', New Delhi (various years).

18.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Bhagwati, J.N. (1978). Anatomy and Consequences of Exchange Control Regimes, Cambridge : Ballinger Publishing Company.
2. Joshi, V. and I.M.D. Little (1994), India : Macroeconomics and Political Economy 1964-1990, Oxford University Press, New Delhi.
3. Singh, Manmohan (1964). India's Export Trend, Oxford University Press, London.
4. Bhagwati, J.N. and Srinivasan, T.N. (1976). Foreign Trade Regimes and Economic Development : India, Macmillan.

19.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1980 के दशक में भारत के विदेशी व्यापार में कौन-कौन से ढाँचागत परिवर्तन हुए हैं?

2. भारत में अपनायी गई आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण कार्यनीति का वर्णन कीजिए।
3. सुधारपूर्व काल में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना की व्याख्या कीजिए।
4. 1991 से पूर्व भारतीय विदेश व्यापार की स्थिति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई-20: भारत की अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति तथा सुधार काल

इकाई संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 भारत की विदेशी व्यापार नीति तथा सुधार काल

20.3.1 भारत में व्यापार क्षेत्र में सुधार

20.3.2विदेश व्यापार नीतिः 2004-09

20.3.3 विदेश व्यापार नीतिः 2009-2014

20.4 सुधार काल के दौरान भारत का विदेशी व्यापार

20.4.1 निर्यात-आयात स्थिति

20.4.2 निर्यात-आयात संरचना

20.4.3विदेशी व्यापार की दिशा

20.5 सारांश

20.6 शब्दावली

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

20.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई के अध्ययन से आप सुधार पूर्व काल में भारत की व्यापार नीति तथा उस अवधि में विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों से पूर्णतया परिचित हो गए होंगे। इस इकाई में सुधारकाल में भारत की व्यापार नीति और विदेशी व्यापार में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा की जाएगी।

भारत में नई आर्थिक नीति की घोषणा 1991 में की गई जिसके अन्तर्गत निजीकरण, उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। वर्ष 1989-90 एवं 1990-91 में देश गहन आर्थिक संकट की स्थिति से गुजर रहा था और व्यापार शेष घाटा अपने उच्चतम स्तर पर था। साथ ही प्रतिकूल भुगतान संकलन की समस्या गम्भीर थी जो कि सकल घरेलू उत्पाद के – 3.1 प्रतिशत के स्तर पर था क्योंकि खाड़ी युद्ध के कारण तेल कीमतों में काफी तेजी से वृद्धि हो गई थी और अदृश्य मदों के निर्यात से अर्जित विदेशी प्राप्तियाँ बहुत कम हो गई थी। इसके अतिरिक्त विदेशी ऋण व ऋण सेवाभार की समस्या ने देश में विदेशी विनिमय संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। अतः व्यापार क्षेत्र में उदारीकरण की प्रक्रिया को लागू करने के साथ अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन करना सरकार के लिए आवश्यक हो गया था।

20.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1. 1991 से व्यापार क्षेत्र में किए गए सुधारों की संक्षिप्त व्याख्या करना।
2. सुधार काल के दौरान क्रियान्वित व्यापार नीतियों का विश्लेषण करना।
3. भारत के व्यापार ढाँचे और इस अवधि में हुए परिवर्तनों का वर्णन करना।
4. इस समयावधि में भारतीय विदेश व्यापार की दिशा एवं परिवर्तनों की व्याख्या करना।

20.3. भारत की विदेशी व्यापार नीति तथा सुधार काल

20.3.1 भारत में व्यापार क्षेत्र में सुधार

विगत इकाई में आपने पढ़ा था कि भारत में 1991 से पूर्व व्यापार क्षेत्र में मात्रात्मक प्रतिबंध तथा आयात प्रतिथापन की अंतःमुखी व्यापार नीति को अपनाया गया था जो निर्यातों के विस्तार में असफल रही। फलस्वरुप 1991 से व्यापार क्षेत्र में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की बहिर्मुखी नीति को अपनाने के साथ घरेलू क्षेत्र में निजीकरण पर बल दिया गया जिससे तत्कालीन आर्थिक संकट को दूर किया जा सके। 1991 के बाद व्यापार क्षेत्र में किए गए प्रमुख सुधारों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है –

- देश में आयातों पर मात्रात्मत प्रतिबंधों को हटा दिया गया है। यह प्रक्रिया दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के संगठन (आसियान) जैसे क्षेत्रीय समझौतों द्वारा भी जारी है।
- आयातों के उदारीकण की दृष्टि से आयात प्रशुल्कों में कमी कर दी गई हैं और गैर-कृषि वस्तुओं हेतु आयात शुल्क की उच्चतम दरों को काफी नीचे स्तर पर कर दिया गया है।
- 1991 से पूर्व 'केनालाइज्ड मदों' का आयात केवल अधिकृत राज्य व्यापार अभिकरण द्वारा किया जा सकता था जिसे सुधार काल में धीरे-धीरे 'डिकेनालाइज्ड' किया गया है।
- देश में आयातों को उदारीकृत करने तथा निर्यातों को प्रोत्साहित करने हेतु करों में अनेक छूटे एवं रियायतें दी गई हैं। उदाहरण के लिए दूरसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी एवं मनोरंजन क्षेत्र के लिए सरकार द्वारा कर हितलाभ प्रदान किए गए हैं।
- भारत में सेवाओं के निर्यात की अपार संभावना को देखते हुए सेवाओं के निर्यात प्रोत्साहन हेतु अनेक उपाय व्यापार नीति में किए गए हैं।
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दशा में विदेशी भुगतानों के निपटान में आने वाली समस्या को दूर करने के लिए चरणबद्ध रूप से भारतीय रूपये को चालू खाते में पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया है। रूपये को पूँजीखाते में परिवर्तनीय बनाने हेतु सरकार द्वारा सजगतापूर्वक प्रयास किया जा रहा है।
- अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यातों को अधिक प्रतियोगी व बाधारहित बनाने हेतु वर्ष 2000 में विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र योजना की घोषणा की गई जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा इनकी स्थापना की जा सकती है। इसके अन्तर्गत आयात व निर्यात प्रशुल्क रहित किए जा सकते हैं और इनको अनेक छूटें भी प्राप्त होती हैं।
- निर्यातोन्मुखी इकाई योजना को विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के पूरक के रूप में शुरू किया गया है जिसके अन्तर्गत इनकी स्थापना के लिए अधिक गहन और विस्तृत विकल्प उपलब्ध कराए गए हैं। इसी प्रकार कृषिगत निर्यातों को प्रोत्साहित करने तथा कृषि से सम्बन्धित नवीनतम सेवाओं को उपलब्ध कराने के साथ उनके संगठित प्रयास हेतु कृषि निर्यात क्षेत्र की स्थापना भी की गई है।

- सुधार काल की व्यापार नीति व्यापार गृहों एवं सुपर स्टार व्यापार गृहों की स्थापना और उन्हे प्रशुल्क मुक्त आयाते करने की अनुमति देती है। इसके अतिरिक्त निर्यातों के विस्तार हेतु सरकार इनकी स्थापना में 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की भी अनुमति देती है।
- विदेशी बाजारों में भारतीय उत्पादों की बिक्री बढ़ाने हेतु कुछ चुनिन्दा देशों में इन उत्पादों के बाजारों का गहन अध्ययन किया जाता है और इनकी माँग बढ़ाने हेतु व्यापार मेले, प्रदर्शनी आदि हेतु बाजार खोज पहल योजना का प्रारम्भ किया गया है। यह योजना विदेशी क्रेताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाने ने में अत्यंत सफल रही है।
- इस प्रकार सुधार पश्चात् काल में पाँच वर्षीय निर्यात-आयात नीति (1992-1997) व्यापार उदारीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने तथा अधिक स्थायित्व लाने हेतु लागू की गई। इसके बाद सरकार ने मध्यमकाल निर्यात कार्यनीति (2002-2007) को शुरू किया जिसके अन्तर्गत स्थिर नीति वातावरण बनाने हेतु क्षेत्रवार लक्ष्य निर्धारित कर वर्ष 2007 तक विश्व व्यापार का 1 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया । इसी वर्ष नई निर्यात-आयात नीति (2002-2007) नियंत्रण एवं प्रतिबंध मुक्त वातावरण बनाने के उद्देश्य से घोषित की गई। इसमें कृषिगत निर्यातों को विशेष प्रोत्साहन दिया गया और कुटीर उद्योग व हल्तशिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके साथ निर्यात संवर्धन पूँजीगत वस्तुओं तथा ड्यूटी एंटाइटेलमेन्ट पासबुक योजना को अधिक आकर्षक बनाया गया। औद्योगिक क्लस्टर्स से निर्यात सम्वर्धन हेतु अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान की गई। अफ्रीकी महाद्वीप में निर्यात बढ़ाने हेतु कुछ अफ्रीकी देशों को फोकस किया गया। इन सभी नीतियों अथवा कार्यनीतियों का क्रियान्वयन भारतीय निर्यातों की प्रतियोगिता एवं सम्भावनाओं का पूर्वानुमान लगाने में सहायक रहा। फलस्वरुप अगस्त 2004 में सरकार ने विस्तृत विदेश व्यापार नीति (2004-2009) की घोषणा की।

20.3.2 विदेशी व्यापार नीति (2004-2009)

अगस्त 2004 में भारत सरकार ने विदेश व्यापार नीति (2004-09) की घोषणा की जिसका मुख्य उद्देश्य आगामी पाँच वर्षों में विश्व वस्तु बाजार में भारत के हिस्से को दुगुना करना तथा व्यापार द्वारा रोजगार सृजित कर आर्थिक विकास में प्रभावी भूमिका निभाना है। इसके अन्तर्गत व्यापार पर लगे नियंत्रणों को समाप्त करने तथा व्यापार व्यवहार को सरलीकृत बनाने पर बल दिया गया। इसमें भारत को विनिर्मित वस्तुओं तथा सेवाओं से सम्बन्धित व्यापार का मुख्य केन्द्र बनाने पर ध्यान दिया गया। इस हेतु नीति में प्रद्योगिकीय सुगमता तथा आधारिक संरचना का उन्नयन पूँजीगत वस्तुओं तथा

उपकरणों के आयात द्वारा करने पर अर्थव्यवस्था में बल दिया गया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण तथा अर्द्धशहरी क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार अवसरों को सृजित करने हेतु ऐसे क्षेत्रों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया।

यह व्यापार नीति निर्यात वस्तुओं के उत्पादन हेतु आवश्यक आयातों पर लगाए जाने वाले शुल्कों के करापात को समाप्त किये जाने के साथ उल्टे प्रशुल्क ढाँचे का त्याग करने की कार्यनीति पर आधारित थी। इस व्यापार नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. इस नीति में निर्यात सम्भावनाओं और रोजगार सृजित करने वाले क्षेत्रों जैसे – कृषि, हस्तशिल्प, हथकरघा, रत्न व आभूषण तथा चमड़ा व जूते, की पहचान की गई। कृषि उत्पादों के निर्यात हेतु 'विशेष कृषि उपज योजना' जिसे बाद में 'विशेष कृषि उपज एवं ग्रामोदय योजना' कर दिया गया, को शुरू किया गया। इसके अतिरिक्त हस्तशिल्प विशेष आर्थिक क्षेत्र की भी स्थापना की गई।
2. सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए सर्व्ड फ्राम इण्डिया योजना की शुरूआत की गई। इसके अन्तर्गत 10 लाख रूपये की विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाले व्यक्तिगत सेवा उत्पादक अपनी विदेशी प्राप्तियों के 10 प्रतिशत ड्यूटी क्रेडिट के लिए अर्ह होंगे। साथ ही चुनिंदा सेवाओं की निर्यात वृद्धि हेतु 'सेवा निर्यात सम्वर्द्धन परिषद' के गठन का प्रस्ताव किया गया है। सरकार के विभिन्न विभागों में तालमेल बढ़ाने के लिए 'बोर्ड ऑफ ट्रेड' के पुनर्गठन करने की बात भी इस नीति में कही गई है।
3. निर्यातों की लागत को कम करने के लिए समस्त निर्यात क्षेत्र को सेवा कर से मुक्त कर दिया गया है। साथ ही सेवाओं के निर्यातकों के लिए शुल्क मुक्त आयात की सुविधा भी प्रदान की गई है।
4. निर्यात सम्वर्द्धन पूँजीगत वस्तु योजना का उदारीकरण किया गया है और पुरानी मशीनों के आयात पर प्रतिबंध को समाप्त कर दिया गया है।
5. मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए 'मुक्त व्यापार और वेयरहाउसिंग क्षेत्र' की स्थापना की गई है।
6. निर्यातोन्मुखी इकाइयों को स्टार निर्यात घराने के दर्जे हेतु कारोबार सीमाओं में कटौती की गई है।
7. निर्यातकों के लिए 'टारगेट प्लस योजना' शुरू की गई। यद्यपि अप्रैल 2006 की पूरक विदेशी व्यापार नीति में इसे समाप्त कर दिया गया।

8. निर्यातों को प्रोत्साहित करने तथा आवश्यक आयातों जैसे – बीजों का आयात आदि हेतु प्रक्रियाओं को सरलीकृत कर दिया गया है।

यह विदेशी व्यापार नीति पूर्व की निर्यात-आयात नीतियों की तुलना में बेहतर थी। किन्तु यह अपने विश्व व्यापार में भारत के दुगुने हिस्से के लक्ष्य को पूरा करने में असफल रही। पुरानी मशीनरी के आयात से देश में अप्रचलित उच्च लागत प्रौद्योगिकी का संचय हुआ जिससे निर्यात तथा विकास में कोई मदद नहीं मिली। इस नीति में दी गई प्रशुल्क व कर रियायतों से राजस्व में कमी आई और निर्यात उद्योगों में एकाधिकारी प्रवृत्तियों की सम्भावना बढ़ी है। व्यावहारिक तौर पर यह देखा गया कि निर्यातकों द्वारा निर्यात छूट के लाभ के उद्देश्य से पहले निर्यात किया गया फिर उसमें कुछ मूल्यवर्द्धन के बाद आयात कर दोहरा लाभ अर्जित करने का प्रयास किया गया।

20.3.3 विदेश व्यापार नीति (2009-14)

नई विदेश व्यापार नीति की घोषणा अगस्त 2009 में उस समय पर की गई जब देश के निर्यातों में पिछले कई महीनों से लगातार गिरावट हो रही थी। अतः इस नीति का उद्देश्य निर्यात में गिरावट के रूख को रोककर विपरीत दिशा में मोड़ना था। इस नीति की अवधि 2009-2014 तक है जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. भारत के निर्यातों को 2014 तक दो गुना करना है और मार्च 2011 तक निर्यात राशि को 200 अरब डालर तक पहुँचाना है जिसके बाद निर्यातों में 15 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि को लक्ष्य प्राप्ति तक जारी रखना है।
2. शुल्क हकदारी पासबुक योजना को दिसम्बर 2010 तक बढ़ा दिया गया है और निर्यातकों को दिए जाने वाले 2 प्रतिशत ब्याज अनुदान की योजना को भी मार्च 2010 तक बढ़ा दिया गया है। इसके अतिरिक्त ई0सी0जी0सी0 योजना का लाभ भी 2010 तक जारी रखा गया है।
3. निर्यातोन्मुखी और एस0टी0पी0आई0 इकाइयों को आयकर में मिलने वाली छूट को 2010-11 में भी जारी रखा गया है।
4. फोकस बाजार स्कीम के अन्तर्गत 26 नये बाजारों, जिसमें 16 लेटिन अमरीका तथा 10 एशिया ओसेनिया क्षेत्र के हैं; को शामिल किया गया है। इन बाजारों में निर्यात बढ़ाने हेतु निर्यातकों को मिलने वाले एफ0एम0एस0 इन्सेंटिव को बढ़ाकर 3 प्रतिशत कर दिया गया है। साथ ही फोकस प्रोडक्ट इन्सेटिव को 2.4 प्रतिशत कर दिया गया है। उत्तर-पूर्वी राज्यों के बागवानी उत्पादकों को भी फोकस प्रोडक्ट उत्पाद योजना का लाभ मिलेगा।

5. नई व्यापार नीति में जयपुर, अनंतनाग, श्रीनगर, कानपुर, देवास, मलीहाबाद और अंबूर को निर्यात उत्कृष्टता नगर के रूप में मान्यता दी गई है।
6. भारत को हीरे का अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने के उद्देश्य से हीरा एक्सचेंज स्थापित करने की योजना है।
7. शीघ्र नष्ट होने वाले कृषिगत उत्पादों के निर्यात हेतु सिंगल विंडो व्यवस्था की गई है। समुद्री उत्पाद औषधि व हथकरघा क्षेत्र को भी रियायत दी गई है।
8. इस नीति में निर्यातोन्मुख इकाइयों को अपने उत्पादों का 90 प्रतिशत घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति प्रदान की गई है।
9. निर्यातकों की डालर ऋण की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में वित्त सचिव, वाणिज्य सचिव और भारतीय बैंक एसोसिएशन के अध्यक्ष की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया गया है।

नई व्यापार नीति के तहत भारतीय निर्यातों में वर्ष 2011-12 में 20.9 प्रतिशत (डालर मूल्यों में) वृद्धि दर्ज की गई किन्तु अप्रैल 2012 में निर्यातों में मात्र 3.2 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। साथ ही यूरोजोन के वित्तीय संकट के कारण पश्चिमी देशों के बाजारों में मंदी की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। ऐसे समय जून 2012 में पूरक विदेश व्यापार नीति 2012-13 की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य वस्तुगत निर्यातों में 20 प्रतिशत की वृद्धि कर कुल निर्यातों को इस वर्ष 360 अरब डालर तक पहुँचाना था।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनुपूरक नीति में कुछ नीतिगत उपायों की घोषणा की गई। इसके अन्तर्गत निर्यात सम्वर्द्धन पूँजीगत सामान योजना को 2012-13 में भी लागू रखा गया और ब्याज दर पर 2 प्रतिशत वित्तीय सहायता को जारी रखने के साथ इसमें विस्तार कर श्रम आधारित क्षेत्रों को भी सम्मिलित कर लिया गया। इसके अतिरिक्त निर्यातकों को आयात शुल्कों में मिलने वाली रियायतों का इस्तेमाल उत्पाद शुल्क के एवज में करने की छूट इस नीति में पहली बार दी गई।

फोकस बाजार योजना के अन्तर्गत सात नये देशों को और शामिल किया गया है और फोकस उत्पाद योजना को मार्च 2013 तक विस्तारित कर दिया गया है। इसी प्रकार निर्यात विशिष्टता नगरों की श्रेणी में तीन नये शहरों – अहमदाबाद, कोल्हापुर व सहारनपुर को भी सम्मिलित कर लिया गया है। उल्लेखनीय है कि इन नीतिगत उपायों में भारतीय निर्यातों विशेषतया श्रम आधारित क्षेत्र, कपड़ा और इंजीनियरिंग आदि में वृद्धि की सम्भावनायें बढ़ गई हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1) भारतीय रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया है –

(क) चालू खाता

(ख) पूँजी खाता

(ग) उपर्युक्त दोनों

(घ) इनमें से कोई नहीं

2) अगस्त 2004 में घोषित विस्तृत विदेश व्यापार नीति की अवधि थी –

(क) 2004-2005 (ग) 2004-09

(ख) 2004-2007 (घ) 2005-10

3) 'सर्व्ड फ्रॉम इण्डिया योजना' का सम्बन्ध निम्नलिखित में से किससे था?

(क) वस्तुओं के निर्यात (ग) सेवाओं के निर्यात

(ख) पूँजीगत प्रवाह (घ) वस्तुओं के आयात

4) अगस्त 2009 में घोषित विदेश व्यापार नीति के अन्तर्गत निर्यातों को बढ़ाने का लक्ष्य है–

(क) 1.5 गुना (ग) 2.5 गुना

(ख) 2 गुना (घ) इनमें से कोई नहीं

5) विदेश व्यापार नीति 2009-14 में निर्यातोन्मुखी इकाइयों को अपने उत्पादों का कितने प्रतिशत घरेलू बाजार में बेचने की अनुमति थी?

(क) 50 प्रतिशत (ग) 80 प्रतिशत

(ख) 60 प्रतिशत (घ) 90 प्रतिशत

20.4 सुधार काल के दौरान भारत का विदेशी व्यापार

इस भाग के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि सुधार काल में भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति क्या रही है और आयात-निर्यात ढाँचे में क्या परिवर्तन हुए हैं। इसके अतिरिक्त हम भारत के विदेशी व्यापार की दिशा और व्यापार शेष की स्थिति का भी वर्णन करेंगे।

20.4.1 निर्यात-आयात स्थिति

भारत के विदेशी व्यापार का विश्व व्यापार में हिस्सा 1990 में जहाँ लगभग 0.68 प्रतिशत था, वह बढ़कर 2004 में 1.1 प्रतिशत तथा 2009 में 2.0 प्रतिशत तक हो गया है।

तालिका 20.1भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति(मिलियन अमरीकी डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यातों से आयातों का अनुपात
1990-91	18143	24075	– 5932	0.754
1991-92	17865	19411	– 1546	0.920
1992-93	18537	21882	– 3345	0.847
1993-94	22238	23306	– 1068	0.954
1994-95	26330	28654	– 2324	0.919
1995-96	31797	36678	– 4881	0.867
1996-97	33470	39133	– 5663	0.855
1997-98	35006	41484	– 6478	0.844
1998-99	33218	42389	– 9171	0.610
1999-2000	36822	49671	– 12849	0.741
2000-01	44560	50536	– 5976	0.882
2001-02	43827	51413	– 7586	0.852
2002-03	52719	61412	– 8693	0.859
2003-04	63843	78150	– 14307	0.817
2004-05	83535	111516	– 27982	0.749
2005-06	103092	149167	– 46076	0.691
2006-07	126361	185749	– 59388	0.680
2007-08	162904	251439	– 88535	0.648
2008-09	185295	303696	– 118401	0.610
2009-10	178751	288373	– 109622	0.621
2010-11	251100	369800	– 118700	0.680
2011-12	303719	488640	– 184922	0.622

स्रोत: वाणिज्यिक आसूचना एवं सांख्यिकी महानिदेशक, कोलकाता।

इसी प्रकार भारतीय निर्यातों का विश्व व्यापार में हिस्सा 1990 के 0.51 प्रतिशत से बढ़कर 2004 में 0.80 प्रतिशत हो गया है जबकि इसी अवधि में आयातों का विश्व व्यापार में हिस्सा 0.89 प्रतिशत से बढ़कर 1.52 प्रतिशत हो गया है। विश्व व्यापार संगठन की रिपोर्ट 2010 के अनुसार भारत का विश्व में वस्तुगत व्यापार में 1.4 प्रतिशत हिस्से के साथ 120वां स्थान तथा सेवाओं के व्यापार में 3.0 प्रतिशत हिस्से के साथ 10वां स्थान हो गया है। यद्यपि वर्ष 2010 में विश्व वस्तुगत व्यापार में चीन का पहला स्थान तथा सेवाओं के क्षेत्र में अमरीका का शीर्ष स्थान था।

सुधारकाल के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति को तालिका 20.1 के द्वारा व्यक्त किया गया है।

तालिका 20.1 से स्पष्ट है कि भारत के निर्यात 1990-11 में 18143 मिलियन डालर से बढ़कर 2011-12 में 303719 मिलियन डालर हो गए जबकि इसी अवधि में आयात राशि 24075 मिलियन डालर से बढ़कर 488640 मिलियन डालर हो गई। फलस्वरुप व्यापार शेष का घाटा 5932 मिलियन डालर से काफी अधिक बढ़कर 488640 मिलियन डालर हो गया है। यह आँकड़े प्रदर्शित करते हैं कि भारत के विदेशी व्यापार का परिमाण सुधार काल के दौरान तेजी से बढ़ा है किन्तु इसमें निर्यातों की तुलना में आयातों में अधिक वृद्धि हुई है जिससे व्यापार शेष इस अवधि में सदैव प्रतिकूल बना रहा है। निर्यातों का आयातों से अनुपात जो देश के निर्यातों द्वारा आयातों के भुगतान की क्षमता को बताता है, में भी इस अवधि में उतार-चढ़ाव होते रहे हैं। यह अनुपात जहाँ 1993-94 में अपने उच्चतम स्तर (0.954) पर था वहीं वर्ष 2008-09 में निम्नतम स्तर (0.610) पर आ गया था।

इस अवधि में जहाँ तक निर्यात एवं आयात वृद्धि दरों का सम्बन्ध है, इनमें परिवर्तन हुआ है। 1990-91 से 1994-95 की अवधि को छोड़कर आयातों की वृद्धि दर निर्यातों में वृद्धि-दर की तुलना में अधिक रही है। यह तालिका 20.2 से स्पष्ट है।

तालिका 20.2 सुधारकाल में निर्यात, आयात, व्यापार शेष और वृद्धि दर(मिलियन डालर)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	निर्यात वृद्धि दर (प्रतिशत में)	आयात वृद्धि दर (प्रतिशत में)
1990-91 से 1994-95	103114	117328	14215	9.98 (24.66)	7.24 (20.78)
1995-96 से 1999-2000	170313	209355	39042	7.28 (14.28)	12.02 (19.40)
2000-01 से 2004-05	288484	353022	64543	18.32 (19.06)	18.56 (19.00)
2005-06 से 2009-10	756683	1178624	421941	17.02 (18.08)	21.90 (22.90)
2010-11	251100	369800	118700	37.55	21.61
2011-12	303719	488640	184922	20.9	32.1

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

नोट: 1) निर्यात, आयात व व्यापार शेष सम्बन्धी आँकड़े 2010-11 व 2011-12 को छोड़कर पाँच वर्ष की अवधि के योग हैं।

2) कोष्ठक में प्रदर्शित वृद्धि दर रूपये के सन्दर्भ में व्यक्त की गई है।

20.4.2 निर्यात-आयात संरचना

व्यापार सुधार के प्रभावों को भारत के विदेशी व्यापार ढाँचे में परिवर्तन तथा उत्पादन की विविधता व व्यापार के अत्यन्त खुलेपन के रूप में देखा जा सकता है। अब भारत के निर्यातों में प्रौद्योगिकी-

गहन एवं विनिर्मित उत्पादों के साथ, उच्च मूल्यवर्धित कृषिगत उत्पादों की प्रमुखता हो गई है। तालिका 20.3 में भारतीय निर्यातों की संरचना को सुधारकाल के दौरान प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 20.3 भारतीय निर्यातों की संरचना (प्रतिशत में)

उत्पाद /वर्ष	1990- 91	2000-01	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11
1. कृषि एवं सम्बन्धित उत्पाद	19.41	14.04	9.93	9.13	10.0	9.9
1.1 कॉफी	0.78	0.58	0.29	0.27	0.2	0.3
1.2 चाय एवं अन्य सहायक	3.29	0.97	0.31	0.32	0.3	0.3
1.3 तेल बीज	1.87	1.01	1.24	1.21	0.9	0.9
1.4 तम्बाकू	0.81	0.43	0.29	0.41	0.4	0.3
1.5 काजू गिरी	1.37	0.93	0.34	0.35	0.3	0.2
1.6 मसाले	0.73	0.79	0.66	0.74	0.7	0.7
1.7 चीनी व खाँड	0.12	0.25	0.86	0.53		
1.8 कच्ची कपास	2.60	0.11	1.35	0.34	1.1	1.1
1.9 चावल	1.42	1.45	1.79	1.31	1.7	1.3
1.10 मछली व उससे बने पदार्थ	2.95	3.13	1.05	0.83	1.2	1.0
1.11 मांस व उससे बने पदार्थ	0.43	0.72	0.57	0.63		
1.12 फल एवं सब्जी व दालें	0.66	0.79	0.62	0.66	0.7	0.5
1.13 प्रसंस्करित खाद्य व रस आदि	0.65	0.54	0.33	0.37		
2. अयस्क एवं खनिज (कोयले को छोड़कर)	4.60	2.03	5.55	4.17	4.9	4.0
2.1 लौह अयस्क	3.22	0.88	3.56	2.55	3.4	1.9
3. विनिर्मीत वस्तुएँ	72.92	78.95	64.13	66.44	67.4	68.0
3.1 टैक्सटाइल रेशे व विनिर्मीत	20.98	–	–	–	–	–
3.1.1 कपास धागा, रेशे, निर्मित	6.45	7.85	2.85	2.22	2.1	2.2
3.1.2 सिले सिलाए वस्त्र	12.32	12.52	5.94	5.90	6.0	4.5
3.2 नारियल की जटा व विनिर्मीत	0.15	0.11	0.10	0.08	–	–
3.3 जूट विनिर्मीत	0.92	0.46	0.20	0.16	–	–
3.4 चमड़ा व चमड़ा विनिर्मीत	7.89	4.38	2.08	1.87	1.9	1.5
3.5 हस्तशिल्प (हस्तनिर्मित कालीन शामिल)	18.94	2.50	0.88	0.57	0.1	0.1
3.5.1 रत्न व आभूषण	16.12	16.57	12.06	15.09	16.3	14.7
3.6 रासायन व संबन्धित उत्पाद	6.48	11.23	10.65	10.06	6.3	5.5
3.7 मशीनरी, परिवहन, धातु विनिर्मीत (लोहा व इस्पात शामिल)	11.89	15.56	22.82	22.45	15.6	18.1
4 खनिज तेल व स्नेहक(कोयला शामिल)	2.91	4.33	17.80	14.94	16.2	16.8
5. अन्य	–	–	–	–	1.5	1.2

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली व भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिका।

सुधारकाल के दौरान भारतीय निर्यातों में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। एक ओर जहाँ परम्परागत निर्यातों जैसे चाय, कपास, चमड़ा व सिले सिलाय वस्त्रों की भागीदारी में कमी आई है वहीं निर्यातों में गैर परम्परागत वस्तुओं जैसे रासायानों व इंजीनियरिंग वस्तुओं के प्रतिशत हिस्से में

वृद्धि हुई है। विगत वर्षों में इलेक्ट्रानिक्स, सॉफ्टवेयर तथा दस्तकारी का सामान जिसमें रत्न व आभूषण सम्मिलित हैं, के निर्यातों में प्रमुखता रही है। तालिका 20.3 के अध्ययन से स्पष्ट है कि 1990-91 में कृषि व सम्बन्धित उत्पादों का निर्यातों में हिस्सा 19.4 प्रतिशत से घटकर 2010-11 में 9.9 प्रतिशत रह गया है। इसके अतिरिक्त मशीनरी, परिवहन व धातु विनिर्मीत का निर्यात 1990-91 के 11.89 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 22.45 प्रतिशत हो गया है। किन्तु खनिज तेल व स्नेहक (कोयले सहित) का निर्यात उक्त अवधि में 2.91 प्रतिशत से बढ़कर 16.8 प्रतिशत हो गया है। उल्लेखनीय है कि भारत के निर्यातों में इस अवधि में विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा कुछ कमी होने के बावजूद सर्वाधिक बना हुआ है।

इसी प्रकार सुधार काल के दौरान व्यापार उदारीकरण की नीति के अन्तर्गत आवश्यक आयात तथा अन्य आयात के बीच भेद को शिथिल कर दिया गया है जिससे विदेशी विनिमय की स्थिति को सन्तोषजनक बनाए रखा जा सके। इस अवधि के दौरान भारतीय आयातों की संरचना को तालिका 20.4 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 20.4 के अध्ययन से आपको स्पष्ट हुआ होगा कि भारतीय आयातों में पेट्रोलियम उत्पादों का आयात निरन्तर इस अवधि में सर्वाधिक बना हुआ है। इसी प्रकार पूँजीगत वस्तुएँ तथा अन्य निर्यात सम्बन्धित उत्पादों का आयात भी 1990-91 और इसके बाद के वर्षों में महत्वपूर्ण बना रहा है। यद्यपि पूँजीगत वस्तुओं के आयात का प्रतिशत हिस्सा 1990-91 के 24.2 प्रतिशत से घटकर 2010-11 में 13.1 प्रतिशत तथा इस अवधि में लौह व इस्पात का प्रतिशत घटकर 4.89 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत रह गया है। खाद्य पदार्थों का आयात हिस्सा 1990-91 के 0.42 प्रतिशत से घटकर 2008-09 में 0.2 प्रतिशत रह गया किन्तु 2009-10 व 2010-11 में पुनः बढ़कर क्रमशः 3.7 प्रतिशत व 3.9 प्रतिशत हो गया है। उर्वरकों व उर्वरक विनिर्मीत का प्रतिशत हिस्सा 1990-91 के 4.09 प्रतिशत से घटकर 1.9 प्रतिशत हो गया है।

भारतीय आयातों में मोती, बहुमूल्य व अल्पबहुमूल्य रत्नों के आयातों में उतार-चढ़ाव के साथ वृद्धि, इसके प्रतिशत हिस्से में वृद्धि हुई है। यह 1990-91 में 8.65 प्रतिशत से घटकर 2007-08 में 3.17 प्रतिशत रह गया था और पुनः बढ़कर 2010-11 में 9.4 प्रतिशत हो गया है।। वर्ष 2010-11 में पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक के बाद सोने-चाँदी का आयात सर्वाधिक रहा है जो क्रमशः 28.6 प्रतिशत तथा 11.5 प्रतिशत के स्तर पर था। यद्यपि पेट्रोलियम तेल व स्नेहक का आयात 2007-08 में अपने उच्चतम स्तर (31.68 प्रतिशत) पर था जो प्रतिकूल भुगतान संतुलन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार

रहा है जबकि देश के तीव्र आर्थिक विकास हेतु घरेलू माँग की तुलना में उत्पादन न होने के कारण इनका आयात आवश्यक हो जाता है।

तालिका 20.4 भारतीय आयातों की संरचना: 1990-91 से 2010-11 (प्रतिशत में)

उत्पाद /वर्ष	1990-91	2000-01	2007-08	2008-09	2009-10	2010- 11
1.खाद्य पदार्थ एवं सम्बन्धित उत्पाद	0.42	0.04	0.28	0.02	3.7	3.9
2.कच्चा माल एवं मध्यवर्ती विनिर्मीत	59.25	53.37	54.56	57.54	–	–
2.1 काजू (अप्रसंस्करित)	0.31	0.42	0.17	0.19	0.2	0.2
2.2 कच्ची रबड़	0.52	0.30	0.31	0.28	–	–
2.3.1 कृत्रिम एवं पुनर्सृजित रेशे	0.13	0.12	0.05	0.05	–	–
2.3.2 कच्ची ऊन	0.42	0.20	0.11	0.07	–	–
2.3.3 कच्ची कपास	–	0.51	0.09	0.12	–	–
2.3.4 कच्ची जूट	0.05	0.04	0.02	–	–	–
2.4पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक	25.04	30.97	31.68	30.07	30.1	28.6
2.5.1 खाद्य तेल	0.76	2.64	1.02	1.13	1.9	1.8
2.6.1 उर्वरक एवं उर्वरक विनिर्मीत	4.09	1.31	2.01	4.27	2.3	1.9
2.6.2 रासायनिक पदार्थ, मिश्रण	5.30	0.67	0.65	0.69	5.2	5.2
2.6.3 रंगना, टैनिंग व रंगने का सामान	0.39	0.38	0.30	0.27	–	–
2.6.4 चिकित्सा, भेषज	1.08	0.75	0.67	0.62	–	–
2.6.5 प्लास्टिक सामान	2.53	1.10	1.47	1.30	–	–
2.7 कागज एवं लुग्दी	1.06	0.56	0.31	0.26	–	–
2.8 कागज, कागज बोर्ड, अन्य विनिर्मीत	1.06	0.87	0.57	0.58	0.5	0.6
2.9 अधात्वीय विनिर्मीत	–	0.34	–	–	–	–
2.9.1 मोती, बहुमूल्य व अल्प बहुमूल्य रत्न	8.65	9.57	3.17	5.45	5.6	9.4
2.10 लोहा व इस्पात	4.89	1.55	3.46	3.12	2.9	2.8
2.11 अलौह धातुएँ	2.55	1.07	8.50	9.07	1.0	1.1
3. पूँजीगत वस्तुएँ	24.23	10.95	19.03	15.50	15.0	13.1
3.1 धातु विनिर्मित वस्तुएँ	0.70	0.77	1.06	1.07	10.3*	11.5*
3.2 गैरइलेक्ट्रानिक मशीनरी, उपकरण, सामग्री	9.82	7.33	8.77	7.82	7.4	6.4
3.3 बिजली सम्बन्धी वस्तुएँ व व्यावसायिक उपकरण	3.94	0.96	1.20	1.21	2.4	2.1
3.4 परिवहन उपस्कर	3.87	1.89	8.0	4.35	4.1	3.1
3.5 परियोजना वस्तुएँ	–	–	–	–	1.6	1.7
4.1 कोयला	–	–	–	–	3.1	2.7
4.2 इलेक्ट्रानिक सामान	–	–	–	–	7.3	7.2

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली व भारतीय रिजर्व बैंक हस्तपुस्तिका। नोटः * सोना व चांदी का आयात

20.4.3 विदेशी व्यापार की दिशा

विदेश व्यापार नीति में उदारीकरण के बाद भारत का विदेशी व्यापार परम्परागत कुछ देशों की तुलना में अन्य देशों के साथ भी बढ़ा है। अब भारतीय आयात-निर्यात कुछ यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमरीका तक ही न सीमित होकर एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में विस्तृत हो गए हैं। भारत संभावित देशों के साथ अपने विदेशी व्यापार को बढ़ाने हेतु द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौतों तथा क्षेत्रीय व्यापार व्यवस्थाओं के द्वारा निरन्तर प्रयास कर रहा है। तालिका 20.5 में भारतीय निर्यातों की दिशा को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 20.5भारतीय निर्यातों की दिशाः 1990-91 से 2010-11(प्रतिशत हिस्सा)

देश/संगठन	1990-91	2000-01	2006-07	2007-08	2009-10	2010-11
यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन	53.5	52.7	44.0	41.3	–	–
यूरोपीय संघ	27.5	22.7	21.3	21.2	18.7	17.5
संयुक्त ब्रिटेन	6.5	5.2	4.4	4.1	2.9	2.8
जर्मनी	7.8	4.3	3.2	3.1	2.7	2.7
फ्रांस	2.4	2.3	1.7	1.6	2.0	1.3
बेल्जियम	3.9	3.3	2.8	2.4	2.5	2.5
नीदरलैण्ड	2.0	2.0	2.1	3.2	3.1	3.1
इटली	–	–	2.9	2.6	1.8	1.7
स्वीडन	–	–	–	1.6	0.2	0.3
संयुक्त राज्य अमरीका	11.1	20.9	14.9	12.7	10.2	11.3
कनाडा	0.9	1.5	0.9	0.8	0.5	0.6
आस्ट्रेलिया	1.4	0.9	0.2	0.7	0.7	0.7
जापान	8.9	4.0	2.2	2.4	2.1	1.8
रूस	18.3	2.0	0.7	0.6	0.6	0.6
ईरान	1.8	0.5	1.2	1.2	1.1	0.9
कुवैत	–	0.4	0.5	0.4	0.8	0.4
साऊदी अरब	–	1.8	2.0	2.3	2.1	2.0
सिंगापुर	–	–	4.8	4.5	4.1	6.2
मलेशिया	–	–	–	2.4	1.6	1.2
इंडोनेशिया	–	–	–	1.9	2.5	2.3
चीन	–	–	6.6	6.6	7.8	5.2
रिपब्लिक कोरिया	–	–	2.0	1.8	1.6	1.5
संयुक्त अरब अमीरात	–	–	9.5	9.6	13.7	11.9
हांगकांग	–	–	3.7	3.9	4.1	4.5

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, विभिन्न वर्ष।

तालिका 20.5 से स्पष्ट है कि 1990-91 के बाद यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन को किया जाने वाला भारतीय निर्यात 2007-08 में घटकर 41.3 प्रतिशत रह गया है। इसी प्रकार यूरोपीय संघ को

किया जाने वाला निर्यात घटकर 2010-11 में 17.5 प्रतिशत हो गया है। संयुक्त राज्य अमरीका को किए जाने वाले भारतीय निर्यातों में भी कमी आई है और यह 2000-01 के अपने उच्चतम स्तर 20.9 प्रतिशत से कम होकर 2010-11 में 11.3 प्रतिशत रह गए हैं। दूसरी ओर विकासशील देशों जैसे चीन, हांगकांग, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, नाइजीरिया, टर्की इत्यादि देशों को भारतीय निर्यातों में वृद्धि हुई है। पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में भारतीय निर्यात में वृद्धि का कारण जापान तथा आसियान (**ASEAN**) राष्ट्रों में विकास दर अच्छी रहने के कारण माँग का ऊँचा बना रहना रहा है जबकि यूरोपीय राष्ट्रों में माँग शिथिल रहने के कारण निर्यात का प्रतिशत कम रहा है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2010-11 में अमरीका भारत के निर्यातों का अकेला सबसे बड़ा खरीददार रहा था।

तालिका 20.6भारतीय आयातों की दिशाः 1990-91 से 2010-11 (प्रतिशत हिस्सा)

देश/संगठन	1990-91	2000-01	2006-07	2007-08	2009-10	2010-11
यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन	54.0	39.9	40.0	38.5	–	–
यूरोपीय संघ	29.4	39.9	40.0	38.5	12.0	11.6
संयुक्त ब्रिटेन	6.7	6.3	2.2	2.0	1.5	1.6
जर्मनी	8.0	3.5	6.7	3.9	3.2	3.3
फ्रांस	3.0	1.3	2.2	2.5	1.0	0.8
बेल्जियम	6.3	5.7	2.2	1.7	2.3	1.6
नीदरलैण्ड	1.8	0.9	0.6	0.8	0.5	0.5
इटली	–	–	1.4	1.6	1.2	1.2
स्वीडन	–	–	1.0	0.8	0.4	0.5
स्विट्जरलैण्ड	–	–	4.8	3.9	6.7	6.6
संयुक्त राज्य अमरीका	12.1	6.0	6.6	8.4	5.4	4.7
कनाडा	1.3	0.8	0.8	0.8	0.5	0.4
आस्ट्रेलिया	3.4	2.1	3.6	3.1	2.9	3.0
जापान	7.5	3.6	2.4	2.5	2.3	2.4
रूस	5.9	1.0	1.1	1.0	1.0	0.8
ईरान	2.4	0.4	0.4	4.3	3.0	2.2
कुवैत	0.8	0.2	3.1	3.1	2.8	2.8
सऊदी अरब	6.7	1.2	7.0	5.4	5.5	6.0
नाइजीरिया	–	–	3.7	3.0	2.9	3.4
दक्षिण अफ्रीका	–	–	1.3	1.4	1.9	2.2
सिंगापुर	–	–	2.9	3.2	1.9	2.0
मलेशिया	–	–	2.8	2.4	1.8	2.0
इंडोनेशिया	–	–	2.2	1.9	2.7	3.1
चीन	–	–	9.1	10.8	11.8	11.8
संयुक्त अरब अमीरात	–	–	4.5	7.7	8.9	7.5

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार, नई दिल्ली।

तालिका 20.6 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1990-91 में भारतीय आयातों में यूरोपीय सहयोग एवं विकास संगठन तथा यूरोपीय संघ का हिस्सा सर्वाधिक था जो बाद में कम हो गया है जबकि तेल निर्यातक देशों के संगठन का हिस्सा बढ़ा है। इसी प्रकार संयुक्त ब्रिटेन सहित लगभग अन्य यूरोपीय देशों से भी भारत के आयात प्रतिशत में कमी आई है। यद्यपि स्विटजरलैण्ड का भारतीय आयातों में हिस्सा वर्ष 2006-07 के 4.8 प्रतिशत से बढ़कर 2010-11 में 6.6 प्रतिशत हो गया है। इसके अतिरिक्त संयुक्त अरब अमीरात, इंडोनेशिया व सऊदी अरब से भारत के आयातों के हिस्से में भी वृद्धि हुई है। उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों से भारतीय आयातों में चीन का विगत वर्षों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

अभ्यास प्रश्न 2

1) भारत के विदेशी व्यापार का 2009 में विश्व व्यापार में हिस्सा था –

(क) 0.6 प्रतिशत (ग) 1.5 प्रतिशत

(ख) 1.0 प्रतिशत (घ) 2.0 प्रतिशत

2) विश्व व्यापार संगठन की रिपोर्ट (2010) के अनुसार भारत का सेवाओं के व्यापार में कौन सा स्थान है?

(क) द्वितीय स्थान (ग) दसवाँ स्थान

(ख) पाँचवा स्थान (घ) बीसवाँ स्थान

3) वर्ष 2008-09 में निर्यातों का आयातों से अनुपात था –

(क) 0.61 (ग) 0.84

(ख)0.75 (घ) 0.92

4) भारतीय निर्यातों में वर्ष 2010-11 में विनिर्मित वस्तुओं का प्रतिशत हिस्सा था –

(क) 50 प्रतिशत (ग) 68 प्रतिशत

(ख) 60 प्रतिशत (घ) 72 प्रतिशत

5) भारतीय आयातों में वर्ष 2010-11 में पेट्रोलियम, तेल व स्नेहक का क्या हिस्सा था–

(क) 25.4 प्रतिशत (ग) 30.1 प्रतिशत

(ख) 28.6 प्रतिशत (घ) 31.5 प्रतिशत

6) भारतीय निर्यातों में रूस का हिस्सा 1990-91 के 18.3 प्रतिशत से घटकर कितना रह गया है?

(क) 10 प्रतिशत (ग) 2 प्रतिशत

(ख) 5 प्रतिशत (घ) 0.6 प्रतिशत

7) वर्ष 2010-11 में भारतीय आयातों में सर्वाधिक हिस्सा किस देश का था?

(क) संयुक्त राज्य अमरीका (ग) चीन

(ख) संयुक्त अरब अमीरात (घ) सऊदी अरब

20.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप परिचित हो गए होंगे कि भारत की विदेश व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य विकास की उच्च दर को प्राप्त करना तथा देश में गरीबी को दूर करना है। भारत में चूँकि आरम्भिक दशकों में प्रतिबंधात्मक व्यापार नीति को अपनाया गया था जिससे उत्पादन में धीमी वृद्धि के साथ विश्व व्यापार में भारत के हिस्से में कमी आई थी। अतः यह अनुभव किया जाने लगा कि इन संरक्षणवादी नीतियों के क्रियान्वयन से देश में औद्योगिक अकुशलता पनप रही है और विकास की प्रक्रिया अत्यंत मंद है। अतः 1991 के आर्थिक संकट तथा चीन व अन्य पूर्वी एशियाई देशों द्वारा अपनी अर्थव्यवस्थाओं में उदारीकरण एवं निर्यातोन्मुखी विकास कार्यनीति को अपनाकर की गई प्रगति ने भारत में भी आधारभूत नीतिगत सुधार उपायों को शुरू करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरुप 1991 की नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक क्षेत्रों, विशेषतया व्यापार क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार शुरू किए गए। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के कोटा को समाप्त करने के साथ प्रशुल्कों को धीरे-धीरे कम किया गया है। विदेशी व्यापार में स्थायित्व एवं प्रगति बनाए रखने के लिए वार्षिक निर्यात-आयात नीति के स्थान पर पाँच वर्षीय विदेशी व्यापार नीति को लागू किया गया। फलस्वरुप सुधार काल के दौरान भारत में तीव्र विकास के साथ अर्थव्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन हुए। इस अवधि में भारत के विदेशी व्यापार का हिस्सा 1990 के 0.68 प्रतिशत से बढ़कर 2009 में लगभग 2.0 प्रतिशत हो गया है। इसके अतिरिक्त, भारत के निर्यातों एवं आयातों की संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। साथ ही भारत के विदेशी व्यापार की दिशा में भी परिवर्तन हुए हैं और अब यह एशियाई एवं अफ्रीकी विकासशील देशों के साथ अधिक है।

20.6 शब्दावली

1. व्यापार नीति – यह वह नीति है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रभावित करती है। इसमें विशेषतया प्रशुल्क एवं गैर प्रशुल्क बाधाओं को सम्मिलित किया जाता है।

2. विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र – भारत में सरकार द्वारा निर्यातों में वृद्धि हेतु स्थापित क्षेत्र जिसमें उत्पादों को अनेक छूट व सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।
3. फोकस प्रोडक्ट – ऐसे निर्यात उत्पाद जिनके निर्यात को बढ़ाने हेतु सरकारी योजना द्वारा प्रयास किया जा रहा है।
4. आयात कोटा – किसी वस्तु के आयात पर लगाई गई मात्रात्मक सीमा जिससे अधिक उस वस्तु का आयात नहीं किया जा सकता।
5. अदृश्य व्यापार – सेवाओं जैसे – बीमा, बैंक, जहाजरानी आदि के व्यापार को अदृश्य व्यापार कहा जाता है।
6. खुली अर्थ व्यवस्था – ऐसी अर्थ व्यवस्था जिसमें दूसरे देशों के साथ विदेशी व्यापार स्वतंत्र होता है और विदेशी व्यापार में किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नहीं होता है।

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर अभ्यास प्रश्न 1

1) (क) चालूखाता 2) (ग) 2004-09 3) (ग) सेवाओं के निर्यात

4) (ख) 2 गुना 5) (घ) 90 प्रतिशत

उत्तर अभ्यास प्रश्न 2

1) (घ) 2.0 प्रतिशत 2) (ग) दसवाँ स्थान 3) (क) 0.61

4) (ग) 68 प्रतिशत 5) (ख) 28.6 प्रतिशत 6) (घ) 0.6 प्रतिशत

7) (ग) चीन

20.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. झिंगन, एम.एल. (2011). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र” षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
2. अग्रवाल एवं बरला (2008). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र”लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). “अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र”विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।
4. Government of India, ‘The Economic Survey’, New Delhi (various years).

20.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Bhagwati, J.N. (1993). Indian Economy. The Shackled Giant, Clarendon Press.
2. Joshi, V. and I.M.D. Little (1994), India : Macroeconomics and Political Economy 1964-1990, Oxford University Press, New Delhi.
3. Kenen, Peter B. (1994). The International Economy, 3rd ed., Cambridge University Press.

20.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1990 के बाद की भारतीय व्यापार नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. भारतीय व्यापार नीति में 1990 के पश्चात् किए गए सुधारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. सुधारकाल के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्ति तथा दिशा का वर्णन कीजिए।
4. भारत के विदेशी व्यापार की संरचना में हाल में हुए परिवर्तनों की समीक्षा कीजिए।
5. भारत के आयात एवं निर्यात में सम्मिलित प्रमुख वस्तुओं का विवरण दीजिए।
6. भारत की विदेश व्यापार नीति 2009-2014 पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई–21 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

इकाई संरचना

21.1 प्रस्तावना

21.2 उद्देश्य

21.3 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय

21.3.1 अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादक का उद्देश्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

21.3.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता

21.4 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं

21.4.1 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

21.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में विश्व व्यापार की विशेषताऐं

21.5 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ की स्थिति

21.6 सारांश

21.7 शब्दावली

21.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

21.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

21.10 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ सूची

21.11 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान खण्ड की यह इक्कीसवीं इकाई वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर आधारित की गयी है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय व्यपार को बाजार की एक विशेष श्रेणी तक ही सीमित किया गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता सामान्य बाजार व्यवस्था का एक भाग है जो पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के बीच कार्यशील रहती है।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के आशय को स्पष्ट करने के साथ–साथ इस स्थिति में उत्पादक या विक्रेता के उद्देश्यों को भी स्पष्ट किया गया और अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार की क्या आवश्यकता है? इसे बताते हुए बाजार की विभिन्न दशाओं के अन्तर्गत होने वाले विदेशी व्यापार का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ बाजार की इस अवस्था के अन्तर्गत लाभों की स्थिति को भी समझाने का प्रयास किया गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता में विदेशी व्यापार की विशेषताओं के बारे में जानकारी दी गयी है।

प्रस्तुत इकाई को भली भांति समझाने के लिए अनेक भागों एवं उपभागों के अन्तर्गत वर्गीकरण का सहारा लिया गया है क्योंकि इकाई की विषयवस्तु का क्षेत्र अत्यन्त जटिल है। विदेशी व्यापार के लगातार विस्तार तथा बदलती दिशाओं के साथ व्यापार की वास्तविक स्थिति को समझना अत्यन्त आवश्यक है ताकि सरकार एवं व्यापारी उचित निर्णय इस दिशा में ले सकें।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि –

1. वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार क्यों किया जाता है तथा विदेशी व्यापार क्यों किया जाता है तथा विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं किस प्रकार लागू होती हैं?
2. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा लाभ की किस सीमा तक लाया जा सकता है? इसके द्वारा विक्रेता तथा उपभोक्ता दोनों वर्गों के लाभों के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शक्तियां किस प्रकार कार्य करती हैं?

3. बाजार की शक्तियां अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किस सीमा तक अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक नहीं कर सकती हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था के विकास में अपूर्ण प्रतियोगी बाजार किस हद तक उपयोगी सिद्ध होगा।
4. अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विश्व व्यापार की नवीनतम विशेषताऐं क्या हैं? इसका भी अध्ययन इस इकाई में शामिल किया गया है।

21.3 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता का आशय

आपने शायद वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की हो। सामान्य रूप से वस्तु बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना ही की जा सकती है। वास्तविकता के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति का पाया जाना अत्यन्त कठिन है। ठीक यही स्थिति एकाधिकार के संदर्भ में पायी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में आपने देखा होगा कि विश्व स्तर पर सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओं की अपनी अलग–अलग विशेषताऐं पायी जाती है जिनका एक दूसरे के साथ पूर्ण एकरूपता स्थापित किया जाना संभव नहीं है। इसीलिए सभी देशों में उत्पादन की मात्रा, तकनीकी तथा उत्पादन पर अधिकार एवं गुणवत्ता आदि में पर्याप्त समानता स्थापित नहीं हो पाती है। विश्व व्यापार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने के कारण पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की स्थितियों का उत्पन्न होना संभव नहीं है।

इसी संदर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार की स्थिति के मध्य एक अन्य बाजार विकसति होता है जिसे अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के रूप में जाना जाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति बाजार में उस समय पायी जाती है जब पूर्ण प्रतियोगिता की कोई दशा पूरी नहीं हो रही होती है। अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता के किसी भी तत्त्व की अनुपस्थिति में अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।

प्रो० लर्नर के अनुसार – ''अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार में उस समय पायी जाती है जब कि विक्रेता अपनी वस्तु के लिए एक गिरती हुई मांग रेखा का सामना करना पड़ता है।''

आपको यहां पर एक महत्वपूर्ण पक्ष पर भी ध्यान दिलाना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगिता के साथ–साथ एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का भी उल्लेख मिलता है। कहीं–कहीं पर एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के लिए ही अपूर्ण प्रतियोगिता शब्द का प्रयोग

कर लिया जाता है लेकिन वास्तव में दोनों प्रतियोगी बाजारों में बाजार की दशाओं के आधार पर अन्तर किया जाता है जिससे पाठकों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

यहां पर अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत विदेशी व्यापार का अध्ययन कर रहे हैं। इसीलिए यहां पर किसी बारीक तथा महत्वपूर्ण तथ्य को भुलाना उचित नहीं होगा। इसीलिए एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का अर्थ भी आपको समझना आवश्यक होगा।

सामान्य रूप से भी एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार के मध्य की स्थिति पायी जाती है। कुछ विद्वानों ने एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को अपूर्ण प्रतियोगिता की एक अवस्था बताया है। अमेरिका के हार्वर्ड विश्व विद्यालय के प्रो० ई0एच0 चैम्बरलिन ने इस एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कभी–कभी एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को समूह संतुलन के नाम से भी अध्ययन में शामिल किया जाता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती है तथा अपनी कीमत उत्पादन नीति का स्वयं ही निर्माण करती है। प्रत्येक फर्म अपने मांग अनुमानों एवं लागत अनुसूचियों के आधार पर ही अपनी कीमत उत्पादन नीति का निर्धारण करती है। यह मानते हुए कि अन्य फर्मों के उत्पादन की कीमतें दी हुई हैं, प्रत्येक फर्म की वस्तु का अपना निश्चित मांग वक्र होता है।

21.3.1 अपूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादक का उद्देश्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

जिस प्रकार से एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करना चाहता है उसी प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत भी एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम् करना चाहती है। ठीक इसी प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम् करना चाहता है।

आपको यहाँ पर यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अभी पूर्ण प्रतियोगिता नहीं है और जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न देशों की नीतियां एवं जनता की आवश्यकताओं के आधार पर एक देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पूर्ण प्रतियोगिता की कुछ दशाओं को पूरा नहीं कर पाता है। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक उत्पादक अपनी फर्म का संतुलन उस विन्दु पर करता है जहां पर वह उत्पादन में और अधिक वृद्धि या सुधार नहीं कर सकता। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अधिकतम् विन्दु पर ले जाने के लिए बाजार में मांग भी खोजनी होती है। इसी प्रकार अन्य फर्में भी अपने उत्पादन को अधिकतम् करना चाहती हैं। विश्व व्यापार में मांग को सृजित करने के लिए जो उपाय

किये जाते हैं उनके द्वारा ही बाजार अपूर्ण होता है। निकट प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन करके फर्म अपने सन्तुलन की ओर अग्रसर होती है तथा अधिकतम् लाभ तक पहुँच सकती है।

आपको यहां पर यह बताना भी अत्यन्त आवश्यक है कि अधिकतम् लाभ के उद्देश्यों को अपूर्ण प्रतियोगिता में दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। अपने उत्पाद को बाजार में अपेक्षाकृत श्रेष्ठ प्रदर्शित करके अधिक कीमत वसूल की जाय या अपने उत्पादन में गुणवत्ता पैदा करके अधिकतम् विक्री कर ली जाय। इस बाजार में स्थानापन्न वस्तुओं की अलग–अलग कीमतें वसूली जाती हैं इसीलिए दोनों प्रकार से अधिकतम् लाभ प्राप्त करने के लिए फर्म स्वतंत्र होती है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया से अपूर्ण प्रतियोगिता को और बल दिया गया है। फर्मों को अधिकतम् विक्री एवं अधिक कीमत वसूलने के लिए नवीन बाजारों की खोज के लिए भौगोलिक तथा राजनैतिक सीमाओं की बाधाओं में नहीं रहना होता। इसके साथ सूचना तकनीकी की प्रगति के कारण विज्ञापन आदि के द्वारा भी इस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

आपको यहां पर यह भी बता दें कि वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उद्देश्य अधिकतम् लाभ के साथ फर्मों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक विस्तृत करना भी बनता जा रहा है। एकाधिकार तथा पूर्ण प्रतियोगिता के दुष्परिणामों से बचने के लिए भी व्यापार के सहयोगी राष्ट्रों द्वारा अपने यहां पर प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ किया जाता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों एवं विदेशों द्वारा उत्पादित माल की मांग कम हो जाती है। जिसका प्रभाव उस वस्तु की कीमत पर भी प्रतिकूल रूप में पड़ता है।

21.3.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता का सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनायी जाने वाली बाजार व्यवस्था से है। आपको यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था प्रणाली के अन्तर्गत किसी उत्पादन का एकाधिकार बनना न तो आसान है और न ही व्यापार विस्तार की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है। इसीलिए विदेशी व्यापार के उद्देश्य पूर्ति एवं देशों के लिए आवश्यक व्यापार विस्तार के लिए अपूर्ण प्रतियोगिता एक आवश्यक स्थिति है। इस सम्बन्ध में और अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए एडम स्मिथ के निम्न कथन पर ध्यान देना अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा।

एडम स्मिथ के अनुसार – ''विदेशी व्यापार किन्हीं भी दो स्थानों के मध्य हो, इससे दो लाभ अवश्य प्राप्त होते हैं। प्रथम तो जिस वस्तु की एक स्थान पर मांग नहीं है उसके स्थानान्तरण के बदले में विदेशी व्यापार के माध्यम से वह वस्तु प्राप्त होती है जिसकी वहां मांग है। एक स्थान पर लोगों के पास जो वस्तुऐं आवश्यकता से अधिक हैं, विदेशी व्यापार से उनका भी मूल्य प्राप्त हो जाता है तथा बदले में प्राप्त वस्तुओं के उपभोग से लोगों की आवश्यकताओं के एक अंश की पूर्ति होने के फलस्वरूप उनकी कुल संतुष्टि में वृद्धि होती है। विदेशी व्यापार के माध्यम से घरेलू बाजार की सीमितता किसी वस्तु विशेष के क्षेत्र में श्रम विभाजन को अवरूद्ध नहीं कर पाती। लोग अपने श्रम द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, घरेलू उपभोग के पश्चात् शेष माल के लिए अधिक विस्तृत बाजार की उपलब्धि द्वारा विदेशी व्यापार देश की उत्पादक शक्तियों में वृद्धि करने की प्रेरणा देता है तथा उत्पादन में अधिकतम् सीमा तक वृद्धि करने की प्रेरणा प्रदान करके देश की वास्तविक आय में वृद्धि करता है।'' अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं की स्थिति के अन्तर्गत वस्तुओं की आकृति, रंग, रूप तथा विशेषताओं में अन्तर के कारण कीमतों में अन्तर आना स्वाभाविक हो जाता है। इसी सन्दर्भ में प्रो० हैरोड का यह कथन आपके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो० हैरोड के अनुसार – ''एक देश को विदेशी व्यापार से उस समय लाभ प्राप्त होता है जबकि उस देश के व्यापारियों को यह मालूम हो कि विदेशों में मूल्य अनुपात उनके देश में प्रचलित मूल्य अनुपात में मूल्य अनुपात की तुलना में बहुत अधिक मिलता है। ऐसे समय में जो वस्तुऐं उन्हें सस्ती प्रतीत होती हैं उन्हें खरीदते हैं तथा जो वस्तुऐं महँगी मालूम होती हैं उन्हें बेचते हैं। इस प्रकार उनको ज्ञात हुए निम्नतम् एवं उच्चतम् विन्दुओं में जितना अधिक अन्तर होता है तथा उन वस्तुओं का महत्व जितना अधिक होगा उतना ही अधिक व्यापार से लाभ प्राप्त होगा।''

उक्त कथन पर ध्यान दें तो आपको स्पष्ट होगा कि कीमत, अन्तर, सस्ती–महंगी वस्तुऐं, कम व अधिक महत्व की वस्तुओं का सम्बन्ध सामान्य रूप से अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं को पैदा करता है जो पूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार के अन्तर्गत देशों को मौद्रिक तथा गैर–मौद्रिक दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में मौद्रिक लाभों में कमी तथा एकाधिकार में गैर–मौद्रिक लाभों में कमी पायी जाती है जो विदेशी व्यापार के लिए अत्यधिक अनुकूल नहीं हैं।

21.4 वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं

वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की निम्नलिखित दशाऐं पायी जाती हैं।

1. **क्रेता एवं विक्रेता की कम संख्या** :– यदि आपने पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं का इससे पूर्व अध्ययन किया हो तो यहां पर यह कहा जाता है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा कम पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता के कारण क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या अलग–अलग वस्तुओं के आधार पर विभोजित हो जाती है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या समान हो। क्रेता एवं विक्रेताओं की संख्या आपस में कम या अधिक हो सकती है।
2. **निकट की स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता** :– अपूर्ण प्रतियोगिता की दूसरी दशा के अन्तर्गत निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता का क्रय–विक्रय अलग–अलग कीमतों पर किया जाता है। कभी–कभी एक ही किस्म की वस्तुओं में दिखावटी अन्तर पैदा कर लिया जाता है तथा कुछ वस्तुओं के लिए ऊँची कीमत वसूल ली जाती है। यह अन्तर वस्तुओं का अलग–अलग तरीके से प्रचार एवं विज्ञापन करके भी किया जाता है जिससे उपभोक्ताओं को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया जाता है। ग्राहकों को साख सुविधाऐं तथा अन्य प्रलोभन देकर भी निकट की स्थानापन्न वस्तुऐं बना दिया जाता है। फलस्वरूप बाजार में गैर–कीमत प्रतियोगिता पैदा होती है।
3. **ऊँचा यातायात व्यय** :– ऊँचा यातायात व्यय भी अपूर्ण प्रतियोगिता की एक आवश्यक शर्त है। वस्तुओं को अलग–अलग किस्म का बनाकर अलग–अलग कीमत वसूलने के लिए एक विक्रय केन्द्र से दूसरे विक्रय केन्द्र तक ले जाने के लिए यातायात व्यय बढ़ जाता है। कम उत्पादकों या विक्रेताओं की संख्या के कारण भी वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओं के अनरूप नहीं हो पाता। स्थानीय उपलब्धता के कारण भी यातायात व्यय ऊँचा हो जाता है।
4. **क्रेता एवं विक्रेता का सीमित ज्ञान** :– वस्तु व्यापार में अनेक प्रकार की कठिनाईयों के कारण क्रेता वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता है। सामान्य रूप से परम्परागत रूप से भी वस्तुओं का क्रय किया जाता है। फैशन तथा दिखावा के कारण भी उपभोक्ता बाजार के बारे में अधिक ज्ञान नहीं रख पाता है।

अशिक्षा, अज्ञानता, गरीबी तथा अन्य कारणों से भी क्रेता सामान्य रूप से ही वस्तुओं को खरीदता है तथा उसका उपभोग करता है। बाजार की जानकारी प्राप्त करने के प्रयास में भी विक्रेताओं द्वारा ग्राहकों को पूर्ण जानकारी नहीं दी जाती है जिससे वे अपनी वस्तु का अधिक विक्रय कर सके। सामान्य रूप से निकट स्थानापन्न वस्तुओं की स्थिति में प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु को श्रेष्ठतम् रूप में प्रस्तुत करके बेचना चाहता है।

21.4.1 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

इससे पूर्व में आपने अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं का अध्ययन किया जिसके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय से सम्बन्धित अनेक पक्षों के बारे में विश्लेषण कर सकेंगे। अपूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम दशा के अन्तर्गत क्रेता एवं विक्रेता की संख्या कम पायी जाती है। आपने ध्यान दिया होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वाली वस्तुओं के उपभोक्ताओं की संख्या तो अत्यधिक होती है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय सामान्यरूप से सीधे उपभोक्ताओं द्वारा न होकर सरकार, सरकारी प्राधिकरण एवं निजी कम्पनियों आदि द्वारा किया जाता है। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत होता है लेकिन अर्थशास्त्र में एक वस्तु का एक बाजार होता है इसीलिए एक वस्तु का बाजार शायद आपकी संकल्पना से कहीं कम विस्तृत होता है। इसी आधार पर अपूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम अवस्था अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बिल्कुल सही पायी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सीधे उपभोक्ताओं एवं सामान्य क्रेता–विक्रेताओं में गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। इसीलिए भी वस्तु बाजार में क्रेता एवं विक्रेताओं की कमी पायी जाती है। इसके साथ अनेक प्रकार की अन्य सरकारी तथा गैर सरकारी बाधाओं के कारण भी प्रथम स्तर की दशा उत्पन्न हो जाती है।

द्वितीय दशा वस्तु बाजार में निकट स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता पायी जाती है। द्वितीय दशा के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार पर दृष्टि डालें तो यह पाया जाता है कि नवीन तकनीकी तथा सरकारी नीतियों एवं आवश्यकताओं के कारण समान वस्तुओं का उत्पादन करना संभव तो है लेकिन देशों के लिए आवश्यक नहीं है।

विभिन्न देशों के उत्पादन के सम्बन्ध में बौद्धिक सम्पदा का अधिकार तथा कापी राइट आदि के चलते भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की सभी शर्तों को लागू नहीं किया जा सकता है। शायद आपको ध्यान हो कि पूर्ण प्रतियोगिता की किस शर्त की

अनुपस्थिति में ही अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है। एकाधिकार सम्बन्धी अनेक समस्याओं एवं पिछड़े तथा विकासशील देशों के प्रति शोषण की नीति के चलते भी निकट स्थानापन्न वस्तुओं की खोज एवं उपलब्धता भी अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए आधार प्रदान करती है। अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार का क्षेत्र अधिक बड़ा होने के कारण किसी संस्था द्वारा वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल संभव नहीं है। विश्व के देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य भौगोलिक अन्तरों के कारण समान वस्तुओं से आवश्यकता पूर्ति नहीं की जा सकती। अतः किसी विदेशी व्यापार में अपनी सहभागिता को बढ़ाने के उद्देश्य से निकट स्थानापन्न वस्तुओं की पूर्ति भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर की जाती है जिससे अपूर्ण प्रतियोगिता की द्वितीय शर्त पूरी की जाती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की तीसरी शर्त के सम्बन्ध में भी पूर्ण समानता पायी जाती है। ऊँचा–याता व्यय तीसरी शर्त को इंगित करती है। ऊँचा–याता व्यय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में एक सामान्य सत्य है। देशों के आकारा में अन्तर तथा देशों की आपसी भौगोलिक दूरी में अन्तर कारण यातायात व्यय में काफी अन्तर आता है। इसके साथ यह भी सत्य काफी सार्थक है कि देशों के अन्तर्गत यातायात के साधनों को भी अलग–अलग व्यवस्थाऐं हैं। परिवहन मार्गों की स्थिति भी यातायात व्यय को ऊँचा बनाता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता की चौथी दशा क्रेता एवं विक्रेता का सीमित ज्ञान है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्रेता एवं विक्रेता एक समझौता विशेष के अन्तर्गत ही व्यापार करते हैं। सामान्य बाजार की तरह मोल भाव या स्थानीय स्तर पर उपलब्धता संभव नहीं है। देशों के मध्य आपसी सहयोग एवं मित्रता तथा पारस्परिक वैमनस्य राजनैतिक द्वन्दता के कारण वस्तु बाजार की पूर्ण जानकारी हो पाना अत्यधिक कठिन है। वहीं विदेशी व्यापार में वस्तुओं की सुलभ उपलब्धता तथा उपभोक्ताओं की रूचि एवं आकर्षण भी बाजार के पूर्ण ज्ञान को सीमित करता है।

इस आधार पर शायद आपको यह भली–भांति समझ में आ गया हो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में न तो पूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है और न ही एकाधिकार की स्थिति पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत ही विदेशी व्यापार का क्रियान्वयन एवं विस्तार हो रहा है।

21.4.2 अपूर्ण प्रतियोगिता में विश्व व्यापार की विशेषताऐं

आपने अपूर्ण प्रतियोगिता वाले वस्तु बाजार के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित अनेक पक्षों के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली होगी। इसी क्रम में अपूर्ण प्रतियोगिता में विदेशी व्यापार की मुख्य विशेषताओं के बारे में आपको जानकारी देना भी लाभदायक होगा। ये मुख्य विशेषताऐं निम्न विन्दुओं के आधार पर स्पष्ट की जा सकती हैं :–

1. **फर्मों की संख्या में वृद्धि** :– विश्व व्यापार के क्षेत्र में यह देखने को मिला है कि विश्व की बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं देशों की महत्वाकांक्षी योजनाओं की पूर्ति के लिए विश्व बाजार में नवीन फर्मों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। बढ़ती फर्मों की संख्या तथा बढ़ता उत्पादन का स्तर देशों के आर्थिक विकास का भाग समझा गया है। गरीबी तथा बेरोजगारी जैसे वैश्विक समस्याओं के हल के लिए भी इसे उचित माना गया है। क्योंकि नवीन फर्में रोजगार सृजित करके देश की आर्थिक वृद्धि में योगदान करती हैं।
2. **उत्पाद विभेदीकरण का विस्तार :–** वर्तमान में समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों ने उत्पाद विभेदीकरण को बल दिया है। फैशन तथा आर्थिक उन्नतिकरण के कारण भी व्यक्ति वस्तु के उपयोग तथा उपभोग को विभेदीकृत करता जा रहा है जिसकी पूर्ति विश्व के देशों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के द्वारा की गयी है। विश्व व्यापार में नवीन मांग का सृजन करने तथा बाजार के नवीन क्षेत्रों की खोज के कारण विश्व व्यापार का विस्तार हुआ है। उत्पाद–विभेदीकरण वर्तमान समाज की विश्व स्तर पर एक आवश्यकता बन गयी है।
3. **स्वतन्त्र बाजार प्रवेश** :– अपूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं के संदर्भ में विकसित तथा विकासशील देशों द्वारा व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के कारण विश्व व्यापार में नवीन तथा पुरानी फर्मों का स्वतन्त्र वहिर्गमन तथा प्रवेश संभव हुआ है। इसके साथ तकनीकी तथा वित्तीय सुधारों के कारण बहु उत्पाद प्रणाली से भी विश्व व्यापार में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश को बल मिला है।
4. **फर्मों का स्वतन्त्र नीति निर्धारण** :– विश्व व्यापार में संलग्न फर्मों द्वारा उदारीकरण तथा निजीकरण की प्रक्रिया में स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी नीतियों का निर्धारण कर रही है। तकनीकी प्रगति तथा वैश्विक राजनैतिक परिदृश्य के बदलते स्वरूप के कारण

दूसरी फर्मों को आधार मानकर कोई फर्म विश्व बाजार में अधिक विस्तार के रूप में सफल नहीं हो सकती। स्वतन्त्र नीति के कारण ही बाजार में प्रतियोगिता की कमी होती जा रही है।

5. **प्रतियोगिता का निम्न स्तर** :– अर्थशास्त्रियों द्वारा विश्व स्तर पर बाजार को अधिक प्रतियोगी बनाने के सुझाव दिये जा रहे हैं लेकिन क्षेत्रीय अधिकता तथा देशों की जनता की सामाजिक आर्थिक स्तर में भिन्नता के कारण बाजार में प्रतियोगी वस्तुओं की मांग अलग–अलग आधार पर की जा रही है जिससे विश्व व्यापार में स्पर्द्धा का स्तर निम्न हो गया है। विभिन्न देशों की अलग–अलग व्यापारिक नीतियों से भी प्रतियोगिता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई है।

6. **विक्रय लागतें** :– वर्तमान विश्व व्यापार में विभिन्न देशों के लिए वस्तुओं की लागतें भिन्न–भिन्न स्तर पर पायी जाती हैं। इसके लिए देशों एवं फर्मों के लिए विज्ञापनों का माध्यम तथा विक्रय प्रणाली भी उत्तरदायी है। अलग–अलग फर्मों द्वारा अपने उत्पादनों की विक्री के लिए अलग–अलग बाजार रणनीतियाँ तय की जाती हैं तथा उत्पादन के प्रचार के लिए अलग–अलग उपकरणों तथा माध्यमों का सहारा लिया जा रहा है। उदाहरण के लिए ट्रैक्टर, टूथपेस्ट, सीमेन्ट, खाद्य तथा पेय पदार्थों का उत्पादन वैश्विक स्तर पर हो रहा है तथा विश्व बाजार में कुछ उत्पादों ने विक्रय तकनीकी का उचित प्रयोग करके आधिपत्य स्थापित कर लिया है।

21.5 अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ की स्थिति

पूर्व के विन्दुओं के अध्ययन के बाद आप वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार से सम्बन्धिक अनेक पक्षों को भलीभांति समझ गये होंगे। इस विन्दु के अन्तर्गत यह भी जानना आवश्यक है कि इस प्रकार के बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ की स्थिति क्या है? आपको पूर्व में बताया गया है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की मांग का वक्र (Demand Curve) लोचदार होता है। जो व्यापारियों या उत्पादकों के लाभ की मात्रा या स्तर को प्रभावित करता है। शायद आपने ध्यान दिया हो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं की मांग व पूर्ति की लोच का आकार तथा व्यापार की शर्तों में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। व्यापार की शर्तें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ को निर्धारित करने में सहायक होती हैं। व्यापार की शर्ते निर्यात कीमतों तथा आयात कीमतों के बीच सम्बन्ध को व्यक्त करती हैं। व्यापार की शर्तों की प्रकृति वस्तु की विदेशों में मांग की

कीमत लोच तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर रहती है। एक देश में दूसरे देश की वस्तु की मांग की लोच जितनी अधिक बेलोचदार होती है, पहले देश के लिए व्यापार की शर्तें उतनी की प्रतिकूल होंगीं तथा मांग की लोच अधिक होने की दशा में उसके लिए व्यापार की शर्तें अनुकूल होंगीं।

आपको यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना लाभदायक होगा कि एक देश की निर्यात की जाने वाले वस्तुओं की पूर्ति लोचदार है तो व्यापार की शर्तें उनके अनुकूल होगी तथा वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होने पर व्यापार की शर्तें प्रतिकूल होंगीं। इसी संदर्भ में व्यापार से लाभी अधिक प्राप्त करने के लिए उस देश को व्यापार की शर्तों को अनुकूल बनाने पर जोर देना होगा। इसके विपरीत प्रतिकूल व्यापार शर्तों की स्थिति में उस देश को सीमान्त वस्तुओं पर हानि उठानी होगी। आपको यहां पर यह भी जोर देना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत वस्तु की मांग की लोच इकाई से अधिक होती है। जिसके सम्बन्ध में एक देश द्वारा विदेशी व्यापार से लाभ प्राप्त करने की दशा में अधिक प्रयास किया जा सकता है। जैसा कि आपने इकाई के अन्तर्गत पूर्व के विन्दुओं में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में ऊँचा यातायात व्यय को भी दर्शाया है। विदेशी व्यापार का क्षेत्र तथा वस्तुओं की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिकता पायी जाती है। जिससे यातायात व्यय में अन्तर आता है। यातायात व्यय में यह अन्तर दो देशों में भौगोलिक दूरी तथा यातायात के साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। परिवहन लागत भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों को प्रभावित करती है। यदि परिवहन लागत में कमी होती है तो विदेशी व्यापार का विस्तार होता है तथा विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाले लाभों की मात्रा भी बढ़ जाती है। इसके विपरीत परिवहन लागत के अधिक हो जाने पर व्यापार का क्षेत्र सीमित हो जाता है जिससे लाभ प्रतिकूल रूप में प्रभावित होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लाभों के संदर्भ में प्रो० टॉजिंग का यह कथन महत्वपूर्ण हो जाता है कि ''अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से उस देश को सबसे अधिक लाभ होगा जिसके निर्यातों की मांग अधिक हो और उन वस्तुओं की मांग जिनका वह आयात करता है बहुत कम हो या उस देश में दूसरे देशों के निर्यातों की मांग कम हो। जिस देश में दूसरे देशों की उत्पादित वस्तुओं की मांग बहुत अधिक होती है उसे सबसे कम लाभ होता है।''

आपको यहां पर यह ध्यान देना होगा कि अपूर्ण प्रतियोगी वस्तु बाजार में निकट की स्थानापन्न वस्तुऐं पायी जाती हैं जिससे अलग–अलग देशों के लिए प्रत्येक वस्तु की

उपयोगिता अलग–अलग होती है जिससे मांग की लोच तथा पूर्ति पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है।

विद्वानों का विचार है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण बाजार प्रतियोगी हो जाता है। साधनों का पूर्ण उपयोग तथा विशिष्टीकरण के कारण लागतों में कमी आती है। किसी भी वस्तु के उत्पादन में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक साधनों का कुशलतम् तथा पूर्ण प्रयोग करने के लिए तकनीकी तथा दुर्लभ साधनों के उचित प्रयोग की आवश्यकता होती है। जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर विदेशों से भी आयात करना होता है जिससे निजी संसाधनों का ईष्टतम् प्रयोग संभव हो जाता है।

21.6 सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के निकटतम् स्थिति होती है। क्रेता–विक्रेताओं की कम संख्या, निकटतम् स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धता, ऊँचा यातायात व्यय तथा क्रेता–विक्रेताओं को बाजार की अपूर्ण जानकारी अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं हैं। अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी लागू होती है। इन दशाओं की उपस्थिति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी तथा गैर सरकारी कारक उत्तरदायी है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था की विशेषताओं तथा अलग–अलग देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रवृत्तियों के कारण यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं उत्पन्न की जाय। ताकि विश्व व्यापार के सहयोगी देशों को व्यापार के लाभों की प्राप्ति हो सके। पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार बाजार पिछड़े तथा अकुशल देशों के लिए अत्यन्त ही घातक है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक कारक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति बनाने में सहायक हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेता व विक्रेता गिरती हुई मांग रेखा का सामना करता है। इसीलिए अपूर्ण प्रतियोगिता में विभिन्न देशों के व्यापारिक लाभों में भी अन्तर पाया जाता है। देशों के संरक्षण एवं जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अपूर्ण प्रतियोगिता को आवश्यक समझा जाता है।

21.7 शब्दावली

1. <u>वस्तु बाजार</u> :– वस्तु बाजार से हमारा तात्पर्य उस क्षेत्र से है जहां पर वस्तुओं का ही क्रय व विक्रय किया जाता है।

2. **अपूर्ण प्रतियोगिता** :– अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पूर्ण रूप से प्रतियोगिता नहीं हो पाती है एवं कुछ अपूर्णताऐं बाजार में पायी जाती हैं।
3. **पूर्ण प्रतियोगिता** :– पूर्ण प्रतियोगिता में बाजार में सभी प्रकार की पूर्णताऐं पायी जाती हैं।
4. **एकाधिकार** :– उत्पादन तथा विक्रय पर एक ही व्यक्ति या संस्था (उत्पादक) का अधिकार होता है तथा बाजार की शक्तियां स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करती हैं।
5. **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार** :–दो या दो से अधिक देशों के मध्य होने वाला व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है।
6. **मांग–पूर्ति** :– किसी समय विशेष में दी हुई कीमत पर वस्तुओं को क्रय करने एवं विक्रय करने की तत्परता मांग–पूर्ति कहलाती है।
7. **गैर–कीमत प्रतियोगिता** :– गैर कीमत प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत को छोड़कर वस्तुओं के गुण, स्वरूप सम्बन्धी प्रतियोगिता की जाती है तथा अधिकतम् विक्री का प्रयास किया जाता है।
8. **व्यापार की शर्त** :– जिन शर्तों पर दो देशों के मध्य आयात–निर्यात सम्बन्धी निर्णय लिये जाते हैं उन्हें व्यापार की शर्तें कहा जाता है।

21.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न संख्या–01, वस्तु बाजार से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताओ?

प्रश्न संख्या–02 अपूर्ण प्रतियोगिता को संक्षेप में लिखो?

प्रश्न संख्या–03 अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं बताओ?

प्रश्न संख्या–04 वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किस प्रकार की श्रेणी का है?

प्रश्न संख्या–05 गैर–कीमत प्रतियोगिता किस प्रकार के बाजार में पायी जाती है?

प्रश्न संख्या–06 निम्नलिखित कथनों में से सत्य, असत्य पर सही (√) तथा गलत (X)का निशान लगाओ?

(i) अपूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता का ही एक रूप है।
(ii) एकाधिकार बाजार की अनिवार्य दशा है।
(iii) अपूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता तथा विक्रेताओं की संख्या कम होती है।
(iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वस्तुओं के बाजार की क्रेता एवं विक्रेताओं को पूर्ण जानकारी नहीं होती है।
(v) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाऐं पूर्ण होती हैं।
(vi) बौद्धिक सम्पदा का अधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता के लिए दशाऐं पैदा करता है।

प्रश्न संख्या–07 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपूर्ण प्रतियोगिता के लाभ संक्षेप में बताओ?

प्रश्न संख्या–08 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में क्रेता एवं विक्रेताओं की कम संख्या का कारण बताओ?

प्रश्न संख्या—09 अपूर्ण प्रतियोगिता की कौन—कौन सी दशाऐं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लागू होती हैं?

प्रश्न संख्या—10 निम्न कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करो —

(i) अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति .... में पायी जाती है।

(ii) .... तथा .... के मध्य की स्थिति अपूर्ण प्रतियोगिता है।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में निकट .... वस्तुऐं पायी जाती हैं।

(iv) आर्थिक, ... तथा .... असमानताऐं पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अनुकूल नहीं होती हैं।

(सामाजिक—भौगोलिक, स्थानापन्न, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, पूर्ण प्रतियोगिता—एकाधिकार)

21.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आहूजा एच.एल. (2010)उच्चतर व्याप्ति आर्थिक सिद्धान्त, एच. चन्द एण्ड क० लि०, रामनगर, दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008)अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय पैलेस, आगरा।
- सेठ एम.एल. (2006)माइक्रो अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय पैलेस, आगरा।

21.10 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची

- मिश्र जगदीश नारायण (2010)भारतीय अर्थव्यवस्था, पुस्तक महल पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली।
- जालान, विमल (2008)21वी ंसदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशत, दिल्ली।

21.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न संख्या—01, वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या—02, अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत विदेशी व्यापार से होने वाले लाभों को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या—03, अपूर्ण प्रतियोगी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उद्देश्यों की विस्तृत विवेचना कीजिए?

प्रश्न संख्या—04, वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत होने वाले विदेशी व्यापार के लाभों की स्थिति की विवेचना कीजिए?

<u>हल</u> :— प्रश्न संख्या—01, के हल के लिए विन्दु संख्या 21.3.2 का अवलोकन करें।
प्रश्न संख्या—02, के उत्तर के लिए विन्दु संख्या 21.5 को देखें।
प्रश्न संख्या—03, के हल के लिए विन्दु संख्या 21.3.1 का अवलोकन करें।
प्रश्न संख्या—04, के हल के लिए विन्दु संख्या 21.4 का अध्ययन करें।

इकाई–22 क्षेत्रीयगुट, बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार पद्धति

इकाई संरचना

22.1 प्रस्तावना

22.2 उद्देश्य

22.3 क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद

22.3.1 क्षेत्रीय गुट का अर्थ

22.3.2 बहुपक्षवाद का अर्थ

22.3.3 क्षेत्रीय गुट एवं बहुपक्षवाद की आवश्यकताऐं

22.4 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार पद्धति

22.4.1 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार के लाभ

22.4.2 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार की सीमाऐं

22.5 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार

22.5.1 बहुपक्षवाद की विशेषताऐं

22.5.2 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार के दोष

22.6 बहुपक्षवाद से जुड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं

22.6.1 विकसित देशों के क्षेत्रीय गुट

22.7 क्षेत्रीय गुट एवं भारत

22.7.1 अन्य विकासशील तथा पिछड़े देशों वाले क्षेत्रीय गुट

22.8 सारांश

22.9 शब्दावली

22.10 संदर्भग्रंथ सूची

22.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ सूची

22.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

यह पाँचवे खण्ड अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान की वाईसवीं इकाई 'क्षेत्रीय गुट बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार पद्धति' है। इससे पूर्व की इकाई में आप यह भलीभाँति समझ गये होंगे कि जब अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति विद्यमान हो तब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की क्या स्थिति होती है तथा इसका विभिन्न श्रेणी के देशों का व्यापार सम्बन्धी दशाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रस्तुत इकाई विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद पर आधारित की गयीं हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप अच्छी तरह समझ सकेंगे कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है एवं विश्व व्यापार पद्धति में इसकी क्या आवश्यकता है? दोनों स्थितियों में होने वाले लाभ–हांनि की दशाओं से भी आप परिचित हो सकेंगे। इस इकाई में यह समझाने का भी पूरा प्रयास किया गया है कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थ–व्यवस्थाओं के लिए कहाँ तक प्रसांगिक है तथा दोनों अर्थव्यवस्थाऐं किस पद्धति से विश्व व्यापार को संचालित करती है?

क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद का विश्व व्यापार से सम्बन्ध भलीभाँति समझने के बाद आपको अच्छी तरह से स्पष्ट होगा कि ये दोनों स्थितियाँ भारत के विदेशी व्यापार से क्या सम्बन्ध रखती है तथा भारत के विदेशी व्यापार की पद्धति को किस रूप में समय–समय पर प्रभावित करती है। प्रस्तुत इकाई से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विश्लेषण को अग्रिम शीर्षकों एवं उपशीर्षकों के अन्तर्गत भलीभाँति स्पष्ट किया गया है।

22.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया गया है :–

(क) प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है तथा विश्व व्यापार पद्धति से इसका क्या अन्तर्सम्बन्ध है। क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद की आवश्यकता विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्यों दिखाई देती है?

(ख) क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विश्व व्यापार के लिए कितना लाभदायक है तथा इसके दोषों को स्पष्ट करते हुए विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आप अच्छी तरह समझ सकेंगे?

(ग) इसके साथ आप अध्ययन के बाद आसानी से समझ सकेंगे कि भारत के विश्व व्यापार में क्षेत्रीय गुटों एवं बहुपक्षवाद के क्या प्रासंगिकता है तथा यह दोनों स्थितियाँ भारत के विदेशी व्यापार को किस दिशा की ओर प्रभावित कर रहीं हैं?

22.3 क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्रिया में श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण के आधार पर उत्पादन साधनों की दक्षता और कार्यकुशलता में वृद्धि करने में विदेशी व्यापार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसी स्थिति में किसी देश की अर्थव्यवस्था को एक बन्द अर्थव्यवस्था के रूप में बनाये रखना सम्भव नहीं रह गया है। उपभोग एवं उत्पादन के लिए विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के मध्य पारस्परिक निर्भरता के कारण वस्तुओं का आयात एवं निर्यात अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। सरकारी हस्तक्षेप की कमी तथा विश्व

व्यापार बढ़ते स्वतन्त्र रूप के कारण विकासशील एवं पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ भी व्यापारिक क्षेत्र में उभरती रही है जो मुख्य रूप से प्रत्यक्ष या परोक्षतः विकसित देशों की विदेश व्यापार नीतियों से सम्बन्ध रखती है। वैश्विक परिदृश्य में छोटे तथा विकासशील राष्ट्रों के लिए अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित रखना एवं उचित रूप में संचालित करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

विकसित तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की विदेश व्यापार नीतियों में उचित समन्वयन की कमी तथा विरोधी लक्ष्यपूर्ति के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है।

22.3.1 क्षेत्रीय गुट का अर्थ

''क्षेत्रीय गुट से तात्पर्य विदेशी व्यापार में शामिल ऐसे देशों के समूह से लगाया जाता है जो अपने पड़ोसी या समान लक्ष्य वाले दशों के साथ मिलकर व्यापारिक क्रियाओं में सहयोग करते हैं तथा सामान्यतः इन समूहों का अस्तित्व भौगोलिक राजनैतिक सीमाओं में शामिल रहता है।''

आपको यहाँ पर यह समझना अत्यन्त आवश्यक है कि क्षेत्रीय गुट का उदय या अस्तित्व दो आधारों पर किया जाता रहा है प्रथमतः व्यापारिक सहयोग के आधार पर तथा द्वितीयतः मौद्रिक सहयोग के आधार पर। सामान्यतः क्षेत्रीय गुटों को पाँच भागों में विभक्त किया जाता है।

1. आर्थिक संघ
2. कस्टम संघ
3. मुक्त व्यापार क्षेत्र
4. क्षेत्रीय या आंशिक एकीकरण
5. दीर्घकालीन व्यापार अनुबन्ध

आर्थिक संघ के अन्तर्गत सदस्य देशों के मध्य पूँजी, श्रम, वस्तुओं एवं सेवाओं का राष्ट्रीय सीमाओं से स्वतंत्र होकर आवागमन होता है। सामान्य रूप से सदस्य देशों द्वारा अपनी–अपनी अर्थव्यवस्थाओं का एकीकृत कर दिया जाता है। संघ के सदस्य देशों की आर्थिक नीतियाँ समरूप एवं सामूहिक रूप से निर्धारित होती है। यहां पर अत्यन्त ध्यान देना होगा कि आर्थिक संघ की नीतियों में व्यक्तियों, वस्तुओं का स्वतन्त्र आवागमन, सामूहिक परिवहन सुविधाऐं, सामूहिक कृषि नीतियां, आर्थिक विकास बैंक की स्थापना, प्रतियोगिता नियमों का निर्धारण, श्रम की गतिशीलता, सामाजिक कोष की स्थापना, रोजगार वृद्धि नीतियां आदि को शामिल किया जाता है।

कस्टम संघ/यूनियन के अन्तर्गत सदस्य देशों के मध्य एक कस्टम सीमा का निर्धारण किया जाता है जिसके अन्तर्गत दो पक्षों पर ध्यान दिया जाता है।

1. विदेशी व्यापार सदस्यों के साथ कोई प्रशुल्क नहीं लगाया जाता है।
2. सघ से बाहर वाले देशों के साथ विदेशी व्यापार में समान रूप से प्रशुल्क की दरें निर्धारित की जाती है।

मुक्त व्यापार क्षेत्र के अन्तर्गत सदस्य क्षेत्रो के मध्य होने वाला व्यापार प्रशुल्क दरों से मुक्त होता है। लेकिन यह उत्पादन व्यापार करने वाले देशों में ही होना चाहिए। गैर सदस्य देशों के साथ समान रूप से प्रशुल्क दरें निर्धारित की जाती हैं लेकिन यह केवल पारस्परिक व्यापार की दशा में ही लागू होता है। अर्थात मुक्त व्यापार क्षेत्र का प्रत्येक सदस्य देश बाहरी देशों के साथ इच्छानुसार प्रशुल्क नीति अपनाने को स्वतंत्र है।

क्षेत्रीय या आंशिक एकीकरण के अन्तर्गत किसी विशेष वस्तु या वस्तुओं के समूह के विषय में एक साझा बाजार स्थापित किया जाता है जिसके अन्तर्गत आयात–निर्यात किसी प्रकार का प्रशुल्क नहीं लगाया जाता है और न ही मात्रात्मक, भेदात्मक, विरोधात्मक व बाजाार विभाजन सम्बन्धी नीतियों का अस्तित्व पाया जाता है।

दीर्घकालीन व्यापार अनुबन्ध के अन्तर्गत दो देशों के मध्य एक विशेष समयावधि के लिए एक या अधिक वस्तुओं के व्यापार सम्बन्धी अनुबन्ध किये जाते हैं। यह एक द्विपक्षीय व्यापार व्यवस्था है।

यहां पर आपको ध्यान देना होगा कि आर्थिक संघ की नीतियों में विदेशी व्यापार के साथ–साथ गैर–व्यापारिक नीतियों को भी समाहित किया जाता है। शेष अन्य गुटों में विदेशी व्यापार नीतियों पर ही विशेष वल दिया गया है।

22.3.3 बहुपक्षवाद का अर्थ

''सामान्य रूप से बहुपक्षवाद का अर्थ उस स्थिति से लगाया जाता है जिसमें विदेशी व्यापार में शामिल देश वस्तु व्यापार के साथ–साथ सेवाओं के व्यापार, व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार, व्यापार सम्बन्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार, व्यापार सम्बद्ध निवेश उपाय आदि मामलों में बिना किसी भेदभाव के वे समस्त सुविधाऐं प्राप्त करता है जिन्हें इन मामलों से सम्बन्धित अन्य देश सुविधाऐं प्राप्त करता है।''

आपको ध्यान देना होगा कि उक्त कथन में दो साक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं प्रथम बहुपक्षवाद का सम्बन्ध केवल वस्तुओं के आयात एवं निर्यात तक ही सीमित न रहकर व्यापार सम्बन्धी अन्य विषयों तक विस्तृत होता है। वही द्वितीयत बहुपक्षवाद को केवल दो या दो से अधिक कुछ देशों तक सीमित नहीं रखा जाता है। बहुपक्षवाद भौगोलिक–राजनैतिक विस्तार के साथ–साथ मदों के अत्यधिक विस्तार से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण आयाम है।

22.3.3 क्षेत्रीय गुट एवं बहुपक्षवाद की आवश्यकताऐं

एक लम्बी समयावधि में संचालित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का लाभ विश्व व्यापार में संलग्न देशों को उनकी वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं मिल सका जिसके परिणामस्वरूप अनेक देशों को अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए क्षेत्रीय आधार पर समझौते करने के लिए मजबूर होना पड़ा। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली पर बड़े तथा विकसित देशों के लगातार बढ़ते अनावश्यक प्रभावों को देखते हुए विकासशील तथा छोटी अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्रों के साथ व्यापारिक समझौते किये जाना अति आवश्यक हो गया ।

विद्वानों का मानना है कि बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के संसाधनों को अपने हितों में प्रयोग करने के लिए अपनाया जाने लगा

तथाा विकसित देशों के संसाधनों से पिछड़े तथा विकासशील देशों को दूर रखा जाने लगा। परिणामस्वरूप विकसित देशों ने भी क्षेत्रीय गुटों की नींव रख ली जिससे विकासशील तथा पिछड़े देशों के लिए अपने व्यापारिक तथा गैर व्यापारिक हितों की रक्षा करनी की चिंता बढ़ गयी। वर्तमान में भी अनेक ऐसे मुद्‌दे हैं जिनका समाधान बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को नियंत्रित करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं अभी तक नहीं निकाल सकी है। इसके पीछे विकसित देशों की पक्षपातपूर्ण गोपनीय रणनीतियां ही कही जा सकती हैं।

क्षेत्रीय गुट की आवश्यकता का तर्क इस आधार पर भी दिया गया है कि यह गुट सीमावर्ती देशों के साथ ही सामान्य रूप से स्थापित किये जाते हैं जिससे विदेशी व्यापार में परिवहन लागत सम्बन्धी अनेक कठिनाईयों से बचा आता रहा है। सदस्य देशों की संख्या कम होने से समस्याओं पर सभी देशों के हितों को ध्यान में रखा जाता है।

जहां तक बहुपक्षवाद की आवश्यकता का प्रश्न है, यह एक अत्यन्त जटिल विषय है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में उत्पापद के बढ़ते स्तर के कारण यह आवश्यक है कि नवीन तथा बड़े बाजारों की खोज की जाये इसके लिए अपने देश की भौगोलिक सीमाओं को पार करना अत्यन्त आवश्यक होने के साथ राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति भी एक महत्वपूर्ण कारक है। दो विश्व युद्धों के परिणामस्वरूप विश्व व्यापार में एकपक्षीय व्यापार का विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में विकासशील तथा युद्ध से पीड़ित राष्ट्रों एवं अन्य पिछड़े राष्ट्रों के हितों को प्रमुखता दी गयी। लेकिन बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के विकास के आधार पर इन देशों की आवश्यकताओं पर जोर दिया गया तथा विकसित देशों ने भी अपनी अर्थव्यवस्थाओं को भविष्य के लिए इतना सुरक्षित कर लिया है कि पिछड़े तथा विकासशील देशों पर दबाव बनाकर बहुपक्षीय व्यापार के लिए सहमत किया जा सके।

इस प्रकार बहुपक्षवाद के अन्तर्गत विश्व व्यापार प्रणाली विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने, विदेशी व्यापार का विस्तार करने, राजनैतिक दबाव पैदा करने तथा विदेशी संसाधनों का प्रयोग समृद्ध राष्ट्रों के हितों में करने की एक आवश्यकता बनकर रह गयी है। वर्तमान में भी बहुपक्षीय व्यापार मंचों पर विकासशील देशों की अनदेखी की जा रही है। वास्तव में पिछड़े तथा विकासशील राष्ट्रों के विदेशी व्यापार में सहभागिता बढ़ाने तथा उनके संसाधनों का उनके हितों में कुशलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए बहुपक्षवाद की आवश्यकता बनी हुई है।

22.4 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार पद्धति

क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत अपनायी जाने वाली विश्व व्यापार पद्धति में समय में परिवर्तन के साथ–साथ अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के दोषों के समाधान खोजने का प्रयास क्षेत्रीय संघों/गुटों के माध्यम से किया गया है वहीं पर बड़े स्तरों पर अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात–निर्यात के लिए गैर सदस्य देशों पर भी निर्भर रहना होता है। इस संदर्भ में विश्व व्यापार के लाभ उनकी सीमाओं की विवेचना करना अत्यन्त आवश्यक होगा जिसे निम्नलिखित रूप में समझाया जा सकता है।

22.4.1 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार के लाभ

बहुपक्षीय व्यापार पद्धति के अन्तर्गत कुछ विशेष समस्याओं तथा मुद्दों को लेकर उपजे पिछड़े तथा विकासशील राष्ट्रों में असंतोष से जिन क्षेत्रीय गुटों की स्थापना हुई उनसे सदस्य देशों को लाभ मिलना स्वभाविक बात है। क्षेत्रीय गुटों के माध्यम से विश्व व्यापार सम्बन्धी लाभों को निम्न रूप में दर्शाया जा सकता है।

1. यदि क्षेत्रीय गुटों के सदस्य देशों से उपभोग की वस्तुऐं आयात की जाती हैं तो सदस्य देश में उपभोक्ताओं के उपभोग पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। पारस्परिक व्यापार की दशा में प्रशुल्क दरों की समाप्ति से वस्तुओं की कीमतों में कमी आती है।
2. सदस्य देशों की इकाईयों द्वारा क्षमता में विस्तार करने से उन्हें पैमाने की बचतें प्राप्त होती हैं। गैर सदस्य देशों से व्यापार करने के लिए साद्वत्मिक क्षमता का विकास होता है।
3. क्षेत्रीय गुटों के सदस्यों की सामूहिक नीतियों के चलते राष्ट्रीय आय, निवेश तथा रोजगार आदि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
4. क्षेत्रीय गुटों के सदस्य अनेक प्रकार की पूंजीगत तथा नवीन तकनीकी सम्बन्धी सुविधाऐं प्राप्त करते हैं तथा सदस्य देशों में राजनैतिक व सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण सौहार्दपूर्ण बनता है जिससे ये सदस्य देश विकसित देशों की शोषणकारी तथा अन्यायपूर्ण दबाव वाली नीतियों का कड़ा मुकावला करते हैं तथा अपने हितों की रक्षा करने में समर्थ होते हैं
5. क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत व्यापारिक लाभों के साथ–साथ गैर–व्यापारिक लाभ भी प्राप्त करते हैं जिससे प्राकृतिक आपदा तथा अन्य अवसरों पर अनेक प्रकार की सहायताऐं प्राप्त होती हैं।
6. क्षेत्रीय गुटों से सदस्य देश सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार स्थापित करते हैं जिससे राजनैतिक द्वन्दता तथा युद्धकारी सम्भावनाओं से छुटकारा मिलता है जो सदस्य देशों के विदेशी व्यापार के विस्तार तथा आर्थिक विकास में अत्यन्त ही सहायक है।
7. क्षेत्रीय गुट समान विशेषताओं को लेकर ही स्थापित किये जाते हैं जिसके कारण सदस्य देशों की आन्तरिक समस्याओं वेरोजगारी, गरीबी, क्षेत्रीय विषमताऐं, अशांति–व्यवस्था, अशिक्षा, स्वास्थ्य समस्या आदि का समाधान निकालने में काफी सहायता प्राप्त होती है।
8. क्षेत्रीय गुटों की स्थापना सामान्यरूप से सीमावर्ती राष्ट्रों के साथ ही की जाती है जिससे विदेशी व्यापार के दौरान आने वाली परिवहन लागतों में कमी आती है तथा आयात–निर्यात में समय बचत के कारण जोखिमों में कमी आती है।

22.4.2 क्षेत्रीय गुट एवं विश्व व्यापार की सीमाऐं

क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत होने वाला विदेशी व्यापार अनेक प्रकार की सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा सीमित होता है। आपको शायद ध्यान हो कि

विश्व व्यापार के समझौतों में अनेक गतिरोध उत्पन्न होने से क्षेत्रीय संघों/मुक्त व्यापार क्षेत्रों आदि के गठन को बढ़ावा मिला लेकिन कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि मुक्त व्यापार क्षेत्रों के अन्तर्गत वैश्विक व्यापार में समृद्धि नहीं लायी जा सकती हैं सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो0 जे0 भगवती जैसे विचारक उद्गम स्थल के नियम को मुक्त व्यापार क्षेत्र की सफलता में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। लेकिन यह तर्क विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य स्थापित क्षेत्रीय गुटों में ही अधिक प्रभावशाली कहा जा सकता है। इसके साथ ही गैर सदस्य देशों से होने वाला विश्व व्यापार मुक्त व्यापार क्षेत्र के अनुकूल प्रभावों को सीमित करता है।

विकासशील तथा पिछड़े देशों के मध्य राजनैतिक धार्मिक, सीमा–विवाद आदि विषयों को लेकर आये दिनों विवादास्पद स्थिति पायी जाती है ऐसी स्थिति में विश्व व्यापार बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय गुटों की स्थापना सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। भारत–पाकिस्तान, भारत–चीन, भारत–बांग्लादेश आदि देशों के मध्य राजनैतिक तथा सीमा विवादों के कारण क्षेत्रीय गुटों की सार्थकता नहीं हो सकी है। मुक्त व्यापार के परिमाण, वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रकृति में अप्रत्याशित अन्तर आदि विभिन्नताऐं पायी जाती है जिससे सदस्य देशों के हितों की पूर्ण सुरक्षा नहीं हो सकती है और गैर सदस्य देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने होते हैं।

22.5 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के देशों की अर्थव्यवस्थाऐं अलग–अलग पड़े से एक पक्षीय व्यापार को वरीयता दी गयी जो देशों के व्यापार तथा विकास के लिए पर्याप्त नहीं थां ऐसी स्थिति में बहुपक्षवाद का उदय होना स्वाभाविक बना गया तथा बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार एक दूसरे के पूरक के रूप में समझे जाने लगे। विश्व व्यापार को बढ़ावा देने के लिए इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जुड़े अनेक गैर–व्यापारिक मुद्दों को भी सुलझाया जाना अति आवश्यक समझा गया जिन्हें बहुपक्षवाद में शामिल किया गया।

22.5.1 बहुपक्षवाद की विशेषताऐं

क्षेत्रीय गुट की उत्पत्ति एवं विश्व व्यापार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने से आपको पूर्व ही विदित होगा कि बहुपक्षवाद की मूलभूत कठिनाईयों के कारण ही विकासशील तथा अर्थव्यवस्था वाले देशों ने क्षेत्रीय आधार पर संगठित होना प्रारम्भ किया जिससे उनके पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हो सकी। क्षेत्रीय आधार पर व्यापारिक समझौतों के मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि विश्व व्यापार के विस्तार, समृद्धि तथा आपसी सहयोग शांति बनाये रखने के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार का समर्थन लेना आवश्यक हो जाता है। बहुपक्षवाद की कुछ मुख्य विशेषताऐं निम्नलिखित हैं।

1. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति अपनाने वाले देशों को बड़े पैमाने पर उत्पादन वितरण सम्बन्धी आन्तरिक तथा बाह्य बचतें प्राप्त होती हैं जिससे देशों की राष्ट्रीय आय में वृद्धि सम्भव होती है तथा वहां की जनता की आवश्यकताऐं समयानुसार पूरी हो पाती हैं।

2. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति में वे सब सुविधाऐं भी सदस्य देशों को आसानी से उपलब्ध हो जाती है जो एक क्षेत्रीय व्यापार संघ के सदस्यों को सामूहिक प्रयास के बाद भी उपलब्ध नहीं हो पाती है। विश्व व्यापार में आने वाली अन्य आर्थिक–राजनैतिक बाधाऐं भी समाप्त हो जाती हैं जो क्षेत्रीय गुटों के उदय से उत्पन्न होती हैं। नवीन तकनीकी, वित्तीय सहयोग एवं ऋण की सुलभ उपलब्धता पिछड़े तथा विकासशील देशों के विकास को तीव्र करने में सहयोगी हुई हैं।
3. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति को नियंत्रित करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं व्यापार सम्बन्धी समस्याओं का समाधान सामूहिक स्तर पर करती है जिनका लाभ विकसित देशों के साथ पिछड़े तथा विकाशील देशों को भी प्राप्त होता है।
4. व्यापार विस्तार तथा वित्तीय सहायता से पिछड़े तथा विकासशील देशों की कार्यकुशलता तथा उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है। इसके साथ बाजार सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता का विकास होता है। इन देशों में रोजगार के नये अवसर उत्पन्न होते हैं।
5. बहुपक्षीय व्यापार पद्धति से विकसित देशों के वित्तीय संसाधनों का प्रयोग विकासशील तथा पिछड़े देशों के हितों में बेरोजगारी–गरीबी दूर करने के लिए जाता है जिससे विकसित देशों को भी विनियोग का प्रतिफल प्राप्त होता है तथा पिछड़े एवं विकासशील देशों में बाजार का विस्तार होता है।
6. बहुपक्षीय व्यापार संस्थाओं के पास वित्तीय तथा गैर वित्तीय संसाधनों की अधिकता होती है जो प्राकृतिक आपदा तथा अन्य समस्याओं के समय सभी सदस्य देशों को समय से उपलब्ध हो जाती है। बहुपक्षीय व्यापार में शामिल देशों की संख्या अधिक होती है इसीलिए कोई विशेष देश सभी विषयों पर मनमानी नहीं कर सकता है। छोटे देशों की समस्याओं पर भी खुलकर विचार–विमर्श किया जाता है तथा उस समस्या का समाधान निकाला जाता है।

22.5.2 बहुपक्षवाद एवं विश्व व्यापार के दोष

बहुपक्षवाद द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से किये गये उपायों का ही परिणाम है। यद्यपि बहुपक्षवाद के माध्यम से अनेक देशों की अर्थव्यवस्थाओं को सुधारा गया। समय तथा बदलती राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में अनेक दोष पैदा हो गये जो पिछड़े तथा विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं के संचालन के अनुकूल नहीं थे और न ही इनकी समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया गया।

सबसे महत्वपूर्ण दोष यह पैदा हुआ कि छोटे तथा पिछड़े देशों के व्यापार विस्तार के लिए विकसित देशों ने कोई स्थान नहीं छोड़ा तथा विश्व व्यापार पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की रणनीतियां तय की जिससे छोटे देशों के अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न होने लगा। छोटे तथा विकासशील देशों के प्राकृतिक तथा गैर प्राकृतिक संसाधनों पर विकसित देशों ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अधिकार स्थापित करना प्रारम्भ किया तथा

उनका शोषण करने की नीतियां तय की गयीं जिससे उन पर राजनैतिक दबाव भी बनाया जाने लगा।

22.6 बहुपक्षवाद से जुड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं

बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से सम्बद्ध अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाऐं कार्यरत हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं।

1. **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** – अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्यों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्तुलित विकास को शामिल किया गया। यह विभिन्न देशों के मध्य विश्व व्यापार के विस्तार के क्रम को जारी रखने में सहायता करता है तथा विश्व व्यापार से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का निपटारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करता है।
2. **विश्व बैंक** – विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के दीर्घकालीन व्यापार हेतु तथा भुगतान संतुलन बनाये रखने हेतु दीर्घकालीन अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी विनियोग के द्वारा सदस्य देशों में उत्पादकता बढ़ाता है तथा इसके माध्यम से जीवन स्तर एवं श्रम की स्थिति में सुधार भी उत्पन्न करता है।
3. **प्रशुल्क–दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट)** – युद्धोत्तर काल में एकपक्षीय व्यापार प्रणाली को बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में बदलने के लिए गैट की स्थापना 1947 में की गयी थी। सदस्य देशों के मध्य बिना किसी भेदभाव के विदेशी व्यापार को बढ़ावा दिया गया तथा व्यापार से अनेक व्यापार के प्रतिबन्धों हटाया गया।
4. **विश्व व्यापार संगठन (WTO)** – एक जनवरी 1995 से गैट का स्थान विश्व व्यापार संगठन ने ले लिया। इसके अन्तर्गत विश्व व्यापार प्रणाली को और अधिक विस्तृत एवं विकसित किया गया। विश्व व्यापार संगठन में विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के कार्य विनियम, प्रशासन एवं परिचालन हेतु, सुविधाओं हेतु प्रयासों पर विशेष ध्यान दिया गया है।
5. **संयुक्त राष्ट्र संघ का व्यापार एवं आर्थिक विकास पर अधिवेशन (अंक्टाड)** – संयुक्त राष्ट्र संघ का व्यापार एवं आर्थिक विकास पर अधिवेशन 1964 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक स्थाई एजेन्सी के रूप में स्वीकार किया गया। अंक्टाड बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना था ताकि विकासशील तथा विकसित देशों के मध्य व्यापार का विस्तार हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित सिद्धान्तों, नीतियों एवं क्रियान्वयन पर अत्यधिक कार्य किया गया।

26.6.1 विकसित देशों में क्षेत्रीय गुट

विकसित देशों द्वारा अपने संसाधनों पर पूर्ण नियन्त्रण एवं विकासशील देशों तथा पिछड़े देशों को संसाधनों का अपने हित में प्रयोग करने के लिए क्षेत्रीय गुटों का सहारा लिया गया। विकसित देशों के मुख्य क्षेत्रीय गुट निम्नलिखित हैं।

1. आठ विकसित देशों का समूह (G-8)
2. उत्तर अमेरिकी मुक्त व्यापार समझौता (NAFTA)
3. यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (EFTA)

22.7 क्षेत्रीय गुट एवं भारत

विकसित देशों की दबावकारी एवं एकपक्षीय लाभ वाली नीतियों से बचाव के लिए पिछड़े तथा विकासशील देशों के साथ विकसित देशों के साथ भी क्षेत्रीय आधार पर व्यापार को बढ़ावा देने का प्रयास भारत द्वारा किया गया है। भारत अब तक 10 मुक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर कर चुका है जो निम्नलिखित रूप में है :–

1. भारत की श्रीलंका मुक्त व्यापार समझौता
2. साफ्टा पर समझौता (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान और मालदीप)
3. भारत और नेपाल की सरकारों में अनाधिकृत व्यापार पर नियंत्रण के लिए संशोधित समझौता।
4. भारत, भूटान, व्यापार वाणिज्य और पारगमन समझौता।
5. भारत, थाईलैण्ड मुक्त व्यापार समझौता पूर्वतर फसल योजना
6. भारत सिंगापुर–सी.ई.सी.ए.
7. भारत आसियान – सी.ई.सी.ए. – वस्तु व्यापार समझौता (ब्रुनेई, कंबोडिया, लाओस, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, फिलीपींस, सिंगापुर, थाईलैण्ड, वियतनाम)
8. भारत–दक्षिण कोरिया–सी.ई.सी.ए.
9. भारत–जापान–सी.ई.सी.ए.
10. भारत–मलेशिया–सी.ई.सी.ए.

इसके साथ भारत द्वारा 5 सीमित क्षेत्र वरीय समझौते भी किये गये जो निम्न प्रकार हैं :–

1. एशिया प्रशांत व्यापार समझौता 'आप्टा (APTA)
   (बांग्लादेश, चीन, भारत, कोरिया, जापान, श्रीलंका)
2. व्यापार वरीयताओं की वैश्विक प्रणाली (GSTP)
   (अल्जीरिया, अर्जेन्टीना, बंग्लादेश, बेनिन, बोलीविया, ब्राजील, चिली, कोलम्बिया, क्यूबा, डी.पी.आर., कोरिया, इक्वेडोर, मिश्र, घाना, गिनी, गुयाना, भारत, इन्डोनेशिया, ईराक, लीबिया, मलेशिया, मैक्सिको, मोजंबिक, म्यांमार, निकारागुवा, नाइजीरिया, पाकिस्तान, पेरू, फिलीपींस, कोरिया, गणराज्य, रोमानिया, सिंगापुर, श्रीलंका, सूड़ान, थाइलैण्ड, त्रिनिडॉड और टोबागो, ट्यूनिशिया, तंजानिया, बेनेजुएला, वियतनाम, यूगोस्लाविया, जिम्बाबे)
3. भारत–अफगानिस्तान
4. भारत–मर्कोसुर
5. भारत–चिली

22.7.1 अन्य विकासशील तथा पिछड़े देशों वाले क्षेत्रीय गुट

बहुपक्षीय प्रणाली के अन्तर्गत विकासशील देशों को यह महसूस होने लगा कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सुधार एवं विस्तार की रणनीति के सहारे विकसित देश पिछड़े तथा विकासशील देशों को आर्थिक सहायता का लालच देकर उन्हें अपनी रणनीति के चक्कर में फंसा लेते हैं और व्यापारी सम्बन्धी अनेक मुद्दों पर अनावश्यक शर्तें इन देशों पर थोप देते हैं जिससे विकासशील तथा पिछड़े देशों की व्यापार शर्तें प्रतिकूल बनी रहती हैं और इनकी विकसित देशों पर निर्भरता बढ़ जाती है। इसी संदर्भ में भारत ने भी विकसित देशों की इस रणनीति के विरोध में अपना विदेशी व्यापार छोटे तथा विकासशील देशों के साथ बढ़ाने का भी लगातार प्रयास किया है तथा वर्तमान में भी इस दिशा में कार्य किया जा रहा है।

1. **यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC)** – फ्रांस, बेल्जियम, लक्जमबर्ग, पं. जर्मनी, इटली, नीदरलैण्ड, आयरलैण्ड, डैनमार्क, ब्रिटेन, पुर्तगाल, स्पेन, ग्रीस, पोलैण्ड, हंगरी, स्लोवेनियां, लियुआनिया, चैक गणराज्य, एस्टोनियां, लाटविया, साइप्रस, माल्टा, बुल्गारिया, रोमानियां सहित 28 देश शामिल हैं।
2. **आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (OEDC)** – परस्पर आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के लिए नीतियों का समन्वयन करना तथा विकासशील देशों के कल्याण के लिए कार्य करना।
3. **दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ आसियान (ASEAN)** –
4. **एशिया प्रशान्त आर्थिक सहयोग (APEC)** – 'इसे विश्व मामलों में एशिया प्रशान्त की आवाज' कहा जाता है। इसका संयुक्त व्यापार विश्व के कुल व्यापार का 40 प्रतिशत से भी अधिक है।
5. **दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन–दक्षेस (सार्क)** – इसकी स्थापना दिसम्बर 1985 में हुई। इसका मुख्यालय काठमाण्डु में है। ठाका में सार्क कृषि केन्द्र स्थापित किया गया है तथा इस्लामाबाद में सार्क मानव संसाधन विकास केन्द्र स्थापित है।
6. **पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन–ओपेक (OPEC)** – तेल के विश्व व्यापार को बढ़ावा देने तथा तेज विश्व व्यापार सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु 1960 में स्थापित किया गया।
7. **शंघाई सहयोग संगठन (SCO)** –
8. **इब्सा (IBSA)** – विकसित देशों से विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं को सुरक्षित करने के लिए 6 जून 2003 को स्थापित किया गया।
9. **बिम्सटेक (BIMSTEC)** – 6 जून 1997 को स्थापित किया गया।

22.8 सारांश

दो विश्व युद्धों की मार को झेलने के बाद विश्व की अधिकांश अर्थव्यवस्थाऐं लड़खड़ा गयीं तथा एक दूसरे के सम्पर्क में आने से कतराने लगीं। विश्व व्यापार की पद्धति एकपक्षीय बनकर रह गयी। ऐसे में यह आवश्यक था कि विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को व्यापार तथा अन्य मुद्दों के द्वारा आपस में जोड़ा जाये तथा उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति को सुदृढ़

बनाया जाय। सामान्य रूप से इस प्रणाली को ही बहुपक्षवाद कहा जाने लगा जिसमें बहुत सारे देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जुड़े व्यापारिक तथा अन्य मुद्दों को शामिल किया जाता है। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली गति तेज होने पर विश्व समुदाय आर्थिक आधार पर दो गुटों में विभाजित होने लगा। प्रथम गुट विकसित देशों का तथा द्वितीय गुट गैर विकसित देशों का, जिसमें विकासशील तथा पिछड़े व छोटे देशा शामिल हुये। बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली में विकसित तथा पिछड़े देशों के व्यापारिक हितों की अनेक मामलों में अनदेखी की गयी परिणामस्वरूप क्षेत्रीय सहयोग या संघों का अस्तित्व उभरने लगा और विश्व में अनेक क्षेत्रीय गुटों की स्थापना हुई।

एक ओर बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से सभी देशों को आर्थिक लाभ प्राप्त हुये तथा विश्व व्यापार का विस्तार हुआ वहीं क्षेत्रीय आधार पर संघों के अन्तर्गत छोटे तथा उभरती अर्थव्यवस्थाऐं को मजबूती मिली तथा बहुपक्षीय व्यापारिक समस्याओं का निराकरण आपसी सहयोग के आधार पर किया गया।

वर्तमान में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली तथा क्षेत्रीय गुटों के अन्तर्गत व्यापार एक दूसरे` पूरक है क्योंकि विकसित देशों ने भी अपनी स्वार्थ पूर्ति तथा पिछड़े देशों के संसाधनों के अधिक उपयोग हेतु क्षेत्रीय गुटों का सहारा लिया है। भारत वर्तमान में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को अपनाते हुए बहुत अधिक संख्या में क्षेत्रीय गुटों में सहभागिता निभा रहा है।

22.9 शब्दावली

1. **श्रम विभाजन** – श्रमिको की कार्यकुशलता एवं उनकी रूचियों के आधार पर कार्य विभाजन करना श्रम विभाजन कहलाता है।
2. **विशिष्टिकरण** – जो साधन जिस कार्य में अधिक उत्पादकता एवं विशेष क्षमता रखता है उसे उसी कार्य पर संलग्न बनाये रखा जाता है।
3. **वैश्विक अर्थव्यवस्था** – विश्व के देशों की व्यक्तिगत अर्थ व्यववस्थाओं की भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर संचालन वैश्विक अर्थव्यवस्था कहलाता है।
4. **अंतर्राष्ट्रीय संगठन/समस्याऐं** – इस श्रेणी में वे संगठन या संस्थाऐं आती हैं जिनका कार्यक्षेत्र एक से अधिक देशों तक विस्तृत होता है तथा अंतर्राष्ट्रीय विषयों या मुद्दों को प्रभावित करती हैं।

22.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अग्रवाल एवं बरला (2008)अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था INTERNATIONAL ECONOMICS लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा संजय पैलेस, आगरा–282002
- मिश्र एण्ड पुरी (2011)भारतीय अर्थव्यवस्थाहिमालय पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010)भारतीय अर्थव्यवस्थाएस चन्द एण्ड क0लि0, रामनगर, नई दिल्ली

- Cherunilam, Francis (2009)INTERNATIONAL ECONOMICSOxford University Press India.

22.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ सूची

- मिश्र, जगदीश नरायन (2011)भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
- जालान, विमल (2008)21वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

22.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में लिखिए?

(क) क्षेत्रीय गुट से आपका क्या तात्पर्य है?
(ख) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली क्या है?
(ग) क्षेत्रीय व्यापार संगठनों के चार लाभ बताओ?
(घ) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के दो दोषों को संक्षेप में लिखिए?
(ड़) बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली से जुड़ीं तीन संस्थाओं के नाम का उल्लेख कीजिए?

2. निम्नलिखित कथनों में से सही (√) तथा गलत (X) कथनों को छाँटिए –

(क) भारत विश्व व्यापार संगठन का सदस्य है।
(ख) भारत तेल निर्यात देशों के संगठन–ओपेक में संस्थापक सदस्य है।
(ग) भारत का पाकिस्तान के साथ मुक्त व्यापार समझौता है।
(घ) जी–8 विकासशील देशों का संगठन है।
(ड़) विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया।

3. (क) क्षेत्रीय मूल के नियम को स्पष्ट कीजिए?

(ख) विकासशील देशों के व्यापार वृद्धि हेतु गठित तीन क्षेत्रीय गुटों का नाम बताओ?
(ग) इब्सा की स्थापना कब की गयी थी,
(घ) सार्क का मानव संसाधन विकास केन्द्र कहाँ पर स्थित है?
(ड़) विश्व मामलों में एशिया–प्रशान्त की आवाज किसे कहा जाता है?

4. नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(क) क्षेत्रीय गुटों की स्थापना .... के दोषों के परिणामस्वरूप हुई।
(ख) क्षेत्रीय मूल का नियम .... देशों की अर्थव्यवस्थाओं के सम्बन्ध रखता है।
(ग) भारत द्वारा .... मुक्त व्यापार समझौते तथा .... सीमित क्षेत्र वरीय समझौते किये गये हैं।
(घ) गैट की स्थापना .... में की गयी।
(ड़) क्षेत्रीय गुट तथा .... देशों के विदेशी व्यापार में अत्यधिक सहायक हैं।
(च) बहुपक्षीय विश्व व्यापार प्रणाली पर .... देशों का आधिपत्य होता जा रहा है।

(विकसित, 1994, 10–5, छोटे–विकासशील, बहुपक्षवाद, विकसित)

प्रश्न 4 का हल – (क)बहुपक्षवाद ,(ख)विकसित,(ग) 10–5, (घ)1947

(ड़)छोटे–विकासशील ,(च) विकसित

5. अंक्टाड पर संक्षिप्त लेख लिखो?
6. विश्व व्यापार संगठन का मुख्य उद्देश्य संक्षेप में लिखो?

22.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न संख्या 01 – क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद से आप क्या समझते हैं? विश्व व्यापार से इसका क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न संख्या 02 – विकासशील तथा विकसित देशों के विश्व व्यापार के लिए क्षेत्रीय गुट, बहुपक्षवाद की उपयोगिता को भलीभांति समझाइए ?

प्रश्न संख्या 03 – बहुपक्षवाद से विकासशील देशों के विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न संख्या 04 – क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद का भारतीय विदेशी व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए?

प्रश्न संख्या 05 – बहुपक्षवाद के सम्बन्ध में विकसित देशों की रणनीति को समझाओ?

हल प्रश्न संख्या 01 के हल के लिए बिन्दु संख्या 22.3, 22.4 तथा 22.6 का अवलोकन कीजिए?

प्रश्न संख्या 02 के उत्तर के लिए बिन्दु संख्या 22.4 व 22.5 को देखें।

प्रश्न संख्या 03 के उत्तर के लिए बिन्दु संख्या 22.5 तथा 22.6 का अवलोकन करें।

प्रश्न संख्या 04 के हल के लिए बिन्दु संख्या 22.7 का अवलोकन कीजिए?

प्रश्न संख्या 05 के हल के लिए बिन्दु संख्या 22.3.3 व 22.5 तथा 22.6 का अवलोकन करें।

****

इकाई 23 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund)

इकाई संरचना

23.1 प्रस्तावना

23.2 उददेश्य

23.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का आशय

23.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

23.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन, सदस्यता एवं पूंजी

23.6 भारत एवं मुद्रा कोष

23.7 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यकरण

23.8 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलताएं

23.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार के सुझाव

23.10 साराशं

23.11शब्दावली

23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

23.13 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

23.14 निबंधात्मक प्रश्न

23.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व इकाई 22 विश्व व्यापार के सम्बन्ध में क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद पर आधारित की गयीं हैं। इस इकाई के अध्ययन से आप अच्छी तरह समझ सकेंगे कि क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद क्या है एवं विश्व व्यापार पद्धति में इसकी क्या आवश्यकता है? दोनों स्थितियों में होने वाले लाभ–हांनि की दशाओं से भी आप परिचित हो सकेंगे। इस इकाई में आप ने क्षेत्रीय गुट तथा बहुपक्षवाद विकासशील तथा विकसित देशों की अर्थ–व्यवस्थाओं के लिए कहाँ तक प्रसांगिक है तथा दोनों अर्थव्यवस्थाऐं किस पद्धति से विश्व व्यापार को कैसे संचालित करती है को जान सके है।

प्रस्तुत इकाई 23 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना प्रमुख उद्देश्य, कार्यों, प्रशासन और मूल सिद्धान्त के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अब तक हुए कार्य विस्तार का वर्णन किया गया है। विश्व व्यापार के भुगतान संतुलन संकट को निपटाने में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की भूमिका किस रूप में प्रभावी है इसकी व्याख्या की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलतांए सुधार के उपाय से आप को अवगत कराया जायेगा।

23.2 उददेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि–

- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना किस परिपेक्ष में की गई?
- इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस संगठन की भूमिका क्या है?
- अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान संतुलन को निपटाने में संगठन की क्या भूमिका है?

23.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का आशय

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, ब्रेटनबुड सम्मेलन के निर्णयानुसार 27 दिसम्बर,1945 को इसकी स्थापना वाशिंगटन में हुई थी, किन्तु इसने वास्तविक रूप में 1 मार्च, 1947 से कार्य प्रारम्भ किया था अप्रैल 2012 तक की स्थिति के अनुसार 188 राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IME) के सदस्य हैं, 188वॉ सदस्य दक्षिणी सूडान को अप्रैल 2012 में बनाया गया है क्रिस्टीन लेगार्डे (Christine Lagarde) वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबन्ध निदेशक है।

23.4 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समझौता अनुच्छेदों (Articles of Agreement) के अनुसार इसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः

1. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहित करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सन्तुलित विकास करना।
3. विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखना

4. बहुपक्षीय भुगतानों (Multilateral payments) की व्यवस्था स्थापित करके विनिमय प्रतिबन्धों को समाप्त करना अथवा कम करना।
5. सदस्य देशों के प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए अस्थायी तौर पर आर्थिक सहायता प्रदान करना।
6. अन्तर्राष्ट्रीय अदायगी के संकट के समय असन्तुलन की मात्रा एवं अवधि में कमी करना।

23.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन, सदस्यता एवं पूंजी

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स (Board of Governors) में निहित है प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर को मनोनीत करता है, जिन्हें मिलकर बोर्ड ऑफ गवर्नर्स का गठन होता है इस मनोनयन के साथ ही प्रत्येक देश एक वैकल्पिक गवर्नर को भी नियुक्त करता है, जो मुख्य गवर्नर की अनुपस्थिति में मतदान करता है प्रत्येक गवर्नर को कितने मताधिकार प्राप्त हों, यह उसके देश को प्राप्त कोटा के आधार पर निर्भर करता है प्रत्यक गवर्नर को 250 मत सदस्यता के तथा उसके देश को प्राप्त कोटे में प्रत्येक एक लाख विशेष आहरण अधिकार(एस0डी0आर0) पर एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार है इन दोनों का योग ही सदस्य राष्ट्र के मताधिकार को व्यक्त करता है उदाहरण के लिए भारत का मताधिकार उसके 30555 लाख विशेष आहरण अधिकार **(SDR)** अभ्यंश के अनुसार 250+30555 = 30805 मत है इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में अधिक मत देने का अधिकार धनी एवं औद्योगिक देशों को मिला हुआ है क्योंकि उन्हीं के कोटे की राशि अपेक्षाकृत अधिक है आम तौर पर वर्ष में एक बार सितम्बर–अक्टूबर में इसके बोर्ड ऑफ गवर्नर की बैठक होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों में सर्वाधिक महत्व सदस्य देशों को आवंटित अभ्यशों (कोटा) का है 1971 तक मुद्रा कोष के समस्त अभ्यशों (Quotas) तथा इससे निकाली जाने वाली सहायता राशियों को डॉलर के रूप में व्यक्त किया जाता था किन्तु दिसम्बर 1971 से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समस्त लेन–देन **विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Right SDR)** के रूप में व्यक्त किए जाने लगे है 1971 में एक डॉलर को एक SDR के समान माना गया था किन्तु डॉलर का मूल्य गिरने के कारण अप्रैल 1995 के अन्त में एक एस0डी0आर0 का मूल्य 1–585 डॉलर हो गया था वर्तमान (वर्ष 2008) में एक विशेष आहरण अधिकार(एस0डी0आर0) का मूल्य लगभग 1.54 डॉलर/Rs. 69.48 है 1 जनवरी 1981 से SDR का मूल्य पांच सबसे बडे निर्यातक सदस्य देशों की मुद्राओं (U.S. Dollar, Mark. Yen Franc and Pound Sterling) की पिटारी (Basket) के आधार पर निर्धारित किया जाने लगा है।

वर्ष 1991 में **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** के मूल्य निर्धारण में इन पॉच मुद्राओं का भार इस प्रकार था– **अमरीकी डॉलर 40%, जर्मन मार्क 21%, जापानी येन 17%, ब्रिटिश पाउण्ड 11% तथा फांसीसी फ्रैंक 11%** अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक क्षेत्र में SDR स्वर्ण मुद्रा की भूमिका अदा करता है इसलिए इसे **कागजी स्वर्ण (Paper Gold)** के नाम से भी जाना जाता है जनवरी 2008 में 13वीं सामान्य समीक्षा के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि 2,17,300 मिलियन **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** थी। वैश्विक मन्दी से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने सदस्य राष्ट्रों को उनके अभ्यंशो के आधार पर 250 अरब **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** की राशि का आवटन करने का निर्णय लिया था।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अभ्यंशों को स्वर्ण तथा स्थानीय करेन्सी के रूप को स्वर्ण तथा स्थानीय करेन्सी के रूप में जमा प्रवेश के समय कोटे की 25% राशि स्वर्ण या डॉलर के रूप में जमा करनी होती है तथा कोटे का शेष भाग वह करेन्सी के रूप में जमा करा सकता है अब तक 14 बार अभ्यंशों (Quotas) में परिवर्तन किया जा चुका है अभ्यंशों के आधार पर प्रथम स्थान अमरीका का है दूसरे स्थान पर जापान तथा जर्मनी का समान अभ्यंश है चौथे स्थान पर फ्रांस तथा इंगलैण्ड का समान अभ्यंश है फरवरी 2003 में की गई अभ्यशों की 12वीं समीक्षा के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल अभ्यंश राशि 213 अरब **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** थी।

13वीं समीक्षा के अन्तर्गत सदस्य राष्ट्रों के कोटों में परिवर्तन उनकी अर्थव्यवस्था की स्थिति के अनुरूप ही किया गया था कोटा पुनरीक्षण के चलते सदस्य देशों की मत शक्ति में भी परिवर्तन हो जात है अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की इण्टरनेशनल मॉनिटरी एण्ड फाइनेन्शियल कमेटी (IMC) के द्वारा 13वीं बार अभ्यंशों में परिवर्तन की संस्तुति की थी जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के निदेशक मण्डल ने 28 अप्रैल 2008 की बैठक में स्वीकृति प्रदान कर दी थी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में भारत का कोटा 582.15 करोड. एसडीआर से बढाकर 582.15 करोड. एसडीआर कर दिया गया है (एक एसडीआर का मूल्य वर्तमान में लगभग 1.54 डॉलर/रू0 69.48 है) कोटा सम्बर्द्धन से देश पर पड़ने वाले अतिरिक्त वित्तीय भार को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने 11 सितम्बर, 2008 की बैठक में अनुमोदन प्रदान कर दिया था कोटा वृद्धि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में भारत का कोटा 1.91 प्रतिशत से बढकर 2.44 प्रतिशत हो गया कोटा वृद्धि से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में भारत की मत शक्ति में भी वृद्धि हुई है।

साथ ही भारत आईएमएफ में 11वीं बड़े कोटा वाला देश हो गया है सर्वाधिक कोटा वाले 11 देशों का कोटा (प्रतिशत में) निम्नलिखित प्रकार से हो गया –

देश	कोटा (प्रतिशत में)
संयुक्त राज्य अमेरीका	17.09
जापान	6.13
जर्मनी	5.99
यू0के0	4.94
फ्रांस	4.94
चीन	3.72
इटली	3.25
सऊदी	3.21
कनाडा	2.93
रूस	2.74
भारत	2.44

भारत, जो अभी तक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से समय–समय पर अपनी आवश्यकतानुसार ऋण लेता रहा है, अब इसके वित्त पोषक राष्ट्रों में शामिल हो गया है दूसरे शब्दों में अब भारत इस बहुपक्षीय संस्था को ऋण अपलब्ध कराने लगा है मई व जून 2003 में दो अलग–अलग किश्तों में कुल मिलाकर 205 मिलियन विशेष आहरण अधिकार **(SDR)** (291.70 मिलियन डॉलर) की राशि लागत ने मुद्रा कोष को फाइनेशियल ट्रांजेक्शन प्लान (FTP) के तहत् उपलब्ध कराई थी।

इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा 28 जून, 2003 को जारी एक विज्ञप्ति में बताया गया था सितम्बर–नवम्बर 2002 की तिमाही से भारत को कोष के 'फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान' (FTP) की सदस्यता हेतु चुन लिया गया था फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान में योगदान के लिए ऐसे राष्ट्रों को चुना गया है जिनकी स्वयं की भुगतान संतुलन (BOP) की स्थिति सुदृढ हो तथा जिनके पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा कोष उपलब्ध हों ऐस राष्ट्रों से 'फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान' (FTP) में वित्तीय योगदान की अपेक्षा की गयी है ताकि दुर्बल भुगतान संतुलन वाले राष्ट्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जा सके। रिजर्व बैंक की विज्ञप्ति में कहा गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान के लिए भारत का चयन पहली बार ही किया गया तथा यह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए देश के मजबूत वैदेशिक क्षेत्र का संकेत है।

रिजर्व बैंक के अनुसार मुद्रा कोष के फाइनेंशियल ट्रांजेक्शन प्लान के लिए 5 मिलियन विशेष आहरण अधिकार (6.96 मिलियन डॉलर) की पहली किश्त भारत ने 7 मई, 2003 को अदा की थी,जबकि 284.21मिलियन डॉलर की दूसरी किश्त 17 जून 2003 को अदा की इन अदायगियों के लिए इन तिथियों में इतनी ही विदेशी मुद्रा (क्रमशः 6.

96 मिलियन डॉलर 284.21 मिलियन डॉलर) रिजर्व बैंक के आरक्षित कोष से सरकार ने खरीदी थी।

13वीं कोटा समीक्षा के बाद भी कोष सर्वाधिक कोटा होल्डर राष्ट्र अमरीका यद्यपि मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि उसका अंश 17.52 प्रतिशत से कम होकर 17.09 प्रतिशत रह गया है।

13वीं कोटा समीक्षा के पश्चात् अर्न्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कुल कोटा राशि उसका अंश 2.44 प्रतिशत हो गया है कोटा पर आधारित भारत की सापेक्षिक स्थिति 12वीं हो गई है।

वर्तमान वैश्विक मन्दी से निपटने के लिए 14वीं समीक्षा के तहत् सदस्य राष्ट्रों की मदद के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा लगभग 250 अरब एसडीआर (SDR 250b) का आवंटन सदस्य देशों में किया गया इससे इन देशों को अपने विदेशी मुद्रा कोष सुदृढ कर तरलता का प्रवाह बढाने में मदद मिलेगी मुद्रा कोष के प्रबन्धक मण्डल के अनुमोदन के पश्चात सदस्य राष्ट्रों को यह राशि 28अगस्त, 2009 को आवंटित की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के 14वें कोटा पुनिरीक्षण (14th Quota Review) के तहत् भारत के 'कोटा' में होने वाली वृद्धि के प्रस्ताव को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने 25 अक्टूबर, 2011 को मंजूरी प्रदान की है इस पुनिरीक्षण के प्रभाव होने के पश्चात् कोष में भारत का कोटा 5821.5 मिलियन एसडीआर से बढकर 13114.4 मिलियन एसडीआर हो गया है तथा वह इस संस्था का आठवॉ बडा कोटाधारी (QuotaHolder) हो गया है अब भारत का कोटा 2.44 प्रतिशत से बढकर 2.75 प्रतिशत हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपने सदस्य राष्ट्रों को भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए सहायता हेतु 27 फरवरी,1963 को क्षतिपूर्ति वित्तीय सुविधा (Compensatory Financing Facility) स्थापित की 1974 तथा 1975 में अल्पकालीन तेल सुविधा (Temporary Oil Facility) 1976 में एक ट्रस्ट फण्ड तथा 13 सितम्बर, 1974 को सदस्यों की विशेष भुगतान सन्तुलन समस्या के लिए मध्यमकालीन सहायता हेतु विस्तारित फण्ड सुविधा (Extended fund Facility-EFF) की स्थापना की मार्च 1986 में संरचनात्मक व्यवस्था सुविधा (Structural Adjustment Facility-SAF) की स्थापना की।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के वित्त वर्ष 30 अप्रैल, 2003 को समाप्त होने के समय यह कोष 14 सदस्य देशों को आरक्षित सुविधा, 3 देशों को विस्तारित सुविधा तथा 36 निर्धन देशों को विस्तारित सुविधा तथा 36 निर्धन देशों को गरीबी हटाने तथा विकास सुविधा

के अन्तर्गत उधार दे रहा था 30 अप्रैल, 2003 को इसका कुल उधार बकाया आरक्षित सुविधा के तहत् 48839 अरब **विशेष आहरण अधिकार (SDR)**]विस्तारित सुविधा के तहत् 7206 अरब **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** तथा विकास सुविधा के तहत् 4630 अरब **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** थी।

स्वर्ण के बड़े भण्डार वाले देश (अक्टूबर 2009 के अन्त की स्थिति)

क्रम0सं0	देश	स्वर्ण भण्डार (टन)
1	अमरीका	8133.5
2	जर्मनी	3408.5
3	इटली	2451.8
4	फ्रांस	2445.1
5	चीन	1054.0
6	स्विट्जरलैण्ड	1041.5
7	जापान	765.2
8	नीदरलैण्ड्स	612.5
9	रूस	568.4
10	भारत	557.7

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा अपने ऋण योग्य संसाधनों में वृद्धि के लिए जो 403.3 टन सोने की बिक्री की गई है इसमें से 200 टन की खरीद भारत ने अक्टूबर 2009 में की आईएमएफ द्वारा 19–30 अक्टूबर, 2009 के दौरान प्रतिदिन की गई यह बिक्री उस दिन के बाजार मूल्य पर की गई थी तथा 200 टन सोने की खरीद के लिए 6.7 अरब डॉलर (रू0 31490 करोड) भारत ने चुकाए थे।सोने की इस खरीद से भारत के आरक्षित स्वर्ण भण्डार 357.7 टन से बढकर 557.7 टन हो गए थे तथा भारत विश्व के 10 बडे स्वर्ण भण्डारों वाले देशों में शामिल हो गया है :–

23.6 भारत एवं मुद्रा कोष

भारत का मुद्रा कोष से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उसकी नीतिःनिर्माण एंव कार्य संचालन में भारत निरन्तर योगदान देता रहा है समय–समय पर आर्थिक सहायता और परामर्श द्वारा भारत मुद्रा कोष से लाभान्वित हुआ है भारत कोष के संस्थापक सदस्यों में से एक है वित्त मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गवर्नर मण्डल का पदेन (Ex-officio) गवर्नर होता है और भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का प्रतिनिधित्व एक कार्यकारी निदेशक करता है जो अन्य तीन देशों –बांग्लादेश, श्रीलंका तथा भूटान का भी प्रतिनिधित्व करता है 1970 तक भारत अधिकतम अभ्यंशों वाले प्रथम पांच देशों में से था और इस नाते उसको कार्यकारी निदेशक मण्डल में स्थायी स्थान प्राप्त था

अन्य राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं के बेहतर निष्पादन के परिणामस्वरूप अब तक हुए विभिन्न कोटा पुनर्निरीक्षणों में कोष के कोटा धारकों में भारत का स्थान अब 11वॉ हो गया है 13वीं समीक्षा के अन्तर्गत भारत का कोटा कोष के कुल 21.73 अरब SDR में से 582.15 करोड **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** था अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की 13वीं कोटा समीक्षा के फलस्वरूप इसकी कोटा राशि एवं मतशक्ति में भी वृद्धि हुई है अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के 14वीं कोटा समीक्षा के तहत् भारत का कोटा 5821.5 मि0 **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** से बढकर 13114.4 मि0 SDR हो जाएगा तथा इस अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) में इसका आठवॉ बड़ा कोटाधारी स्थान हो जाएगा भारत ने 1981–84 की अवधि में 3.9 अरब डॉलर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लिये थे 1991–93 के बीच में भारत ने 3.56 अरब डॉलर का ऋण लिया था कम्पेंसेटरी एण्ड कन्टीन्जेंसी फाइनेन्सिंग फैसिलिटी के तहत़ 1.35 अरब डॉलर तथा 2. 21 करोड़ डॉलर स्टैण्डबाई व्यवस्था के अन्तर्गत लिए थे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिए गए सभी ऋणों की आदायगी भारत ने पूरी कर दी है वर्ष 2002 से फरवरी 2006 तक भारत ने 493.230 मिलियन **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** का लेनदेन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से किया था और 466.474 मिलियन **विशेष आहरण अधिकार (SDR)** की पुनर्खरीद की थी। जुलाई 2004 में भारत और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने पुणे के राष्ट्रीय बैंक प्रबन्धन संस्थान में संयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम भारतीय कर्मचारियों और दक्षिण एशिया तथा पूर्व अफ्रीकी देशों के कर्मचारियों को अर्थशास्त्र तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्र में नीति आधारित प्रशिक्षण मुहैया कराएगा पहला प्रशिक्षण कार्यक्रम जुलाई 2006 में आयोजित किया गया भारतीय रिजर्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के साथ नोडल निकाय के रूप में इस कार्यक्रम को चलाएगा।

भारत दान के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सब्सिडी खाते में पैसा देता है औ 10 लाख डॉलर प्रतिवर्ष अर्थात् 15 वर्षो तक कुल 1.5 करोड डॉलर प्रदान करने का वायदा भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से किया है भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के (Poverty Reduction Growth Facility- PRGF) ट्रस्ट के सब्सिडी खाते को जुलाई 2006 के दौरान तेरहवीं वार्षिक किश्त के रूप में 10 लाख डॉलर का भुगतान किया था जोकि लगभग रू0 4.7 करोड के बराबर था।

23.7 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का कार्यकरण

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विश्व आर्थिक परिस्थितियों में समय–समय हो रहे परिवर्तनों के अनुसार अपनी पूंजी, कोटे (अभ्यंश), उधार देने की प्रकिया, विनिमय दरों और अन्य नीतियों में संशोधन किए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है–

23.7.1. वित्तीय संसाधन (Financial Resources)

कोटा और उनका निर्धारण (Quotas and their Fixation)- जब कोई देश कोष में शामिल होता है, तो उसका कोटा नियत कर दिया जाता है, जो उसके अंशदान की मात्रा, मताधिकार और निकासी अधिकारों को निर्धारित करता है। जब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष बनाया गया था तब प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक था कि वह अपने कोटे का 25 प्रतिशत स्वर्ण के रूप में रखे, जिसे 1978 में समाप्त कर दिया गया। अब यह अंतर्राष्ट्रीय रिजर्व परिसम्पत्तियों में दिया जाता है। कोटा शेष 75 प्रतिशत भाग देश की अपनी करेंसी में अदा किया जाता हैं।

हर पांच वर्ष के बाद कोटे का पुनरीक्षण किया जाता है और उसे समय–समय पर बढ़ा दिया जाता है। परन्तु कोटा तभी बढ़ाया जा सकता है जब कोष के सदस्यों की कुल मतदान शक्ति के 85 प्रतिशत बहुमत से प्रस्ताव पारित हो।

23.7.2. कोष का आधार (Fund Borrowing)–कोटा के अंशदानों के अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष सदस्यों को सोना बेचकर अपना कोष बढ़ाता है, यह सरकारों केन्द्रीय बैंकों अथवा औद्योगिक देशों की निजी संस्थाओं से, अन्तर्राष्ट्रीय परिशोधन बैंक से और सउदी अरब जैसे OPEC देशों तक से भी उधार लेता है।

23.7.3. कोष का उधार देना (Fund Lending)-कोष अपने सदस्यों को अपने संशाधन उधार लेने की अनेक प्रकार की सुविधाएं हैं। कोष की ओर से सदस्यों को उधार उनके चालू खाते में भुगतान–शेषों के असंतुलनों को वित्त, अस्थायी सहायता करने के लिए दिया जाता है। यदि किसी सदस्य की कोष के पास राशि उसके कोटे से कम है, तो यह अन्तर रिजर्व भाग (reserve tranche) कहलाता है। वह देश को आवेदन कर अपनी भुगतान–शेष आवश्यकताओं के लिए अपने आप रिजर्व भाग में 25 प्रतिशत भाग तक निकाल सकता है। उसे इस प्रकार के निकासों पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ता परन्तु राशि तीन से पांच वर्ष के भीतर लौटानी पड़ती है। भुगतान–शेष की गंभीर समस्याओं को हल करने के लिए ऋण भाग के अनतर्गत कोष के संशाधनों के कुल निवल प्रयोग में से अपने कोटा के 300 प्रतिशत के बराबर तक निकाल सकते हैं। ये सीमाएं CCFF, BSAF, SAF, STF और ESAF के अन्तर्गत लागू नहीं होती। इन सुविधाओं से कर्जें, ऋण भागों से भिन्न हैं तथा दीर्घ अवधि के लिए उपलब्ध होते हैं। ये निम्नलिखित हैंः–

23.7.3.1. बफर स्टॉक वित्तपोषक सुविधा (Buffer Stock Financing Facility - BSFF)-सदस्य देशों के वस्तु बफर स्टॉक के वित्त की व्यवस्था करने के लिए बफर स्टॉक वित्तपोषक सुविधा 1969 में स्थापित की गई थी।

23.7.3.2. विस्तृत वित्तपोषक सुविधा (Extended Fund Facility - EFF)-यह भी एक विशिष्ट सुविधा है जो 1974 में बनाई गई थी। EFF के अन्तर्गत, सदस्य देशों को कोष इस उद्देश्य के लिए ऋण प्रदान करता है कि वे अपेक्षाकृत लम्बी अवधियों के अपने भुगतान–शेष घाटों को पूरा कर सकें।

23.7.3.3. पूरक वित्तपोषक सुविधा (Supplementary Financing Facility - SFF)- इसकी स्थापना 1977 में हुई थी। इसका उद्देश्य था कि सदस्यों को विस्तृत या उद्यम प्रबंधों के अन्तर्गत पूरक वित्तपोषक व्यवस्था प्रदान की जाए ताकि वे अपने उन गम्भीर भगतान–शेष घाटों को पूरा कर सकें जो उनकी अर्थव्यवस्थाओं और उनके कोटों की तुलना में बहुत अधिक हों।

23.7.3.4. संगठनिक समायोजन सुविधा (Structural Facility - SAF)-कोष ने मार्च, 1986 में दरिद्रतम विकासशील देशों को रियायती समायोजन प्रदान करने के लिए SAF की स्थापना की। इसके अन्तर्गत उन्हें भुगतान–शेष समस्याओं को सुलझाने तथा मध्य अवधि समष्टि–आर्थिक एवं संगठनिक समायोजन प्रोग्रामों को कार्यन्वित करने के लिए ऋण दिये जाते हैं।

5. वर्धित संगठनिक समायोजन सुविधा (Enhanced Structural Adjustment Facility - ESAF)- कोष ने दिसम्बर, 1887 में SDR 6 बिलियन के संसाधनों से निम्न–आय देशों की मध्य अवधि की वित्तपोषक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की ESAF स्थापना की।

6. क्षतिपूरक एवं आकस्मिकता वित्तपोषक सुविधा (Compensating and Contingency Financing Facility - CCFF)- क्षतिपूरक एवं आकस्मिक वित्तपोषक सुविधा अगस्त, 1988 में निर्मित की गई थी। इसका उद्देश्य आयातित अनाज की लागतों में अस्थायी कमियों का आधिक्य के लिए समय पर क्षतिपूर्ति प्रदान करना है जो सदस्यों के नियंत्रण के बाहर कारकों के कारण होती है और आकस्मिक वित्तपोषक का उद्देश्य बाह्य झटकों के होने पर कोष समर्थिक समायोजन प्रोग्रामों की गति कायम रखने के लिए सदस्यों को सहायता करना है जा सदस्यों के नियंत्रण के बाहर कारकों के कारण उत्पन्न होते है।

7. व्यवस्थित रूपांतरण सुविधा (Systematic Transformation Facility - STF)-अप्रैल 1993 में कोष ने रूस तथा अन्य केन्द्रीय एशियाई गणतंत्रों के लिए एक विशेष व्यवस्थित रूपांतरण सुविधा स्थापित की जिसमें 6 बिलियन डॉलर निश्चित किए गए हैं। जिन्हें व्यापार और भुगतान व्यवस्थाओं में गड़बड़ होने के कारण तीव्र भुगतान शेष संकट का सामना करना पड़ता है।

8. आपात संरचनात्मक समायोजना ऋण (Emergency Structural Adjustment Loans – ESAL)- 1999 के प्रारम्भ में कोष ने एशिया और लैटिन अमेरिका के वित्तीय संकट से ग्रस्त देशों की सहायता के लिए ESAL सुविधा स्थापित की है।

4. अन्य सुविधाएं (Other Facilities)-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्य देशों को विभिन्न प्रकार की परामर्श सहायता देता है। यह भुगतान शेष एवं प्रथम केनद्रीय बैंकिग सेवा विभाग है तीसरा, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष संस्थान है जो विभिन्न सदस्य देशों विशेषकर अल्पविकसित देशों के कर्मचारियों के लिए मौद्रिक, राजकोषीय, बैंकिग,

विनिमय तथा भुगतान–शेष विषयक नीतियों पर अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करता है। इनके अतिरिक्त कोष का रिसर्च विभाग वर्ष में अनेक रिपोर्ट प्रकाशित करता है जिनमें विभिन्न नीति विषयक सामग्री होती है। इन प्रकाशनों में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष वार्षिक रिपोर्ट और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष स्टाफ पेपर्स महत्वपूर्ण हैं।

23.8 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोषः उपलब्धियां और असफलताएं (Achievements and Failures of IMF)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की उपलब्धियों और असफलताओं की विवेचना निम्न प्रकार की जा रही है।

उपलब्धियां (Achievements)

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की मुख्य उपलब्धियां निम्न है :

1. सुरक्षित कोष की स्थापना - मुद्रा कोष के प्रावधान के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य देश को अपने कोटे का एक बड़ा भाग अपनी मुद्रा में जमा करना पड़ता है। इससे मुद्रा–कोष के पास सभी सदस्य देशों की मुद्राओं का अच्छा सुरक्षित कोष बन गया है।

2. विदेशी व्यापार का विस्तार - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का पर्याप्त विस्तार हुआ है।

3. विदेशी विनिमय दरों में स्थिरता - मुद्रा–कोष की स्थापना के बाद विदेशी विनिमय दरों में पर्याप्त स्थिरता रही हैं। विदेशी विनिमय दरों में स्थिरता रहने से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को काफी बढ़ावा मिला है।

4. भुगतान शेष असंतुलन में सुधार - मुद्रा कोष ने भुगतान संतुलन में उत्पन्न अल्पकालिन असंतुलन को दूर करने के लिए सदस्य देशों को वित्तिय सहायता प्रदान की है।

5. मुद्रा अवमूल्यन पर रोक - किन्तु अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष की स्थापना से इसमें उल्लेखनीय रोक लगी है। इसका मुख्य कारण यह है कि आज कोई भी सरस्य देश मुद्रा–कोष से सहमति के लिए बिना अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नहीं कर सकता।

6. घरेलू आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं - मुद्रा कोष सदस्य देशों के घरेलू मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है।

7. तकनीकी सहायता एवं वित्तीय परामर्श - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष की स्थापना से सदस्य देशों की अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञों के महत्वपूर्ण वित्तीय परामर्श प्राप्त हुए हैं।

8. स्वर्णमान के लाभ - यद्यपि विश्व में स्वर्णमान ता समाप्त हो चुका है, किन्तु मुद्रा–कोष की स्थापना से स्वर्णमान को अपनाए बिना भी इसके लाभ प्राप्त हो रहे है।

9. बहुमुखी भुगतान प्रणाली को प्रोत्साहन - मुद्रा–कोष की स्थापना विश्व के देशों के बीच बहुमुखी व्यापार एवं भुगतान प्रणाली को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है।

असफलताएं (Drawbacks)-उपरोक्त उपलब्धियों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि कुल मिलाकर यह अपना उद्देश्य पूरा करने में सफल हुआ है। आलोचकों ने मुद्रा–कोष के कार्यों की निम्न प्रकार आलोचना की है :–

1. सीमित क्षेत्र – मुद्रा–कोष मुख्य रूप से सदस्य देशों के चालू लेन–देनों में उत्पन्न होने वाली विदेशी विनियम की समस्याओं को दूर करने के लिए अल्पकालीन सहायता देता है। यह युद्ध संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण नहीं देता और न ही पूंजी के आयात–निर्यात के लिए कोई सहायता देता है। अतः कोष का क्षेत्र सीमित है।

2. कोटे का निर्धारण वैज्ञानिक नहीं - सदस्य देशों के कोटे का निर्धारण किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया है।

3. विभेदात्मक नीतियां - अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष का व्यवहार पिछड़े एवं विकासशील देशों के प्रति उदार एवं सहयोगपूर्ण नहीं हैं।

4. विनिमय नियंत्रण को समाप्त करने में असफल - अतः विनिमय नियंत्रण को समाप्त करने में मुद्रा–कोष असफल रहा है।

5. विनिमय स्थिरता सफल नहीं रही है।

6. बहुमुखी विनिमय दर समाप्त करने में विफल रहा है।

7.विकासशील देशों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा है।

8. विकासशील देशों के लिए साधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं हो पायी है।

10. ऊंची ब्याज दर – इन शर्तों के अलावा कोष ऋण पर ऊंची ब्याज दर भी लेता है जिससे ऋणी देशों पर दबाव पड़ता है।

पूर्व एशिया के पांच देशों फिलीपन, दक्षीण कोरिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया में आकस्मिक और अप्रत्याशित आर्थिक संकट ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य–प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगा दिया हैं। इन आलोचानाओं के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने को बदलती अंतराष्ट्रीय आर्थिक स्थितियों के अनुरूप ढ़ालने में पर्याप्त रूप से लचीला रहा है।

23.9 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में सुधार के सुझाव

नीतियों को दोषी ठहराते हुए यह विचार प्रकट किया कि वर्तमान संकट का हल अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सुधार नहीं।निम्न सुझााव दिये हैः–

- पूर्व एशिया, रूस, लेटिन अमेरिका और अन्य विकासशील देशों को, जो आर्थिक संकट से ग्रस्त हैं अथवा जिन्हें छूत प्रभाव का भय है, आसान शर्तों पर वित्तीय सहायता देने के लिए कोष द्वारा प्रावधान करना चाहिए।
- कोष को एक ऐसा प्रोग्राम बनाना चाहिए जा आर्थिक संकट में देशों के लिए सुरक्षा जाल का काम करें।
- एक ऐसी मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली कायम की जाए जो विकासशील देशों के प्रति उचित और न्यायसंगत हो।

- विश्व के विकसित देशों की समष्टि आर्थिक नीतियां इस तरह चलाई जाएं कि वे विश्व उत्पाद और व्यापार वृद्धि को सुरक्षा प्रदान करें, इस तरह विश्व–अर्थव्यवस्था के लिए बहुत प्रभावी सुरक्षा जाल का कार्य कर सकें।
- कोष को यह प्रयत्न करना चाहिए कि सरकारी विकास सहायता की विश्व के देशों द्वारा वचनवद्धता में वृद्धि हो।
- विकासशील देशों के बैंकिंग सिस्टम और निगम क्षेत्रों की पुनर्संरचना करने के लिए कोष को परामर्श देना और सहायता करनी चाहिएं
- देशों को संरक्षणवाद से दूर रहने और खुली मार्किट प्रक्रिया को चालू रखने के लिए कोष की नीति उपाय सुझाने चाहिए।
- सभी देशों और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को इस बात के लिए कोष को बलपूर्वक अनुरोध करना चाहिए कि वे भ्रष्टाचार को समाप्त करें तथा अच्छे शासन को प्रोत्साहित करें।
- कोष को चाहिए कि विकासशील देशों को ऐसे नीति उपाय सुझाव और ऐसी वित्तीय सहायता दे जिससे वे आंतरिक संसाधनों को बढ़ाकर अपनी विकास कार्यक्रमों का स्वयं वित्त–प्रबन्ध करें।

23.10 साराशं

उक्त इकाई के अध्ययन से आप यह जान सके कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, ब्रेटनबुड सम्मेलन के निर्णयानुसार 27 दिसम्बर,1945 को इसकी स्थापना वाशिंगटन में हुई थी, किन्तु इसने वास्तविक रूप में 1 मार्च, 1947 से कार्य प्रारम्भ किया था।188 राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सदस्य हैं।अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का नियन्त्रण एवं प्रबन्ध एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स में निहित है प्रत्येक सदस्य देश एक गवर्नर को मनोनीत करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों में सर्वाधिक महत्व सदस्य देशों को आवंटित अभ्यशों (कोटा) का है 1971 तक मुद्रा कोष के समस्त अभ्यशों तथा इससे निकाली जाने वाली सहायता राशियों को डॉलर के रूप में व्यक्त किया जाता था किन्तु दिसम्बर 1971 से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के समस्त लेन–देन विशेष आहरण अधिकार के रूप में व्यक्त किए जाने लगे है।

भारत का मुद्रा कोष से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और उसकी नीतिःनिर्माण एंव कार्य संचालन में भारत निरन्तर योगदान देता रहा है समय–समय पर आर्थिक सहायता और परामर्श द्वारा भारत मुद्रा कोष से लाभान्वित हुआ है भारत कोष के संस्थापक सदस्यों में से एक है वित्त मंत्री अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गवर्नर मण्डल का पदेन गवर्नर होता है और भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का प्रतिनिधित्व एक कार्यकारी निदेशक करता है जो अन्य तीन देशों –बांग्लादेश, श्रीलंका तथा भूटान का भी प्रतिनिधित्व करता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विश्व आर्थिक परिस्थितियों में समय–समय हो रहे परिवर्तनों के अनुसार अपनी पूंजी, कोटे (अभ्यंश), उधार देने की प्रकिया, विनिमय दरों और अन्य नीतियों में संशोधन किए हैं। पूर्व एशिया के पांच देशों फिलीपन, दक्षीण कोरिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया में आकस्मिक और अप्रत्याशित आर्थिक संकट ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की कार्य–प्रणाली पर प्रश्न चिह्न लगा दिया हैं। इन

आलोचानाओं के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने को बदलती अंतराष्ट्रीय आर्थिक स्थितियों के अनुरूप ढ़ालने में पर्याप्त रूप से लचीला रहा है।

23.11शब्दावली

प्रशुल्कः–जब कोई वस्तु राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करती है या राष्ट्रीय सीमा को छोड़ती है तो इन वस्तुओं पर

लगाया गया कर या शुल्क को प्रशुल्क कहते हैं। प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है।

विश्व व्यापार – एक देश की भौगोलिक सीमाओं से बाहर दो या दो से अधिक देशों के मध्य होने वाला आयात–निर्यात विश्व व्यापार कहलाता है।

23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- D. M. Mithani, International Economics,(Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006)
- H. G. Mannur; International Economics (Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001)
- Ingo Walter; International Economics: Theory and Policy, (Ronald Press, New York 1968).
- K.R. Gupta: International Economics; (Atma Ram Pub. Delhi, 1969)
- Paul Krugman,Maurice Obstfeld and Marc J. Melitz; International Economics: Theory and Policy (Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.).
- Robert M. Dunn, and John H. Mutti; International Economics, (Routledge, London, 2004).
- V.K. Bhalla; International Economy: Liberalisation Process (Anmol Pub. Delhi, 1993).
- एस०एन०लाल; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004)
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरलारू अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ;(लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2003).
- डालचंद्र बागड़ी; अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, (अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2009).
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, (ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007)
- एम०एल०झिंगन; अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र (वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010)

23.13 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- D. M. Mithani, International Economics, Himalaya Publishing House, Mumbai, 2006
- H. G. Mannur, International Economics ,Vikas Publishing House Pvt. Ltd. 2001.
- Paul Krugman and Maurice Obstfeld: International Economics: Theory and Policy, Dorling Kindersley India Pvt Ltd, 2009.
- एस० एन०लाल , अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र , शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहबाद, 2004
- एच० एस० अग्रवाल, तथा सी०एस० बरला, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003.
- सुदामा सिंह एवं एम०सी० वैश्य, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र,ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई०बी०एच० पब्लिकेशन,नई दिल्ली, 2007
- एम०एल०झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010.
- डॉ. जी. सी. सिंघई एवं डॉ. जे. पी. मिश्रा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, 2010.

23.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विकासशील देशों को सुविधा देने में क्यों असफल रहा ?

इकाई – 24 विश्व व्यापार संगठन

इकाई संरचना

24.1 प्रस्तावना

24.2 उद्देश्य

24.3 विश्व व्यापार संगठन का उदभव

24.3.1 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य

24.3.2 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य

24.3.3 विश्व व्यापार संगठन का प्रशासन

24.4.4 WTO की सदस्यता एवं मुख्यालय

24.4.5विश्व व्यापार संगठन के मूल सिद्धान्त

24.4 विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

24.5 विश्व व्यापार संगठन तथा विवादास्पद मुद्दे

24.6 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका

24.7 सारांश

24.8 शब्दावली

24.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

24.10 सन्द्रर्भ ग्रन्थ सूची

24.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

24.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व इकाई 23 मे आप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की संरचना,कार्य, उद्देश्य और भारत एवं मुद्रा कोष की स्थिति का अध्ययन किया।
प्रस्तुत इकाई 24 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना प्रमुख उद्देश्य, कार्यों, प्रशासन और मूल सिद्धान्त के साथ विश्व व्यापार संगठन के अब तक हुए मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का वर्णन किया गया है। विश्व व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका किस रूप में प्रभावी है इसकी व्याख्या की गयी है।

24.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि–

- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना किस परिपेक्ष में की गई?
- इस संगठन का प्रमुख उद्देश्य क्या है?
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में इस संगठन की भूमिका क्या है?
- अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में संगठन की क्या भूमिका है?

24.3 विश्व व्यापार संगठन का उदभव

1947 में GATT की स्थापना के बाद से बहुराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली के विकास के फलस्वरूप 1जनवरी, 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई 15 अप्रैल, 1994 को 123 देशों के वाणिज्य मन्त्रियों ने मराकेश में उरूग्वे दौर के फाइनल एक्ट पर अपने हस्ताक्षर किए थे 1986–94 तक उरूग्वे दौर की बातचीत का लम्बा सिलसिला चला, जिसकी परिणति विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के रूप में इुई इस वार्ता में वस्तुओं के व्यापार से सम्बद्ध बहुपक्षीय नियमों एवं अनुशासन की पहूँच का काफी विस्तार हुआ और सेवा एवं बौद्धिक व्यापार (बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार) के क्षेत्र में बहुपक्षीय नियमों की शुरूआत हुई उरूग्वे दौर वार्ता के कारण कृषि उत्पादों के बारे में अलग से समझौता हुआ इसके अलावा GATT व्यवस्था में वस्त्र एवं कपडा उत्पादों के समन्वय के चरणबद्ध कार्यक्रम पर भी सहमति हुई GATT द्वारा निर्धारित नियमों तथा इससे सम्बद्ध समझौतें को WTO के सभी सदस्य देशों को 'एकमुश्त समझौते की जिम्मेदारियों एवं अधिकारों के बीच सन्तुलन पर विचार करने के बाद भारत सरकार ने WTO समझौते की पुष्टि की ।

भारत GATT और WTO दोनों का संस्थापक सदस्य है WTO नियम–आधारित पारदर्शी एवं प्रत्यक्ष बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था है जो ताकतवर व्यापार भागीदार के दबाव से सदस्य देशों की रक्षा करती है WTO नियम अन्य WTO सदस्यों के बाजारों को भारत के निर्यात को राष्ट्रीय व्यवहार और अत्यधिक तरजीह वाले देश (MFN) के रूप में भेदभावरहित व्यवस्था प्रदान करते है राष्ट्रीय व्यवहार सुनिश्चित करता है कि एक बार हमारे उत्पाद अन्य WTO सदस्य के यहॉ आयात हो गए तो उस देश के उत्पादों की तुलना में उनसे भेदभाव नही किया जाएगा MFN व्यवहार सिद्धान्त सुनिश्चित करता है

कि सदस्य देश अपनी कर व्यवस्था में ही नहीं, बल्कि अन्य नियमों विनियमों, प्रोत्साहनों आदि के मामले में भी WTO सदस्यों के बीच भेदभाव नही करेंगे यदि कोई सदस्य देश महसूस करता है कि अन्य व्यापार भागीदार की व्यापारिक नीतियों के कारण उसको निश्चित लाभ नही मिल रहा है, तो वह WTO के विवाद निपटारा तंत्र (DSM) के तहत् मामला दायर कर सकता है।

सारणी 24.1

वार्ता दौर (Round)	वर्ष (Year)	स्थान (Venue)	विषय एवं परिणाम (Issues and Outcomes)
प्रथम	1947	जनेवा (स्विट्जरलैण्ड)	प्रथम गैट समझौते पर हस्ताक्षर
द्वितीय	1949	अनेसी (फ्रांस)	विशिष्ट उत्पादों पर प्रशुल्क में कटौती
तृतीय	1950–51	तेरके (इंगलैण्ड)	
चतुर्थ	1956	जिनेवा	
पंचम (डिल्लन राउण्ड)	1960–61	जेनेवा	यूरोपीय समुदाय का वार्ता में प्रथम बार आविर्भाव तथा प्रशुल्कों में औसतन 20 प्रतिशत कटौती
षष्ठम (केनेडी राउण्ड)	1964–67	जेनेवा	विनिर्मित वस्तुओ पर प्रतिबन्धों में 1/3 की कमी की प्राप्ति
सप्तम (टोकियो राउण्ड)	1973–79	जेनेवा	गैर–प्रशुल्क प्रतिबन्ध, राज सहायता प्राप्त निर्यात उष्ण कटिबन्धीय वस्तुओं से सम्बन्धित 11 समझौतों पर हस्ताक्षर
अष्टम	1986–93	पुंता डेल एस्ते (उरूग्वे में प्रारम्भ व जेनेवा में समाप्त)	कृषि, सेवा, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS) तथा विदेशी निवेश (TRIMS) के विनियमन से सम्बन्धित विषयों का समावेश

WTO नियमों में आयात प्रावधान भी हैं जिनसे सदस्य देशों को भुगतान सन्तुलन समस्या तथा आयात में तेजी से बढोतरी जैसी आयात स्थितियों से निपटने में मदद मिलती है घरेलू उत्पादकों को नुकसान पहूँचाने वाले गलत व्यापार आचरण से निपटने के लिए डम्पिंग–विरोधी समझौते और सब्सिडी एवं समलुल्य उपाय समझौते और सब्सिडी एवं समतुल्य उपाय समझौते के तहत् डम्पिग–विरोधी या समतुल्य कर लगाने का प्रावधान है।

लेकिन WTO समझौते को लागू करने के दौरान भारत को इन समझौतों को लागू करने के दौरान भारत को इन समझौतों में असन्तुलन एवं कमियों का पता चला यह भी ज्ञात हुआ विकसित देशों ने अपनी जिम्मेदारियों को WTO समझौतों के अनुरूप सही

अर्थो में पूरा नहीं किया है भारत ने सामान्य विचारधारा वालें अन्य सदस्य देशों के साथ WTO में क्रियान्वयन सम्बन्धी चिन्ताओं को उठाया

गैट की अस्थायी प्रकृति के विपरीत विश्व व्यापार संगठन एक स्थायी संगठन है तथा इसकी स्थापना सदस्य राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अन्र्राष्ट्रों की संसदों द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है आर्थिक जगत् में इसकी स्थिति अब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के तुल्य ही है, किन्तु मुद्रा कोष व विश्व बैंक की भॉति यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक एजेन्सी नहीं है।

24.3.1 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्न है

(क) वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार को बढ़ावा देना।
(ख) प्रभावपूर्ण मांग एवं रोजगार में व्यापक एवं प्रभावी वृद्धि करना।
(ग) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।
(घ) सतत् विकास की अवधारणा को स्वीकार करना।
(ङ) जीवन स्तर में वृद्धि करना।
(च) पर्यावरण का संरक्षण एवं सुरक्षा करना।

24.3.2 विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य

विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख कार्य निम्न हैं–

(1) व्यापार एवं प्रशुल्क से सम्बन्धित किसी भी मसले पर सदस्य देशों के बीच विचार–विमर्श हेतु एक मंच के रूप में कार्य करना।
(2) विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के क्रियान्वयन, प्रषासन एवं परिचालन हेतु सुविधाऐं उपलब्ध कराना।
(3) व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
(4) विवादों के निपटारे से सम्बन्धित नियमों एवं प्रक्रियाओं को प्रषारित करना।
(5) विश्व आर्थिक नीति के निर्माण में अधिक सामंजस्य भाव स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक से सहयोग करना।
(6) विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के साथ संगठन के रूप में GATT समाप्त हो गया। पर ''गैट समझौता'' जो वस्तुओं में व्यापार से सम्बन्धित था संषोधित रूप में विश्व व्यापार संगठन के साथ बना हुआ है, पर इसके साथ दो नये समझौते जोड़ दिये गये है :– (1) सेवाओं से सम्बन्धित सामान्य समझौता (General Agreement on Trade in Services) तथा (2) जेनेरल एग्रीमेन्ट आन ट्रेड रिलेटेड आसपेक्ट्स आफ इनटेलेक्टुअल प्रापर्टी राइट्स (TRIPs)। उल्लेखनीय है कि जहाँ गैट एक अस्थाई तथा प्रावधानिक संस्था थी वहीं विश्व व्यापार संगठन तथा उसके समझौते स्थाई है तथा इसका एक सुदृढ़ वैधानिक आधार है। विश्व व्यापार संगठन अधिक शक्तिषाली तथा विस्तृत कार्य करने वाली संस्था है।

24.3.3 विश्व व्यापार संगठन का प्रशासन

संगठन के कार्य संचालन के लिए एक सामान्य परिषद है जिसमें प्रत्येक सदस्य देश का एक स्थाई प्रतिनिधि होता है। इसकी बैठक सामन्यतया माह में एक बार जेनेवा में होती है।

विश्व व्यापार संगठन में नीति निर्धारण हेतु सर्वोच्च अधिकार प्राप्त इसका ''मन्त्रि स्तरीय सम्मेलन'' है। इस सम्मेलन का आयोजन प्रायः प्रत्येक दो वर्ष बाद होता है।
दिन प्रतिदिन के प्रशासकीय कार्यों के संचालन हेतु संगठन का सर्वोच्च पदाधिकारी महानिदेशक (Director General) होता है जो सामान्य परिषद द्वारा चार वर्ष के लिए चुना जाता है। महानिदेशक की सहायता के लिए सदस्य देशों द्वारा चार महानिदेशक भी चुने जाते है।

सारणी 24.2 गैट एवं विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम

क्रम	नाम	कार्यभार ग्रहण तिथि	सेवा निवृत्ति तिथि	देश
1	Sir Eric Wyndham White	1948	1968	U.K.
2	Olivier Long	1968	1980	Switzerland
3	Arthur Dunkel	1980	1993	Switzerland
4	Peter Southerland	1-7-1993	1-5-1995	Ireland
5	Renato Ruggiero	1-05-1995	1-8-1999	Italy
6	Mike Moore	1-08-1999	1-08-2002	New Zealand
7	Supachai Panitchpakdi	1-08-2002	1-08-2005	Thailand
8	Pascal Lamy	1-08-2005	1-09-2013	France
9	Roberto Azevêdo	1-09-2013	--------	Brasilia

अभी तक के गैट और विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम निम्नलिखित सारणी में दी गयी है–

सम्बद्ध समितियॉ –विश्व व्यापार के कार्य संचालन हेतु अनेक महत्वपूर्ण समितियॉ है सर्वाधिक महत्वपूर्ण दो समितिया है 1. विवाद निवारण समिति (Divisen of Settlement Body-DSB) 2. व्यापार नीति समीक्षा समिति (T. Policy Review Body -TPRB) निवारण समिति (DSB) का कार्य विदेशी राष्ट्रों के विरूद्ध विश्व व्यापार संगठन व्यापार नियमों के उल्लंघन की शिकायत पर विचार करना है सभी सदस्य देश समिति के सदस्य देश की समिति के सदस्य होते है।

व्यापार नीति समीक्षा समिति (TPRB) का कार्य सदस्य राष्ट्रों की व्यापार नीति की समीक्षा करना है सभी बडी व्यापारिक शक्तियों की व्यापार नीति की दो वर्ष में एक बार समीक्षा की जाती है संगठन के जो सदस्य राष्ट्र इस समिति के सदस्य होते है इसके अतिरिक्त विश्व व्यापार अन्य महत्वपूर्ण समितियॉ –वस्तु परिषद (Council for Trade in sermvices)सेवा

व्यापार परिषद् (Council for Trade in Services) तथा बौद्धिक अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी व्यापार परिषद् आदि है।

24.3.4 विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता एवं मुख्यालय

अगस्त 2012 तक WTO की सदस्य संख्या 157 हो गई थी वर्तमान में विश्व के लगभग 30 अन्य देश WTO के सदस्य बनने की प्रक्रिया में है प्रशांत महासागर स्थिर छोटा द्वीपीय राष्ट्र वनुआतु (Vanuatu) इस संगठन का 157वॉ सदस्य 24 अगस्त 2012 को बनाया गया है इसी प्रकार रूस को 22 अगस्त, 2012 करे इाकी 156वीं सदस्यता प्रदान की गई थी, डब्ल्यू0टी0ओ0 का सदस्य बनने से न केवल इन देशों ने विदेशी व्यापार व सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वृद्धि होगी, बल्कि विश्व के अन्य देश भी इससे लाभान्वित होंगे यूरोपीय संघ जिसका रूस तीसरा बडा व्यापारिक भागीदार है, के अनुसार रूस के जीडीपी में अगले तीन वर्षो में औसतन 3.3 प्रतिशत की वृद्धि इस सदस्यता के परिणामस्वरूप सम्भावित है

उल्लेखनीय है कि डब्ल्यू0टी0ओ0 की सदस्यता के पश्चात रूस को अब अपने बाजार में विदेशी कम्पनियों व उत्पादों के प्रवेश के लिए नियमों व कानूनों को उदार बनाना होगा अपने प्रमुख आयातों के लिए आयात शुल्क में 5.9 प्रतिशत कटौती के लिए स्वीकृति रूस ने डब्ल्यू0टी0ओ0 को दी है लगभग 18 वर्ष तक चली वार्ताओं के पश्चात् रूस को डब्ल्यू0टी0ओ0 की सदस्यता अब प्राप्त हुई है तथा विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से यही देश इसकी सदस्यता से अभी तक वंचित था ।

24.4.5विश्व व्यापार संगठन के मूल सिद्धान्त

विश्व व्यापार संगठन एक वैधानिक संगठन है जिसमें अनेक व्यवस्थाऐं हैं जो नियमानुसार कार्य करती है और देशों पर बाहयकारी होती हैं। विश्व व्यापार संगठन के तहत विवादो का निपटारा आम सहमति से होता है न कि बहुमत के आधार पर। यदि किसी विषय पर आम सहमति न बन पाये तो वोट के आधार पर निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक सदस्य देश को एक वोट प्राप्त होता है, पर विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्थाओं की व्याख्या तथा किसी सदस्य देश के दायित्वों की कटौती के सम्बन्ध में निर्णय के लिए बहुमत का मतलब सदस्यों की तीन चौथाई संख्या से होगा। विश्व व्यापार संगठन के चार मूल सिद्धान्त हैं–

(1) आन्तरिक उद्योगों की सुरक्षा को ध्यान में रखकर मात्रात्मक प्रतिबन्धों जैसे कोटा पर रोक।

(2) टैरिफ बाइन्डिंग या सदस्यों द्वारा यथा सम्भव तटकरों में कमी लाना।

(3) सर्वाधिक समर्थित राष्ट्र का दर्जा (Most Favoured National MFN) जिसका अर्थ यह है कि विश्व व्यापार संगठन का एक सदस्य देश दूसरे सदस्य को व्यापार में जो सुविधा देता है वह सुविधा अन्य देशों को स्वतः मिल जाती है। पर MFN के दो प्रमुख अपवाद हैः–

(क) यदि कुछ सदस्य देश आर0टी0ए0, एफ0टी0ए0 या अन्य किसी ऐसे समूह का गठन करते हैं और कुछ सुविधा का परस्पर आदान प्रदान करते है जो इस समूह

के बाहर के विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों को उपलब्ध नहीं होते तो इसे MFN विरोधी नही माना जाएगा।

(ख) जेनेरलाइजड सिस्टेम आफ प्रेफरेन्सेज (GSP) जिसके तहत विकसित देश विकासशील या अल्पविकसित देशों को ही कुछ सुविधा दे सकते हैं, इसका सम्बन्ध अन्य देशों से नहीं होगा।

(4) राष्ट्रीय समानता का सिद्धान्त जो यह स्थापित करता है कि किसी देश में सदस्य देश से आयातित वस्तु के साथ वह देश वही व्यवहार करेगा जो वह अपने देशों में अपनी वस्तुओं के साथ करेगा।

इन नियमों के अतिरिक्त दो तथ्यों या नियमों का उल्लेख जरूरी होगा। पहला विश्व व्यापार संगठन प्रतिबन्धात्मक सब्सिडी या एसी सब्सिडी जो अप्रत्यक्ष रूप से आयात को हतोत्साहित करती हो, को समाप्त करने की व्यवस्था देता है, यह व्यवस्था उन देशों में नहीं लागू होता है जिसकी प्रतिव्यक्ति आय 1000 अमेरिकी डालर से कम है। दूसरा, अनुमोदित सब्सीडी, यदि इस प्रकार की सब्सीडी दूसरे देश के व्यापार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के लिए की गई है, या बाजार प्राप्त करने के लिए की गई है जिसे हम डम्पिंग कहते हैं तो यह प्रतिबन्धित है, और दूसरा देश इस प्रकार की ड्यूटी के प्रभाव को निरस्त करने के लिए प्रतिसन्तुलनकारी ड्यूटी लगा सकती है।

24.4 विश्व व्यापार संगठन का मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

1995 में स्थापन के बाद से मंत्रिस्तर के नौ सम्मेलन हो चुके हैं –सिंगापुर (9–13 दिसम्बर, 1996), जेनेवा (18–20 मई, 1998); सिएटल (30 नवम्बर –3 दिसम्बर, 1999); दोहा (9–14 सितम्बर, 2001); कैनकुन (10–14 सितम्बर, 2003), हांगकांग (13–18 दिसम्बर, 2005), जेनेवा (30 नवम्बर–2 दिसम्बर 2009) तथा जेनेवा (15–17 दिसम्बर, 2011) में प्रथम सिंगापुर मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में WTO के इच्छुक सदस्यों ने सूचना प्रौद्योगिकी और उन चार मुद्दों पर वार्ता की जिन्हें सिंगापुर मुद्दे कहा गया ये हैं– व्यापार और निवेश में सम्बन्ध व्यापार और प्रतियोगिता नीति में सम्पर्क, सरकारी खरीद में पारदर्शिता और व्यापार का सरलीकरण द्वितीय जेनेवा सम्मेलन का आयोजन उस समय किया गया जब गैर–बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था की 50वीं जयंती मनाई जा रही थी तृतीय सिएटल मंत्री –सम्मेलन मंत्रियों द्वारा अंगीकार किए जाने वाली घोषणा पर सहमति के बगैर ही विफल हो गया।

विश्व व्यापार संगठन का चौथा दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

दोहा मंत्रिस्तरीय सम्मेलन ने एक व्यापक कार्ययोजना स्वीकार की जिसे दोहा विकास एजेंडा कहा गया इसके जरिए कुछ मुद्दों पर वार्ताएं शुरू की गई और कृषि तथा सेवाओं पर कुछ अतिरिक्त मापदण्ड और समय–सीमाए तय की गई ॅज्ः फैसलों के अनुरूप ये 1 जनवरी 2000 से लागू हो गए दोहा के इस सम्मेलन ने ट्रिप्स समझौता सार्वजनिक स्वास्थ्य और कार्यान्वयन सम्बन्धी मुद्दों और चिन्ताओं पर एक घोषणा भी जारी की

विश्व व्यापार संगठन का पांचवॉ कैनकुल मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

थ्वकास को **WTO** के चौथे दोहा मंत्रिस्तरीय बैठक हुई यह स्पष्ट हुआ कि वास्तव में ऐसा नहीं था विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण सभी विषयों, जैसे ट्रिप्स सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यान्वयन मुद्दे और विशेष एवं विशिष्ट व्याहार की दोहा में निर्धारित अंतिम समय सीमा बीत गई ।

दोहा घोषणा–पत्र के अनुच्छेद 6 में **WTO** के सदस्य देशों की फार्मास्यूटिकल सैक्टर में अपर्याप्त या नही ंके बराबर उत्पादन क्षमता और विपणन में ट्रिप्स के तहत् अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली के प्रभावी प्रयोग से जुडी समस्याओं को स्वीकार किया गया है, इस संदर्भ में ॅज्व की महापरिषद् ने अपने 30 अगस्त 2003 के फैसले में ऐसे देशों के लिए अनिवार्य लाइसेंस व्यवस्था के तहत् फार्मास्यूटिक पदार्थो के उत्पादन और निर्यात की अनुमति दे दी है कैनकुन से पहले अमरीका और यूरोपीय संघ ने कृषि पर वार्ता के तौर–तरीकों के बारे में एक संयुक्त आवेदन दिया जो उनके निजी–स्वार्थ पर आधारित था और जिसमें विकासशील देशों की चिन्ताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था।

इसमें व्यापार बिगाडने वाली निर्यात सब्सिडी और घरेलु सहायता की समाप्ति पर सहमत होने की अनिच्छा दिखई गई थी और कहा गया था कि विकासशील देश शुल्क में काफी कटौती करें, ताकि विकसित देशों को बाजार सुलभ हो सके इसके कारण विकासशील देशों का एक नया गठबंधन पैदा हुआ जिसे जी–20 कहा जाता है इसने कैनकुन में कृषि पर बातचीत को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

विश्व व्यापार संगठन के मंत्रिस्तरीय सम्मेलन		
सम्मेलन	**वर्ष**	**स्थान**
पहला	9–13 दिसम्बर, 1996	सिंगापुर
दूसरा	18–20 मई, 1998	जेनेवा
तीसरा	30 नवम्बर–3 दिसम्बर, 1999	सिएटल
चौथा	9–14 नवम्बर, 2001	छोहा (कतर)
पांचवॉ	10–14 सितम्बर, 2005	कैनकुन (मेक्सिक)
छठवॉ	13–18 दिसम्बर, 2005	हांगकांग (चीन)
सातवॉ	30 नवम्बर,–2 दिसम्बर, 2009	जेनेवा
आठवॉ	15–17 दिसम्बर, 2011	जेनेवा
नौवॉ	दिसम्बर, 2013	बाली

कैनकुन मंत्रिस्तरीय सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसा मंच बनाना था जहॉ दोहा के सभादेश वाले वर्क प्रोग्राम के अन्तर्गत वार्ता की प्रगति की समीक्षा की जानी थी, आवश्यक दिशा–निर्देश दिए जाने थे और सिंगापुर मदों की स्थिति पर भी चर्चा की जाी थी इस सम्मेलन ने विकसित देशों को यह साबित करने के पर्याप्त अवसर दिए कि वे दोहा कार्ययोजना के विकास पक्ष पर गम्भीरता से काम कर रहे है, लेकिन दो अति विवादास्पद मुद्दों पर **विश्व व्यापार संगठन** सदस्यों के महत्वाकांक्षा स्तर को लेकर गम्भीर मतभेदों के चलते कैनकुन मंत्रिस्तरीय सम्मेलन बहुत जटिल हो गया सम्मेलन के अध्यक्ष ने 13

सितम्बर, 2003 को मसौदे का जो संशोधित मूल पाठ वितरित किया यह असंतुलित था और विकासशील देशों के हितों के एकदम खिलाफ था इसी कारण विकासशील देशों ने इसका जमकर विरोध किया और परिणामस्वरूप मंत्रिस्तरीय सम्मेल का घोषण पत्र पारित नहीं हो सका।

विश्व व्यापार संगठन का छठवॉ हांगकांग मंत्रिस्तरीय सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन के 13–18 दिसम्बर, 2005 को हांगकांग (चीन) में सम्पन्न छठे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में विकासशील देशों ने ग्रांड एलायंस (जी–110) बनाकर एकजुटता प्रदर्शित की जिससे विकसित देशों को कृषि सब्सिडी समाप्त करने को सहमत होना पडा साथ ही औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क से जुडे मुद्दों पर भी विकासशील देशों को कुछ राहत प्रदान करने को विकसित देश सहमत हुए इससे वर्ष 2006 के अंत तक नए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया 6 दिन चले ˘TO सम्मेलन में कृषि सब्सिडी औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क व सेवाओं के व्यापार आदि संवेदनशील मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच कशमकश की स्थिति बनी रही तथा अंतिम दिन (18 दिसम्बर, 2005 को) ही इन मुद्दों पर सहमति बन सकी जिसके पश्चात हांगकांग घोषणा–पत्र जारी किया गया सम्मेलन में स्वीकार किए गए इस घोषणा–पत्र में विकसित देश अपनी कृषि निर्यात सब्सिडी को चरणबद्ध तरीके से 2013 तक पूर्णतः समाप्त करने को सहमत हुए कृषि बाजार समझौते में विकासशील देशों के लिए पर्याप्त ढील की व्यवस्था की गई इसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि भारत जैसे विकासशील देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं को˘ज्ट के नियमों की परिधि से बाहर रखा गया, कृषि उत्पादों के आयात में उछाल से इन उत्पादों के मूल्यों में विशेष गिरावट की स्थिति में जिन विशेष रक्षात्मक उपायों की मॉग भारत व अन्य विकासशील देशों ने की थी, उन्हें भी घोषणा पत्र में शामिल किया गया!

विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती (Non-Agricultural Market Access-NAMA) के सम्बन्ध में छूटा है।पर भारतीय वाणिज्य मंत्र स्पष्ट शब्दों में कहा कि दृक्र के विकास उद्देश्यों को जाना अथवा उनकी उपेक्षा विकासशील देशों के लिए चिन्ता DFQF, SSM, कपास, Quetiosion, मत्स्यकी सब्सिडीज ,TRIPS-CBD सम्बन्ध सहानुभूतिपूर्वक विचार किए जा सकता

24.5 विश्व व्यापार संगठन तथा विवादास्पद मुद्दे

विवादास्पद मुद्दों की चर्चा के पूर्व उन मुख्य क्षेत्रों का उल्लेख जरूरी है जिन पर व्यापक समझौते हो चुके हैं। ये क्षेत्र निम्नांकित है :–

(1) व्यापार सम्बन्धी विनियोग उपायों पर समझौता (Trade Related Investment Measures – TRIMs)

(2) सेवा व्यापार पर आम समझौता (General Agreement on Trade in Science – GATS)

(3) व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPs)

(4) वस्त्र व्यापार समझौता तथा 1 जनवरी 2005 से मल्टीफाइवर एग्रीमेन्ट की समाप्ति तथा वस्त्र व्यापार की पूर्ण स्वतंत्रता।

विश्व व्यापार संगठन का प्रमुख कार्य पूरे विश्व में एक बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली विकसित करना है। जिससे सदस्यों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी प्रकार का अवरोध या विभेद न हो, उनके बीच समुचित प्रतिस्पर्धा का वातावरण कायम रहे। उसका उद्देश्य एक व्यापक तथा नियम आधारित व्यवस्था विकसित करनी है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सभी देश बिना किसी विभेद के लाभान्वित हो सकें। पर विभिन्न देशों के बीच परस्पर टकराव स्वाभाविक है क्योंकि सभी देश विश्व मंच पर तो स्वतंत्र व्यापार की हिमायत करते हैं पर जब अपनी बात आती है तो अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए हर प्रकार के व्यापार प्रतिबन्ध को उचित ठहराते हैं। इस मतभेद का लाभ ज्यादातर विकसित देशों को मिलता है क्योंकि विकसित देशों की समझौता की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक है।

विश्व व्यापार संगठन का प्रथम सम्मेलन सिंगापुर में सन् 1996 में हुआ। इस सम्मेलन में प्रतिस्पर्धा, विनियोग, सरकारी क्रय मे पारदर्शिता तथा व्यापार में सहूलितय देने के प्रयास जैसे मुद्दों पर आम सहमति नहीं बन पायी। विकासशील देश इन मुद्दों को व्यापार के साथ जोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि वे यह मानते थे कि इन मुद्दों को व्यापार से जोड़ने पर उनका अहित होगा तथा लाभ विकसित देशों को मिलेगा।

इसके अतिरिक्त तीन और मुद्दे ऐसे हैं जिन पर विकसित तथा विकासशील देशों के बीच कोई आम सहमति नहीं बन पायी है। दोनों पक्ष अपने अपने तर्क पर अड़े हुए हैं। ये हैः–

(क) **कृषि सम्बन्धी मुद्दे–** इससे सम्बन्धित मद्दे मुख्यतया कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी तथा उसका देशों की निर्यात प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित हैं। विकासशील देशों का यह मानना है, जो सही है, कि विकसित देश अपने कृषि क्षेत्र को बहुत अधिक मात्रा में सब्सिडी तथा अन्य सुविधायें देते हैं, जिससे उनकी कृषि वस्तुओं की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ जाती है। ऐसा नहीं है कि विकासशील देश सब्सिडी नहीं देते पर उनकी सब्सिडी देने की क्षमता तथा सब्सिडी की मात्रा इतनी कम है कि वे विकसित देशों से प्रतिस्पर्धा कर ही नहीं सकते। विकसित देश विकासशील देशों से आने वाली वस्तुओं पर आयाता शुल्क लगाकर घरेलू उत्पादन को लाभ पहुँचा सकते है। सब्सिडी को व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से पाँच भागों में बाँटते हैं–

(1) **ग्रीन बाक्स सब्सिडी–** वे सब्सिडी हैं जिनका उत्पादन तथा व्यापार पर सबसे कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत शोध के सम्बन्ध में सब्सिडी या सरकारी कार्यक्रम, पर्यावरण संरक्षण, कृषकों को दी जाने वाली नकद सहायता, पुशधन संरक्षण आदि आते हैं। इन्हें हम तटस्थ सब्सिडी भी कहते हैं। इसलिए इन्हें सब्सिडी कम करने के अन्तर्गत नहीं रखते।

(2) **ब्ल्यू बाक्स सब्सिडी–** ये वे सब्सिडी हैं जो व्यापार को विकृत करती है। इसके अन्तर्गत सब्सिडी नकद रूप के कृषक क्षतिपूरक सहायता के रूप में दी जाती है जो बाजार मूल्य तथा न्यूनतम समर्थित कीमत के अन्तर के बराबर होती है।

(3) **अम्बर सब्सिडी–** ये व्यापार को सबसे प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। कोई भी सदस्य अपनी सब्सिडी नीति से अन्य सदस्यों के हितों को प्रतिकूलरूप से प्रभावित

नहीं कर सकता। ये ऐसी सब्सिडी है जो बिल्कुल मना तो नहीं है, पर इनके विरूद्ध कार्यवाही की जा सकती है।

(4) **डी मिनीमिस सब्सिडी–** विकसित देश कृषि उत्पादन के मूल्य के 5 प्रतिशत तक तथा विकासशील देश 10 प्रतिशत तक सहायता दे सकते हैं इन्हें भी सब्सिडी घटाने में आकलित नहीं करते।

(5) **रेड सब्सिडी–** ऐसी सब्सिडी जो बिल्कुल प्रतिबन्धित हो। जैसे सब्सिडी उस दशा के अन्तर्गत प्रदान करना जिससे कोई व्यक्ति आयातित वस्तु की तुलना में घरेलू वस्तु का उपभोग करें।

उल्लेखनीय है कि यू0एस0ए0 यूरोपीय यूनियन तथा जापान जहाँ एक ओर विकासशील देशों से आने वाली कृषि वस्तुओं के आयात पर बहुत ऊँचा आयात शुल्क लगाते हैं वहीं सेनेटरी तथा फाइटो सेनेटरी जैसे स्वास्थ्य सम्बन्धी मापदण्ड आधारों पर इन देशों के आयात के सम्बन्ध में गैर प्रशुल्क बाधायें भी खड़ा करते हैं। ऐसी स्थिति में विकासशील देश जैसे भारत यह मांग करते हैं कि विकसित देश अपनी कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी कम करें तथा उनकी वस्तु पर आयाम शुल्क नहीं लगायें जिससे उनके बाजार में वृद्धि हो क्योंकि विकासशील देशों के उत्पादन लागत कम होती है पर विकसित देश ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हैं और सब्सिडी घटाने के सम्बन्ध में वे सौदा करते हैं कि विकासशील देश बदले में औद्योगिक या निर्मित वस्तुओं पर से टैरिफ की दर घटायें जिसके लिए विकासशील देश तैयार नहीं हैं। इस दिशा में दो व्यवस्थायें उल्लेखनीय हैं– एक तो यह व्यवस्था की गयी है कि विकासशील देश कुछ विशेष वस्तुयें चुनें जो खाद्य सुरक्षा ग्रामीण तथा कृषि विकास के लिए आवश्यक है जिससे उन वस्तुओं के सम्बन्ध में उन देशों को अधिक संरक्षण प्राप्त हो सके जैसे भारत के सम्बन्ध मे चमड़ा जूता, वस्त्र, मछली, उत्पाद आदि। दूसरे हांगकांग सम्मेलन में यह व्यवस्था की गयी कि वे शुल्क मुक्त तथा कोटा मुक्त निर्यात कर सकते हैं पर अब भी कृषि वस्तुओं पर सब्सिडी की समस्या विवाद का मुद्दा बनी हुयी है।

(ख)गैरकृषिगत बाजार पहुंच (Non agriculture goods accessible to market NAMA)– दूसरा विवादास्पद मुद्दा यह है कि टैरिफ की ऊपरी सीमा रखी जाये, टैरिफ की दर को कैसे घटाया जाय और कौन देश कितनी कटौती करे।

इसके समाधान के सम्बन्ध में दो सूत्र सामने आये। एक फार्मूला का सुझाव G-20 के देशों ने दिया जिसमें अलग अलग प्रशुल्क दरों के रेन्ज में अलग अलग कटौतियाँ करने का सुझाव रखा गया, जिसकी टैरिफ दर जितनी ही ऊँची होगी उसकी दर भी उतनी ही ऊँची होगी।

प्रशुल्क कटौती के सम्बन्ध मे अधिक ग्राहय फार्मूला स्विस फार्मूला के रूप में आया जो इस प्रकार हैं–

$$t_1 = \frac{a \times t_0}{a + t_0} \times t_1$$

जिसे t_1 = मूल्यानुसार रूप में अंतिम प्राप्य दर

a = देशों या समूहों द्वारा आपस में निर्धारित शुल्क

और t_0 = आधार या प्रारम्भिक प्रशुल्क दर।

ज्ञातव्य है कि विकाशसील देश ऊंचा गुणांक पसन्द करेंगे क्योंकि इस स्थिति में उनकी अन्तिम प्रशुल्क दर ऊंची हो सकेगी। पर विकसित देश छोटा गुणांक नहीं रखना चाहेंगे क्योंकि इस स्थिति में अंतिम प्रशुल्क दर काफी नीची आयेगी। इस खिंचातानी के परिणामस्वरूप यह अवरोध कायम है।

(ग)सेवा क्षेत्र जन्य विवाद– विश्व व्यापार संगठन के सेवाओं के क्षेत्रगत वर्गीकरण के अन्तर्गत शैक्षणिक सेवाओं का जिक्र मिलता है जिसके 5 उप क्षेत्र है। वस्तुओं तथा सेवाओं की विशेषताओं की भिन्नतायें उन मोड या रास्तों को प्रभावित करती हैं। जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में वस्तुओं का भौतिक गमन आवश्यक है, सभी सेवाओं के सम्बन्ध में ऐसा आवश्यक नहीं है।

सेवा व्यवहारों के सम्बन्ध में चार प्रकार के मोड हो सकते हैं। मोड को आवश्यक रूप से सेवा आपूर्तिकर्ता तथा उपभोक्ता के मूल तथा उस समय जबकि सेवा की डिलीवरी हुयी टेरीटोरियल प्रेजेन्स की मात्रा तथा प्रकार के रूप में परिभाषित किया जाता है।

मोड–1 इसके तहत सेवा–उत्पाद का भौतिक गमन सीमा के आर–पार होता है (जैसे सूचनायुक्त फ्लापी का आदान–प्रदान बिजनेस प्रासेस आउट सोर्शिंग आदि। इसके दो रूप हो सकते है। प्रथम विश्वविद्यालय या मुक्त विश्वविद्यालयों द्वारा प्रिन्ट, टेलीकम्युनिकेशन या कम्प्यूटर डिसकस के द्वारा या सभी द्वारा डिस्टैन्स शिक्षा उपलब्ध कराना। दूसरा विश्वविद्यालयों तथा मुक्त विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त शोध संसाधनों द्वारा सेवा का निर्यात। भारत के लिए मोड 1 अधिक लाभकारी है क्योंकि इनके माध्यम से भारत में ही रोजगार के अवसर बढ जाते हैं।

मोड–2 सेवा निर्यातक देश में उपभोक्ताओं का गमन जैसे किसी सेवा निर्यातक देश में डॉक्टर की सेवाओं को प्राप्त करने के लिए स्वयं मरीज या सेवा उपभोक्ता का निर्यातक देश को जाना, ऐसी सेवाओं में हम पर्यटन को भी रख सकते है।

मोड–3 जिसे देश में सेवा उपलब्ध करानी हो उस देश में एक वाणिज्यिक इकाई या संस्था स्थापित करना जैसे बैंकिंग सेवा या बीमा सेवा प्रदान करने के लिए सेवा आयातक देश में बैंक को स्थापित करना इस मोड में पूँजी की गतिशीलता भी सम्मिलित होती है, भारत को योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, संस्कृति आदि में प्रतिस्पर्धात्मक लाभ की स्थिति प्रदान है। ये मोड 3 के अन्तर्गत आते हैं इनको विकसित करके भारत अपना सेवा निर्यात बढ़ा सकता है।

मोड–4 किसी देश से नेचुरल परसन जैसे किसी योग विशेषज्ञ द्वारा विदेशों में लेक्चर देने जाना, का स्थायी गमन मोड 4 के अन्तर्गत आता है। मोड 4 में हम श्रम को गतिशीलन को रख सकते है।

इन सभी मुद्दों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये जिससे विकसित तथा विकासशील देशों के बीच टकराव को न्यूनतम करके एक समाधान पाया जा सके वार्ताओं की जो श्रृंखला शुरू हुई उसमें अवरोध ज्यादा आये। भारत ने अपने तथा कृषि प्रधान विकासषील देशों के अल्प आय तथा अल्प साधनों वाले गरीब कृषकों के हितों को सबसे ऊपर रखा। इस सम्बन्ध में भारत ने स्पष्ट किया कि किसी अन्य जगह होने वाले लाभ को इसके साथ जोड़ा नहीं जा सकता है। भारत ने अन्य विकासषील देशों के हित को ध्यान में रखते हुए जो कदम उठाए उनकी प्रमुख बातें इस प्रकार हैः–

कृषि से जुडें मुददें

(1)विकासशील देशों के लिए कृषि वस्तुओं के सम्बन्ध में बाउन्ड दर पर टैरिफ में कटौती 36 प्रतिषत से अधिक नहीं होना चाहिये।

(2)खाद्य सुरक्षा जीवन निर्वाह सुरक्षा तथा ग्रामीण विकास की आवश्यकता को अपने से निर्धारित किये जाने वाले विशिष्ट उत्पादों के सम्बन्धों में निर्देषक तत्व के रूप में लिया जाना चाहिये। जी–33 ने इन उत्पादों पर 20 प्रतिषत की टैरिफ कटौती नहीं होनी चाहिये। भारत ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि इसके अन्तर्गत बहुत सी संवेदनशील वस्तुओं पर चालू टैरिफ दर कम करना होगा।

(3)यू0एस0ए0 के सम्बन्ध में 70–75 प्रतिशत तथा यूरोपियन यूनियन द्वारा 75–80 प्रतिषत घरेलू सब्सिडी तथा सहायता में सहायता में कटौती तथा न्यू ब्लू बाक्स तथा ए0एम0एस0 पर ऊपरी सीमा पर निर्धारित गैर कृषि बाजार पहुँचा।

(4)स्विस गुणांक में ऐसा गुणांक चुनना जो पूर्ण अनुक्रियात्मकता (Reciprocity) सुनिश्चित करें। यह सुझाव कि विकासशील देशों के सम्बन्ध में यह गुणांक 19–23 हो तथा विकसित देशों के सम्बन्ध में 8–9 हो, यह विकासशील देशों को मान्य नहीं है।

विश्व व्यापार संगठन अन्तर्रष्ट्रीय व्यापार को बढावा देने में तथा विकासशील देशों की प्रगति में एक अहम भूमिका अदा करता है। एम0टी0एम0 के आठ सफल दौर के परिणाम स्वरूप अन्तर्रष्ट्रीय व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों में कमी आई है। विश्व व्यापार 1947 से 1973 के मध्य औसत 8 प्रतिषत वार्षिक की रफ्तार से बढ़ता रहा। विश्व बाजार में तेल की कीमतों का असर व्यापार पर भी देखा गया तथा 1973–80 के मध्य यह 3.77 वार्षिक की रफ्तार से बढ़ा। 1980–90 में यह रफ्तार 4.37 रही तथा 1990–99 के मध्य यह 6.5 प्रतिषत रही। इस समस्त अवधियों में व्यापार की रफ्तार विश्व उत्पादन से अधिक रहा।

भारत सहित विभिन्न विकासशील देशों ने अपनी आन्तरिक नीतियों के कारण विश्व व्यापार में आये बदलाव का पूरा फायदा नहीं उठाया। गैट समझौते के लागू होने के दौरान इन देशों की प्रायः उपेक्षा की गई तथा इनके उत्पादों को विश्व व्यापार में अधिक महत्व नहीं दिया गया। इसका प्रमुख कारण विश्व व्यापार में विकसित देशों का प्रभुत्व था। परन्तु विश्व व्यापार संगठन के आने बाद विकासशील देशों के हितों को ध्यान में रखा गया और उनके उत्पादों को विश्व व्यापार में अच्छा मूल्य मिलने लगा। साथ ही, उन देशों का उन दबाओं की उपलब्धता बढ़ाई गई जो जीवन रक्षक हैं और जिनका उत्पादन ये देश तकनीक के अभाव अथवा पेटेन्ट के कारण कर पाने में असमर्थ थे। अतः यह कह सकते है कि विश्व व्यापार संगठन से विकासशील देशों को लाभ पहुँचा है।

24.6 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को निपटाने में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका

विश्व व्यापार संगठन सदस्य देशों के मध्य व्यापार से सम्बन्धित विवादों को दूर कराने का प्रयास करती है। बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था में विवादों को दूर करना ही विश्व अर्थव्यवस्था की सफलता मानी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद प्रमुख रूप से विश्व व्यापार संगठन द्वारा जारी नियमों के उल्लंघन के कारण उत्पन्न होते हैं। सदस्य देशों की यह नीति रहीं है कि यदि कोई देश निर्धारित नियमों का उल्लंघन करते हैं तो बहुपक्षीय आधार पर उन विवादों का निस्तारण किया जाय।

गैट समझौते के दौरान अन्तर्रष्ट्रीय विवादों को निपटाने की कोई स्पष्ट रणनीति नहीं थी, परन्तु ऊरूग्वे दौर में एक व्यवस्थित प्रक्रिया द्वारा विवादों को एक निष्चित समय सीमा के अन्दर निपटाने की बात कही गई।

उसी प्रकार गैट समझौते के दौरान कोई भी सदस्य देश यदि किसी निर्णय से असहमत हो तो वह उस निर्णय के क्रियान्वयन पर रोक लगा सकता था। परन्तु नई व्यवस्था के अन्तर्गत यह रोक तभी लगाई जा सकती है जब सभी सदस्य देशों के बीच आम सहमति हो।

विवादों के निपटारे की जिम्मेदारी विवाद निस्तारण प्रभाग (Dispute Settlement Body) की होती है जिसमें विश्व व्यापार संगठन के समस्त सदस्य देश शामिल होते हैं। अतः प्रभाग द्वारा किसी मुद्दे पर लिये गये निर्णय सर्वमान्य होते है।

जनवरी 1995 से मई 2013 के मध्य विश्व व्यापार संगठन की मध्यस्तता से कुल 459 विवादों का निपटारा किया गया है। ये विवाद एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, यूरोप महाद्वीप के देशों तथा आस्ट्रेलिया से सम्बन्धित हैं।

पशुधन उत्पाद के आयात, राशिपातन, वस्त्र मे विवाद –उत्पादन तथा उनके निर्यात, बायोडीजल के आयात, तम्बाकू उत्पादों की पैकिंग तथा उनके ट्रेडमार्क, पोल्ट्री उत्पादों के आयात, वाहन के पुर्जों के आयात आदि से सम्बन्धित हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

(क) गैट का समझौता किन सिद्धान्तों पर आधारित था?
(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. में मन्त्री –स्तरीय सम्मलेन क्या है?
(ग) गैट की स्थापना क्यों की गयी है?
(घ) गैट के आठवें दौर के मुख्य विषय का उल्लेख कीजिए।

2. सत्य/असत्य बताइयेः

(क) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का विचार गैट के आठवें उरूग्वे दौर में किया गया था।

(ख) कृषि परिदान में कटौती करने के लिए अमेरिका ने ग्रीन बाक्स और ब्ल्यू बाक्स जैसे प्रावधान कर रखें हैं ।

(ग) डब्ल्यू.टी.ओ. का आरम्भिक मंत्री –स्तरीय सम्मेलन जिनेवा में हुआ था।

(घ) विश्व व्यापार संगठन के सभी सदस्य सभी परिषद एवं सभी समितियों में भाग ले सकते हैं ।

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः

(क) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का आधार है–

(अ) अंक्टाड (ब) संयुक्त राष्ट्र संघ

(स) विश्व बैंक (द) गैट

(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. की स्थापना कब हुई थी?

(अ) 1995 (ब) 1947

(स) 1955 (द) 1994

(ग) डब्ल्यू.टी.ओ. प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है–

(अ) मंत्री –स्तरीय सम्मेलन (ब) सामान्य परिषद्

(ब) विवाद निपटान संस्था (द) गैट

(घ) डब्ल्यू. टी.ओ. के निम्न सम्मेलनों में कौन सा सम्मेलन दोहा सम्मेलन है–

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

(ङ) डब्ल्यू.टी.ओ. के किस सम्मेलन में चाईना और ताइवान को डब्ल्यू.टी.ओ. का सदस्य बनाया गया–

(अ) सिएटल (ब) दोहा

(स) कानकुन (द) हांगकांग

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्नः

(क) विश्व व्यापार संगठन के मंत्री –स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में क्या शामिल है ।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, बहुपक्षीय निवेश गारण्टी एजेन्सी तथा निवेश विवादों के निबटारे का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र। उपर्युक्त चार संस्थाओं को क्या कहा जाता है?

(ग) विश्व व्यापार संगठन किससे अभिप्रेरित है?

(घ) विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय कहाँ पर स्थित है ?

5. रिक्त स्थान भरिएः

(क) ब्रेटन–वुड्ज सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और ... की स्थापना की गयी।

(ख) विश्व बैंक 25 जून 1946 से कार्य प्रारम्भ कर दिया जबकि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष .... से कार्य प्रारम्भ किया।

(ग) विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष दोनों संस्थाओं की स्थापना .... को हुई।

(घ) मंत्री स्तरीय सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की .... प्राधिकार है ।

24.7 सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से गैट समझौते के महत्वपूर्ण पहलू तथा बदलती परिस्थितियों में समय उपरान्त विश्व व्यापार संगठन के उत्पत्ति से आप अवगत हुए हैं। उसी प्रकार, गैट समझौते के प्रारूप में जिन परिवर्तनों के उपरान्त विश्व व्यापार संगठन की कार्यप्रणाली एवं उसके अधिकार तय किये गये, उनसे भी आप परिचित हुए। पूर्व काल में अन्तर्रष्ट्रीय व्यापार में विकसित देशों का वर्चस्व रहा तथा व्यापार की शर्तें विकासषील देशों के विरूद्ध रहीं। विकासषील देश प्रायः कच्चे माल का निर्यात करते थे तथा तैयार माल का आयात करते थे जबकि विकसित देश तैयार माल का निर्यात करते थे। परिणामस्वरूप, विकासषील देशों के भुगतान शेष में ज्यादातर घाटे की स्थिति बनी रही। साथ ही, ये देश निर्यात संवर्धन पर अधिक बल न देकर आयात प्रतिस्थापन पर ध्यान केन्द्रित करते रहे। जिसके कारण बदलते परिवेश का लाभ उठाने में वे असमर्थ रहे। विकसित देशों द्वारा विकासषील देशों के व्यापार में कई प्रकार के व्यवधान उत्पन्न किये गये जिन्हें विश्व व्यापार संगठन ने परस्पर सहमति से दूर करने का प्रयास किया।

इसके अतिरिक्त विकासशील देशों के निर्यात का समुचित मूल्य दिलवाना, पेटेन्ट अवस्था में उनके हितों की रक्षा करना, तथा उन्हें जीवन रक्षक औषधियां उचित मूल्य पर उपलब्ध करवाना विश्व व्यापार संगठन की जिम्मेदारी है। विकसित देशों का संगठन के वर्चस्व होने के बाद भी संगठन का ऐसा प्रयास सराहनीय है।

24.8 शब्दावली

पेटेंट – पेटेंट किसी आविष्कार, डिजाईन आदि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक निश्चित समयावधि के लिए प्रदान किया जाने वाला कानूनी अधिकार है। पेटेन्ट दो प्रकार के होते हैं– प्रक्रिया पेटेन्ट और उत्पाद पेटनेट। प्रक्रिया पेटेन्ट में वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया के लिए पेटेन्ट प्रदान किया जाता है तथा उत्पाद पेटनेन्ट में उत्पाद के मूलभूत अन्वेषक को पेटेन्ट प्रदान किया जाता है । अर्थात् कोई अन्य निर्माता उसी उत्पाद को निर्मित नहीं कर सकता।

सबसे अधिक प्रिय देश –सबसे अधिक प्रिय देश को अनुग्रहीत राष्ट्र का व्यवहार भी कहते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेदभावपूर्ण व्यवहार की समाप्ति हेतु 'सबसे अधिक प्रिय देश' सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश के साथ अन्य देशों के भाँति ही व्यवहार किया जाता है तथा किसी एक सदस्य देश को दी गयी रियायत स्वतः ही अन्य सदस्य देशों के लिए भी उपलब्ध हो जाती ळें

24.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) गैट का समझौता चार महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित था–

(1)विभिन्न देशों के बीच बिना भेद–भाव के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाय।

(2)विदेशी व्यापार को प्रभावित करने हेतु केवल प्रशुल्क–दरों का आश्रय लिया जाय।

(3)एक देश दूसरे देश के लिए क्षतिप्रद नीति अपनाने से पूर्व उस (दूसरे) देश से विचार–विमर्श करे, तथा

(4)ऐसे कदम उठाये जायें जिनसे प्रशुल्क दरों में परस्पर विचार–विमर्श के माध्यम से कमी की जा सके।

(ख) डब्ल्यू.टी.ओ.में मंत्री–स्तरीय सम्मेलन सर्वोच्च संस्था होती है जहाँ पर सदस्य देशों के प्रतिनिधि आर्थिक विकास के बारे में निर्णय लेते हैं।मंत्री –स्तरीय सम्मेलन डब्ल्यू.टी.ओ. की प्रशासक समिति होती है ।

(ग) गैट की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की उदारता की नीति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सन् 1947 में जेनेवा में प्रशुल्क करों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट) के नाम से की गयी ।

(घ) गैट का आठवाँ दौर अन्तिम दौर था इसी दौर में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके अतिरिक्त बौद्धिक सम्पत्ति, विवाद समझौता, प्रशुल्क, गैर प्रशुल्क, उपाय, टैक्सटाइल्स, कृषि आदि से सम्बन्धित निर्णय लिये हैं ।

2. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. (क) द, (ख) अ, (ग) अ, (घ) द, (ङ) ब

4. (क) विश्व व्यापार संगठन के मंत्री –स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में चार मुद्दे शामिल थे, ये हैं– विदेशी निवेश, प्रतिस्पर्द्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता। इन्हीं चार मुद्दों को सिंगापुर मुद्दे के नाम से जाना जाता है ।

(ख) विश्व बैंक समूह

(ग) विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण से अभिप्रेरित है ।

(घ) जेनेवा

5. (क) विश्वबैंक (ख) 1 मार्च, 1947(ग) 27 दिसम्बर, 1945(घ) सर्वोच्च

24.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Mithani, D.M. (2010). "International Economics" Himalaya Publishing House, Mumbai.2.वैश्य, एम.सी. व सिंह, सुदामा (2002). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" सप्तम संस्कण, आक्सफोर्ड एवं आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा.लि., नई दिल्ली।
- अग्रवाल एवं बरला (2008). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- राना, के.सी. व वर्मा, के.एन. (2012). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र"विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

24.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. झिंगन, एम.एल. (2011). "अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" षष्टम संस्करण, वृंदा पब्लिशिंग प्रा. लि., दिल्ली।
2. Salvatore, Dominick (1998) "International Economics" Sixth ed. Prentice Hall, New Jersey.
3. Pugel, A. Thomas (2011). "International Economics" 13th ed. Tata McGraw Hill Educational Pvt. Ltd., New Delhi.
4. Avadhani, V.A. (2012). "International Economics" Eighth Ed. Himalaya Publishing House, Mumbai.

24.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
5. डब्ल्यू.टी.ओ. के विभिन्न वार्ता दौरों का वर्णन कीजिए।
6. डब्ल्यू.टी.ओ. विकासशील देशों को बड़े बाजारों में निर्यात करने की सुविधा देने में क्यों असफल रहा ?

इकाई – 25 वैश्वीकरण : विनिमय बाजार का विकास,यूरों मुद्रा बाजार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

इकाई संरचना

25.1 प्रस्तावना

25.2 उद्देश्य

25.3.1. विनिमय बाजार का विकास

25.3.2 विदेशी भुगतान के साधन

25.3.3 विनिमय बाजार : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

25.3.4 भारत में विनिमय बाजार : स्वतन्त्रता के बाद

25.3.5 भारत में विनिमय बाजार : आर्थिक सुधारों के बाद

25.3.6 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन कानून (फेमा)

25.4.1. यूरो मुद्रा बाजार

25.4.2. यूरो मुद्रा बाजार की विशेषताएं

25.4.3. यूरो मुद्रा बाजार में ऋण एवं जमा

25.4.4. यूरो मुद्रा बाजार और भारत

25.5.1. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

25.5.2. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के प्रकार

25.5.3. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार की रेटिंग

25.5.4. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार एवं भारतीय कम्पनियाँ

25..6. सारांश

25.7. शब्दावली

25.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

25.9. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

25.10. निबन्धात्मक प्रश्न

25.1. प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने विश्व व्यापार तन्त्र का विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में हम वैश्वीकरण के अन्तर्गत विनिमय बाजार का विकास, यूरो मुद्रा बाजार एंव अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अध्ययन करेंगे। खण्ड चार के अध्ययन के बाद आप जान गये होंगे कि विदेशी विनिमय, विनिमय नियंत्रण एवं विदेशी विनिमय बाजार के सिद्धान्त किस प्रकार कार्य करते है। इस इकाई में हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि वैश्वीकरण के बाद व्यवहारिक तौर पर इस दिशा में क्या परिवर्तन हुए है। विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (फेरा) की समाप्ति के बाद विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (फेमा) ने विनिमय बाजार को किस प्रकार प्रभावित किया है।

विश्व पटल पर दिन–प्रतिदिन विषम होती अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या एवं अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय बाजारों में अमेरिकी डॉलर के प्रभुत्व और अन्य मुद्राओं की सापेक्षिक उपेक्षा ने यूरो मुद्रा बाजार को महत्वपूर्ण बना दिया है। 27 सदस्यीय यूरोपीय संघ के 17 देशों द्वारा यूरो मुद्रा बाजार में शामिल होकर यूरोप की सांझी मुद्रा यूरो को स्वीकार्यता प्रदान की है। यूरो मुद्रा बाजार का अध्ययन विकासशील देशों पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में भी होगा। इसी इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के अर्थ, प्रकार एवं अन्र्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में भारतीय कम्पनियों द्वारा दर्ज की गयी उपस्थिति का भी अध्ययन करेंगे।

25.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल होंगे कि–

i. वैश्वीकरण ने विनिमय बाजार को कैसे प्रभावित किया है।

ii. फेरा एवं फेमा मे अन्तर को समझ सकेंगे।

iii. यूरो मुद्रा बाजार की कार्यविधि क्या है?

iv. यूरो मुद्रा बाजार की प्रमुख विशेषतायें कौन–कौन सी है।

v. अन्र्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार को समझ सकेंगे।

vi. अन्र्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार के महत्व को समझेंगे।

25.3.1. विनिमय बाजार का अर्थ

अलग–अलग देशों में अलग–अलग मुद्रा प्रणालियाँ तथा अलग–अलग लेखा–जोखा की इकाईयाँ विद्यमान है इसलिए विदेशी भुगतानों के लिए एक मुद्रा को दूसरी मुद्रा में बदलने की समस्या उत्पन्न होती है। एक देश की मुद्रा दूसरे देश की मुद्रा में परिवर्तन करने का कार्य विनिमय बाजरों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

विदेशी विनिमय बाजार वह स्थान है जहाँ विदेशी मुद्रायें बेची तथा खरीदी जाती है। इस बाजार में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी अपनी–अपनी विदेशी प्राप्तियों को स्वदेशी मुद्राओं में परिवर्तित करते है अथवा स्वदेशी मुद्रा को विदेशी मुद्राओं में परिवर्तित करते है। इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि विदेशी–विनिमय वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से ऐसे दो क्षेत्रों

या देशों के बीच भुगतान सम्पादित होता है जिनमें अलग–अलग चलन प्रणालियां विद्यमान है।

इस बाजार में विदेशी विनिमय की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि आयात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान कर देता है तथा निर्यात करने वाला देश अपने देश की मुद्रा में भुगतान प्राप्त कर लेता है। विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, केन्द्रीय बैंक तथा ट्रेजरी आदि वित्तीय संस्थाओं का समावेश होता है जो इस कार्य में संलग्न रहती है।

25.3.2. विदेशी भुगतान के साधन

जब कोई देश दूसरे देश से माल का आयात करता है तो उसके सामने भुगतान की समस्या आती है यदि आयात करने वाला देश उतने ही मूल्य का निर्यात कर दे तो भुगतान हो जाता है। निर्यात–योग्य वस्तुयें न होने पर उतने ही मूल्य का स्वर्ण निर्यात करने पर भी भुगतान किया जा सकता है किन्तु वर्तमान में भुगतान प्रक्रिया इतनी सरल नही है कि केवल माल अथवा स्वर्ण का निर्यात कर समस्या हल कर ली जाये। भुगतान के लिए विदेशी विनिमय का सहारा लिया जाता है तथा विशेष माध्यमों से भुगतान किया जाता है तथा विशेष माध्यमों से भुगतान किया जाता है जो इस प्रकार है–

i. विदेशी विनिमय बिल– जिस प्रकार विनिमय बिल से आन्तरिक भुगतान किया जाता है, उसी प्रकार जब इसका प्रयोग विदेशी भुगतान के लिए किया जाता है तो इसे विदेशी विनिमय बिल कहते हैं। माल का विक्रय करने वाला जो भुगतान पाने का अधिकारी है, माल क्रय करने वाले (जो भुगतान का देनदार है) को विनिमय–पत्र लिखता है जिसमें यह आदेश होता है कि निश्चित अवधि (90 दिन) के भीतर उसमें उल्लिखित राशि का भुगतान लेनदार को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को कर दिया जाये।

ii. विदेशी विनिमय पत्र–निर्यात करने वाले द्वारा, आयात करने वाले पर लिखा जाता है। स्वीकृत होने के बाद यह विनिमय पत्र अपने ही देश में उन लोगों को बेच दिया जाता है जिन्हें आयात करने वाले देश को भुगतान करना है। यह व्यक्ति इन विनिमय पत्रों को विदेशों में उन व्यक्तियों के पास भेजते हैं जिन्हें वे भुगतान करना चाहते हैं। इन लेनदारों के द्वारा इन विनिमय–पत्रों की राशि उन लोगों से वसूल कर ली जाती है जिन्होंने प्रारम्भ में इसे माल का आयात करने के कारण स्वीकार किया था।

iii. ड्राफ्ट द्वारा भुगतान– बैंक ड्राफ्ट एक बैंक द्वारा अपनी शाखा अथवा अन्य बैंक (जिसके साथ उसका हिसाब रहता है) को लिखा गया आदेश है कि ड्राफ्ट में उल्लिखित राशि का भुगतान (जो ड्राफ्ट जारी करने वाले बैंक में जमा कर दी गयी है) वाहक द्वारा मांग करने पर कर दिया जाये। अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों के लिए भी अन्तर्राष्ट्रीय बैंको अथवा विदेशी विनिमय बैंको द्वारा ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है यदि भारत का व्यापारी इंग्लैण्ड के व्यापारी को भुगतान करना चाहता है तो वह भारत से पौण्ड स्टर्लिंग का ड्राफ्ट लेकर, इंग्लैण्ड के व्यापारी के पास भेज देगा जो वहाँ बैंक की शाखा से उतनी मुद्रा प्राप्त कर लेगा।

iv. साख पत्र– साख–पत्र जारी करने वाल बैंक किसी व्यक्ति को चैक या बिल द्वारा एक निश्चित अवधि में एक निश्चित रकम निकालने का अधिकार होता है। इस साख पत्र के आधार पर निर्यात करने वाला, वस्तुओं का निर्यात कर देता है, क्योंकि भुगतान का दायित्व साख–पत्र जारी करने वाले बैंक का होता है।

इसके अतिरिक्त यात्री चैक, अन्तर्राष्ट्रीय मनीआर्डर आदि के द्वारा भी विदेशी भुगतान किये जाते है।

25.3.3. विनिमय बाजार : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व विनिमय बाजार में विनिमय का माध्यम स्वर्णमान था। इस प्रणाली के अन्तर्गत सोने के सिक्के चलते थे या जो करेंसी चलती थी, उसे एक निश्चित दर पर सोने में बदला जा सकता था। करेंसी की एक इकाई का मूल्य सोने के निश्चित भार में होता था अर्थात् एक रुपये, डॉलर या पाउण्ड आदि के बदले इतने ग्राम सोना। देश का केन्द्रीय बैंक हमेशा निर्धारित कीमत पर सोना खरीदने और बेचने को तैयार रहता था, जिस पर देश की मानक मुद्रा सोने में बदली जा सकती थी, वह दर स्वर्ण की टकसाल दर कीमत कहलाती थी।

वर्तमान समय में मुद्रा में निहित स्वर्ण धातु द्वारा अथवा टकसाली समता द्वारा विनिमय दर का निर्धारण महत्वहीन हो गया है। इसके प्रमुख तीन कारण इस प्रकार है–

- आज विश्व में कोई भी देश न तो स्वर्णमान अपनाये हुए है और न ही धातुमान।
- आजकल प्रायः सब देशों में कागजीमान अथवा प्रादिष्ट मुद्रा (अपरिवर्तनीय कागजी नोटों की प्रणाली) है जिसके अन्तर्गत विनिमय की टकसाली दर की धारणा ही अर्थहीन है।
- प्रथम विश्व युद्ध (1914–1918) की अवधि में स्वर्णमान समाप्त हो जाने के पश्चात् बहुत से देशों ने पत्र मुद्रामान अपना लिया था। सन् 1914–1924 की अवधि में अर्थशास्त्रियों में सी0 कैसल का क्रयशक्ति समता सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय रहा। क्रयशक्ति समता सिद्धान्त के अनुसार, दो देशों के बीच विनिमय की दर उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ दोनों देशों की क्रय–शक्ति समान होती है।

इन सिद्धान्त की गम्भीर त्रुटि यह है कि इसका दो देशो में कीमत–स्तरों का हिसाब लगाने का तरीका नही है। इसकी कठिन गणना के कारण इसे त्याग दिया गया।

इसके बाद विदेशी विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय का भुगतान शेष सिद्धान्त लोकप्रिय हुआ। इस सिद्धान्त के अनुसार–देश की मुद्रा की तुलना में, विदेशी मुद्रा का निर्धारण, विदेशी विनिमय बाजार में मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है एवं मांग तथा पूर्ति की शक्तियों का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान–शेष अथवा भुगतान संतुलन की विभिन्न मदों द्वारा होता हैं। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि जब भुगतान–शेष में घाटा होता है तो विनिमय दर की कमी हो जाती है। उसके विपरीत, जब भुगतान–शेष में आधिक्य होता है तो विनिमय दर में वृद्धि हो जाती है।

आधुनिक संदर्भ में इस सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि यह सिद्धांत भी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित हैं।

यहाँ आपकों यह बताना आवश्यक है कि विनिमय बाजार विनिमय दर के उन सिद्धान्तों से तो प्रभावित होता है जो बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित होते है परन्तु प्रत्येक सरकार विदेशों से प्राप्तियों तथा विदेशों को किये गये भुगतानों को सन्तुलित करने हेतु विनिमय नियन्त्रण प्रणाली के आधुनिक रूप को भी स्वीकार करती है।

25.3.4. भारत में विनिमय बाजार : स्वतन्त्रता के बाद

सन् 1946 तक ऐतिहासिक रूप में रूपया ब्रिटिश पाउण्ड स्टर्लिंग से सम्बन्धित था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की स्थापना हुई। इस कोष के संस्थापक सदस्य होने के कारण भारत ने बहुपक्षीय भुगतान की प्रणाली स्वीकार कर ली थी अर्थात् रूपया आई0एम0एफ0 के सभी सदस्य देशों की करेन्सियों में मुक्त रूप में परिवर्तनीय होना चाहिए किन्तु भारत ने लम्बे समय से विदेशी मुद्रा नियन्त्रण की नीति अपनायी थी। आर्थिक सुधारों से पूर्व तक कम्पनी विधि विषयक मन्त्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास मन्त्रालय एवं वित्त मन्त्रालय जैसी सरकारी एजेन्सियों ने विनिमय बाजार में आधिपत्य जमा कर रखा।

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने विनिमय बाजार में भारतीय रूपये को डॉलर के सम–मूल्य (1 यू0एस0 डॉलर = रू0 3.30) पर निर्धारित किया था। 1949 एवं 1966 में रूपये के अवलमूल्यन के बाद भारतीय रूपये को डॉलर के सपोक्ष नयी दर (1 यू0एस0 डॉलर = रू0 7.50) पर निर्धारित किया। सन् 1976 में भारत सरकार ने विनिमय बाजार में सम–मूल्य पर विनिमय दर निर्धारित करने की पद्धति का परित्याग कर दिया और रिजर्व बैंक को निर्देश दिया कि वह रूपये की विनिमय दर प्रमुख अर्न्तर्राष्ट्रीय करेन्सियों के समूह के आधार पर तय करें। इनमें प्रमुख करेन्सियां थी : पाउण्ड स्टर्लिंग, यू0एस0 डॉलर, जापानी येन और ड्यूश मार्क।

विनिमय बाजार में विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम ; 1973 ने भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। भारतीय रिजर्व बैंक ने विदेशी मुद्रा विनियमन कानून के आधीन विदेशी मुद्रा नियन्त्रण की व्यापक प्रणाली अपना ली थी जिसका मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा संसाधनों का संरक्षण करना था।

70 के दशक में विनिमय बाजार में जो उतार–चढ़ाव आये उसका प्रमुख कारण स्फीति दर का निरन्तर बढ़ना भी था जिसके परिणामस्वरूप रूपये की क्रयशक्ति में गिरावट आ गयी थी। यू0एस0 डॉलर और अन्य प्रमुख करेन्सियों के रूप में सन् 1991–92 से पहले रूपये के मूल्यह्रास का कारण भारत के भुगतान शेष के बढ़ते हुए घाटे थे और इस स्थिति को उदार आयात नीति और खाड़ी युद्ध ने और बिगाड़ दिया। इसके अतिरिक्त विदेशी मुद्रा–रिजर्व में तेजी से गिरावट और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारत को आर्थिक सहायता देने के समय रूपये के अवमूल्यन की शर्त लगाना, इसके अन्य प्रमुख कारण थे।

25.3.5. भारत में विनिमय बाजार : आर्थिक सुधारों के बाद

24 जुलाई 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद विदेशी विनिमय नियमन अधिनियमन के अधीन कम्पनियों को अनेक रियायते दी गयी। रूपये का अवमूल्यन किया गया तथा अनेक आर्थिक

सुधार लागू किये गये। भारतीय अर्थव्यवस्था उदारीकरण के मार्ग पर चलते हुए निजीकरण एवं वैश्वीकरण की ओर उन्मुख हुई। 1991–92 के पश्चात् भारत में विनिमय बाजार की स्थिति में सुधार हुआ परन्तु 1997 के अन्त मे विदेशी मुद्रा बाजार में भारी सट्टेबाजी हुई और रूपये के विदेशी मूल्य में भारी गिरावट आयी। इसी दौरान बहुत से एशियाई देशों जैसे– मलेशिया, इंडोनेशिया और दक्षिण कोरिया एक गम्भीर आर्थिक संकट से ग्रस्त हो गये और उनकी करेन्सियों में डॉलर के सापेक्ष अत्यधिक गिरावट दर्ज की गयी। भारतीय रूपया भी इस संक्रमण प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। भारतीय रिजर्व बैंक ने विनिमय बाजार में हस्तक्षेप भी किया परन्तु रूपये के बाह्य मूल्य में गिरावट को रोकने के प्रभाव में असफल रहा।

विनिमय व्यापार में नियन्त्रण हेतु सरकार ने सन् 1999 में विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम को समाप्त कर विदेशाी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य विदेशी विनिमय का नियन्त्रण न करके केवल उसका प्रबन्धन करना है। इस प्रबन्धन का उद्देश्य यह है कि विदेशी व्यापार से सम्बन्धित भुगतानों में कोई रूकावट या कठिनाई न आ पाये तथा साथ ही साथ भारत के विदेशी विनिमय बाजार का सुचारू ढ़ंग से विकास हो सके। इस क्रम में सर्वप्रथम रूपये की चालू खाते पर आंशिक परिवर्तनीयता लागू की गयी। बाद में चालू खाते पर रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता लागू की गयी। पूंजी खाते की परिवर्तनीयता पर प्रारम्भ में सन्देह बना रहा। संदेहों को दूर करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने सन् 1997 में श्री एस0एस0 तारापोर की अध्यक्षता में एक समिति बनायी। तारापोर समिति ने यह सिफारिश दी कि पूंजी खाते में पूर्ण परिवर्तनीयता प्राप्त करने से पूर्व राजकोषीय घाटे को कम करने, स्फीति को नियंत्रित करने तथा वित्तीय क्षेत्र को मजबूत करने की बात कही।

सन् 2006 में द्वितीय तारापोर समिति की सिफारिशों के आधार पर पूंजी खाते में भी रूपये को पूर्ण परिवर्तनीय बना दिया गया। विनिमय बाजार को सुदृढ़ बनाने हेतु तारापोर समिति ने बैकिंग प्रणाली में समेकन का सुझाव दिया जिससे बैकिंग प्रणाली को मजबूत बनाया जा सके।

हवाला के जरिये अपनी काली कमायी को विदेशी खातों में रखने हेतु सन् 2002 में मुद्रा प्रक्षालन निरोधक कानून की संसद में पारित हुआ।

25.3.6. विदेशी मुद्रा प्रबन्धन कानून (फेमा)

विदेशी मुद्रा बाजार में लेन–देनों को उदार बनाने तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के समुचित एवं सुव्यवस्थित विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने 27 वर्ष पुराने 1973 से प्रभावी विदेशी मुद्रा अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act - FERA) के स्थान पर 1 जून, 2000 से एक नया विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (Foreign Exchange Management Act - FEMA) फेमा विधेयक लागू कर दिया है। फेमा पूर्ववर्ती फेरा की तुलना में अति उदार अधिनियम है। कठोर प्रावधानों वाले फेरा को 1973 में ऐसे समय में लागू किया गया था, जबकि देश में विदेशी मुद्रा की बड़ी कमी थी।

नये फेमा में सबसे बड़ा उदारीकरण यह किया गया है कि अधिनियम के उल्लंघनकर्ताओं को अब केवल मौद्रिक दंड ही भुगतना होगा, जोकि सम्बद्ध राशि का अधिकतम तीन गुना होगा। पूर्ववर्ती फेरा के तहत् यह दण्ड पाँच गुना तक था तथा साथ ही साथ कारावास के दण्ड का भी उसमें प्रावधान था। फेमा के तहत् दण्डित उल्लंघनकर्ता यदि अर्थ–दण्ड चुकाने में असफल रहते हैं, केवल उसी स्थिति में उन्हें जेल भेजने की कार्यवाही की जा सकेगी, ऐसी स्थिति में भी जेल में उनकी स्थिति सिविल अपराधी की होगी जिन्हें अपने जेल प्रवास का खर्च स्वयं वहन करना होगा। नये अधिनियम फेमा के तहत् विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा के आहरण की सीमाओं में भी पर्याप्त वृद्धि की गयी है। व्यापारिक उद्देश्य के लिए अथवा किसी सेमीनार/सम्मेलन में भाग लेने के लिए विदेश जाने वालों की अब प्रति फेरे 25 हजार डॉलर तक की राशि के लिए रिजर्व बैंक की स्वीकृति की आवश्यकता नही होगी, भले ही विदेश प्रवास की अवधि कितनी भी हो। बेसिक यात्रा कोटे की राशि को 3000 डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर प्रतिवर्ष व उपहार हेतु राशि को 1000 डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर कर दिया गया है। नयें अधिनियम के तहत् अब कोई व्यक्ति अपने किसी रिश्तेदार या मित्र को एक वर्ष में 5 हजार डॉलर तक की राशि उपहार में भेज सकता है। पहले यह अनुमति 1000 हजार डॉलर तक के लिए ही थी। इसी प्रकार दान के रूप में भी अब एक हजार डॉलर के स्थान पर 5 हजार डॉलर तक की राशि रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना प्रेषित की जा सकेगी। इसी प्रकार अन्य उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा आहरण में वृद्धि नये अधिनियम में की गयी है। फेरा से अलग हटकर एक अन्य प्रमुख परिवर्तन जो फेमा में किया गया है– वह यह है कि फेरा के तहत् जहाँ सिद्ध करने का दायित्व आरोपी का था, वहीं फेमा के तहत् यह दायित्व अब प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

फेरा एवं फेमा में अन्तर

फेरा 1973 का मुख्य उद्देश्य जहाँ विदेशी मुद्रओं का संरक्षण करना था, वही फेमा 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित रखरखाव को बढ़ावा देना है।

- भारत में विदेशी निवेश तथा विदेशों में भारतीय निवेश सम्बन्धी नियम फेरा की तुलना में फेमा मे अधिक उदार एवं पारदर्शी है।
- भारत में रह चुका कोई व्यक्ति भारत के बाहर का निवासी हो जाने पर भी उन शेयरों, प्रतिभूतियों एवं सम्पत्तियों को धारण कर सकेगा जो उसने भारत प्रवास के दौरान धारण की थी।
- विदेश यात्राओं व अन्य विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्राओं के आहरण की सीमायें फेरा की तुलना में फेमा में काफी अधिक निर्धारित की गयी है।

● फेमा के उल्लंघन के मामलों का निपटान सिविल अपराधों के तरीके से किया जायेगा, अर्थात् इसके उल्लंघनकताओं को जेल की सजा नहीं, बल्कि केवल अर्थदंड ही वहन करना होगा।

● फेरा उल्लंघन के मामले में दंड की राशि जहाँ सम्बद्ध राशि के पाँच गुना तक हो सकती थी, वहीं नये फेमा के तहत् यह अधिकतम तीन गुना ही होगी।

● फेरा के तहत् सिद्ध करने का दायित्व अभियुक्त का होता था, जबकि फेमा के तहत् यह दायित्व प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

इन उपायों के बावजूद अगस्त 2013 में रूपया लुढक कर डॉलर के मुकाबले 69 रूपये तक पहुँच गया था। इसकों रोकने हेतु अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्न सुझाव दिये गये–

- चालू खाते एवं राजकोषीय खाते के घाटे को कम करना।
- विदेशी संस्थागत निवेशकों के विश्वास को बनाये रखना।
- विकास कार्यो को बढावा देना।
- रूपये में आयात–निर्यात किया जायें।
- आई.एम.एफ. से कर्ज लिया जायें।
- एन.आर.आई. से डॉलर एकत्रित किये जायें।
- घरेलू सोने का मौद्रीकरण या गिरवी रखना।

25.4.1. यूरो मुद्रा बाजार

विश्व के पटल पर बढ़ते आर्थिक एकीकरण अभियानों–नाफ्टा (उत्तरी अमरीका मुक्त व्यापार समझौता), साप्टा (दक्षिण एशियाई वरीयता–व्यापार समझौता), एसियान (दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संघ), सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) आदि अनेक के प्रयासों ने क्षेत्रीय, आर्थिक गुट की रणनीति को बढ़ावा दिया और इसी कड़ी से जुड़ गया एक और नाम– मास्ट्रिश्च संधि (Maastrict Treaty)। 9–10 दिसम्बर, 1991 को यूरोपीय आर्थिक समुदाय के तत्कालीन 12 राष्ट्रों ने मास्ट्रिश्च (नीदरलैण्ड्स) में आयोजित शिखर सम्मेलन में आम सहमति के बाद यूरोप के राजनीतिक, आर्थिक एवं मौद्रिक एकीकरण हेतु एक संधि पर हस्ताक्षर किए और यही मास्ट्रिश्च संधि यूरो करेन्सी के उदय की बुनियाद बनी। 1 नवम्बर 1993 से लागू इस मास्ट्रिच संधि ने राजनीतिक एवं आर्थिक एकीकरण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु यूरोपीय संघ (Eurpean Union) को जन्म दिया। मास्ट्रिच संधि एवं यूरोपीय संघ की स्थापना के लिए याक डेलोर्स की योजना के परिणाम के रूप में ही आज विश्व पटल पर यूरोप की साझी मुद्रा यूरो ने दस्तक दी है।

यूरोप के अब तक 17 राष्ट्रों ने यूरो में भागीदारी हेतु सभी आवश्यक पूर्व शर्तों को पूरा कर लिया है। वह भी इस आशा के साथ कि यूरो अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजार में डॉलर की सम्प्रभुता को चुनौती देगा और अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की समस्या के समाधान का एक नया मार्ग प्रशस्त होगा।

यूरो मुद्रा बाजार एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंकिग बाजार है। जिसने पिछले डेढ़ दशक में उल्लेखनीय प्रगति की है। वर्तमान समय में यूरो मुद्रा बाजार अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक दृश्य का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।

यूरो मुद्रा बाजार स्थानीयकरण मुख्य रूप से लन्दन में है जो वाह्य देशों की मुद्राओं के लेन–देन में विभिष्टीकरण करता है। अमेरीकी डालर जिसका अन्तर्राष्ट्रीय लेन–देन में प्रभुत्व है, के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय मुद्राओं में भी लेन–देन होता है, जिनका अंश अर्न्राष्ट्रीय बाजार में दिनो–दिन बढ़ता जा रहा है। जो यूरोपीय मुद्रा बाजार में भाग लेते है उनमें व्यापारिक बैंक, मौद्रिक अधिकारी, व्यवसायिक फर्म–बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, सरकारी एजेन्सीज तथा अर्द्धसरकारी संस्थाएं सम्मिलित है। इस बाजार के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों पर 250 से 450 बिलियन डालर के बीच परिसम्पत्ति लगी हुयी है। गैर–बैंक साधनों का प्रयोग बाजार के कुल लेन–देन का लगभग एक तिहाई है। चूँकि बाजार का एक बड़ा भाग यूरोप में स्थित है और लेन–देन मुख्यतः डालर में होता है इसलिए इस बाजार को यूरो डालर बाजार कहते है। इसीलिए इसको यूरो डालर के अतिरिक्त यूरोपीय मुद्रा बाजार कहना अधिक उपर्युक्त होगा। फिर भी यूरोपीय शब्द का प्रयोग भ्रामक है क्योंकि इसमें केन्द्र यूरोप के बाहर बहामा, सिंगापुर ओर पनामा में भी स्थित है।

25.4.2. यूरो मुद्रा बाजार की विशेषताएं

समय के साथ–साथ यूरोपीय मुद्रा बाजार की संरचना में जो परिवर्तन हुआ है उसके फलस्वरूप लेन–देन तकनीक और ढंग में भी परिवर्तन हुआ है, जिसके कारण इस बाजार की कुछ प्रमुख बिलक्षणताओं को जन्म मिला है। इसका विवरण निम्न प्रकार है।

यूरो मुद्रा बाजार थोक लेन–देन का बाजार है। जहाँ बड़ी–बड़ी कम्पनियां या सरकारी अस्तित्व के व्यवसायी लेन–देन करते है। लेन–देन की औसत मात्रा बहुत बड़ी होती है जिसके कारण उपरिव्यय कम पड़ता है।

यूरो मुद्रा बाजार का एक बड़ा भाग अन्तबैंक बाजार है, जिसकी प्रकृति मुख्य रूप से अल्पकालीन है। परिणामस्वरूप, यूरोपीय बैंकों में विदेशी परिसम्पत्तियों और दायित्वों के हिसाब–किताब का लगभग तीन–चौथाई दूसरे बैंकों के नाम से है। पिछले कई वर्षों में बाजार के आकार में जो विस्तार हुआ है वह मुख्य रूप से अर्न्तबैंक जमाओं के कारण है।

यूरो मुद्रा बाजार बहुत ही प्रतियोगी है। इसमें नयें व्यवसायियों के आने की पूरी छूट है। परिणामस्वरूप, जमाओं और ऋणों के बीच ब्याज दरों की सीमा के कम से कम होने की प्रवृत्ति है जिसके कारण यूरोपीय बैंको को यूरो मुद्रा बाजार की परिसम्पत्तियों पर राष्ट्रीय या घरेलू बाजार की तुलना में कम प्रतिफल पर सन्तुष्ट होना पड़ता है। बैंकों में बढ़ती हुयी प्रतियोगिता के कारण कुछ यूरोपीय बैंको को उधारकर्ता का चुनाव और लम्बे समय के लिए ऋण देने का भारी जोखिम उठाना पड़ रहा है। वर्तमान समय में बैंक इस सन्दर्भ में पर्याप्त सावधानी से काम ले रहे हैं। यद्यपि यूरो मुद्रा बाजार राष्ट्रीय बाजारों से काफी मिलता–जुलता है फिर भी घरेलू बाजार की भांति कोई केन्द्रीय मौलिक अधिकारी नहीं है और नियंत्रण का भी अभाव है।

25.4.3. ऋण और जमा

भारी मात्रा में ऋण देने में जो जोखिम नीहित है उसे कई बैंको पर डालने के उद्देश्य से यूरोपीय बैंको ने अन्तबैंक बाजार से बाहर के मध्यकालीन ऋणों को अभिपाद (सिंडीकेट) करने की तकनीक को अपनाया है। ऋण को अभिपद करने की अनेक विधियां है। सभी विधियों की एक सामान्य विशेषता यह है कि ऋण देने की प्रक्रिया में अधिक से अधिक (95 बैंक तक) बैंक सम्मिलित हो और एक लीड बैंक हो जो ऋण के प्रबन्ध का कार्य करे। इससे यह लाभ होता है कि छोटे और माध्यम आकार के बैंक जिनके लिए ऋण देना सम्भव नही होता है वे यूरोपीय मुद्रा बाजार में भाग ले पाते है और बैंको के संघ में भाग लेने के लिए प्रेरित होते है। ऋण में निहित जोखिम को कम करने के उद्देश्य से यूरोपीय बैंक एक देश में एक ऋणकर्ता या ऋणकर्ताओं की बकाया अग्रिम धनराशि की सीमा निर्धारित कर देते है। जिससे विकासशील देशों को यूरोपीय मुद्रा बाजार से ऋण लेना सुगम हो जाये।

यूरो मुद्रा बाजार की दूसरी विशेषता यह है कि अन्तबैंक से बाहर के ऋणों की ब्याज में 3 या 6 महीने बाद अन्तबैंक ऋणों पर ब्याज को ध्यान में रखकर परिवर्तन या समायोजन होता रहे। परिवर्तनशील विनिमय दर की प्रथा अपनाने के फलस्वरूप ब्याज में नीहित जोखिम कम करने का प्रयास किया जाता है। ब्याज दर में परिवर्तन के लिए मुख्य आधार लंदन इण्टरबैंक आफटर रेट (एल0आई0बी0ओ0आर0) होता है।

विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उधारकर्ता या जमाकर्ता को कोई नुकसान न हो, इसके लिए उधार को अमेरिकी डालर के अतिरिक्त अन्य मुद्राओं में भी नामित करने की व्यवस्था है।

यूरोपीय बैंक जमाओं को चैक के माध्यम से निकालने की सुविधा नही प्रदान करते है किन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि यूरोपीय मुद्रा बाजार की जमायें मुख्यतः अल्पकालीन है, जिसके कारण वे तरल परिसम्पत्ति की भांति ही है।

25.4.4. यूरो मुद्रा बाजार और भारत

यूरो मुद्रा बाजार वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के रूप में विकसित हो चुका है। यूरोपीय संघ भारत का सबसे बडा व्यापारिक साझीदार देश हैं। वर्ष 2002 में भारत यूरोपीय संघ का 15वॉ सबसे बडा साझीदार देश था जो 2009 में 9वॉ सबसे बडा साझीदार देश बन गया हैं। आर्थिक सहयोग में व्यापार, निवेश, सरकारी विकास सहायता तथा विकास कार्यक्रमों में सहयोग आदि सम्मिलित हैं। यूरोपीय संघ के साथ यूरो में किया गया भारतीय व्यापार भारत की अमेरिकी डालॅर पर निर्भरता घटायेगा। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय निर्यातों को बढाने का एक प्रमुख मार्ग खुलेगा।

25.5.1. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार

बॉण्ड का अर्थ ऋणपत्रों से होता है। यह ऋण प्राप्ति हेतु एक वित्तीय बाजार है पूंजी कम्पनियां ऋण प्राप्त करने के लिए अपने बॉण्ड जारी करती है। जो संस्था इन्हें जारी करती है वे इन पर धारकों को एक निश्चित दर से ब्याज भी देती है। इस प्रकार बॉण्ड

बाजार वह जहाँ वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं द्वारा नये बॉण्ड जारी किये जाते है तथा बॉण्ड खरीदे व बेचे जाते है।

अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार का अपना एक लम्बा इतिहास है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड मार्केट में भारत का प्रवेश बहुत पुराना नहीं है। उदारीकरण से पूर्व तक भारतीय पूंजी बााजर की बहुत सी भारतीय कम्पनियां अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से ऋण ले रही थी जैसे यूरो बॉण्ड एवं विदेशी बॉण्ड। अल्प ऋणों के लिए विदेशी मुद्रा परिवर्तनीय बॉण्ड लिये जाते है। यह अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड तैरीती दर पर लिये जाते है जो बाजार के उतार–चढ़ाव पर निर्भर करते है।

बाऍण्ड के आधार पर ही उसका ब्याज निर्धारित होता हैं–

- **स्थिर कूपन बॉण्ड–** बॉण्ड जारी करते समय ही परिपक्वता अवधि के समय देय भुगतान की घोषणा कर दी जाती है। यह बॉण्ड अल्पकाल के लिए जारी किये जाते है।
- **तैरते कूपन बॉण्ड–** यह बॉण्ड बाजार की ब्याज दर से प्रभावित होते है। यह ब्याज LIBOR (London Inter Bank Offered Rate) द्वारा निर्धारित होती है।
- **जीरो कूपन बॉण्ड–** इस तरह के बॉण्ड पर कोई ब्याज देय नही होता है। परिपक्वता पर केवल अंकित मूल्य का ही भुगतान होता है। ऐसे बॉण्डों की बिक्री प्रायः अंकित मूल्य से कम पर की जाती है। यह डिस्काउंट ही क्रेताओं को ब्याज के रूप में प्राप्त होता है।
- **परिवर्तनीय बॉण्ड–** एक तरह से यह बॉण्ड स्थिर कूपन बॉण्ड ही होते है जिसका कुछ कम्पनी के शेयर में लगाया जाता है।
- **दोहरा मुद्रा बॉण्ड–** बॉण्ड पर अंकित मूल्य एवं उससे प्राप्त होने वाले ब्याज की गणना अलग–अलग देशों द्वारा की जाती है।

25.5.2. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड के प्रकार

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है–

i. यूरो बॉण्ड

ii. विदेशी बॉण्ड

iii. घरेलू बॉण्ड

i. यूरो बॉण्ड– एक कम्पनी द्वारा मुद्रा अर्जन हेतु विदेश में बॉण्ड जारी करती है तो उसे यूरो बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ– भारत सरकार, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) ने कतिपय प्रावधानों के अन्तर्गत चुनिंदा भारतीय कम्पनियों को विदेशी पूंजी बाजारों में बॉण्ड जारी करके विदेशी मुद्रा में पूंजी एकत्रित करने की छूट दी जाती है। इसी के तहत जब कोई भारतीय कम्पनी विदेशों में अपना बॉण्ड जारी करती है तो उसे यूरो बॉण्ड कहा जाता है।

ii. विदेशी बॉण्ड– विदेशी कम्पनी द्वारा उस देश की घरेलू मुद्रा के अर्जन हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे विदेशी बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ– अमेरिकी कम्पनी द्वारा

जापानी मुद्रा येन को प्राप्त करने हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे विदेशी बॉण्ड कहते है।

iii. घरेलू बॉण्ड– जब कोई कम्पनी अपने ही देश मे अपनी ही मुद्रा के अर्जन हेतु बॉण्ड जारी करती है तो उसे घरेलू बॉण्ड कहते है। उदाहरणार्थ– भारतीय कम्पनी द्वारा अपनी ही मुद्रा (रूपये) के अर्जन हेतु जो बॉण्ड जारी किये जाते है उसे घरेलू बॉण्ड कहते है। इसके अतिरिक्त कुछ कम्पनियां एक साथ अनेक देशों में एक साथ मुद्रा अर्जन हेतु बॉण्ड जारी करती है उसे ग्लोबल बॉण्ड कहते है।

25.5.3. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्डों की रेटिंग

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बॉण्ड की सफलता उसकी रेटिंग पर निर्भर करती है। इन बॉण्डों की रेटिंग हेतु तीन संस्थायें कार्य करती है– एस0 एण्ड पी0, मूडीज़ एवं फिच। क्रेडिट रेटिंग एजेन्सियां अपने–अपने तरीकों से कम्पनी की वित्तीय स्थिति एवं उसकी भुगतान क्षमता का अध्ययन कर उसके द्वारा जारी किये जाने वाले बॉण्डों की क्रेडिट रेटिंग का निर्धारण करती है।

25.5.4. अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार एवं भारतीय कम्पनियां

भारतीय कम्पनियां भी अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में अपनी पहचान बनाये हुए है। रिलायन्स उद्योग, आई0सी0आई0सी0आई0 लिमिटेड, ओ0एन0जी0सी0, आई0डी0बी0आई0 आदि कम्पनियों ने 10 वर्षीय परिपक्वता अवधि वाले बॉण्ड उदारीकरण के बाद जारी किये थे। उदारीकरण से पूर्व तक स्थिर कूपन वाले बॉण्ड जारी किये जाते थे परन्तु उदारीकरण के बाद बाजार पर आधारित परिवर्तनीय बॉण्ड जारी किये जाने लगे है। स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा 1991 में इण्डिया डेवलपमेंट बॉण्ड, 1998 में रिपर्जेन्ट इण्डिया बॉण्ड तथा 2000 में मिलेनियम इण्डिया डिपॉजिट योजना प्रारम्भ गयी। इनका उद्देश्य अनिवासी भारतीयों से विदेशी मुद्रा को प्राप्त करना था।

25.6. सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि वैश्वीकरण के बाद विदेशी विनिमय बाजार में क्या–क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। फेरा, 1973 का मुख्य उद्देश्य जहाँ विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था, वही फेमा 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित रखरखाव को बढ़ावा देना है। यूरो मुद्रा बाजार वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार के रूप में

विकसित हो चुका है। वर्तमान में यह बाजार अन्तर्राष्ट्रीय वित्त बाजार में डॉलर की सम्प्रभुता को चुनौती दे रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बॉण्ड बाजार में यूरो बॉण्ड एवं विदेशी बॉण्ड बाजार की परिवर्तनीयता के साथ कदमताल कर रहे है जिसमें भारतीय कम्पनियाँ भी अपनी पैठ बना चुकी है और निरन्तर नये क्षितिज की ओर अग्रसर है।

25.7. शब्दावली

आयात–विदेशों से सामान को मंगाना।

निर्यात–विदेशों को सामान को भेजना।

अवमूल्यन–यदि किसी मुद्रा का विनिमय मूल्य अन्य मुद्राओं की तुलना में जानबूझ कर कम किया जाता है।

मुद्रा स्फीति–जब मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है तथा वस्तु की कीमते बढ़ जाती है।

हवाला–जब व्यापार अधिकृत विदेशी विनिमय चैनलों को बाईपास करके व्यापार करते है।

पूँजी बाजार–पूँजी बाजार में दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं को शामिल किया जाता है।

25.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. भारत में आर्थिक सुधार कब से प्रारम्भ हुए हैं ?

(अ) 24 जुलाई 1990; (ब) 24 जुलाई 1991; (स) 24 जुलाई 1992; (द) 24 जुलाई 1993;

2. फेमा अधिनियम कब से लागू हुआ हैं ?

(अ) 1 जून 2000; (ब) 1 जुलाई 2000;(स) 1 अगस्त 2000; (द) 1 मई 2000;

3. फेमा (FEMA) का पूरा नाम क्या हैं–

(अ)विदेशी मुद्रा सहयोग अधिनियम;(ब) विदेशी मुद्रा सरल अधिनियम ;

(स)विदेशी मुद्रा त्याग अधिनियम;(द) विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम ;

4. यूरो मुद्रा किस संघ की मुद्रा हैं ?

(अ) यूरोपीय संघ;(ब) अमेरिकी संघ ; (स) अफ्रीका संघ ; (द) इनमें से कोई नहीं ;

5. मूडीज संस्था का कार्य क्या हैं–

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय बैकों की रेटिग करना; (ब) अन्तर्राष्ट्रीय बाण्डों की रेटिग करना ;

(स) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की रेटिग करना ; (द) इनमें से कोई नहीं ;

उत्तर– (1) 24 जुलाई 1991, (2) 1 जून 2000, (3) विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम, (4) यूरोपीय संघ,(5) अन्तर्राष्ट्रीय बाण्डों की रेटिग करना,

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. फेरा एवं फेमा में अन्तर बताइये।

2. विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम की मुख्य विशेषताएं लिखिएं।

3. यूरो मुद्रा बाजार की मुख्य विशेषताएं बताइये।
4. अन्तर्राष्ट्रीय बाॅण्ड के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिएं।
5. जीरो कूपन बाॅण्ड का अर्थ लिखिएं।
6. विनिमय दर के अर्थ को समझाइये।

25.9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- एम.सी.वैश्य एवं सुदामा सिहं, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं.प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, वृंदा पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली।
- शर्मा एवं सिंघई, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, सहित्य भवन, पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., आगरा।
- अग्रवाल बरला, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- Mithani, D.M.,International Economics, Himalaya Publishing House.
- Bhagwati,J. International Trade: Selected Readings, Cambridge University Press.
- Cherunilam,Francis,InternationalEconomics,Oxford University Press India.

25.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक सुधारों के बाद विनिमय बाजार में होने वाले परिवतनों को संक्षेप में समझाइये।
2. यूरों मुद्रा बाजार पर एक निबन्ध लिखिएं।
3. अन्तर्राष्ट्रीय बाॅण्ड बाजार का अर्थ, प्रकार एवं विशेषताएं लिखिएं।